आधुनिक भारत में समाजवादी विचारधारा

❋ पं० जवाहर लाल नेहरू के विशेष सन्दर्भ में ❋

Socialistic Thought in Modern India
With special reference to Pt. Jawahar Lal Nehru

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की
डी. फिल्.
उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

❖ शोध छात्र ❖

अमितास पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक-राजनीति विज्ञान
शासकीय विवेकानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय
मैहर (सतना) म.प्र.

❖ शोध निर्देशिका ❖

डॉ. (श्रीमती) अनुराधा अग्रवाल

वरिष्ठ प्रवक्ता - राजनीति विज्ञान, राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सन् 2001-2002 ई.

विषयानुक्रम

पृष्ठ सख्या

भूमिका- I - III

प्रस्तावना- **1-31**

1 समाजवाद का अर्थ एव परिभाषा 18-24

2. समाजवाद के मूल उद्देश्य 24-29

प्रथम अध्याय- पाश्चात्य परिवेश में समाजवाद का प्रारम्भ एवं विकास **32-100**

1 समाजवाद का प्रारम्भ 32-36

2 फ्रान्स के कल्पनावादी समाजवादी विचारक 36-44

3 ब्रिटेन के समाजवादी विचारक 45-50

4 जर्मनी के समाजवादी विचारक 51-71

5 मार्क्स के पश्चात समाजवादी विचारधारा का विकास 71-85

6 समाजवाद की विभिन्न विचारधाराऍ 85-98

द्वितीय अध्याय - आधुनिक भारत में समाजवाद **101-158**

1. उन्नीसवी सदी मे समाजवादी विचार 104-109

अ. स्वामी दयानन्द सरस्वती

ब. स्वामी विवेकानन्द

2 महात्मा गांधी का समाजवाद 110-120

अ. मोहन दास कर्मचन्द गांधी

ब. विनोबा भावे

3 अन्य भारतीय समाजवादी विचारक 120-154

अ. आचार्य नरेन्द्र देव

ब. डॉ. राम मनोहर लोहिया

स. जय प्रकाश नारायण

द. मुलायम सिह यादव

तृतीय अध्याय - पंडित ज़वाहर लाल नेहरू का समाजवाद 159-231

1 नेहरू जी को प्रभावित करने वाले तत्व 160-166

2 नेहरू जी का समाजवादी चितन 166-171

3 नेहरू जी के आर्थिक विचार 171-180

4 नेहरू जी की औद्योगिक नीति संबंधी विचार 180-191

5 राष्ट्रीयकरण पर नेहरू जी के विचार 191-193

6 कृषि व्यवस्था के संबंध मे नेहरू जी के विचार 193-200

7 नेहरू जी के राज्य सबंधी विचार 200-208

8 नेहरू जी के शासन व्यवस्था संबंधी विचार 208-211

9 धर्म और राजनीति के सबंध पर नेहरू जी के विचार 211-215

10 जाति प्रथा के उन्मूलन पर नेहरू जी के विचार 215-218

11. अस्पृश्यता निवारण पर नेहरू जी के विचार 218-220

12. सामप्रदायिकता निवारण हेतु नेहरू जी के विचार 220-225

चतुर्थ अध्याय - समाजवादी विचारधारा में नेहरू जी का योगदान 232-253

पंचम अध्याय - उपसंहार 254-276

परिशिष्ट - 277-293

1. हिन्दी की पुस्तकें/पत्रिकाएं 277-285

2 अंग्रेजी की पुस्तकें/पत्रिकाएं 286-293

भूमिका

विश्व के महत्वपूर्ण मनीषियो एव विचारको ने समानता, स्वतत्रता और शोषण तथा अन्याय के विरोध की बात कही है। जो प्रारम्भ मे धर्म के माध्यम से प्रचारित-प्रसारित हुई और कालान्तर मे यह राजनीति विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र मे आयी। यह विचार इस मान्यता पर केन्द्रित रहा कि ईश्वर अथवा प्रकृति ने सबको समान बनाया है। असमानता, पराधीनता, शोषण एव दमन समाज मे उत्पन्न हुये है जिनके मूल मे एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति पर अपना वर्चस्व आच्छादित कर देने की प्रवृत्ति रही है। धर्म एव नीतिशास्त्र मे इस प्रवृत्ति को निन्दनीय कहा गया है लेकिन इसने इनके उन्मूलन के लिये कोई सगठित प्रयास नही सुझाया। धर्मशास्त्र ने अत्याचारी शासक अथवा असमान कानून तथा शोषणात्मक व्यवस्था से सघर्ष करने के लिये व्यक्तियो का आह्वान नही किया। इसने व्यक्ति को अन्तर्मुखी एवं सहिष्णु बनने पर जोर दिया जिसके परिणामस्वरूप समाज परिवर्तन की प्रक्रिया अवरुद्ध रही और धरातल की समस्याओ को पारलौकिक जगत से जोड़ दिया गया। लेकिन इसका प्रभाव चिन्तन धाराओ पर पड़ा। सामाजिक असमानता का सम्बन्ध जब आर्थिक समस्याओ से हुआ तो यह विचार विकसित हुआ कि वैयक्तिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्वतंत्रता आर्थिक समानता के अभाव मे निरर्थक है और इसके लिये संगठित प्रयास आवश्यक है। वस्तुत· समाजवाद भौतिक जगत मे समस्याओ को दूर करने का ही एक संगठित प्रयास है।

कालान्तर मे समाजवाद के कई रूप और दृष्टिकोण जैसे फेबियनवाद , श्रमिक संघवाद्, श्रेणी समाजवाद, अराजकतावाद, मार्क्सवाद, लेनिनवाद, संशोधनवाद हमारे समक्ष आते रहे जिसके कारण भारतीय समाजवादी विचारको के मन मे यह प्रश्न बना रहा कि वास्तव मे समाजवाद क्या है? भारत मे प्रत्येक समाजवादी विचारक समाजवाद के बारे मे अपना-अपना मत व्यक्त करते रहे है अधिकांश समाजवादी महात्मा गांधी के विचारो से प्रभावित होते हुये भी उनसे मत वैभिन्नता रखते है। इस कारण समाजवाद के बारे मे कई दृष्टिकोण हमारे समक्ष आये है। लेकिन भारतीय राजनीति के पॉच महान उद्देश्यों अहिंसा, समानता, जनतत्र, विकेन्द्रीकरण और समजावाद का अभी भी कोई ठोस रूप सामने नही आया है। पंडित जवाहर

लाल नेहरू समाजवादी थे। वे समाजवाद से काफी हद तक प्रभावित थे। उनके ऊपर मार्क्सवाद, सोवियत समाज, गाधीवाद, तथा प्राचीन भारतीय दर्शन का प्रभाव था। आजादी के उपरान्त वे १७ वर्षो तक भारत को नई दिशा प्रदान करते रहे। उन्होने भारत मे अपनी सोच एव विचार के अनुरूप समाजवाद लाने का हर सभव प्रयास किया। तीव्र आर्थिक विकास हेतु तीव्र औद्योगीकरण के माध्यम से उन्होने समाज के समाजवादी ढॉचे की कल्पना की। समाजवाद के सबध मे उनका तरीका ही अलग था। ऐसी दशा मे आधुनिक भारत मे समाजवादी विचारधारा का अध्ययन - पडित जवाहरलाल नेहरू के विशेष सन्दर्भ मे, एक निश्चित दिशा प्रदान कर सकता है। प्रस्तुत शोध प्रबध मे भारतीय विचारको के अनुसार समाजवाद और नेहरू के समाजवाद के उद्देश्य से व्याख्या एव आलोचनात्मक विश्लेषण करने का प्रयास किया गया।

आभार

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का प्रारम्भ और अत मेरी आदरणीया शोध निर्देशिका डॉ. (श्रीमती) अनुराधा अग्रवाल के दिशा-निर्देशन मे ही सभव हो सका है। इस शोध प्रबन्ध के एक-एक शब्द की रचना मे मुझे उनका आशिर्वाद प्राप्त हुआ है। जिनका मूल्याकन करने मे मै अपने आपको असमर्थ पा रहा हूॅ, क्योकि कोई ऐसा शब्द या वाक्य बना ही नही है जिसके सहारे मै उनके इस कृत्योपकार के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर सकूॅ। डॉ. पकज कुमार (प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान, इलाहाबाद वि.वि.) ऐसे प्रेरक है जिनकी प्रेरणा को मै आजीवन विस्मृत नही कर सकता।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के राजनीति विज्ञान विभाग के पूर्व विभागाध्यक्षो प्रो. एच.एम. जैन एवं प्रो. यू.के. तिवारी का मै ऋणी हूॅ जिनका आशिर्वाद मुझे बराबर मिलता रहा। डॉ. आलोक पंत (विभागाध्यक्ष-राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद वि वि.) श्री दिवाकर कौशिक, डॉ वी.के. राय का विशेष रूप से ऋणी हूॅ और उन्हे आभार व्यक्त करता हूॅ।

यह शोध-प्रबन्ध मेरे परम मित्र, अग्रज डॉ. अजय प्रकाश खरे की ही देन है। उनके असीम प्रेम, असीमित प्रेरणा और भ्रातृत्वपूर्ण डॉट-फटकार का ही यह परिणाम है कि मै अपने संकल्प को पूर्ण कर सका हूॅ। मार्ग मे आने वाली समस्त बाधाओ, समस्याओ का निदान उन्होने जिस ईश्वरीय सहजता के साथ किया उन्हे देख मै स्वय आश्चर्य चकित रह जाता। आदरणीया भाभी जी डॉ. (श्रीमती) अर्चना खरे का स्नेह एवं प्रोत्साहन मुझे हमेशा

मिला। उपर्युक्त द्वय के सहयोग के बिना यह शोध पूर्ण नही हो सकता था मै उनका आजीवन ऋणी रहूॅगा।

अपने सहयोगी एव मित्र श्री अरविन्द श्रीवास्तव, श्री विजय कुमार सिह, श्री महेन्द्र नाथ यादव, श्री अनुराग वर्द्धन पाण्डेय का विशेष रूप से आभारी हूॅ। जिन्होने मेरे शोध कार्य को अपनी निश्छल भावना से, समय-समय पर सहयोग एव प्रोत्साहन देकर, पूर्ण करने मे सहायता प्रदान किया है। मै उनका ह्दय से आभार व्यक्त करता हूॅ।

मेरे प्रिय सुश्री मिथिलेश पाण्डेय ने पाण्डुलिपि लिखने मे काफी मदद की है। अरविन्द शुक्ला, सुहाष त्रिपाठी, अरविन्द अग्निहोत्री, जो मेरे आज्ञाकारी है, ने अत्यधिक मदद की है, वास्तव मे आभार के पात्र है। मै उनको कृतज्ञता ज्ञापित करता हूॅ।

बिना मेरे पूज्य माता-पिता के स्नेहिल आशिर्वाद के इस शोध प्रबन्ध की पूर्णता की कल्पना ही नही की जा सकती थी। उनके द्वारा अर्जित पुण्य-प्रताप की छाया मेरे ऊपर हमेशा रही है। मेरी इस सफलता से सर्वाधिक प्रसन्नता उनको ही है क्योकि पुत्र होने के नाते मैने उनकी इच्छा को, उनके आशिर्वाद से ही पूर्ण किया है। पत्नी वन्दना, अनुज अजिताभ, बिटिया स्मृति, बहन मिथिलेश एव ज्योति की प्रसन्नता से मेरा भी रोम-रोम पुलकित है। पूजनीया आण्टी श्रीमती जयश्री के वात्सल्य प्रेम के प्रति मै उनको आभार व्यक्त करता हूॅ।

मै प्रगति कम्प्यूटर, सतना के प्रोपराइटर श्री हितेश पाण्डेय, जिन्होने इस शोध ग्रन्थ को अंतिम रूप दिया है, के सहयोग के लिये धन्यवाद देता हूॅ।

Amitabh Pandey

(अमिताभ पाण्डेय)

सहायक प्राध्यापक-राजनीति विज्ञान

शासकीय विवेकानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय

मैहर, सतना (म.प्र.)

प्रस्तावना

प्रस्तावना

यूरोप मे उन्नीसवी शताब्दी मे समाजवाद का उदय और उत्कर्ष एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। समाजवाद एक ऐसी विचारधारा है जो एक नवीन समाज और संस्कृति को जन्म देती है। समाजवाद का लक्ष्य एक से समाज का निर्माण करना है जिसमे किसी व्यक्ति या जाति विशेष को कोई विशिष्ट अधिकार और शक्ति नही हो, अपितु सभी समानता और बंधुत्व के रूप मे बंधे हो। ऐसे समाज मे ''समाज'' के सभी सदस्यों को समान रूप से विकसित करने का प्रयास किया जाता है। इसमे समाज को महत्व दिया जाता है, न कि व्यक्ति को। समाजवाद समानता को समतल करने वाला साधन है। यह समाज में न केवल राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक समानता का पक्षधर है बल्कि उत्पादन के साधनो और पूँजी पर ऐसे नियंत्रण के पक्ष में है जिससे समाज के सभी वर्गो को समान रूप से लाभ हो और धन सम्पन्न और निर्धन लोगो का अन्तर दूर हो। समाजवाद का उद्देश्य समाज की आर्थिक शक्तियों का संगठन करना है और मनुष्यो द्वारा उसका नियंत्रण करना है। यह भूमि, सम्ण्त्ति और उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व का पक्षधर है, उन पर समस्त समाज का स्वामित्व हो न कि किसी व्यक्ति विशेष का।

अग्रेजी शब्द 'सोशलिज्म' के जन्म के बारे मे विद्वानो में मतभेद है। सर्वप्रथम समाजवाद शब्द का प्रयोग सन् 1803 ई. में इटली में किया गया लेकिन इसका सन्दर्भ आधुनिक नही था।[1] सन् 1827 ई. में 'लंदन कोआपरेटिव मैगजीन' मे इंग्लैण्ड के विचारक राबर्ट ओवन के अनुयायियों को सम्बोधित करने के लिये इसका प्रयोग किया गया।[2] और इसके कुछ वर्ष बाद ही राबर्ट ओवन के अनुयायी अपने आपको 'समाजवादी' कहने लगे थे।[3] सन् 1833 ई. में फ्रान्स की एक पत्रिका 'लेग्लोब' में सेण्ट साइमन के सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिये भी इस

शब्द का प्रयोग किया गया था।[4] सन् 1835 ई. मे पिएरे लेरो ने 'एन साइक्लोपीडिया नूवेल' मे 'समाजवाद' विषय पर जो लेख लिखा था, उसमे उसने समाजवाद को व्यक्तिवाद विरोधी विचारधारा के रूप मे प्रस्तुत किया।[5] सन् 1840 ई तक 'समाजवाद' शब्द का समूचे यूरोप मे प्रयोग होने लगा और व्यापकरूप से इसका अर्थ यह समझा जाने लगा कि उत्पादन के साधनो-पूॅजी, भूमि अथवा सपत्ति पर समूचे समाज का नियत्रण अथवा स्वामित्व होना चाहिये और उनका प्रशासन सबके हितो को ध्यान मे रखकर किया जाना चाहिये। यह अलग बात है कि गत 150 वर्षो मे समाजवाद का विचार ससार के प्राय· सभी भागो मे फैल चुका है और अब देश अथवा क्षेत्र विशेष की परम्पराओ के अनुरूप अरब समाजवाद, अफ्रीकी समाजवाद, एशियायी समाजवाद, भारतीय समाजवाद, हिन्दू समाजवाद, गॉधीवादी समाजवाद जैसे शब्दबधो का भी प्रयोग देखने को मिलता है।[6]

यूरोप मे औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व कुटीर उद्योग थे। इनमे कारीगर, मजदूर अपने परस्पर सहयोग से कार्य करते थे और पूॅजी, श्रम और औजारो का उपयोग वे अपने ढ़ग से करते थे। उनमे परस्पर संघर्ष नही था। उनको व्यवसाय अपनाने की स्वतत्रता थी। पर उन्नीसवी सदी मे यूरोप मे मशीनो और वैज्ञानिक आविष्कारो का उपयोग उद्योग व्यवसायो मे हुआ, कल-कारखानो मे वृद्धि हुई, उत्पादन अत्यधिक बढ़ा। अनेक औद्योगिक नगरो की स्थापना हुई। कुटीर उद्योगो के अनेक बेकार कारीगर और मजदूर इन नवीन बड़े कारखानो मे काम करने लगे। यह औद्योगिक क्रान्ति थी।

इस औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप कल कारखानो मे कार्यरत श्रमिको की दयनीय दशा थी। उनके श्रम के घटे अधिक थे, पर वेतन अत्यधिक कम। कारखानो मे उनकी सुरक्षा की कोई व्यवस्था नही थी। औद्योगिक नगरो मे वे ऐसे गदे तग मकानो और झोपडियो मे रहते थे जो उनके स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त ही हानिकारक थे। स्त्रियो और बच्चो को भी कारखानो मे काम पर लगाया जाता था। उन से भी अधिक काम लिया जाता था। पर स्त्रियो को समान काम के लिये भी कम वेतन मिलता था। बच्चो की स्थिति दयनीय थी। श्रमिको का जीवन अत्यन्त दुरुह हो गया था। उनका सामाजिक और नैतिक जीवन निम्न स्तर का था।

औद्योगिक क्रान्ति के और पूॅजीपति वर्ग के उत्कर्ष के परिणामस्वरूप मजदूरो का श्रम, पूॅजी और औजारो पर नियत्रण नही रह गया। पूॅजीपतियो का उत्पादन के साधनो पर नियत्रण था और वे विशाल कारखानो के स्वामी थे। वे धन सम्पन्न होने से जीवन की सभी सुख सुविधाये प्राप्त कर लेते थे। इसके विपरीत श्रमिक वर्ग दिन-रात परिश्रमरत रहता था और

पूँजीपति के लिये अधिकाधिक धन उत्पन्न करता था पर वह स्वय निर्धन रहता था। श्रमिको को उस धन व पूँजी का बहुत कम भाग प्राप्त होता था जिसका वे उत्पादन करते थे। पूँजीपति ही उस पूँजी का अधिकाश भाग प्राप्त करते थे। इस प्रकार पूँजीपति श्रमिको का शोषण करते थे। जब श्रमिको मे अपने अधिकारो और दयनीय दशा की चेतना हुई, तब उन्होने अपनी दशा सुधारने और अधिकारो को प्राप्त करने के लिये हडताले, और आन्दोलन किये। इससे श्रमिको और पूँजीपतियो के मध्य वर्ग सघर्ष प्रारम्भ हो गया।

उद्योगपतियो, पूँजीपतियो और श्रमिको के दो वर्गो के अतिरिक्त औद्योगिक क्षेत्र मे बुद्धिजीवियो के एक नवीन वर्ग का भी उदय हुआ। कल-कारखानो और उद्योगो का ठीक से संचालन करने के लिये, कच्चे माल व बने हुये माल का ठीक और पूर्ण हिसाब-किताब रखने के लिये कार्यालयो मे समुचित व्यवस्था, व्यापार तथा उत्पादन नीति निर्धारित करने के लिये उद्योग-व्यवसायो मे विशिष्ट योग्यता वाले बुद्धिजीवियो और तकनीकी अधिकारियो को रखा गया। अपनी शिक्षा, ज्ञान, अनुभव और प्रभाव के कारण इन बुद्धिजीवियो का कल-कारखानो और औद्योगिक क्षेत्र मे बड़ा प्रभाव व महत्व रहा। इन बुद्धिजीवियो ने श्रमिको की ह्रदय विदारक दुर्दशा को देखा। उन्होने इस सम्बन्ध मे समाचार पत्रो, मासिक पत्रो और पुस्तको के माध्यम से श्रमिको की दशा सुधारने के लिये अपने विचार व्यक्त किये, कई सुझाव प्रस्तुत किये। उन्होने शासन और समाज मे पूँजीपतियो के बढ़ते हुये वर्चस्व, श्रमिको के निरन्तर शोषण तथा इससे उत्पन्न सामाजिंक और आर्थिक विसगतियो और विषमताओ की ओर जनसाधारण का ध्यान खीचा और इनके निराकरण के लिये कुछ उपाय भी सुझाये।

अन्य दार्शनिको, विद्वानो और विचारको ने भी श्रमिको और पूँजीपतियो के वर्ग सघर्ष के निराकरण के लिये, श्रमिको की आर्थिक और सामाजिक दशा सुधारने के लिये तथा उनकी श्रम सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिये चिन्तन मनन करके अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये। इन्ही श्रेष्ठ विचारो और सिद्धान्तो को समाजवाद कहा गया।

यूरोप के विपरीत भारत मे समाजवादी अवधारणा के विकास का मुख्य कारण ब्रिटेन की साम्राज्यवादी भावना, भारत का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक शोषण, जिसके कारण भयकर गरीबी, बेकारी, कृषि पर निर्भरता का बढ़ना, उत्पादन क्षमता मे अत्यधिक कमी आ जाना, माना जाता है। अंग्रेजो के पहले जो भी विजेता आये थे उन्होने केवल राजनीतिक दृष्टि से वश परिवर्तनही किया और आर्थिक व्यवस्था के सामाजिक गठन व़ सम्बन्धो को पूर्णतया परम्परागत भारतीय व्यवस्था के अनुकूल ही रहने दिया। साथ ही वे स्वय ''हिन्दुस्तान मे समा गए क्योकि

वे सब ऐसे बर्बर विजेता थे जिन पर एक उच्चतर सस्कृति ने विजय प्राप्त कर ली। लेकिन अग्रेज पहले ऐसे विजेता थे जिन्होने प्रारम्भिक समाज को तोड़कर, प्राचीन उद्योगो को तो समाप्त किया ही, साथ ही प्रारम्भिक समाज मे जो कुछ उच्चतर था उसको भी समाप्त कर दिया।''[7] अग्रेज अपने देश मे सामती व्यवस्था को समाप्त कर और पूँजीवादी व्यवस्था की स्थापना करके आधुनिक युग मे पदार्पण कर चुके थे। नई भौतिकवादी व्यवस्था के अनुरूप ही वे अपने यहाँ सामाजिक, आर्थिक एव नैतिक मानदण्डो की स्थापना कर चुके थे। निश्चय ही भारतीय सभ्यता, सस्कृति व सामाजिक आर्थिक व्यवस्था, जो उनके आगमन के समय पुरातन समाज मे जी रही थी, उनकी तुलना मे निम्नतर थी। यो भी पूँजीवादी राष्ट्र सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एव सास्कृतिक दृष्टि से सामती जनजीवन की अपेक्षा, अधिक शक्तिशाली होता है क्योकि वह उन्नत उत्पादन-तकनीक पर आधारित होता है। यही कारण है कि अपने साम्राज्यवादी भौतिकवादी हितो के अनुरूप उन्होने परम्परागत भारतीय व्यवस्था को नष्ट करके नई व्यवस्था को जन्म दिया।

ब्रिटिश सरकार द्वारा भू-राजस्व की नई व्यवस्थाये लागू की गई। इनमे मुख्य थे - स्थायी बन्दोबस्त[8] रैयतवारी बदोबस्त[9] तथा महालवारी व्यवस्था[10]। ब्रिटिश भू-राजस्व के बडे दूरगामी परिणाम निकले। इसने पूर्व प्रचलित मान्यताओ तथा व्यवस्थाओ को तोडकर, अर्थ व्यवस्था तथा सामाजिक जीवन मे बुनियादी परिवर्तन किया और पुरानी ग्रामीण आत्म निर्भरता की स्थिति को समाप्त कर दिया। ''स्थायी बन्दोबस्त ने एक ऐसे कुलीन वर्ग को जन्म दिया जो कि भारतीय सामाजिक रीति के अनुकूल नही था। इसने प्रारम्भ मे सरकार को स्थायित्व दिया और गरीब ग्रामीण कृषक को और भी गरीब बनाया।''[11] नई कृषि व्यवस्था ने भारत की सदियो पुरानी व्यवस्था को तोडकर नई साम्राज्यवादी व पूँजीवादी शक्ति के लिये शोषण के द्वार खोल दिये। आर्थिक दृष्टि से इन व्यवस्थाओ ने सभी वर्गो (जमीदार से लेकर रैयत तक) को प्रभावित किया। रैयत और जमीदार के बीच लगान का निर्धारण एक आपसी मामला मानकर छोड़ दिया गया था। इसलिये जमीदार कृषक से जितना भी धन बटोर सकता था, बटरोता था। इसमे कोई शक नही कि सब भुगतानो के बाद किसान के पास जो कुछ बचा रहता था उससे वह जिदा भर रह सकता था।[12] अब तक भूमि पर सारे गाँव का अधिकार था और इसलिये उसे बेचा या खरीदा नही जा सकता था किन्तु इस नई व्यवस्था के अन्तर्गत वह भूमि अब निजी स्वामित्व मे आ गई और फलत: पण्य वस्तु हो गयी, जिसको खरीदा या बेचा या रेहन रखा जा सकता था। इसका परिणाम यह हुआ कि विपत्ति के समय, चाहे तो जमीदार का कर या लगान चुकाना हो या घर या बाहर (खेत) की आवश्यकता पूरी करनी

हो, भूमि को दॉव पर लगा दिया जाता था। यदि वह जमीन रेहन के रूप मे साहूकार के हाथ मे पड गई तो फिर साहूकार उसे वापस नही लौटाता था। इस तरह किसान, जो कि पहले भूस्वामी था, धीरे-धीरे दूसरो की जमीन जोतने वाला खेतिहर मजदूर बनता चला गया।[13]

नई लगान व्यवस्था ने भारतीय ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धो पर भी गहरा प्रभाव डाला। प्राचीन भारत मे ग्रामीण समुदाय के सदस्यो के आपसी सम्बन्धो का निर्धारण जातिगत सम्बन्धो, धार्मिक आधार, परम्परा या रीति रिवाजो पर आधारित था। ब्रिटिश कानून सहिता तथा ब्रिटिश आर्थिक व्यवस्था ने सामाजिक व जातीय सम्बन्धो को तोड़ डाला और नए सामाजिक एव आर्थिक वर्गो को जन्म दिया। इनमे सबसे नीची सीढ़ी पर निम्न वर्ग था। ब्रिटिश कृषि नीति, आर्थिक नीति व लगान-प्रणाली के परिणाम स्वरूप छोटे किसानो की जमीन धीरे-धीरे उनके हाथो से खिसकने लगी जिसकी वजह से भारतीय किसान अब खेतिहर मजदूर मे परिणत होने लगा। खेतिहर मजदूरो की सख्या दिनो दिन बढती ही गयी-यह निम्नलिखित आकड़े से स्पष्ट होता है।[14]

	1921 (लाखो मे)	1951 (लाखो मे)
गैर-काश्तकार जमीदार	3 7	4 1
काश्तकार (मालिक या बटाईदार)	74 6	65 5
खेतिहर मजदूर	21 7	63 3

विशेषज्ञो का अनुमान है कि यह वर्ग इतना बडा होता गया कि सारी खेतिहर आबादी के लगभग आधे लोग इसी वर्ग के हो गये। गरीब काश्तकारो के पास अब अपनी जमीन का कोई छोटा-मोटा टुकड़ा ही रह गया था।

साम्राज्यवादियो की नीति ने कृषि-उत्पादन पर भी गहरा असर डाला। ॲग्रेजो के आने से पहले भारत मे जहॉ कृषि उत्पादन मे आत्मनिर्भरता थी वहा अग्रेजो के आने के बाद कृषि उत्पादन मे काफी गिरावट आई। इस गिरावट के लिये उनकी कृषि नीति व औद्योगिक नीति दोनो ही उत्तरदायी थी। 1813 तक ब्रिटिश कम्पनी ने व्यापारिक क्षेत्र मे एकाधिकार को अपनाया। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत से राजशिल्पी-कारीगर बेकार हो गये और वे शहरो को छोडकर गॉवो की तरफ जाने को मजबूर हुये जहॉ उन्होने कृषि को जीविकोपार्जन का साधन बनाया। इससे भूमि पर आश्रित लोगो की सख्या बढने लगी। इस कारण उत्पादन मे भारी गिरावट आना स्वाभाविक था। बगाल राज्य बैंकिग जॉच समिति (सन् 1930) की रिपोर्ट

मे बगाल की प्रति एकड औसत उपज (पौड मे) इस प्रकार दी गई है[15] -

वर्ष	गेहू	चावल	चना	सरसो एव तिलहन
1906-07	801	1234	881	492
1916-17	698	1036	867	460
1926-27	721	1022	811	483

ब्रिटिश काल मे उसकी साम्राज्यवादी नीतियो के कारण भारत मे औद्योगीकरण की गति अत्यन्त धीमी रही। इसके मुख्य कारण थे - पहला, साम्राज्यवादी व्यवस्था की कार्य-प्रणाली का रूप अनिवार्य रूप से स्वतत्र औद्योगिक विकास के प्रति शत्रुतापूर्ण रहा है और इसलिये उसने भारतीय जनता की उन शक्तियो को हर तरह से नष्ट किया है जो अन्य अवरोधो पर काबू पाने मे सफल हो सकती थी। दूसरे, साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था जनता के आर्थिक विकास को अपने शिकजे मे कसकर विफल और धीमा कर देती है। तीसरे, क्षीण होती हुई ब्रिटिश पूँजी का हर तरीके से भारतीय बाजार मे हिस्सा बनाए रखने और उसे बढाने का कृत सकल्प। चौथे, भारतीय उद्योग के लिये घरेलू बाजार की असाध्य समस्याए पैदा कर देना और खेतिहर जनता को कंगाल बना देना। पॉचवे, महाजनी पूँजी द्वारा सामरिक महत्व के सभी निर्णायक स्थलो पर अपना नियंत्रण स्थापित करके भारतीय उद्योग को अपनी दया पर आश्रित कर लेना। औद्योगीकरण न होने के कारण भारत मे मजदूरो की सख्या मे निरन्तर वृद्धि होती गयी जैसे[16] -

वर्ष	सख्या
1897	4,21,000
1907	7,29,000
1914	9,51,000
1922	13,61,000
1931	14,36,000

भारतीयो के प्रति भेदभाव, उनके प्रति अन्याय-शोषण, विकास की ओर ध्यान न देना, ये सब से कारण थे जिससे भारत मे अत्यधिक गरीबी, बेकारी फैल गयी। बदहाली की स्थिति से

उन्हे उबारने वाला कोई नही था। प. नेहरू ने इसका विवरण स्वय किया है। 21 फरवरी 1936 मे उन्होने अपने एक लेख मे कहा है कि- ''उद्योगो का यह विकास इतना तेज नही था कि उससे जमीन पर पडने वाला दबाव कम हो सके। यह दबाव तब तक बढता रहा, जब तक जमीन इतने छोटे-छोटे टुकड़ो मे नही बॅट गयी कि आर्थिक लाभ की दृष्टि से बिल्कुल बेकार हो जाये। इसकी वजह से देहात की बेकारी और लोगो की कगाली बेइन्तहा बढ़ी। हिन्दुस्तान का यही खास मसला और उसकी गरीबी की बुनियादी वजह है। पिछले बरसो की मन्दी और अनाज की कीमत की गिरावट ने मसले को और बढा दिया है और छोटे और मध्यम वर्ग के जमीदारो तक को ऐसी हालत मे पहुॅचा दिया है कि वे दिवालिया होने के कगार पर खडे है। मौजूदा भूमि-प्रणाली जड़ से हिल गयी है और ऐसा नही लगता कि यह ज्यादा दिनो तक बनी रह सकेगी, जो कि इसे तरह-तरह के उपायो से और सरकारी ताकत से टेक लगाकर कुछ बरसो तक खड़ा रखा जायेगा। किसी भी बुनियादी तब्दीली के साथ अनिवार्य रूप से खुद भूमि-प्रणाली की तब्दीली भी जुडी हुई है।''[17]

प नेहरू ने इस दशा का विवरण करते हुये आगे लिखा है कि ''हाल की मन्दी से उद्योगो को भी गहरा धक्का लगा है, जिससे औद्योगिक बेकारी भी बढी है। बहुत सी मिले और फैक्टरियॉ बद हो गयी है और गावो से शहरो मे जाने वाली भीड पलटगई और इस तरफ जमीन पर दबाव और बढ गया है। मध्यम वर्ग के लोगो मे भी बेकारी बहुत तेजी से बढी, जिनके लिये सरकारी या अर्ध-सरकारी नौकरियो और लिखने -पढ़ने के उन धधो के सिवा और कोई राह नही खुली है जहॉ पहले से ही काफी भीड़ है। इन तमाम माली दबावो को राष्ट्रीय और क्रान्तिकारी आदोलनो मे निकास की राह दीख पड़ी, इस उम्मीद मे कि सियासी आजादी होने पर गरीबी और बेकारी के दलदल से बच निकलना मुमकिन होगा। धीरे-धीरे आन्दोलन पर भी माली सवालो का रग चढ़ने लगा और समाजवादी आन्दोलन उभरा।''[18]

यही कारण थे कि भारत मे उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे सभी राष्ट्रीय चितक समाजवाद के बारे मे सोचने लगे। विवेकानन्द जी ने भारतीयो की गरीबी का सजीव वर्णन किया है। तत्पश्चात् इसी गरीबी, शोषण और उससे निजात पाने के तरीके तलाशने मे विचारको को समाजवाद के अतिरिक्त कोई दूसरा तरीका नजर नही आया। ''सिर्फ समाजवादी तरीको से ही इसका हल निकल सकता है। एक ऐसी बडी स्कीम बनाई जाये जिसका असर खेती बाड़ी, उद्योग-धन्धो, संचार व्यवस्था, शिक्षा और समाज-सेवा के कामो पर पडे, जिनका देहाती इलाको मे शायद ही कोई इतजाम है। खेती बाड़ी को बडे पैमाने पर

सहयोगी और सामूहिक खेती की बुनियाद पर खडा करना होगा, बडे उद्योगो और कुटीर उद्योगो को तेजी से आगे बढाना होगा और शिक्षा, सफाई, सडको, सिचाई और मकानात के काम को बहुत कुछ रूस के तरीके पर अजाम देना होगा।''(19)

भारत मे समाजवादी विचारधारा का प्रवेश राष्ट्रीय आन्दोलन के आरम्भ से ही हो गया था। राष्ट्रीय आन्दोलन का लक्ष्य देश के लिये राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना ही नही था बल्कि राष्ट्रीय स्वतत्रता तो समतायुक्त और न्याययुक्त समाज की स्थापना के लिये एक सोपान मात्र थी। उन्नीसवी शताब्दी मे भारतीय पुर्नजागरण के प्रमुख कर्णधारो, रामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी राम तीर्थ और दयानद सरस्वती ने समस्त वर्गो की स्वतत्रता तथा समता के सिद्धातो का समर्थन किया था। राष्ट्रीय नेताओ ने भारतीयो के लिये जिस स्वराज्य की कल्पना की थी, उसमे देश के सभी नागरिको के लिये सामाजिक और आर्थिक न्याय का विधान था।(20) आचार्य नरेन्द्रदेव, जय प्रकाश नारायण, डॉ राम मनोहर लोहिया, अशोक मेहता, मीनू मसानी, जवाहर लाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस इत्यादि नेता सन् 1910 ई से ही इस दिशा मे विचार करने लगे थे कि हमारा लक्ष्य एक न्यायपूर्ण आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था होना चाहिये। इन्होने असहयोग आन्दोलन (सन् 1920-21) मे पूरी शक्ति के साथ भाग लिया। परन्तु सन् 1922 मे असहयोग आन्दोलन के स्थगन के साथ उन्होने किसानो, मजदूरो को सगठित करने और भारत के सबसे प्रमुख राजनीतिक सगठन भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस को इस दिशा मे आगे बढाने के लिये उस पर निरन्तर दबाव डालने की आवश्यकता अनुभव की। सन् 1925 से 1928 के काल मे बगाल, बम्बई, पजाब तथा उत्तर प्रदेश मे अनेक किसान मजदूर पार्टियॉ गठित हुई। ''सन् 1920 ई मे लाला लाजपतराय ने पहली 'भारतीय मजदूर महासघ' की अध्यक्षता की। सन् 1924 ई. मे 'केन्द्रीय किसान सभा' की इलाहाबाद मे स्थापना हुई।''(21) मद्रास काग्रेस अधिवेशन (सन् 1927) मे पहली बार वामपथी खेमे का प्रभाव दिखाई दिया सुभाष चन्द्र बोस एव जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व मे युवा वर्ग ने एक प्रस्ताव पास करके काग्रेस को 'पूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य' स्वीकार करने पर मजबूर किया।(22)

सन् 1931 ई. मे सुभाषचन्द्र बोस एव प. नेहरू के नेतृत्व मे 'आल इण्डिया इण्डिपेन्डेन्स फॉर इण्डिया लीग' की स्थापना की गयी, जिसका लक्ष्य आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक स्वाधीनता को प्राप्त करना था। 9, 10, 11 अक्टूबर 1933 को प नेहरू ने 'भारत किधर' (Whither India) शीर्षक से कई लेख लिखे जिनमे उन्होने इस अहम् मुददे को उठाया कि 'हम किसकी आजादी के लिये लड़ रहे है।''(23) आर्यसमाजी स्वामी सहजानद

सरस्वती ने बिहार तथा उत्तर प्रदेश के किसानो मे घूम-घूमकर देश की स्वाधीनता और आर्थिक शोषण से मुक्ति के लिये ज्वाला धधकाई। सन् 1930 ई मे उन्होने 'किसान सभाओ' की स्थापना की जिन्होने भविष्य मे स्थापित होने वाले 'काग्रेस समाजवादी दल' के आधार का कार्य किया।

भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के अन्दर वामपथी का उदय, समाजवाद के विकास मे, एक महत्वपूर्ण घटना थी। वास्तव मे यह, सोवियत सघ की प्रगति, विश्व के अन्य देशो के साम्राज्यवाद-विरोधी एव राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन, देश की बिगड़ती आर्थिक स्थिति, बढता हुआ साम्राज्यवादी शोषण, मजदूर किसानो तथा कम्युनिस्ट आन्दोलन की वृद्धि का परिणाम था। सन् 1926-27 ई. के यूरोप के दौरे ने प.नेहरू को नए विचार दिये। सन् 1927 ई मे उन्होने पराधीन देशो की ब्रुसेल्स काग्रेस मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस का प्रतिनिधित्व किया था। ब्रुसेल्स काग्रेस ने साम्राज्यवाद विरोधी सघ (League Against Imperialism) की स्थापना की थी। सन् 1927 ई मे ही नेहरू जी ने रूस का भी दौरा किया। स्वभावत· वामपन्थी विचारो का उन पर प्रभाव पड़ा और उन्हे भारत की समस्याओ का समाधान समाजवाद मे ही दिखा।

सन् 1934 ई मे काग्रेस समाजवादी दल का जन्म हुआ। इसे वामपथी सुधारवाद का नाम दिया गया। परन्तु इससे पूर्व ही काग्रेसियो के जेल अध्ययन मे 'भारतीय समाजवाद' का बीज पडा।[24] इस समाजवादी आन्दोलन के बीज को पोषित करने वालो मे सर्वप्रथम जय प्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन, एम एम. जोशी, अशोक मेहता, मीनू मसानी, तथा एम.एल. दन्तवाला थे। वास्तव मे सन् 1932 ई मे नासिक जेल मे ही समाजवादी दल की नीव पड़ चुकी थी।[25] सन् 1934 ई. मे, स्वाधीनता की प्राप्ति और तत्पश्चात् समाजवाद की स्थापना-यह ध्येय लेकर काग्रेस समाजवादी दल अवतीर्ण हुआ। इसी वर्ष फरवरी माह मे काग्रेस समाजवादी दल का पटना मे प्रथम अधिवेशन आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता मे हुआ। इन समाजवादियो के मतानुसार भी काग्रेस मे पूँजीवादी विचारधारा का प्राधान्य था तथा 'गॉधीवाद' और 'काग्रेस समाजवाद' एक ही विचारधारा के दो रूप थे। समाजवादियो के मत मे काग्रेस समाजवादी दल जनता मे विद्रोह की भावना का विकास न करके उनकी समस्याओ के समाधान का हल शाति पूर्वक करना चाहती थी। स्वतत्रता प्राप्ति के पूर्व तक समाजवादी भी काग्रेस के साथ सयुक्त होकर राष्ट्रीय स्वतत्रता आन्दोलन मे सक्रिय रहे। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात्, विचार-भिन्नता के कारण सन् 1948 ई. मे समाजवादी दल काग्रेस से अलग हो गया।

समाजवादियो के काग्रेस से अलग हो जाने के बाद काग्रेसी नेताओ ने दल की समस्याओ का पुन अध्ययन किया, ऐसा इसलिये भी आवश्यक हो गया क्योकि वामपथियो ने दल छोड दिया था। इस समय काग्रेस द्वारा जो नीति अपनायी गयी, जिस आर्थिक नीति की घोषणा उसने की, वामपथी वर्ग तथा दूसरे मजदूर सगठनो ने उसकी जमकर आलोचना की। काग्रेस का लक्ष्य समता एव न्याय के आधार पर समाज का पुनर्निमाण करना था। काग्रेस दल के नेताओ ने लोगो को यह समझाने का प्रयास किया कि देश की बदलती हुयी परिस्थितियो के अनुसार आर्थिक एव राजनीतिक कार्यक्रमो तथा कानूनो को निर्धारित करना होगा। उन्हे पूर्ण विश्वास था कि इस कार्यक्रम के लिये राजनीतिक प्रजातत्र का निर्माण ही इन कार्यक्रमो की पूर्णता मे सिद्ध हो सकता है तथा बल प्रयोग के बिना ही सामान्य जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकते है। जैसा कि सविधान मे घोषणा की गयी थी कि विश्व के सभी देशो के साथ सह अस्तित्व के आधार पर सम्बन्ध स्थापित किये जायेगे, जिससे सभी देशो मे जनता को आर्थिक, सामाजिक एव राजनीतिक न्याय प्राप्त हो सके।[26] नवम्बर सन् 1947 ई मे काग्रेस दल की दिल्ली मे बैठक हुई जिसमे एक प्रस्ताव पास किया गया, जिसका उद्देश्य सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक क्षेत्रो मे प्रजातत्र के आधार पर विकेन्द्रीकरण को पूर्ण रूप से स्वीकार करना था तथा निकट भविष्य मे पूर्ण प्रजातत्र की स्थापना के लिये छोटी-छोटी इकाईयो मे भी पचायतो के निर्माण का विचार रखा गया था जिससे स्थानीय इकाईयो के माध्यम से प्रजातत्र की जड़ को मजबूत बनाया जा सके।[27] काग्रेस बड़ी तीव्रता के साथ आर्थिक क्षेत्र मे विकास के लिये प्रयत्नशील थी। आर्थिक एव राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त को सभी वर्गो ने स्वीकार किया था। काग्रेस की दिल्ली बैठक के पूर्व सन् 1934 ई. मे समाजवादी दल के बम्बई सम्मेलन मे इन सभी विषयो को स्वीकार किया जा चुका था।[28] उत्पादन, विनिमय एव वितरण के सभी साधनो को समाज की आवश्यकतानुसार व्यवस्थापन के सिद्धान्तो को सभी दल स्वीकार कर चुके थे, परन्तु पूर्णता के सम्बन्ध मे साधन भिन्नता थी। काग्रेस के पूर्व दृष्टिकोण मे परिवर्तन होने लगा था। समाजवादी दल इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिये क्रान्तिकारी साधनो को अपनाने के पक्ष मे थे, जबकि कांग्रेस शान्तिपूर्ण एव वैधानिक साधनो के ऊपर बल देती थी।

प्रथम आम चुनाव के नजदीक आने पर काग्रेस ने आर्थिक कार्यक्रमो को प्रधानता देना प्रारम्भ किया काग्रेस वर्किग कमेटी ने पूर्व के सभी आश्वासनो को, जो स्वतत्रता से पूर्व दिये थे, उनकी पुर्नव्याख्या की। इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिये योजना आयोग का गठन किया गया था तथा काग्रेसी कार्यकर्ताओ ने देश मे रचनात्मक कार्यक्रमो को पूर्ण करने के लिये अभियान शुरू किया। 20-21 सितम्बर सन् 1950 ई. मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसमे आगामी

वर्षो के लिये आर्थिक नीति की घोषणा की गयी। इस घोषणा मे कहा गया था कि तीव्र गति से देश का आर्थिक विकास करना काग्रेस का प्रमुख लक्ष्य होगा। देश मे आर्थिक प्रजातत्र की स्थापना एव कल्याणकारी राज्य का निर्माण करना भी काग्रेस का प्रमुख लक्ष्य होगा, काग्रेस देश की जनता के जीवन स्तर को ऊँचा उठान का प्रयास करेगी, बेरोजगारी की समस्या तथा आर्थिक एव सामाजिक शोषण को मूलत समाप्त करने का प्रयास करेगी, जिससे राष्ट्रीय आय एव राष्ट्रीय पूँजी मे वृद्धि हो सके।

नेहरू जी ने (काग्रेस सरकार ने) जनता को पूर्ण आश्वासन दिया कि यदि काग्रेस फिर से बहुमत मे आयेगी तो घोषणा पत्र के आधार पर आर्थिक क्षेत्र मे प्रजातत्र के सिद्धान्त को लागू करने का प्रयास करेगी, मूल्य के प्रसार, नियत्रण तथा आधार उद्योगो का राष्ट्रीयकरण किया जायेगा। चुनाव घोषणा पत्र मे समाजवादी तत्वो का सम्मिलन तथा पण्डित नेहरू के वैयक्तिक प्रभाव के कारण प्रथम आम चुनाव मे काग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ। नेहरू जी सन् 1927 ई से साम्यवादी एव समाजवादी भाषा का प्रयोग करते आ रहे थे।[29] परन्तु सन् 1947 ई के बाद उनके समाजवादी सिद्धात के जिनकी प्राप्ति वह क्रान्तिकारी साधनो से करना चाहते थे, अब उनका स्थान ब्रिटिश उदारवाद ने ले लिया था जिसकी जडो मे समाजवाद के तत्वो की अपेक्षा आधुनिक प्रजातत्र और कल्याणकारी राज्य के तत्वो की अधिकता थी।

दूसरी ओर कांग्रेस समाजवादी दल का जन्म काफी पहले हो चुका था। परन्तु सविधान सभा तथा देश-विभाजन आदि प्रश्नो पर नेताओ मे आन्तरिक एव वाह्य विरोधो मे वृद्धि हुई जिसके परिणामस्वरूप कानपुर मे नौ वर्षो के बाद देश भर के समाजवादी सम्मिलित हुये। 26-27-28 फरवरी सन् 1947 ई. को कानपुर मे काग्रेस समाजवादी दल का ऐतिहासिक सम्मेलन हुआ था, जिसकी अध्यक्षता डॉ. लोहिया ने की थी।[30] इस सम्मेलन के निर्णय के द्वारा काग्रेस समाजवादी दल से काग्रेस शब्द हटा दिया गया था, पूर्व मे समाजवादी दल के काग्रेस से सम्बद्ध रहने पर उसने आर्थिक कार्यक्रमो पर काफी जोर दिया था, नेहरू जी ने भी फैजपुर काग्रेस मे किसानो की समस्याओ की ओर सकेत किया था। उसके परिणामस्वरूप सन् 1937 ई के असेम्बली के चुनावो मे किसानो ने ही काग्रेस का साथ देकर उसे सफल बनाया था तथा कई प्रान्तो मे उसने सरकार भी कायम की थी। किसानो के इसी प्रभाव के कारण काग्रेस को जमीदारी प्रथा का अन्त करना पड़ा था, लेकिन श्रमिक वर्ग, जिसने काग्रेस मे अपनी आस्था प्रकट की थी, को कोई विशेष रियायत नही मिल सकी, उनका शोषण पूँजीपतियो द्वारा निरन्तर जारी था।

लेकिन स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् काग्रेस का बुर्जुआ चरित्र उभर कर स्पष्ट रूप से राजनीतिक पटल पर आना प्रारम्भ हो गया था। काग्रेस समाजवादी दल को पहले पूर्ण विश्वास था कि स्वतत्रता के बाद काग्रेस मे प्रगतिशील तथा समाजवादी आधार पर कुछ परिवर्तन होगा, लेकिन बाद मे ऐसा देखा गया कि उसकी स्थिति मे कोई परिवर्तन नही आया है। नये विधान के अनुसार काग्रेस वस्तुत एक राजनीतिक सगठन मे परिवर्तित हो गया था तथा शासन की मशीन का पूर्णरूपेण उपयोग काग्रेस के लाभ के लिये किया जाने लगा था। अत आन्दोलन को बार-बार रोका गया। काग्रेस एक प्रकार से सरकार की प्रचारक मात्र रह गयी थी।

मार्च सन् 1948 ई मे समाजवादी दल के नासिक सम्मेलन मे, समाजवादी नेताओ ने काग्रेस से अलग होने का निश्चय किया था।[(31)] इस अधिवेशन के अनुसार सयुक्त प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा की सदस्यता से आचार्य नरेन्द्र देव सहित बारह सदस्यो ने त्यागपत्र दे दिया।[(32)] इस दल ने प्रारम्भ मे किसी उच्च स्तर पर कार्यक्रम प्रारम्भ नही किया था बल्कि अपनी नीतियो एवं सिद्धान्तो का स्थानीय एव जिला स्तर पर प्रचार कार्य प्रारम्भ किया। समाजवादी दल ने सर्वप्रथम अपने दल के सविधान निर्माण को आवश्यक समझा तथा सविधान का निर्माण किया था। सविधान मे घोषित किया गया कि हमारा मूल उद्देश्य भारत मे प्रजातात्रिक आधार पर समाजवाजी समाज की स्थापना करना होगा तथा दूसरे समाजवादी राष्ट्रो के समान ही अपनी कार्य प्रणाली निश्चित की। साम्राज्यवाद, जातिवाद एव अन्य कारण जिनके द्वारा किसी राष्ट्र अथवा जाति विशेष का शोषण होता है, सदैव विरोध करेगे। समाजवादी दल उन प्रवृत्तियो एव दशाओ का निर्माण करने का प्रयास करेगा जिससे एक समाजवादी विश्व का निर्माण हो सके।[(33)]

समाजवादियो ने मार्क्सवाद एव गॉधीवाद दोनो को स्वीकार किया है। परन्तु न तो पूर्णरूपेण मार्क्सवाद को और न गाधीवाद को, बल्कि उनके कुछ सिद्धान्तो को स्वीकार किया था। उन्होने गॉधी जी के सत्याग्रह और असहयोग सिद्धान्त को स्वीकार करते हुये भी समाजवाद के'साथ प्रजातत्र को सम्बद्ध किया तथा हिसात्मक साधनो को गॉधीवादी प्रभाव के कारण स्वीकार नही किया था क्योकि भारत मे समाजवाद की स्थापना हिसात्मक साधनो की अपेक्षा प्रजातात्रिक साधनो से ही संभव है। परन्तु आर्थिक समता के लिये वह बाध्यकारी साधनो के पक्ष मे थे। यहॉ पर गॉधी जी से मतभेद रखते थे क्योकि गॉधी जी आर्थिक समता के लिये मनुष्य का नैतिक उत्थान आवश्यक समझते थे जबकि समाजवादी बाध्यकारी शक्तियो को।

मई सन् 1950 मे काग्रेस दल से कुछ समाजवादी विचारधारा के समर्थको ने अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और एक प्रजातात्रिक मोर्चा बनाने का प्रस्ताव रखा। इनमे प्रमुख रूप से जे बी कृपलानी, डॉ प्रफुल्ल नारायण तथा सुरेश बनर्जी थे।[34] त्रिलोकीनाथ सिह एव महामाया प्रसाद ने भी इनके सर्थन मे काग्रेस दल छोड़ दिया। सन् 1951 ई मे इन सदस्यो ने पटना मे किसान मजदूर प्रजा पार्टी (के एम पी पी) का गठन जे.बी कृपलानी की अध्यक्षता मे किया था। इस दल के राजनीतिक आदर्शो की आधारशिला गॉधीवाद तथा सर्वोदय पर आधारित थी। इन सदस्यो ने काग्रेस छोडने के सम्बन्ध मे कहा था कि- ''काग्रेस दल देश मे वामपथी विचारधारा को पनपने नही दे रही थी तथा अपनी नीतियो मे भी समाजवादी आदर्शो को कोई स्थान नही दिया है। इसलिये काग्रेस दल छोडना पड रहा है।

किसान मजदूर प्रजा पार्टी ने प्रजातत्र तथा आर्थिक विकेन्द्रीकरण मे अपनी आस्था प्रकट की। इस नवीन दल ने किसानो के अधिकारो तथा उनके महत्व की ओर सकेत किया तथा जमीदारी प्रथा की ओर कोई विशेष ध्यान नही दिया था। मौलिक रूप से किसान मजदूर प्रजा पार्टी तथा समाजवादी दल के कार्यक्रमो में कोई विशेष अन्तर नही था। इस पार्टी के घोषणा पत्र मे कहा गया था कि सर्वप्रथम हमारा उद्देश्य प्रशासनिक मशीनरी पर आधिपत्य करना है। इसके बाद सामान्य रूप से जनता के स्वामी की हैसियत से जनता की सेवा करना होगा। एक ओर तो यह दल स्वामी तथा नौकर की स्थिति का सृजन करना चाहता है तथा दूसरी तरफ यह कहना कहॉ तक उचित है कि हम समाज तथा विश्व मे प्रशासनिक ढ़ॉचे के माध्यम से समानता तथा स्वतत्रता की स्थापना का प्रयास करेगे।[35] किसान प्रजा पार्टी इस तथ्य को स्वीकार करती है कि देश की जो अधिकाश जनता जिन आर्थिक एव सामाजिक कठिनाइयो से गुजर रही है उनकी आर्थिक एव सामाजिक कठिनाइयो की ओर राज्य को ध्यान देना चाहिये। देश की अधिकाश जनता का जीवन स्तर बहुत ही निम्न स्तर पर है यह उसे ऊँचा उठाने का प्रयास करेगी। यह तब ही सभव होगा जब देश मे उत्पादन वृद्धि की जाय। उत्पादन वृद्धि समय की मॉग के अनुसार करनी चाहिये। उत्पादन वृद्धि से राष्ट्रीय पूॅजी मे वृद्धि होगी, तब ही वर्तमान समस्याओ का समाधान हो सकता है।

इसी प्रकार स्वतत्र भारत मे वामपथी के अनेक समुदाय निर्मित हुये। इस प्रकार के दल फारवर्ड ब्लाक का गठन नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के निर्देशन मे त्रिपुरी काग्रेस (सन् 1939) मे फूट पड़ जाने के कारण हुआ था। इस दल ने अपना आधारभूत कार्य देश मे 'वर्ग सघर्ष की वृद्धि' को मानने की घोषणा की थी। दिसम्बर सन् 1948 ई. मे दल मे फूट पड जाने के कारण

दल दो भागो मे विभक्त हो गया था। एक ग्रुप का नेतृत्व आर एस. सरकार ने किया था, जिन्होने अपने को वास्तव मे नेता जी की विचारधारा का पक्का समर्थक कहा था। यह ग्रुप 'सुभाषिष्ठ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कलकत्ता काफ्रेस मे सरकार ने घोषणा की थी कि हमारे दल का मूल उद्देश्य समाजवाद की स्थापना करना है जिसकी प्राप्ति ससद के सहयोग तथा दूसरे अससदीय साधनो से भी की जा सकती है।[36]

दूसरे ग्रुप का नेतृत्व जोगलेकर ने किया था जो कि फारवर्ड ब्लाक (मार्क्सवादी) के नाम से जाना जाता है। 23 जनवरी सन् 1950 ई मे यह दल देश सेवक दल के साथ सयुक्त हो गया था। इसने पूर्णतया क्रान्तिकारी साधनो मे अपनी आस्था प्रकट की थी। इस दल ने उद्योग और किसानो को अपनी शक्ति का आधार माना था।[37] सन् 1948 ई. मे शरतचन्द्र बोस ने समाजवादी प्रजातात्रिक दल का गठन किया था। इस दल ने अपना मूल उद्देश्य देश मे प्रजातात्रिक समाजवादी राज्य की स्थापना घोषित किया।

अप्रैल सन् 1948 ई मे महाराष्ट्र प्रदेश की काग्रेस शाखा से एक ग्रुप अलग हो गया। इस ग्रुप ने के.एम. जोशी तथा एस.एम. सूर के निर्देशन मे किसान एव मजदूर दल (पीजेन्ट्स एण्ड वर्कर्स पार्टी) का गठन किया। लेकिन इस दल ने क्रान्ति एव समाजवाद की कोई स्पष्ट व्याख्या नही की थी। यह पार्टी कोमिनर्टन विचारधारा की समर्थक थी। इस दल ने अपना कार्यक्षेत्र मराठी भाषा वाले क्षेत्र को ही अपनाया। इस दल का प्रभाव महाराष्ट्र राज्य तक ही सीमित रहा था।[38]

क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी (आर.एस.पी.) से एक पक्ष अलग हो गया तथा इस पक्ष ने सोशलिस्ट युनिटी सेन्टर (एस.यू.सी) नामक लघु दल का निर्माण किया था। सन् 1967 ई मे जब सविद सरकार का निर्माण हुआ तब सुबोध बनर्जी, जो इस दल के मुख्य नेता थे, संविद सरकार मे श्रममत्री बने, उदार वामपथी विचारधारा का समर्थन करते थे। उन्होने वोल्शेविक समाजवादी दल का गठन किया। लेकिन इस दल का भी भारतीय राजनीति मे कोई विशेष स्थान नही रहा।

भारतीय साम्यवादी दल ने अपने सन् 1951 ई. के घोषित कार्यक्रम के अनुसार सन् 1952 ई. के आम चुनावो मे भाग लिया था। सन् 1952 के आम चुनाव मे, काग्रेस दल के बाद साम्यवादी दल ने विधानसभा के चुनावो मे सबसे अधिक प्रत्याशी खडे किये थे। ससद मे इस दल का स्थान दूसरा था।

भारतीय साम्यवादी दल सन् 1967 ई. मे दो भागो में विभाजित हो गया था। भारतीय साम्यवादी दल ने रूस के मार्ग को अपनाया तथा दूसरे भारतीय साम्यवादी (मार्क्सवादी) दल ने चीन के मार्ग का अनुसरण किया। यह दल माओरसे-तुग के सिद्धान्तो मे आस्था रखता था। भारतीय साम्यवादी (मार्क्सवादी) दल चाहता था कि ''सर्वहारा वर्ग की तानाशाही वाले समाजवाद की स्थापना हो, देश मे नया सविधान लागू हो जो जन प्रभुसत्ता की स्थापना करे, जन लोकतत्र की स्थापना हो जिसमे हर प्रकार के शोषण का अन्त हो, निजी व्यापार का पूर्ण राष्ट्रीयकरण किया जाय।''[39] सन् 1968 ई. मे वामपथी साम्यवादी दल मे विरोधो के कारण फूट पड गयी, जिसके परिणामस्वरूप कुछ क्रान्तिकारी सदस्यो ने दल छोड दिया तथा नक्सलवादी सगठनो का गठन किया। इस ग्रुप का मत था कि शातिपूर्ण साधनो से और ससदीय पद्धति के माध्यम से समाजवाद का लक्ष्य प्राप्त नही किया जा सकता है। इसका प्रभाव पश्चिम बगाल, बिहार एव आन्ध्र प्रदेश तक सीमित है। इस समूह ने एक नवीन दल कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) का नाम दिया (जो अभी तक राजनीतिक क्षेत्र के प्रकाश मे नही आयी है) इसने अपने ध्येय की प्राप्ति के लिये चीन के साम्यवादी दल के सिद्धान्तो (हिसात्मक साधनो) द्वारा सत्ता प्राप्त करने की नीति को अपनाया है। सन् 1967 ई के चौथे आम चुनाव मे भी साम्यवादी दल (यदि इन्हे एक दल ही माने) मुख्य विरोधी दल के रूप मे प्रकट हुआ।[40]

काग्रेस दल ने अवाड़ी अधिवेशन (सन् 1955 ई) मे 'समाजवादी आधार पर समाज की सरचना' को अपना लक्ष्य घोषित किया था। तद्नुकूल भारतीय लोकसभा ने भी 20 दिसम्बर सन् 1955 ई. को एक प्रस्ताव पारित किया जिसमे अन्य बातो के साथ कहा गया था कि ''हमारी आर्थिक नीति का ध्येय समाजवादी सिद्धान्तो पर समाज की सरचना करना होगा और इस ध्येय की प्राप्ति करने के हेतु देश की आर्थिक गतिविधि और विशेषकर साधारण औद्योगिक विकास की गति को अधिक से अधिक तीव्र करना होगा।[41]

इस प्रस्ताव को पचवर्षीय योजना मे क्रियान्वित करने का प्रयास किया गया। लेकिन पूर्णतया सफलता नही प्राप्त हुई। परन्तु काग्रेस ने कुछ ऐसे कदम उठाये, जिनमे लोकतात्रिक समाजवाद के तत्व मौजूद थे जैसे कि सामन्ती शोषको से कृषको की मुक्ति, पचायतो के विकास, सार्वजनिक क्षेत्र का विकास बैको तथा भारतीय जीवन बीमा निगम का राष्ट्रीयकरण, प्रिवीपर्स एव विशेषाधिकारो की समाप्ति, सहकारिता एव सामुदायिक योजनाओ का विकास, कृषि मे सहकारिता, अधिग्रहण एव विस्तृत कार्यक्रम की योजना तथा हरित क्रान्ति आदि का

श्रेय काग्रेस को ही है। विडम्बना यही है कि उसके लक्ष्य के विपरीत भारत मे निरन्तर शक्ति का केन्द्रीयकरण होता रहा है। भारतीय समाजवाद विशुद्ध अर्थो मे एक उदार लोकतत्रवाद का ही रूप है, न कि समाजवाद का।

समाजवाद के लक्ष्यो मे, एक मुख्य लक्ष्य विकेन्द्रीकरण का भी होता है, लेकिन भारत मे आर्थिक एव राजनीतिक क्षेत्र मे विकेन्द्रीकरण के स्थान पर केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति मे वृद्धि हुई है। डी आर गाडगिल ने उचित ही लिखा है कि ''विकेन्द्रीकरण के स्थान पर सत्ता के केन्द्रीकरण मे वृद्धि हुई है, जो समाजवादी लक्ष्य के विपरीत है।''[42]

वर्तमान समय मे समाजवादी विचारधारा का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि सभी दल प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इसमे अपनी आस्था प्रकट करते है। आज भी भारत के अधिकाश दलो की नीतियॉ समाजवादी है। लेकिन यदि किसी एक दल ने समाजवाद को वास्तविक और व्यावहारिक रूप से लागू करने के प्रति प्रतिबद्ध है तो वह है 'समाजवादी पार्टी'। इस दल की स्थापना 4 नवम्बर सन् 1992 मे हुयी।[43] इसकी स्थापना लोहियावादी श्री मुलायम सिह ने की। स्थापना के पश्चात् ही इस दल ने समाजवाद को वास्तविक रूप मे स्थापित करने का सकल्प लिया। समाज के पिछडे वर्गो का उत्थान, दलितो के शोषण से उनकी रक्षा, किसानो एव मजदूरो को उचित अधिकार दिलाना, साम्प्रदायिकता विरोध, अल्पसख्यको की सुरक्षा इत्यादि इसके मुख्य लक्ष्य रहे है।

इस प्रकार भारतीय पृष्ठभूमि मे समाजवाद की समीक्षा करते हुये कह सकते है कि सामन्ती शोषण का अन्त, तीव्र औद्योगीकरण, सहकारिता का विकास, पचायती राज, बैको का राष्ट्रीयकरण, प्रिवीपर्स एव विशेषाधिकारो की समाप्ति और योजना सम्बन्धी कार्य तो देश मे सफलतापूर्वक हुए है लेकिन समाजवाद के मूल तत्वो का इन कार्यक्रमो मे सदैव अभाव रहा है। सामाजिक एवं आर्थिक असमानता आज भी समाज मे पूर्व के समान ही मौजूद है। 50 वर्षो से जिन समाजवादी नीतियो पर हम जोर देते आये है वह समाजवादी 'पैटर्न' का समाज आज तक फलीभूत नही हो पायी। यही नही भारतीय सविधान मे 'समाजवाद' शब्द 42वे सवैधानिक सशोधन से सन् 1976 मे, उद्देशिका मे जोड़ा गया। ऐसा लगता है कि सरकार एव समाजवादियो की मंशा ही भिन्न रहती थी। ऊॅच-नीच, अमीर-गरीब, विकसित-अविकसित, पूॅजी का केन्द्रीयकरण, सामाजिक असमानता आज भी हमारे समाज मे विद्यमान है क्योकि पूरी शक्ति और इच्छा से इसे लागू करने की किसी मे भावना ही नही थी। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारे यहॉ समाजवाद के रूप मे और उसके सिद्धान्तो को लेकर एक अजीब

धुधला पन छाया हुआ है। हमारे नेताओ ने कभी भी देश मे स्थापित होने वाले समाजवाद की रूपरेखा प्रस्तुत नही की है। इस प्रश्न को नेतागण भविष्य के लिये स्थगित कर देते है कि भावी समाजवाद परिस्थितियो के अनुसार स्थापित किया जायेगा। इसकी पूर्व व्याख्या करना उचित नही है। इसके साथ ही स्वार्थपरता, प्रशासन मे ढ़ीलापन, जातिवाद, क्षेत्रीयतावाद और पदलिप्सा जैसी कुत्सित धारणाए अपनी जड़े जमाये हुये है। यदि भारत मे वास्तविक अर्थो मे समाजवाद की स्थापना करना है तो सर्व प्रथम भारतीय समाजवादियो को स्वय अपने चरित्र द्वारा जनसामान्य के समक्ष उच्च आदर्श प्रस्तुत करने होगे। समाजवाद की स्थापना के ढ़ग मे किसी प्रकार की विभिन्नता आ सकती है, लेकिन समाजवाद का मूल उद्देश्य एव आन्तरिक विचार सदैव अपरिवर्तनीय होता है। समाजवाद की स्थापना के लिये आवश्यकता शासन मे न्यायपूर्ण और जनहित के लिये आवश्यक कार्य-प्रणाली और शासन कुशलता की है। समाजवादी दलो की असफलता का प्रमुख कारण समाजवादी नेताओ मे आपसी एकता की कमी थी। इसका प्रभाव उनके दल के संगठन पर पड़ना स्वाभाविक ही था। आपसी आन्तरिक संघर्षो की वजह से जनता का विश्वास प्राप्त करने मे वे असमर्थ रहे है।

समाजवादी दल प्रथम आम चुनाव (1952) द्वितीय आम चुनाव (1957) तृतीय आम चुनाव (1962) चतुर्थ आम चुनाव (1967) मे कोई विशेष प्रगति न कर सका। आंशिक रूप मे इस दल को सफलता सन् 1989 मे मिली जब समाजवादी नेता श्री मुलायम सिह यादव उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री बने लेकिन यह सरकार उन्होने दूसरे दलो के सहयोग से बनायी थी, न कि अपने समाजवादी कार्यक्रमो के आधार पर।

भारत में समाजवाद की स्थापना के लिये प्रारम्भ से ही विचारको एवं नेताओं ने अथक प्रयास किये है और कुछ बुद्धिजीवी एवं नेता अभी भी इस प्रयास मे संलग्न है। पं. जवाहर लाल नेहरू ने समाजवाद के विकास हेतु अथक प्रयास किया शुरू से लेकर मृत्यु तक इ्स विचारधारा को उन्होने अपने ह्रदय से नही निकाला। लेकिन वे अपने उद्देश्यो मे सफल नही हो सके। यह शोध का विषय है। इस शोध मे भारत मे समाजवादी विचारो का विकास एव उनकी नीतियो मे विफलताओ का विश्लेषण प्रस्तुत करने की चेष्टा की जायेगी।

समाजवाद - अर्थ एवं परिभाषा -

समाज के प्रत्येक व्यक्ति का मिलकर काम करना और मिलकर जीवन की समान सुविधाये प्राप्त करना समाजवाद है। समाज मे बड़े से बड़ा शोषक भी समाजवाद की आवश्यकता का खण्डन नही कर सकता। कुछ लोग अभी भी भाग्य एव पुर्नजन्म के नाम पर सामाजिक तथा आर्थिक विषमता का समर्थन कर सकते है परन्तु बडी तेजी के साथ समाज मे उनकी अज्ञानतामूलक विचारो को छोड़ना शुरू कर दिया है। जो लोग यह अनुभव करते है कि समाजवाद किसी व्यक्ति विशेष की शुभकामना का नतीजा है और या यह मानते है कि कोई दमनकारी ताकत समाजवाद की ओर राष्ट्रो को बढ़ने से रोक सकती है उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक चितन पर आधारित नही है। प्रत्येक राष्ट्र और समाज की विशेष आर्थिक परिस्थितियो पर ही समाजवाद की स्थापना निर्भर करती है। यही कारण है कि पूॅजीवाद ने समाज मे जो असगतियॉ पैदा की है उसके निवारण के लिये लोगो को कोई उपचार चाहिये था।

समाजवाद कहता है, पैदावार के साधनो पर व्यक्ति विशेष का नही बल्कि पूरे समाज का, सरकार के माध्यम से स्वामित्व होना चाहिये। पूॅजीवाद में पूरा समाज मिलकर काम करता है, उत्पादन एवं वितरण का काम सामाजिक होता है परन्तु उसका स्वामित्व व्यक्तिगत हाथो मे होता है। लाभांश उसी को पहुंचता है जो इन साधनो का स्वामी होता है। परिणाम यह होता है कि पूॅजीवाद मे समाज के जिम्मे केवल मेहनत करना और पूॅजीपतियो के जिम्मे मेहनत का फल बटोरना हो जाता है। परन्तु समाजवाद इस अर्न्तविरोध को समाप्त कर देता है। जब पूरा समाज मिलकर काम करता है, तो समाज ही पैदावार के साधनो का स्वामी भी होता है। समाज को ही उत्पादन के सारे लाभांश प्राप्त होते है।

समाजवाद उन प्रवृत्तियो का समर्थक है जो सार्वजनिक कल्याण पर जोर देती है। फ्रेड ब्रामले मानता है कि समाजवाद व्यक्तिगत हितो को सामाजिक हितो के अधीन बना देता है। समाजवाद आर्थिक क्षेत्र मे प्रतिस्पर्धा का विरोध करता है। पूॅजीवादी अर्थ व्यवस्था मे उत्पादकों मे माल को बेचने की होड़ लग जाती है। इसलिये पूॅजीपति मजदूरो को श्रम का पूरा पारिश्रमिक नही दे पाते मजदूर उसके बदले मे उत्पादन मे अपना पूरा श्रम नही लगाते। समाजवाद गरीबी एव अमीरी का अन्तर कम करना चाहता है। इसलिये प्रत्येक समाजवादी सिद्धांत का ध्येय यह है कि सामाजिक व्यवस्था मे अधिक से अधिक समानता लाई जाय। समाजवाद सबको समान करने वाला और एक स्तर पर लाने वाला सिद्धांत है। समाजवादी विचारधारा स्वतंत्रता की अपेक्षा आर्थिक समानता को अधिक महत्व देता है। लास्की ने कहा है ''समाजवाद के अनुसार आर्थिक समानता के बिना राजनीतिक समानता व्यर्थ है।''[44]

समाजवाद के अतिरिक्त सम्भवत और किसी आन्दोलन पर न तो इतना अधिक वाद-विवाद हुआ है और न परिभाषा के सम्बन्ध मे ही इतनी कठिनाईया उपस्थित हुई है। समाजवाद आधुनिक युग की सबसे प्रगतिशील विचारधारा है। एक दृष्टिकोण से समाजवाद एक विरोधी नीति है और जैसा कि विरोधी आन्दोलन मे होना स्वाभाविक ही होता है कि जिसके विपक्ष मे वर्तमान सामाजिक अवस्था की समस्त विरोधी शक्तियाँ सगठित हो गयी है, जो पूँजीवाद के भिन्न-भिन्न पहलुओ तथा दोषो को दूर करने का प्रयास करती है। फलत समाजवाद जिन आन्दोलनो की ओर संकेत करता है वे प्रारभिक बिन्दु और उद्देश्य मे, साधनो और साध्य मे इतने भिन्न है कि एक सक्षिप्त परिभाषा के अन्तर्गत उनका सतोषजनक समावेश कर पाना आसान काम नही है। इसके अतरिक्त समाजवाद एक जीवित आन्दोलन एव सिद्धात दोनो है जो भिन्न मानसिक एव भौतिक अवस्थाओ मे साथ-साथ परिवर्तित होता रहता है। "Socialism is both a movement and a theory and takes different forms under different and local conditions".[45]

प्रत्येक सामाजिक सिद्धांत का उद्देश्य सामाजिक दशाओ मे समानता का समावेश करना होता है। समाजवाद समाज के धारातल को समान तथा समतल करने का प्रयत्न करता है। प्रो. ग्रेहम का विचार है कि ''समाजवाद का केन्द्रीय लक्ष्य, जो उसके स्वरूपो मे समन्वित रहता है, विषमता मे कमी करना है।''[46]

प्रो. ग्रेहम के अनुसार समाजवादी विचार का प्रयोग तीन विभिन्न अर्थो मे प्रयुक्त किया जाता है। प्रथम, समाजवाद सामाजिक सम्बन्धो को निर्धारित करने वाली नीति है, जिसका एकमात्र उद्देश्य पूँजी का समानता के आधार पर वितरण करना तथा समाज मे मौजूद असमानता की समाप्ति,

द्वितीय· राज्य की उन संस्थाओ तथा कानूनो का निर्माण करना जिनके माध्यम से समानताओ की दशाओं को बड़े पैमाने पर स्थापित किया जा सके।

तृतीय: समाजवादी विचारधारा मे आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र सम्मिलित है, जिसमे पूँजी के उत्पादन के साधनो का सचालन राज्य के द्वारा किया जाना चाहिये, तथा भूमि एव उत्पादन के साधनो पर सामूहिक स्वामित्व स्थापित किया जाय। जिनके माध्यम से व्यक्तिगत पूँजी मे वृद्धि तथा समाज मे असमानता की भावनाओ का विकास होता है।[47] फ्रेंच समाजवादी विचारक प्रूधो समाज के सुधार के लिये व्यक्त की जाने वाली प्रत्येक आकांक्षा को समाजवाद मानता है।

समाजवाद का अर्थ -

''समाजवाद'' अग्रेजी भाषा के ''सोशलिज्म'' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। 'सोशलिज्म' शब्द लैटिन भाषा के 'सोसियस' (Socius) शब्द से निकला है, जिसका अर्थ है - साथी, सहायक अथवा भागाधिकारी। यह किसी ऐसे व्यक्ति को सूचित करताहै जो समान कोटि अथवा अवस्था के हो। अतएव समाजवाद के अर्थ है - भ्रातृत्व अथवा मित्रता। जिसमे सब मनुष्य समानता के भाव के साथ संयुक्त रूप से कार्य करेगे। राज्य के शासन के सदर्भ मे यह प्रकट करता है कि प्रत्येक कार्य निष्पक्ष रूप से साधारण जनता की सेवा के लिये किया जायेगा।

समाजवाद के प्रसिद्ध लेखक एम.डी लैविलो ने अपनी पुस्तक 'सोशलिज्म टुडे' मे समाजवाद का लक्षण प्रयुक्त करते हुये लिखा है कि ''प्रत्येक समाजवादी सिद्धात का एकमात्र लक्ष्य समाजवादी दशाओ मे विस्तृत पैमाने पर समानता स्थापित करना होता है तथा उन सिद्धातो को राज्य कानूनो के माध्यम से पूर्ण कराने का प्रयत्न करता है।''[48] समाजवाद समय एवं परिस्थितियो के अनुसार अपना स्वरूप परिवर्तित करता रहता है। यह इस विचारधारा का सबसे बड़ा गुण है। रैमजेम्योर ने इस सम्बन्ध मे उचित ही लिखा है कि ''समाजवाद गिरगिट के समान रंग बदलने वाला विश्वास है। यह वातावरण के अनुसार रंग बदलता रहता है। सड़क के कोने तथा क्लब के कमरे के लिये यह वर्ग युद्ध का लोहित वस्त्र पहन लेता है, मानसिक पुरुषो के लिये इसका लाल रंग सफेद रंग मे परिवर्तित हो जाता है। भावनात्मक पुरुषो के लिये यह कोमल गुलाबी रग हो जाता है तथा क्लर्को के समाज मे यह कुमारियो का श्वेत वर्ग ग्रहण कर लेता है, जिसको महत्वाकांक्षा की मन्द मुस्कान का अभी आभास हुआ हो।''[49]

डान ग्रिफिथ्स ने सन् 1924 ई. मे एक पुस्तक 'समाजवाद क्या है?' सम्पादित की है, जिसमें उन्होने समाजवाद की 263 परिभाषाएं दी है। सन् 1892 ई. मे पेरिस के लि फिगारो ने समाजवाद की 600 परिभाषाएं प्रकाशित की।

समाजवाद समाज के अस्तित्व एव संगठन से सम्बन्धित बहुत से सिद्धातो का सम्मिश्रण है। समय-समय पर उसे धर्म तथा दर्शन की उपाधियॉ भी दीं जाती रही हैं। 19वी शताब्दी के अन्तिम वर्षों मे समाजवाद एक संगठित राजनीतिक शक्ति हो गया, उसकी आयोजनाएं राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय हो गयी, और उसके प्रतिनिधि, दल तथा प्रेस स्थापित हो गये। अतएव समाजवाद पर उनमे से किसी एक अथवा समस्त दृष्टिकोणों से विचार तथा उसी के अनुसार परिभाषा निर्मित करने का प्रयास किया जा सकता है।

बर्टेन्ड रसेल का कथन है कि ''समाजवाद का अर्थ भूमि तथा पूजी पर सार्वजनिक अधिकार करना है, साथ ही साथ लोकतान्त्रिक शासन भी स्थापित करना है। इसके अनुसार उत्पत्ति प्रयोग के लिये है, लाभ के लिये नही और उत्पत्ति का वितरण या तो सबके लिये समान रूप से हो अथवा केवल इतना विषम हो कि जनता के लिये अहितकर न हो। यह अनुपार्जित धन तथा मजदूरो की जीविका के साधनो पर व्यक्तिगत अधिकार के निराकरण का समर्थक है, पूर्ण रूप से सफल होने के लिये इसका अन्तर्राष्ट्रीय होना आवश्यक है।''[50]

आधुनिक युग मे समाज के स्वरूप तथा क्षेत्र मे काफी भिन्नता आ गयी है, इसलिये यह स्वाभाविक है कि समाजवाद के स्वरूप व क्षेत्र मे भी परिवर्तन हो। प्रारम्भिक समाजवादी आर्थिक एव सामाजिक क्षेत्र को ही समाजवाद का विषय मानते थे तथा राजनीतिक क्षेत्र को प्रारम्भिक समाजवादी समाज का विषय भी नही मानते थे। वर्तमान समय मे समाजवाद के अन्तर्गत आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक तीनो तत्वो एव क्षेत्रो को ही समान महत्व दिया जाता है। इसलिये ऐसी परिभाषा होनी अति आवश्यक है, जो अपने अन्दर सभी तत्वो का समावेश कर सकने मे समर्थ हो।

डी.एच. कोल लिखते है कि समाजवाद मे सिद्धांत की अपेक्षा विश्वास की भावना अधिक है। यह एक ऐसे समाज को स्थापित करने की इच्छा तथा योजना है जिसका आधार सहयोग तथा भ्रातृत्व हो, जो सगठित मजदूरो के आन्दोलन द्वारा प्रतिफलित हो सके और वह समझे की सामाजिक अधिकार तथा सामाजिक कर्तव्य समान है, तथा जो उन वर्गीय सेवा-सम्बन्धी सभी प्रोत्साहन और प्रेरणा को स्वतत्र कर सके, जिनको पूँजीवाद अस्वीकार करता है। सक्षेप मे ''यह मजदूर वर्ग का तत्वज्ञान है जो आर्थिक अनुभव के द्वारा सीखा गया है, और अपने को समय की परिस्थितियो के अनुसार एक रीति अथवा कार्य योजना मे परिवर्तित कर लेता है। इसके द्वारा शासन प्राबल्य का विनाश होता है और वर्गीय आधिपत्य के मिट जाने से मनुष्य स्वतंत्र हो जाते है।''[51]

जार्ज बर्नाड शॉ के अनुसार व्यक्तिगत सम्पत्ति-व्यवस्था की पूर्ण समाप्ति एवं सार्वजनिक सम्पत्ति का सम्पूर्ण जनता मे समान एवं भेद-रहित विभाजन ही समाजवाद है।[52]

परन्तु यह परिभाषा अपूर्ण है, क्योकि सेन्ट साइमन एव फोरियर के समाजवादी कार्यक्रम पर लागू नही होती, साथ ही साथ वर्तमान समाजवादी व्यवस्था के लिये भी अनुपयुक्त है।

समाजवाद के उपरोक्त सभी लक्षणो मे जो मौलिक तत्व निहित है, वह है समानता की भावना। जिस प्रकार व्यक्तिवाद एव प्रजातत्र व्यक्ति की स्वतत्रता मे आस्था रखता है, उसी प्रकार समाजवाद, समाज के सब वर्गो की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्थितियो मे समता एवं स्वतंत्रता स्थापित करना चाहता है। जैसा कि मार्क्स का विचार था कि आर्थिक परिस्थितियां ही सामाजिक एवं राजनीतिक सिद्धान्तो के निर्माण मे सहायक तत्व होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उत्पादन के साधनो पर समाज का स्वामित्व होना अति आवश्यक है। आर्थिक समानता के अभाव मे सामाजिक एव राजनीतिक स्वतत्रता एव समानता का कोई महत्व नही होता है। जब तक कि इसके साथ व्यक्तियो को आर्थिक समानता न प्राप्त हो जाय एवं उत्पादन के साधनो पर व्यक्तिगत स्वामित्व के स्थान पर समाज का स्वामित्व स्थापित करके शोषक वर्ग का अन्त न कर दिया जाये। अतएव हर्नशॉ ने इसी विचार को दृष्टि मे रखते हुये लिखा है कि समाजवाद के निम्नलिखित आवश्यक तत्व है :-

(1) व्यक्ति की अपेक्षा समाज को प्रधानता

(2) स्पर्धा का उन्मूलन

(3) निजी उद्योगो की समाप्ति

(4) पूंजीवाद का विनाश

(5) जमीदारी प्रथा की समाप्ति; इन सभी लक्षणो मे केवल एक ही निष्कर्ष निकलता है- 'समता'।

समाजवाद की वह प्रत्येक परिभाषा असफल है जो समाजवादी आन्दोलन के मुख्य उद्देश्य की दृष्टि से ओझल कर उसके केवल वाह्य लक्षणो पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है।[53]

भारत में समाजवाद की परिभाषा -

स्व. आचार्य नरेन्द्रदेव समाजवाद के सम्बन्ध मे कहते है कि ''समाजवाद का ध्येय वर्गहीन समाज की स्थापना करना है। यह वर्तमान समाज का सगठन करना चाहता है कि वर्तमान परस्पर विरोधी स्वार्थो वाले शोषाक और शोषित, पीड़क और पीड़ित वर्गो का अन्त हो जाए। समाज सहयोग के आधार पर सगठित व्यक्तियो का एक ऐसा समूह बन जाए जिसमे एक सदस्य की उन्नति का अर्थ स्वभावत: दूसरे सदस्य की उन्नति हो, और सब मिलकर सामूहिक रूप से उन्नति करते हुये जीवन व्यतीत कर सके।''[54]

1936 मे काग्रेस के लखनऊ मे हुये अधिवेशन में प जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि - ''मै इस नतीजे पर पहुंच गया हू कि दुनिया की समस्याओ और भारत की समस्याओ का समाधान समाजवाद मे ही निहित है। और जब मै इस शब्द 'समाजवाद' को इस्तेमाल करता हूॅ, तो किसी अस्पष्ट मानवीयतावादी अर्थ मे नही, बल्कि एक वैज्ञानिक, आर्थिक क्षेत्र मे।' किन्तु समाजवाद एक आर्थिक सिद्धान्त से भी बढ़कर कुछ है 'यह जीवन का एक दर्शन है...भारत की जनता की कंगाली, जबर्दस्त बेरोजगारी, दयनीयता और गुलामी को दूर करने का मै समाजवाद के अलावा कोई दूसरा रास्ता नही देख पाता।'[55] नेहरू के लिये समाजवाद केवल आर्थिक प्रणाली नही थी, वह एक जीवन दर्शन था। समाजवाद न केवल भारत से कंगाली, बेरोजगारी, निरक्षरता, बीमारी और गन्दगी मिटाने के लिये जरूरी था, वरन् मानव व्यक्तित्व को विकसित करने के लिये भी जरूरी था। सुभाषचन्द्र बोस को 1939 मे लिखे एक पत्र मे नेहरू ने कहा था कि 'मै समझता हूॅ कि स्वभाव और प्रशिक्षण से मै एक व्यक्तिवादी और बौद्धिक रूप से एक समाजवादी हूॅ - मै आशा करता हूॅ कि समाजवाद मानव व्यक्तित्व को कुचलता या नष्ट नही करता, मै तो दरअसल उसकी ओर इसलिये आकर्षित हूॅ कि वह अगणित मनुष्यो को आर्थिक और सांस्कृतिक दासता के बन्धनों से मुक्त करेगा।'[56]

जय प्रकाश नारायण ने अपनी पुस्तक 'Why Socialism' में यह कहते है कि 'समाजवाद एक व्यक्तिगत आचरण संहिता न होकर सामाजिक संगठन की एक प्रणाली है।'[57] उनकी दृष्टि मे 'समाजवाद आर्थिक और सामाजिक पुनर्निर्माण का सिद्धान्त है। समाजवाद का उद्देश्य समाज का समन्वित विकास करना है।'[58] जय प्रकाश नारायण ने समाजवाद के माध्यम से अनेक सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओ का निदान ढूॅढ़ा है। उनके अनुसार 'समाजवादी राज्य को मूलभूत मूल्यो की स्थापना करनी चाहिये और नैतिकता विहीन जीवन को अस्वीकार करना चाहिये।'[59]

डॉ राम मनोहर लोहिया के मतानुसार ''समाजवाद, उत्पादन, वितरण और विनिमय के साधनो पर से व्यक्तिगत स्वामित्व उठा देना है। समाजवाद चाहता है कि सम्पत्ति का मालिक सारा समाज हो न कि समाज का एक छोटा सा भाग या व्यक्ति''।[60] लोहिया ने चर्तुस्तम्भी राज्य की कल्पना की है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत 'गॉव, मण्डल, प्रान्त तथा केन्द्रीय सरकार का महत्व बना रहेगा और उन्हे एक कार्यमूलक सघवाद की व्यवस्था के अन्तर्गत एकीकृत कर दिया जायेगा।'[61]

वास्तव मे समाजवाद की अनेक परिभाषाए होना इसका दोष नही वरन् गुण है। परिस्थितियो एव समय के अनुकूल नवीन स्वरूप धारण करने की क्षमता, इसकी महत्वपूर्ण विशेषता है। वास्तव मे समाजवाद एक केन्द्रित सिद्धात है, जो दूसरी सब अवस्थाओ मे सम्मिलित है परन्तु अन्य समस्त दशाओ मे यह अत्यन्त अनुकूल है तथा अन्य राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक विषयो मे अत्यन्त विरोधात्मक मतो के साथ उसका सम्बन्ध पाया जाता है। समाजवाद अपने प्रारम्भिक रूप मे उन सामाजिक वर्गो के विश्लेषण के रूप मे पैदा हुआ, जो शताब्दियों से समता से वचित थे। वस्तुत: जब समाजवाद विभिन्न समस्याओ का समाधान करने का प्रयास करताहै तब किसी भी चितनशील व्यक्ति को इस बात मे शंका नही करनी चाहिये कि समाजवाद के कितने रूप है। परिस्थितियो के अनुकूल अपने को परिवर्तित कर लेने का गुण इस विचारधारा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है। यह एक रूढ़ि विश्वास के रूप मे नही रखा जा सकता। यह किसी चिंतनशील व्यक्ति विशेष के सिद्धान्तो से सम्बद्ध नही बल्कि यह उन वास्तविक तथा सजीव राजनीतिक एवं औद्योगिक शक्तियों द्वारा विकसित होता है जो नवीन शोध करने के लिये व्यक्तियो को बाध्य करती है। इस प्रकार का असीम जीवन शक्ति वाला और शीघ्र विकसित होने वाला आन्दोलन, किसी एक सिद्धान्त में सदैव के लिये और सब स्थानो के लिये सीमित नही किया जा सकता।

समाजवाद के मूल उद्देश्य -

यदि विभिन्न देशों के समाजवादी इतिहास का विश्लेषण किया जाय, तो कोई लक्ष्य उतना प्रभावित नही करता जितना इस आन्दोलन की जीवन-शक्ति। अपने को विभिन्न अवस्थाओ तथा प्रकृतियों के अनुरूप बना लेने की शक्ति एवं परिस्थितियो के अनुकूल नवीन रूप धारण कर लेने की क्षमता अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। इसलिये वर्तमान समय मे विश्व के प्रत्येक राष्ट्र मे समाजवाद किसी न किसी रूप मे व्यक्त हो रहा है। समाजवाद का मूलाधार

मानवता है। मानवतावाद और आदर्शवाद ही समाजवाद के प्रसार के मुख्य कारण है। आचार्य नरेन्द्रदेव ने समाजवाद के ध्येय को स्पष्ट करते हुये लिखा है कि, 'समाजवाद ससार को आजाद करना चाहता है, व्यक्तित्व के विकास मे रुकावट डालने वाले सामाजिक बन्धनो से उसे छुटकारा दिलाना चाहता है, शोषण मुक्त समाज की रचना करके मौजूदा समाज मे प्रचलित दासता, विषमता और भ्रातृत्व की वास्तविक स्थापना करना चाहता है।'(62)

समाजवाद के मूल उद्देश्य है -

(1) व्यक्ति की अपेक्षा समाज अथवा राज्य को अधिक महत्व देना ।

(2) वर्ग-विहीन समाज की स्थापना ।

(3) व्यक्तिगत जोखिम का अन्त करना ।

(4) व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धा की समाप्ति ।

(5) पूँजीवादी व्यवस्था की समाप्ति ।

(6) उन्नति के अवसरो मे समानता ।

(7) जमीदारी प्रथा की समाप्ति ।

वस्तुत: समाजवाद व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व प्रदान करता है। यह आत्महितवाद के विरुद्ध सर्वात्महितवाद का पक्षपाती है। समाजवाद व्यक्ति की बलिदान की भावना को समष्टि के लिये जागृत करता है। मनुष्य जाति की मजबूती ही समाजवाद है। समाजवाद समाज का एक ऐसा संगठन है, जिसमें एक सामान्य योजना के अनुसार, उत्पादन के भौतिक साधनो पर सम्पूर्ण समाज का स्वामित्व होता है और समान अवसरो के आधार पर समाज के सभी सदस्य समाजवादी आयोजन के द्वारा किये गये उत्पादन का लाभ प्राप्त करते है। इस प्रकार समाजवाद यह मानकर चलता है कि राज्य सभी के कल्याण के लिये कार्य करता है। राज्य एक आवश्यक बुराई नही है। समाजवादी व्यवस्था मे सम्पत्ति के साधनो का स्वामित्व भी राज्य को सौप देने पर बल दिया जाता है। इसमे उत्पादन का उद्देश्य लाभ की अपेक्षा कल्याण अधिक रहता है।

आधारभूत रूप से प्रत्येक समाज मे दो ही वर्ग पाये जाते है। एक वर्ग का उत्पादन के साधनो पर एकाधिकार रहता है और दूसरा वर्ग साधनहीन श्रमिकों का है जिसको शोषित किया

जाता है। इन दोनो आधारभूत वर्गो मे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से वर्ग-सघर्ष निरन्तर बना रहता है। मार्क्स तथा एजेल्स ने कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र मे लिखा है कि- ''पिछले प्रत्येक समाज का इतिहास वर्ग विरोधो के विकास का इतिहास है, उन वर्ग विरोधो का, जिन्होने भिन्न-भिन्न युगो मे भिन्न रूप धारण किया था।''[63]

प्राचीन काल मे दास और स्वतत्र मालिक, मध्ययुग मे सामन्तगण और कृषक तथा वर्तमान पूजीवादी समाज मे पूजीपति और मजदूर इसी प्रकार के आधारभूत वर्ग है। इस प्रकार आधारभूत वर्गो के अतिरिक्त भी समाज मे कई प्रकार केवर्ग पाये जाते है। परन्तु इन वर्गो का स्वार्थ अन्ततोगत्वा इन्ही आधारभूत वर्गो मे से किसी एक के साथ सम्बद्ध होता है। समाजवाद उन परस्पर विरोधी शोषक और शोषित वर्गो को समाप्त करके समाज को सहयोग के आधार पर सगठित व्यक्तियो का वास्तविक प्रजातत्र बनाना चाहता है।

समाजवाद का मूल उद्देश्य असमानताओ को समाप्त करना है जिससे की समाज मे किसी भी प्रकार की इतनी विषम असमानता न रहे। आय की दृष्टि से एक समानता संभव नही, क्योकि प्रत्येक मनुष्य की कार्यक्षमता तथा प्रतिभा एक समान नही होती है, किन्तु यह तो संभव है कि ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की जाय जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण न कर सके। जिस प्रकार स्वतंत्रता व्यक्तिवाद की कुजी है वैसे ही समानता समाजवाद की कुंजी है। प्रोफेसर ग्राहम लिखते है कि ''समाजवाद का केन्द्र जो उसके सब स्वरूपों में समन्वित रहता है, विषमता मे कमी करना है।''[64] डी. लैविलो ने भी इसी विचार को व्यक्त करते हुये लिखा है कि- ''प्रत्येक सामाजिक सिद्धान्त का उद्देश्य सामाजिक दशाओं में समानता का समावेश करना है। समाजवाद समाज के धरातल को समान और समतल करने वाला विचार है।''[65]

पूँजीवादी वर्ग श्रमिक वर्ग का शोषण करके पूँजी का एकत्रीकरण करता है और उसे अधिक शोषण करने के लिये प्रयुक्त किया जाता है। इसलिये समाजवाद का लक्ष्य उस व्यक्तिगत सम्पत्ति को समाप्त करना है, जिससे श्रमिक वर्ग का शोषण किया जाता है।

पश्चिम व भारत में समाजवाद का उद्देश्य -

लेनिन ने स्पष्ट कहा है कि ''समाजवाद का अर्थ है वर्गों का उन्मूलन। वर्गो को समाप्त करने के लिये सबसे पहले जमींदारो तथा पूँजीपतियो को समाप्त करना जरूरी है।''[66]

समाजवाद का विरोध केवल पूँजीवादी वर्ग ही नही वरन् जमीदारो से भी है। भूमि परिश्रम से नही बनायी जाती वरन् यह प्राकृतिक देन है। इसलिये भूमि के उपयोग का अधिकार उसमे परिश्रम करने वाले व्यक्तियो को ही होना चाहिये, अन्य किसी को नही। फ्रासीसी मजदूर दल की दसवी काग्रेस (सन् 1892) द्वारा पारित प्रस्ताव भूमि-सम्बन्धी कर्त्तव्यो को सतुलित ढग से स्पष्ट करता है।...''चूँकि एक ओर जहॉ समाजवाद का यह कर्त्तव्य है कि बड़ी-बड़ी जमीदारियो को उनमे कार्य न करने वाले स्वामियो के हाथो से छीन कर उन्हे फिर खेतिहर सर्वहारा के स्वामित्व (सामूहिक अथवा सामाजिक रूप के स्वामित्व) मे ले आये, वहॉ दूसरी ओर उसका उतना ही अनिवार्य कर्तव्य यह भी है कि जमीन के अपने छोटे-छोटे टुकड़ो को जोतने वाले किसानो को माल के महकमे, सूदखोरो तथा नवोदित बड़े-बड़े जमीदारो के अतिक्रमण से बचा कर अपनी जमीनो पर उनका कब्जा बरकरार रखे।''[67]

फ्रेडरिक एंजेल्स एक कदम और आगे जाते है और कहते है कि - ''जब हमारे हाथो मे सत्ता आयेगी, तब हम बल पूर्वक छोटे किसानो की सम्पत्ति बमुआवज़ा (या बिना मुआवजा) छीनने की... जो काम हमें बड़े जमीदारो के सम्बन्ध मे करना पड़ेगा.... बात भी नही सोचेगे। छोटे किसानो के सम्बन्ध मे हमारा कार्य प्रथमत: उनके निजी उद्यम और निजी स्वामित्व को सहकारी उद्यम और स्वामित्व मे अन्तरित करना होगा।''[68]

पूँजीवादी प्रणाली के विश्वव्यापी होने के कारण वर्तमान काल मे पूँजीवादी वर्ग का आधिपत्य सा है; आधुनिक भीषण विषमता के कारण है- उत्पादन, विनिमय और वितरण के साधनो पर सीमित पूंजीपतियो का आधिपत्य। यह पूँजीवादी वर्ग ही शोषक वर्ग है जो श्रमिक वर्ग का शोषण करके समाज मे वर्ग-संघर्ष की स्थिति उत्पन्न करता है। पूँजीवाद के कारण ही एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के द्वारा, एक समुदाय का दूसरे समुदाय के द्वारा या एक देश का दूसरे देश के द्वारा शोषण होता है। समाजवाद शोषण करने वाले व्यक्तिगत व्यापार की समाप्ति कर समाज मे शान्ति और सहयोग का वातावरण स्थापित करना चाहता है। मार्क्स और एंजेल्स ने कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा पत्र मे व्यक्तिगत व्यापार की समाप्ति के सम्बन्ध मे स्पष्ट किया है कि- 'हम श्रम की उपज के उस व्यक्तिगत अधिकार का अन्त नही करना चाहते जो मुश्किल से मानव-जीवन कायम रखने और प्रजनन के लिये किया जाता है और जिसमे ऐसी बचत की गुंजाइश नहीं होती, जिसमें दूसरे के श्रम को वशीभूत किया जा सके। हम जिस चीज को समाप्त कर देना चाहते है, वह है इस अधिकरण का वह दयनीय रूप जिसके अन्तर्गत श्रमिक केवल पूँजी बढ़ाने के लिये जिन्दा रहता है और उसे उसी सीमा तक जिन्दा रहने दिया जाता है, जहॉ तक शासन वर्ग के स्वार्थो को उसकी जरूरत होती है।'[69]

पूँजीवादी व्यवस्था मे व्यक्तिगत लाभ की आकाक्षा अधिक होती है। 'पूँजीवाद का हेतु व्यक्तिगत लाभ है और प्रतियोगिता उसका मूल मत्र है।' इस हानिकारक प्रतिस्पर्धा के कारण ही श्रमिको का शोषण होता है। पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत मजदूरो की स्थिति के ऊपर मार्क्स तथा एजिल्स ने लिखा है कि- ''ये मजदूर जो अपने को अलग-अलग बेचने को लाचार है, अन्य व्यापारिक सामान की तरह स्वय भी एक सामान है और इसलिये वे स्पर्धा के प्रत्येक उतार-चढ़ाव तथा बाज़ार की तेजी-मन्दी के शिकार होते है।''[70]

समाजवाद का मूल उद्देश्य इस स्पर्धा की जड़ को मूल से ही समाप्त करना है। समाजवाद व्यक्तिगत व्यापार को समाप्त करना चाहता है, जिसका परिणाम सहयोग का आधार होगा। समाजवाद पूँजीवाद का स्थानापन्न है। प्राय: प्रत्येक समाजवादी दल इस बात की भविष्यवाणी करता है कि आदर्श सामाजिक, आर्थिक एव राष्ट्रीय सगठन का क्या स्वरूप होगा? भविष्य का आदर्श वर्तमान के विश्लेषण के अनुसार होता है, समस्याओ का समाधान समय एव साधनो के अनुसार ही होता है। इसलिये भिन्न-भिन्न मतो मे विभिन्नता होना अनिवार्य है। परन्तु यदि छोटे तत्वो को छोड दिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि समाजवादी सामाजिक सम्पत्ति का न्यायपूर्ण वितरण करने के लिये सामूहिक अधिकार तथा उपज के साधनो का उचित प्रयोग चाहते है।

समाजवाद पूँजीवाद के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया है। इस प्रतिक्रिया मे किन साधनो का प्रयोग किया जाय, इस विषय में समाजवादियो में सबसे अधिक मतभेद है। शांतिपूर्ण साधनो द्वारा राष्ट्र पर अधिकार, उत्पत्ति के साधनो पर मजदूरों का अधिकार अथवा सशस्त्र क्रान्ति द्वारा ध्येय की प्राप्ति के साधनों पर जोर दिया जाता है।

पूँजीवाद के प्रति वर्तमान समय मे भी एक आन्दोलन का विकास हो चुका है। मनुष्य भारत मे ही नही प्रत्येक देश मे समाज को समाजवाद के आधार पर सगठित करने के लिये प्रयत्नशील हो रहे है। समाजवाद की समस्या संसार की सबसे बड़ी समस्या है। इसी आधार पर विश्व का दो भागो मे विभाजन हुआ है। लेकिन वास्तविकता को स्वीकार करने के बाद इस विभाजन की खाई धीरे-धीरे कम होती जा रही है। विश्व की राजनीति मे समाजवाद का प्रसार और उन्नति सबसे प्रमुख विशिष्टता है। समाजवाद हमारे समय का बीजमंत्र है। वर्तमान समय मे समाजवादी विचार मनुष्यो के मस्तिष्क मे स्थान प्राप्त कर चुके है और साधारण जनता इससे प्रभावित हो रही है। इसने प्रत्येक के विचार तथा भावनाओ पर अपना शासन स्थापित कर लिया है। यह वर्तमान युग को अपनी विशिष्ट प्रकृति प्रदान करता है।

इतिहास वर्तमान युग को समाजवाद का युग कहकर पुकारेगा। वास्तव मे बीसवी शताब्दी आधुनिक (वैज्ञानिक) समाजवाद के जन्मदाता कार्ल मार्क्स की शताब्दी थी। बिना यह समझे हुये कि समाजवाद समाज का सुधार किस प्रकार कर सकता है, कोई व्यक्ति नागरिकता के अधिकारो को ठीक तरह से प्रयोग मे नही ला सकता। एक अल्प समय के अन्दर ही समाजवाद ने अपनी और इतने अधिक व्यक्तियो को आकर्षित कर लिया है कि प्रत्येक सभ्य देश मे समाजवादियो द्वारा राज्य पर अधिकार कर लेना सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक समस्या बन गयी है। आज समाजवाद का प्रभाव स्पष्टत: शिक्षा, साहित्य एव कला पर देखा जा सकता है।

19वी शताब्दी से समाजवाद ने विश्व की विचारधारा पर बहुत प्रभाव डाला है, और ऐसी संभावना प्रतीत होती है कि भावी समय मे वह उसका प्रधान प्रेरक होगा। समाजवाद ने शोषण का अन्त करने के लिये शोषक एव शोषित वर्गो को सहयोग के आधार पर संयुक्त करने की प्रेरणा दी है। इस प्रकार इसने व्यक्तिगत हित की अपेक्षा सामाजिक हित को प्रधानता दी है, तथा समाजवाद ने राष्ट्र के आर्थिक तथा औद्योगिक कार्यों के क्षेत्र मे वृद्धि करके राष्ट्र की परिभाषा भी विस्तृत कर दी है। साथ ही साथ जनता के समक्ष इस विचार को भी प्रतिपादित कर दिया है कि राष्ट्र को सर्वशक्ति सम्पन्न होना चाहिये; जिससे की राष्ट्र समाज के हित के लिये सभी आवश्यक कार्यो को सम्पन्न कर सके। वातावरण का मनुष्य के चरित्र पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ता है। समाजवाद उस वातावरण को प्रतिपादित करने का प्रयास करता है जिससे की उच्च चरित्र का निर्माण हो सके। समाजवाद ने विश्व-बन्धुत्व की विचारधारा के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था मे उत्पादन मे तो अवश्य वृद्धि हुयी परन्तु मनुष्य के नैतिक स्तर मे अवनति भी हुई, जिसका समाजवाद कड़े शब्दो मे विरोध करता है। वह मानव को मानव के समान, न कि मशीन के समान व्यवहार करने का समर्थन करता है। इसी भय के कारण आज अमेरिका एवं अन्य यूरोपीय पूँजीवादी देशो ने भी अपनी नीतियो मे समाजवाद के तत्वो को स्थान दिया है।

संदर्भ ग्रन्थ

(1) Huberman, Leo and Sweezy, Paul M - *"Introduction to Socialism"* P21

(2) वही, पृ 21

(3) कश्यप, सुभाष, गुप्ता, वि प्र , *''राजनीति कोष''*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि वि , नई दिल्ली, 1998, पृ 422

(4) Huberman, Leo and Sweezy, Paul M - *"Introduction to Socialism"* P21

(5) कश्यप, सुभाष, गुप्ता, वि प्र , *''राजनीति कोष''*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि वि , नई दिल्ली, 1998, पृ 422

(6) वही, पृ 422

(7) राय, डॉ सत्या एम (स), *''भारत मे उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद''*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि वि , नई दिल्ली, 2000, पृ 37

(8) स्थायी बन्दोबस्त बगाल के अलावा मद्रास के कुछ हिस्सो मे लागू किया गया था।

(9) रैयतवारी बदोबस्त मद्रास, बम्बई के कुछ हिस्से, बरार तथा बर्मा, आसाम तथा कुर्ग मे लागू किया गया था।

(10) महालवारी व्यवस्था-दक्कन के कुछ हिस्सो, सयुक्त प्रान्त, आगरा, अवध, मध्य प्रान्त तथा पजाब के कुछ हिस्सो मे लागू किया गया था।

(11) राय, डॉ सत्या एम (स), *''भारत मे उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद''*, 2000, पृ 44

(12) J W Kai, *"The Administration of the East India Company"*, P198

(13) राय, डॉ सत्या एम (स), *''भारत मे उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद''*, पृ 45

(14) वही, पृ 48

(15) Indian Central Banking Enquiry Committee Report, Enclosure-13, P700

(16) राय, डॉ सत्या एम (स.), *''भारत मे उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद''*, पृ 69

(17) एस गोपाल (स), *''जवाहर लाल नेहरू वाड्मय''* भाग-७, पृ 111-112

(18) वही, पृ 112

(19) वही, पृ 112

(20) कश्यप, सुभाष, गुप्ता, वि प्र , *''राजनीति कोष''* पृ 423

(21) महाजन, विद्याधर, *''भारत 1526 से आगे''*, एस चन्द्र एण्ड कम्पनी लि , नई दिल्ली, 1991, पृ 747

(22) शर्मा, डॉ उर्मिला, शर्मा, एस के , *''भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन''*, एटलाटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दरियागज, नई दिल्ली, प्रथम सस्करण 1999, पृ 305

(23) वही, पृ 305

(24) अग्रवाल, अमरनारायण, *''समाजवाद की रूप रेखा''*, पृ 316

(25) घोष, शकर, *''सोशलिज्म एण्ड कम्युनिज्म इन इण्डिया''*, पृ 361

(26) नेहरूज़ स्पीचेज़, वाल्यूम-III, पृ 307

(27) गुहा, कु लक्ष्मी, *''ग्रोथ आफ सोशलिज्म इन इण्डिया''*, पृ 296

(28) वही, पृ 298

(29) घोष, शकर, *''सोशलिज्म एण्ड कम्युनिज्म इन इण्डिया''* पृ 181

(30) शरद, ओकार, *''लोहिया''* पृ 176

(31) वही, पृ 210

(32) सोशलिस्ट पार्टी के निश्चयानुसार (नासिक अधिवेशन) सयुक्त प्रान्तीय व्यवस्थापिका की सदस्यता से आचार्य नरेन्द्र देव सहित 12 सदस्यो ने त्यागपत्र दिया था।

(33) गुहा, कु लक्ष्मी, *''ग्रोथ आफ सोशलिज्म इन इण्डिया''*, पृ 304-305

(34) घोष, शकर, *''सोशलिज्म एण्ड कम्युनिज्म इन इण्डिया''*, पृ 338

(35) गुहा, कु लक्ष्मी, *''ग्रोथ आफ सोशलिज्म इन इण्डिया''*, पृ 338

(36) घोष, शकर, *''सोशलिज्म एण्ड कम्युनिज्म इन इण्डिया''*, पृ 285

(37) वही, पृ 285

(38) गुहा, कु लक्ष्मी, *''ग्रोथ आफ सोशलिज्म इन इण्डिया''* पृ 379

(39) जौहरी एव पुरवार, *''भारतीय शासन एव राजनीति''*, विशाल पब्लिकेशन्स जालन्धर, 1990, पृ 823

(40) बम्बवाल, के आर , *''भारत की शासन व्यवस्था''*, पृ 419

(41) सम्पदा, *''जुलाई-अगस्त''*, 1970, पृ 331

(42) वही, पृ 317

(43) दुबे, अभय कुमार, *''मुलायम सिह यादव''* एक आलोचनात्मक अध्ययन, पृ 102

(44) Laskı, Grammer of Polıtics' P 162

(45) इनसाइक्लोपीडिया आव ब्रिटानिका, पृ 756

(46) प्रो ग्रेहम, *''सोशलिज्म-न्यू एण्ड ओल्ड''*, पृ 4

(47) वही, पृ 5-9

(48) लैविलो, एम डी , *''सोशलिज्म टुडे''*, पृ 18

(49) म्योर, रैम्जे, *''द सोशलिस्ट केस एक्जामिन्ड''*, पृ 3 (अमर नारायण अग्रवाल 'समाजवाद की रूपरेखा, पृ.25 से उद्‌दृत

(50) ग्रिफिथ, डॉन, *''ह्वाट इज् सोशलिज्म ?''* पृ 61

(51) वही, पृ 23-29

(52) '' Socıalısm ıs, the complete dıscardıng of the ınstıtutıon of prıvate property and the dıvısıon of the resultent public ıncome equally and indiscrımınately anong the entıre populatıon " इनसाइक्लोपीडिया आव् सोशल साइन्सेज, वैल्यूम 13-14, पृ 188

(53) आस्कर जास्जी ने उचित ही कहा है कि- `` Every defınıtıon must fail whıch focuses atleutıon upon external features only and over looks the centralmotıf of all socıalıst movements " वही, पृ 188

(54) आचार्य नरेन्द्र देव, *''राष्ट्रीयता एव समाजवाद''*, पृ.317-19

(55) नेहरू, जवाहर लाल, *''इण्डिया एण्ड द वर्ल्ड''*, पृ 82-83

(56) नेहरू, जवाहर लाल, *''ए बन्च आफ लेटर्स''*, पृ.353

(57) Narayan, Jaı Prakash, *Why Socıalısm?'*, P94

(58) वही, पृ 95

(59) वही, पृ.95

(60) लोहिया, डॉ राम मनोहर, *"Aspects of Socialıst Polıcy"*, P76-77 (बम्बई, 6 टुलच रोड, 1952)

(61) लोहिया, डॉ राम मनोहर, *"Will to power and other wrıttıngs"* P132 (हैदराबाद, नवहिन्द पब्लिकेशन्स, 1956)

(62) आचार्य नरेन्द्र देव, *''राष्ट्रीयता और समाजवाद''*, पृ 410

(63) मार्क्स, कार्ल, ऐजेल्स, फ्रेडरिक, *''सकलित रचनाए''*, भाग-1, पृ 67

(64) प्रो ग्राहम, *''सोशलिज्म-न्यू एण्ड ओल्ड''*, पृ 4

(65) लैविलो, ई डी - *''सोशलिज्म आव् टुडे''* पृ 15 (अमरनारायण अग्रवाल की पुस्तक 'समाजवाद की रूपरेखा, पृ 13 से उद्‌दृत)

(66) लेनिन, ब्ला ई , *''सकलित रचनाए''*, खण्ड-3, भाग-1, पृ.362

(67) मार्क्स, कार्ल, ऐजेल्स, फ्रेडरिक, *''सकलित रचनाए''*, भाग-4, पृ.69

(68) वही, पृ 79

(69) वही, पृ 61-62

(70) वही, पृ 52

अध्याय - प्रथम

पाश्चात्य परिवेश में समाजवाद का प्रारम्भ एवं विकास

अध्याय - प्रथम

पाश्चात्य परिवेश में समाजवाद का प्रारम्भ एवं विकास

समाजवाद की वर्तमान विचारधारा 19वी शताब्दी मे विकसित हुई। सन् 1807 ई. मे राबर्ट ओवन के अनुयायियो के लिये अग्रेजी भाषा मे 'समाजवादी' शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम बार किया गया। 19वी शताब्दी मे औद्योगिक क्रान्ति तथा पूंजीवाद ने समाज में इतना उग्र आर्थिक वैषम्य पैदा कर दिया तथा श्रमिक वर्ग मे इतनी अधिक दयनीय दरिद्रता तथा शोचनीय स्थिति उत्पन्न कर दी कि उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप समाजवाद की विचारधारा उत्पन्न हुई। लेकिन इसके कुछ मौलिक विचार आर्थिक विषमता का उन्मूलन, पूँजीवादी वर्ग की आलोचना, पूँजीपति वर्ग द्वारा शोषण का विरोध प्राचीन है। इनका सभी कालो तथा सभी देशो मे विरोध किया गया है। समाजवाद की विचारधारा भी अपने आप मे एक प्रतिक्रियात्मक विचारधारा है। औद्योगिक क्रान्ति के समय मे प्रबल होने वाली व्यक्तिवाद की विचारधारा ने इसके प्रादुर्भाव एवं विकास मे महत्वपूर्ण योगदान दिया।

पश्चिमी परिवेश मे समाजवाद के तत्व बाइबल के 'ओल्ड टेस्टामेट' (Old Testament) मे वर्णित एमोस (Amos, 8th century B.C), होशिया (Hosea), ईसाइया (Isaiah), जेरेमिया (Jeremiah) व अजकील (Ezekiel) जैसे कुछ प्राचीन संतो के लेखो में मिलते है। प्लेटो ने (427-347 ई.पू.) अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रिपब्लिक' में इस विचार की कुछ स्पष्ट व्याख्या की। कुछ विचारक प्लेटो को ही विश्व का प्रथम समाजवादी मानते है। उसने अपने 'आदर्श राज्य' के लिये शासको की जो व्यवस्था की, उनके लिये मकान, भूमि इत्यादि किसी भी रूप मे वैयक्तिक सम्पत्ति रखने का निषेध किया गया।[1] उसने पारिवारिक सम्बन्धो मे भी साम्यवाद की व्यवस्था का समर्थन करते हुये कहा कि 'इस राज्य के संरक्षको के बच्चे और

स्त्रियॉ भी सामूहिक होगी।' लेकिन प्लेटो की साम्यवादी योजना व्यावहारिक की अपेक्षा पूर्णरूपेण सैद्धान्तिक ही थी। लेकिन इस विचार ने मध्ययुग और आधुनिक युग के अनेक विचारको को प्रभावित किया।

मध्यकालीन यूरोप मे प्लेटो के समान ही आदर्श राज्य की कल्पना अनेक विचारको ने की। इसमे समाजवादी विचार की दृष्टि से कई महत्वपूर्ण रचनाए है। इसमे सर थामस मूर द्वारा सन् 1556 ई. मे प्रकाशित 'यूटोपिया' (Utopia) प्रसिद्धतम रचना है।[2] 'यूटोपिया' लैटिन भाषा के दो शब्दो से मिलकर बना है, इसका अर्थ है- कही नही (No Where)। मूर ने अपने 'यूटोपिया' मे जिस राज्य का वर्णन किया है वह कल्पना पर आधारित था, किन्तु मूर ने इसमे ऐसे आदर्श राज्य की कल्पना का विचार लिया था जिसे वह उस समय के अन्यायपूर्ण राज्य व्यवस्था के आधार पर स्थापित करना चाहता था। उस समय इग्लैण्ड के व्यापार मे असाधारण वृद्धि हो रही थी तथा इग्लैण्ड मे किसानो और श्रमिको की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। उन्हे इतना पारिश्रमिक ही नही मिलता था जिससे कि वह अपना पोषण कर सके। मूर इसे अत्यन्त अन्यायपूर्ण व्यवस्था समझता था कि श्रमिकों के द्वारा उत्पादित पूजी का आनन्द जमीदार वर्ग ले। उसने इंग्लैण्ड की तत्कालीन व्यवस्था पर कटु व्यंग्य करते हुये एक पुर्तगाली अन्वेषक के मुख से 'यूटोपिया' नामक टापू का एक आदर्श वर्णन प्रस्तुत किया। वहां पर किसी प्रकार की कोई असमानता नही है। वहॉ पर सहकारिता एवं सहयोग के आधार पर उत्पादन किया जाता है और आवश्यकतानुसार वस्तुओं को ग्रहण किया जाता है। यहॉ शान्ति का साम्राज्य है। किसी के पास अपनी निजी सम्पत्ति नही है और न ही उसकी इच्छा है। वह सम्पत्ति को ही समस्त विषमताओं का मूल समझता है। थामस मूर ने इसमें उत्पादन और वितरण का नियंत्रण करने वाली साम्यवादी पद्धति का एक आदर्श चित्र प्रस्तुत किया है। थामस मूर की रचना का इंग्लैण्ड में काफी प्रभाव पड़ा। उसके बाद के लेखको ने इस प्रकार के काल्पनिक राज्यो की रचना की। इनमे कैम्पेनेला की 'सिटी आफ द सन' (City of the Sun, 1623), फ्रांसिस बेकॅन की 'न्यू एटलांसिस' (New Atlantis) और जेम्स हेरिंगटन की 'ओशियाना' (Oceana,1656) उल्लेखनीय है। प्रसिद्ध लेखक एच.जी. बेल्स ने सन् 1905 में 'माडर्न यूटोपिया' (Modern Utopia) लिखा था।

17वी शताब्दी के दो आन्दोलनो ने इंग्लैण्ड मे समाजवादी विचारधारा को प्रोत्साहित किया। ये दोनों चार्ल्स प्रथम के समय गृहयुद्ध के समय उत्पन्न हुये थे। लेवलर्स तथा डिगर्स[3] (Levellers and Diggers), पहला, आन्दोलन समतावादियों (लेवेलर्स) का था, ये लोकतंत्र

मे आस्था रखते थे एव सब प्रकार के विशेषाधिकारो के कट्टर विरोधी थे, ये समाज मे सब प्रकार की विषमता समाप्त करके समानता स्थापित करना चाहते थे, इसीलिये इन्हे समतावादी (लेवेलर्स) का नाम दिया गया था। ये भूमि पर सब व्यक्तियो का समान अधिकार मानते थे। इनका आन्दोलन विशेष रूप से राजनीतिक था। दूसरा, आन्दोलन डिगर्स का था। इन्हे यह नाम देने का कारण यह था कि इस आन्दोलन का नेता विनस्टैनली (Winstanely) भूमि पर निर्धन जनता का स्वामित्व मानता था। उसने गरीबो को यह प्रेरणा दी थी कि सार्वजनिक (पचायती) भूमि को खोद कर वे उस पर खेती करना शुरू कर दे। अप्रैल, सन् 1649 ई. मे उसने अपने कुछ अनुयायियो के साथ वेब्रिज नामक स्थान पर सेन्ट जार्ज पहाड़ी की पचायती भूमि खेती के लिये खोदना शुरू किया था, लेकिन उसकी योजना असफल हुई। तब वह लेखक बन कर अपने सिद्धान्तो का प्रचार करने लगा था। उसकी रचनाओ मे परवर्ती समाजवाद के अनेक तत्व दिखायी देते है। उनका विचार था कि समाज परस्पर सघर्ष करने वाले वर्गो मे बंटा हुआ है। राजनीतिक सघर्ष धनी व्यक्तियो के कारण होते है। यदि मानव समाज मे स्वतंत्रता, सुख और समृद्धि लानी है तो मजदूरी और निजी सम्पत्ति के स्थान पर सहयोग और सामूहिक सम्पत्ति की व्यवस्था करनी पड़ेगी। विन्स्टैनली का डिगर्स आन्दोलन यद्यपि 17वी शताब्दी मे पूर्णरूप से असफल हो गया और 18वी शताब्दी मे ऐसा कोई आन्दोलन नही हुआ, फिर भी इसने 19वी शताब्दी के समाजवादी आन्दोलन पर परोक्ष रूप से गहरा प्रभाव डाला। सन् 1696 ई. में जान बेलर्स ने विन्स्टैनली के कुछ विचारो को ग्रहण करते हुये 'दि कालेज आफ इन्डस्ट्री (The Callege of Industry) नामक पुस्तक की रचना की। इसमे सहयोग के आधार पर प्रतिष्ठित स्वावलम्बी समाजों की स्थापना का सुन्दर विवेचन था। इस पुस्तक का राबर्ट ओवन पर काफी प्रभाव पड़ा।

मध्ययुगीन समाजवादी विचारधारा, केवल विचार स्वरूप मात्र थे। पराग्वे के मुख्य विचारक जेस्यूट (1602-1667) ने अनुभव के आधार पर धर्म सम्प्रदाय को महत्व प्रदान करते हुये इस प्रकार के संगठन और कालोनी बनाने का प्रयास किया था, परन्तु वे अपने उद्देश्य मे सफल न हो सके। ईसाई धर्म के दोनो सम्प्रदायो ने इसमे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की, परन्तु सफलता नही मिली। ईसाई सम्प्रदाय ने तथा इसकी कौसिल ने (सन् 1889-1931 ई.) एवं फेडरल कौंसिल आफ चर्च ने सन् 1908 ई. मे मानवता के आधार पर कुछ सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया और इसका पुनर्विलोकन किया। सन् 1932 ई. में उसकी समानार्थी संस्थाओ ने इसका समर्थन किया। इन सभी कार्यक्रमो मे मुख्य रूप से एक ही विचार निहित थे, जो उस समय अन्याय के विरुद्ध थे तथा उन्होने इस प्रकार के विचारो को समाज के समक्ष प्रस्तुत

किया। यद्यपि 13वी शताब्दी मे जर्मनी के कुछ शिक्षको ने समाजवादी सिद्धान्तो का प्रतिपादन एवं समर्थन किया था लेकिन मध्ययुग की समाजवादी विचारधारा एक सैद्धान्तिक क्षेत्र तक ही सीमित रह गयी थी परन्तु इस विचारधारा ने आधुनिक समाजवादी विचारधारा के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिसके आधार पर आधुनिक समाजवादी विचारधारा अपने विकास को सुदृढ़ कर सकी।

१९वीं शताब्दी में समाजवादी विचारधारा के विकास के कारण -

18वी शताब्दी तक समाजवादी आन्दोलन प्रभावशाली न बन सका, किन्तु 19वी शताब्दी से इस आन्दोलन मे तीव्रता और प्रखरता आने लगी। इसका मुख्य कारण औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न होने वाली विशेष परिस्थितियां थी। इसने कई कारणो से इस आन्दोलन को प्रोत्साहित किया।[4]

(1) इसने समाज मे पूँजीपति वर्ग को उत्पन्न किया जिसने मध्यकाल से चली आने वाली गिल्ड व्यवस्था को समाप्त कर दिया। मशीनीकरण के तीव्र विकास के कारण मध्ययुगीन श्रमिक मशीनो को अपने हाथ से चलाने वाला सामान्य सा मजदूर बन कर रह गया। इन श्रमिको के अन्दर, एक साथ कार्य करने के कारण, एकता की भावना का विकास हुआ और अपने कष्टो को दूर करने के लिये, पूँजीपतियो के प्रति रोष प्रकट करने की तथा अपनी शिकायते दूर करने के लिये संघ बनाने की प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होने लगी।

(2) दूसरा कारण पूँजीवाद का उत्कर्ष था। औद्योगिक क्रान्ति के विकास एवं प्रगति के साथ-साथ मशीनीकरण होन से तथा दूसरी ओर उद्योगो का विकास होने से श्रमिको की संख्या मे तीव्र वृद्धि होने लगी। पूँजीवाद में विकास की संभावना तीव्र होती गयी और श्रमिको मे इस व्यवस्था के प्रति विरोध की भावना विकसित होने लगी।

(3) उद्योगों में लगातार अधिक पूँजी लगाये जाने के कारण उद्योगो का स्वामित्व भी अल्प पूँजीपतियो के हाथ मे आने लगा। ये पूँजीपति उद्योगो का संचालन अपने स्वार्थो हेतु करने लगे। पूँजीपति मजदूर वर्गो की उपेक्षा करने लगे। इससे उत्पन्न दुष्परिणामों से समाजवादी आन्दोलन को प्रेरणा मिली।

(4) औद्योगिक क्रान्ति से ये परिस्थितिया सर्वप्रथम पश्चिमी यूरोप के देशो-फ्रांस और इग्लैण्ड मे उत्पन्न हुई, अत समाजवादी विचारो का उद्भव भी सर्वप्रथम इन्ही देशो मे हुआ। समाजवादी विचारधारा के विकास मे सबसे अधिक योगदान व्यक्तिवाद की विचारधारा की प्रतिक्रियात्मक शक्ति थी। औद्योगिक क्रान्ति ने एक नवीन विचारधारा 'व्यक्तिवाद' का विकास किया। इग्लैण्ड में बेन्थम एव जे.एस. मिल ने व्यक्ति के अधिकारो का उग्र समर्थन किया। इस व्यक्तिवादी विचारधारा के विपरीत बुद्धिजीवी वर्ग मे एक प्रतिक्रिया हुई, जिसके फलस्वरूप एक नवीन विचारधारा का विकास होने लगा, जिसने व्यक्ति की अपेक्षा राज्य को अधिक महत्व दिया तथा समाज अथवा राज्य को व्यक्ति के विकास के लिये आवश्यक माना।

समाजवादी विचारधारा का विकास सर्वप्रथम फ्रास एव इग्लैण्ड मे हुआ। इस विचारधारा को वैज्ञानिक स्वर देने का श्रेय जर्मनी के विचारको को है। 19वी शताब्दी की समाजवादी विचारधारा के विकास को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है- कार्ल मार्क्स के पूर्ववर्ती विचारक तथा उसके बाद के विचारक। कार्ल मार्क्स ने अपने से पूर्व के विचारको को कल्पनावादी विचारक की संज्ञा दी थी, क्योकि उन्होने इसे स्थापित करने के लिये कोई व्यावहारिक योजनाएं प्रस्तुत नही की थी।

फ्रान्स के कल्पनावादी समाजवादी विचारक -

अठारहवी शताब्दी मे फ्रान्स की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दशाए इतनी खराब हो गई थी कि दार्शनिको, विचारको तथा अन्य सामाजिक सुधारकों का विश्वास, विद्यमान सामाजिक व्यवस्था तथा राजनैतिक संस्थाओं से हट गया था और वे एक ऐसे जगत की कल्पना करने लगे थे जिसमे बुद्धि अथवा विवेक (Reason) प्रधान हो। इन बुद्धिजीवियों ने फ्रान्स की आर्थिक प्रणाली, वित्तीय व्यवस्था कर-व्यवस्था, राजनीतिक प्रणाली इत्यादि की कड़ी आलोचना की और व्यक्ति स्वातंत्र्य, मानव समानता तथा भ्रातृत्व की मांग की और कुछ ने एक समाजवादी व्यवस्था की कल्पना भी की। ये सब विचारक उन स्थितियो तथा दुर्दशाओ की उपज थे जिनके कारण फ्रान्स मे 1789 ई. की महान क्रान्ति हुई और जिस क्रान्ति में उस समय की सामाजिक, आर्थिक, तथा राजनीतिक संस्थाओं तथा व्यवस्थाओं को चुनौती दी गयी थी। ये सब फ्रान्स मे फैली आर्थिक असमानता तथा दलित, निर्धन एवं शोषित वर्ग की दुर्दशा

से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। ये सब एक ऐसे न्याय सगत समाज की स्थापना चाहते थे जिसमे शोषक वर्ग के लिये कोई स्थान न हो, सबको समान आर्थिक सुविधाये प्राप्त हो और सब अपना विकास कर सके।[5]

फ्रांसिस नोयल वावेफ (1764-1797) -

वावेफ फ्रान्स की क्रान्ति के समय हुये थे। इस क्रान्ति ने समस्त मनुष्यो के समान होने की घोषणा की थी, परन्तु फ्रान्स के समाजवादी विचारक समस्त मनुष्यो के राजनीतिक समानता के साथ-साथ आर्थिक समानता के भी पक्षधर थे। वावेफ को प्राचीन तथा अर्वाचीन समाजवाद का विभाजक और आधुनिक साम्यवाद का निर्माता कहा जाता है। रोबेस्पियर के पतन के बाद यह स्पष्ट हो गया था कि फ्रांसीसी क्रान्ति का सबसे अधिक लाभ निजी भूमि रखने वालो को हुआ है। साधारण जनता को इससे कोई लाभ नही हुआ। वह समाज मे आर्थिक विषमता का अन्त करके समानता स्थापित करना चाहता था। उसका विश्वास था कि निजी सम्पत्ति गृहयुद्ध और विषमता उत्पन्न करती है अत: इसका उन्मूलन होना चाहिये। वह यह भी चाहता था कि मृत व्यक्तियो की सम्पत्ति पर राज्य को अपना अधिकार कर लेना चाहिये जिससे पचास वर्षो मे राज्य ही सब प्रकार की सम्पत्ति का स्वामी बन जाय। वह सभी से समान रूप से कार्य लेना चाहता था, कार्य का समय कानून द्वारा निर्धारित किया जाना चाहिये। उसने उत्पादन पर नियत्रण स्थापित करने तथा वैयक्तिक आवश्यकताओं के अनुसार सम्पत्ति के वितरण पर बल दिया।

वावेफ के पूर्व समाजवादियो ने केवल एक नवीन व्यवस्था की कल्पना की थी लेकिन वावेफ ने इसे व्यावहारिक रूप देने के लिये क्रान्तिकारी पद्धति का विकास भी किया। इस हेतु उसने ऐसे तरीको का प्रतिपादन किया जिसका अनुसरण समाजवादी दल आज तक करते रहे। इसने अपनी योजना को सफल बनाने के लिये समानता चाहने वाले 'व्यक्तियों का षड़यंत्र' किया। अपने सिद्धान्तो के प्रचार के लिये सर्वप्रथम कम्युनिस्ट पत्र 'द ट्रिब्यून आफ द पीपुल' की स्थापना की। सेना एवं पुलिस मे अपने समर्थको के गुप्त गुटो का निर्माण किया तथा बलपूर्वक सत्ता हथियाने की योजना बनाई। वावेफ की मान्यता थी कि पूंजीपति वर्ग स्वेच्छा से अपनी सम्पत्ति नही छोड़ेगे इसे उनसे जबरदस्ती छीनना पड़ेगा। वह यह भी चाहता था कि एक बार विद्रोह हो जाने के उपरान्त जब तक कम्युनिस्ट लोकतंत्र की स्थापना न हो जाय, एक अधिनायक तंत्र की स्थापना करना आवश्यक है। किन्तु उसकी योजनाये सफल नही हो

सकी। सन् 1796 ई. मे उसे गिरफ्तार कर अगले वर्ष मौत की सजा दे दी गयी। किन्तु उसकी योजना और विचारो का भावी समाज पर गहरा प्रभाव पडा। नार्मन मैकेन्जी के शब्दो मे 'किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा उसने लेनिन का तथा सन् 1917 ई. की बोल्शेविक क्रान्ति का अधिक मात्रा मे पथ प्रदर्शन किया।'(6) वह पहला महत्वपूर्ण समाजवादी था जिसने यह घोषणा की थी कि 'बड़ी सावधानी पूर्वक तथा योजना के साथ की जाने वाली सैनिक कार्यवाही की भाति सम्पन्न होने वाली क्रान्ति द्वारा ही श्रमिक वर्ग राजनीतिक सत्ता हस्तगत कर सकता है।'(7)

सेण्ट साइमन - (1760-1825) -

काउण्ट हेनरी डी रुरॉय डी साइमन, जिसने की आधुनिक राजनीतिक विचार - समाजवाद के सम्बन्ध मे पूर्वाभास दिया था, का जन्म फ्रान्स के सर्वाधिक प्राचीन और सामन्त परिवार मे हुआ था। सेन्ट साइमन एवं राबर्ट ओवन दोनो समकालीन थे। दोनो विचारको पर औद्योगिक परिवर्तन के कारण समाज मे बढ़ती हुयी विषमता का गहरा प्रभाव पड़ा।(8) साइमन के समय समाज के ऊपर डार्विन के 'विकासवाद' का प्रभाव गहराता जा रहा था तथा समाज को विकास के दृष्टिकोण से मापने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी। उस समय के समाजवादी वैज्ञानिक प्रगति से काफी प्रभावित हुये। मध्ययुगीन आध्यात्मिक प्रवृत्ति की महत्ता वैज्ञानिक प्रगति के समक्ष मन्द पड़ने लगी थी।(9)

सेण्ट साइमन भी इस प्रभाव से विमुक्त नही था। उसे विश्वास था कि 18वी शताब्दी के उपरान्त, जो कि आलोचना और विनाश की शताब्दी थी, निश्चित रूप से समाज की पुर्नरचना होगी। सामन्तवादी युग गुजर चुका था, औद्योगिक युग आने वाला था। साइमन के समक्ष मुख्य प्रश्न यह था कि ऐसे नवीन पथ प्रदर्शक कहां और कैसे मिलेगे जो इस नवीन युग का पथ प्रदर्शन कर सके। वह एक ऐसी नवीन लौकिक एवं आध्यात्मिक शक्ति को खोजने के लिये उत्सुक था जो कि विकास की एक उच्चतर अवस्था के लिये मानव जाति का पथ-प्रदर्शन कर सके तथा एक नवीन एवं अधिक अच्छे समाज का निर्माण करने मे उसकी सहायता कर सके।

सेण्ट साइमन ने अपने विचार अपनी रचनाओं- औद्योगिक पद्धति (Industrial System), उद्योग विषयक प्रश्नोत्तरी (Catechism of Industry) तथा नवीन ईसाइयत (New Christianity) मे व्यक्त किये हैं। साइमन यह मानता था कि अतीत में समाज के ऊपर कुछ विशेषाधिकार प्राप्त वर्गो का ही प्रभुत्व था। इन वर्गो के आराम एवं विलासितापूर्ण जीवन के लिये अधिकांश व्यक्तियो को घोर परिश्रम करना पड़ता था इसके बावजूद उनके जीवन की न्यूनतम

आवश्यकताये पूर्ण नही होती थी। वह नवीन समाज का सगठन एक भिन्न सिद्धात पर करना चाहता था, जिसका उद्देश्य समाज के शोषित तथा दलित वर्गो का कल्याण था। उनका जीवन स्तर उठाने के लिये वह विज्ञान की सहायता आवश्यक समझता था तथा समाज का नेतृत्व औद्योगिक वर्ग तथा वैज्ञानिको के हाथ मे देना चाहता था। वह मानता था कि वैज्ञानिक आधारपर संगठित समाज की ओर कोई वास्तविक कदम तब तक नही उठाया जा सकता जब तक कि निजी सम्पत्ति की संस्था में आधारभूत परिवर्तन न किये जाये, किन्तु वह सम्पत्ति के सामाजीकरण का अनुमोदन नही करता था। साइमन का विश्वास था कि आधुनिक समाज के विकास के लिये यह आवश्यक है कि विज्ञान तथा उद्योग का एक दूसरे से सहयोग हो जाय अर्थात् वैज्ञानिक, विद्वान, उत्पादक, व्यापारी तथा बैकर्स सब एक साथ मिलकर सामाजिक सुख को अधिकतम बनाने का प्रयत्न करे। प्रत्येक को अपने श्रम का उचित मूल्य प्राप्त हो, न कम न अधिक, ताकि अधिक मूल्य पाकर शोषक और क्रम मूल्य पाने से शोषित वर्ग का जन्म न हो सके।

सेण्ट साइमन ने अपनी कल्पना के आधार पर समाज के संगठन की योजना प्रस्तुत की जिसमे प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुसार स्थान देने के साथ-साथ निम्न वर्ग को अपने विकास के समान अवसर प्रदान किये जायेंगे। उत्पादन के क्षेत्र का प्रबन्ध, समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप, सरकार द्वारा किया जायेगा। इस सरकार का संगठन ईसाई धर्म के सिद्धान्तो के अनुरूप होगा।[10] साइमन ने अपने समाजवादी विचारों को समाज के आर्थिक संगठन पर नही बल्कि समाज की सह्रदयता की नीव पर खड़ा किया। धार्मिक भावना के कारण फ्रान्स मे उसके विचारो का काफी प्रभाव रहा, परन्तु जब उसने धार्मिक विश्वासो को विकास के मार्ग मे अवरोध पैदा करने के कारण उनका विरोध किया तो समाज मे उसके विचारो की कटु आलोचना होने लगी।

सेण्ट साइमन के मूल्य सिद्धान्तो मे समाजवाद के तत्व बहुत कम थे। वह एक आध्यात्मिक शक्ति के निर्माण की बात सोचता था जो औद्योगिक युग का धर्म बन सके लेकिन इस नूतन समाज की विशेषताओ का वर्णन करते समय वह औद्योगिक वर्ग के गुण गान करता हुआ उद्योगपतियों का समर्थक बन जाता है। वह विशेषज्ञो एवं बुद्धिजीवियों के शासन की बात कहता है जो कि न तो व्यावहारिक है और न ही संभव। क्योकि ये दोनो समाज से तटस्थ हो जाते है और समाज से तटस्थ व्यक्ति जनतंत्रीय संस्थाओ मे कार्य नही कर सकते। उसने अपने समय मे कई समाजवादी केन्द्र स्थापित किये। उसके अनुसरण कर्ताओ

ने सघो के माध्यम से उसके विचारो को प्रसारित किया। ज़िसके कारण फ्रान्स मे वह प्रबल समाजवादी विचारक समझा जाने लगा। इस रूप मे परवर्ती विचारको पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा। मैक्सी ने लिखा है कि 'जर्मनी मे उसने विस्मार्क तथा कार्ल मार्क्स को प्रेरणा प्रदान की, फ्रान्स मे वह लुई ब्लांक का सैद्धान्तिक गुरू था, इग्लैण्ड मे राबर्ट ओवन तथा अन्य समाजवादी विचारको को प्रभावित किया। साइमन ने पहली बार विज्ञान का औद्योगिक उन्नति के साथ अर्न्तसबंध बताते हुये ऐतिहासिक विकास की उस पद्धति की ओर संकेत किया जिनके आधार पर विभिन्न समयो (कालो) के मनुष्य समाज की प्रगति की व्याख्या की जा सकती है। इस प्रकार इतिहास की आर्थिक व्याख्या मे वह कार्ल मार्क्स एव एंजिल्स का वह पूर्ववर्ती है।'[11]

चार्ल्स फूरियर (1772-1837) -

फ्रान्स मे समाजवादी विचारधारा को विकास की ओर अग्रसर करने मे चार्ल्स फूरियर का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वह सेण्ट साइमन एवं रावर्ट ओवन का समकालीन था। अन्य विचारको के समान ही चार्ल्स ने भी समाजवाद की विस्तृत योजना रखी। पूँजीवाद की कमियो ने असमानता तथा उत्पादन के दुरुपयोग ने उसे पूँजीवाद का विरोधी बना दिया।[12]

सेण्ट साइमन तथा फूरियर के समाजवाद मे दो भिन्नताएं है- प्रथम, सेण्ट साइमन समानता स्थापित करने के लिये समाज के अधिकार-सम्पन्न वर्ग की सहायता की अपेक्षा करता है लेकिन चार्ल्स फूरियर समाज को विकेन्द्रित करके, समाज में स्वतंत्रता तथा समानता स्थापित करना चाहता है। द्वितीय-सेण्ट साइमन सरकार की केन्द्रीकृत सत्ता का समर्थक था तथा उसका विचार था कि जब सरकार संगठित तथा शक्तिशाली होगी तब ही समाजवाद की स्थापना की जा सकती है। लेकिन फूरियर नवीन संगठनो (कम्यूनो) का समर्थक था। उसका विचार था कि समाज मे तब ही स्वतंत्रता तथा समानता स्थापित होगी जब सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो।[13] उसने औद्योगिक व्यवस्था के कुछ दोषो की खोज प्रारम्भ की। कुछ समय के बाद उसने इन दोषो तथा सामाजिक सम्बन्धो के परिष्कृत नियमो के आधार पर आदर्श समाज की योजना प्रस्तुत की।[14]

इस योजना मे चार्ल्स फूरियर ने मानव समाज को नवीन संगठन के छोटे-छोटे समुदायो में विभक्त करने का प्रयत्न किया। इन समुदायों को उसने फैलेक्स (Phalex) का नाम दिया। यह आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी समाज होगा। इस समाज के लिये उसने निश्चित भूमि (500 एकड़)

तथा निश्चित जनसख्या (1600-2000) की व्यवस्था की। इस समाज मे सब सदस्य अपनी प्रवृत्ति तथा शक्ति के अनुसार कार्य करेगे, प्रत्येक सदस्य की अपने श्रम, पूँजी तथा ज्ञान के अनुसार वेतन और लाभ प्राप्त होगा। इस समुदाय की आय का मुख्य आधार कृषि रहेगा, कुछ उद्योग भी स्थापित किये जायेगे तथा लाभ एव वेतन की भी आदर्श योजना प्रस्तुत की गयी है। इस समुदाय मे पूंजी, श्रम तथा बुद्धिजीवी वर्ग का ऐसा सम्मिलन और सगठन होगा कि समाज मे असमानता तथा सघर्ष की भावना का अन्त हो जायेगा। शनै· शनै: सहयोग की भावना का विकास तथा पूजीपति वर्ग की समाप्ति हो जायेगी। इससे फैलाग के अधिकारी वर्ग का चुनाव किया जायेगा तथा समुदायो मे स्थानीयकरण की प्रवृत्ति को महत्व दिया जायेगा।

सन् 1840 ई. के बाद उसके सिद्धांतो का अमेरिका मे व्यापक प्रभाव पड़ा। उसके आदर्शो के आधार पर बस्ती बनाने का प्रयास किया गया परन्तु सफलता नही मिली।[15] फिर भी उसके विचारो का काफी महत्व है। चार्ल्स फूरियर पहला व्यक्ति है जिसने यह घोषणा की कि किसी भी समाज की प्रगति उस मापदण्ड से मानी जानी चाहिये कि उसमे स्त्रियो को कितनी स्वतंत्रता है। उसने तत्कालीन आर्थिक पद्धति की बुराइयो तथा मजदूरो के साथ होने वाले अत्याचारो तथा समाज मे परिवर्तन को आवश्यक बतलाया। औद्योगिक नियमो तथा सुधारो पर उसकी रचनाओं का काफी प्रभाव पड़ा।

फ्रान्स के समाजवादी इतिहास मे सन् 1830 ई. अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सेण्ट साइमन की विचारधारा अवनति की तरफ थी और फूरियर के सिद्धान्त वास्तविकता से काफी दूर थे। सन् 1830 ई. मे समाजवाद के कुछ क्रान्तिकारी तत्व उभर कर सामने आये।[16] समाजवाद को राज्य की स्थापना से क्रियात्मक रूप देने वाला वह प्रथम व्यक्ति था। फूरियर अपनी योजना को क्रियात्मक रूप देने के लिये पूँजीवादी वर्ग से सहायता लेने पर विश्वास करता था, किन्तु लुई ब्लांक ने अपनी समाजवादी योजना को क्रियात्मक रूप देन के लिये सर्वहारा वर्ग के सहयोग की सम्भावना प्रकट की। लुई ब्लांक के विचारो में आधुनिक समाजवाद के बहुत से तत्व मिलते है, जिन्हे मार्क्स ने ग्रहण किया।[17]

लूई ब्लांक (1813-1882) -

लूई ब्लांक पहला विचारक था जिसने समाजवादी विचारको की सहायता से क्रियात्मक रूप देने का विचार रखा था। लूई ब्लांक की पुस्तक 'परिश्रम का संगठन' (Organisation the Trakial) सन् 1849 ई. मे प्रकाशित हुई। इसने फ्रान्स के सर्वहारा वर्ग मे चेतना का संचार

किया। वह पहला विचारक था, जिसने मजदूर किसानो को अपने कल्याण के लिये राजनीतिक सत्ता हाथ मे लेने का सुझाव रखा। उसका प्रथम सिद्धान्त था कि हमारे सामाजिक प्रयत्नो का उद्देश्य मानव समाज की प्रगति तथा उसका विकास होना चाहिये। विकास का अभिप्राय यह है कि मानव के पास अपनी उच्चतम मानसिक, नैतिक और शारीरिक प्रगति करने के लिये तथा उत्तम व्यक्तित्व का निर्माण करने के लिये उपयुक्त साधन होने चाहिये। लूई ब्लाक के विचारो का आदर्श एक औद्योगिक सरकार थी, जो कि राष्ट्र के औद्योगिक क्षेत्र का प्रबन्ध करे। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सामाजिक कारखानो (Social Workshop) का विचार रखा। आदर्श समाज बनाने के लिये प्रत्येक सदस्य को कार्य देना आवश्यक है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये राज्य को सामाजिक उद्योगो का निर्माण करना चाहिये। प्रारम्भिक अवस्था मे यह व्यक्तिगत अधिकार मे होगे तथा शनै शनै· समाज के अधिकार मे आ जायेगे। राज्य को इसका संचालन सार्वजनिक तथा सामान्य हित की दृष्टि से करना होगा। इस प्रयत्न से धीरे-धीरे समाजवादी समाज की स्थापना की ओर समाज अग्रसर होगा। इन सभी कार्यो को प्रजातत्र के आधार पर करना होगा। समाजवादी समाज मे इन उद्योगो मे प्रबंध और परिश्रम करने वाले व्यक्तियो को यह अधिकार होना चाहिये कि अपने-अपने व्यवसाय के प्रबंधक का चुनाव कर सके। तथा अपने व्यवसाय मे होने वाले लाभ को परस्पर सहयोग के आधार पर विभाजित करे एवं उद्योगों के विकास का प्रयत्न करे।

लूई ब्लांक उत्पादन पर व्यक्तिगत अधिकार को समाज के लिये हितकर नही समझता था। सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण तथा सामाजिक अधिकार मे लाने का सर्वप्रथम विचार ब्लांक ने रखा था। सरकार को उद्योगों का स्थापन स्वयं ही करना चाहिये, जिससे व्यक्तिगत उद्योग स्वत: ही समाप्त हो जायेगे।

ब्लांक ने एक अन्य सिद्धांत समाज के समक्ष रखा। प्रत्येक को अपनी शक्ति और योग्यता के अनुसार समाज की सेवा करनी चाहिये तथा उसे अपनी आवश्यकताओ के अनुसार समाज से प्रतिफल मिलना चाहिये। शक्ति और ज्ञान का मानव हित की दृष्टि से पूर्ण सदुपयोग किया जाना आवश्यक है। ब्लांक से पूर्ववर्ती विचारक व्यक्ति से उसकी योग्यतानुसार कार्य लेने में एक मत थे किन्तु पारिश्रमिक देने मे भिन्न मत रखते थे। सेण्ट साइमन के अनुयायी यह मानते थे कि व्यक्ति का वेतन काम के अनुसार होना चाहिये। फूरियर ने इसके 12 हिस्से करके उन्हें पूंजीपति, मजदूर और कुशल श्रमिको मे विभिन्न अनुपात मे बांटा था। ब्लांक ने इन दोनो मतो को न मानते हुये इस मत को प्रतिपादित किया कि प्रत्येक व्यक्ति को वेतन उसकी

आवश्यकतानुसार दिया जाना चहिये ताकि वह अपनी शक्ति और गुणो का विकास कर सके। ब्लाक ने ही समाजवाद के प्रसिद्ध सिद्धांत को जन्म दिया कि 'प्रत्येक व्यक्ति से उसकी योग्यता के अनुसार काम लिया जाना चाहिये और उसकी आवश्यकता के अनुसार वेतन दिया जाना चाहिये।' (From each accordıng to hıs abılıty to each accordıng to hıs needs)

फ्रान्स की क्रान्ति (सन् 1789 ई.) से सत्ता साधारण जनता के हाथ मे नही आयी। राजसत्ता सामन्तशाही के हाथो से निकलकर उच्च मध्यम वर्ग के हाथो मे चली गयी। इसके बाद भी फ्रान्स मे क्रान्ति के अनेको प्रयास हुये। इन क्रान्तियो ने प्रजातत्र और समाजवाद के क्षेत्र मे विशेष योगदान दिया। ब्लाक के प्रभाव के कारण उसकी समकालीन सरकार ने, जिसका वह भी एक सदस्य था, सम्पत्ति के समाजीकरण के अनेक प्रयास किये, जो पूर्णतया सफल नही हो पाये।

पी. प्रूधों (1809-1865) -

यह फ्रान्स के सभी समाजवादियो मे सबसे उग्र विचारक था। इसने अब तक के सभी विचारको की अपेक्षा अधिक उग्रता तथा प्रबलता के साथ निजी सम्पत्ति का विरोध किया। आर्थिक विपन्नता ने प्रूधो को पूजीवादी समाज का उग्र विरोधी बना दिया।

सन् 1840 ई. मे उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सम्पत्ति क्या है?' (Questice que la Preprietıc) प्रकाशित की। इसमे निजी सम्पत्ति की व्यवस्था का उग्रतम खण्डन है। छह वर्ष बाद प्रूधों ने निर्धनता की विवेचना करने वाला एक ग्रन्थ 'दरिद्रता का दर्शन' (Phılasophy de La Miscre) प्रकाशित किया, इसमे समाजवादी और साम्यवादी सिद्धान्तो की कड़ी आलोचना की और अपनी योजना को विस्तार पूर्वक प्रचारित करने के लिये उसने 'न्याय और धर्म की भावना', प्रकाशित की। चर्च तथा प्राचीन आदर्शो की उसने कड़ी आलोचना की, इसी वजह से उसे कड़ा दण्ड दिया गया।'[18]

प्रूधो का प्रथम और सबसे प्रमुख सिद्धान्त निजी सम्पत्ति का विरोध है। उसके आदर्श समाज में सम्पत्ति की कोई व्यवस्था नही थी। वह सम्पत्ति को चोरी समझता था। उसका विचार था कि श्रम ही सम्पत्ति को पैदा करने का प्रधान साधन है। यदि श्रम न किया जाय तो भूमि और पूँजी से कोई वस्तु उत्पन्न नही की जा सकती। मनुष्य जब स्वयं कोई श्रम किये बिना अपनी भूमि तथा पूँजी पर दूसरे व्यक्तियों का श्रम लगाकर इसका लगान अथवा लाभ प्राप्त करता है तो वह चोरी होती है, क्योकि इस श्रम पर मजदूरो का अधिकार होना चाहिये।'[19]

यद्यपि प्रूधो समाजवादी होने की अपेक्षा शासनहीन व्यवस्था (अराजकतावाद) का अधिक समर्थक था, परन्तु फिर भी उसने ऐसे विचारो को प्रतिपादित किया जिन्हे मार्क्स ने अपने सिद्धान्तो मे सम्मिलित किया, तथा जिसने एक ठोस नीव तैयार करने मे सहायक तत्व का कार्य किया।[20] प्रूधों पहला विचारक था जिसने इस ओर संकेत किया कि श्रमिक वर्ग के साधनहीन होने के कारण उन्हे अपने श्रम का पूर्ण मूल्य नही मिलता तथा साधनो का स्वामी परिश्रम के बिना ही श्रम के फल पर अपना आधिपत्य जमा लेता है। मार्क्स ने 'अतिरिक्त मूल्य' के जिस सिद्धान्त की स्थापना की उसकी ओर पहला अविकसित सकेत हम यही पाते है।

प्रूधो के विचारो मे जिस आर्थिक विचारधारा का वर्णन है वह प्रजातत्र के आधार पर ही सफल हो सकती है। उसके विचारो मे न्याय, स्वतत्रता एवं समानता के तत्वो का सम्मिश्रण है। उसने जिस समाज की कल्पना की है उसके आधार मे भी स्वतंत्रता समानता तथा न्याय ही मौजूद है।[21]

सरकार के संगठन के सम्बन्ध मे, वह किसी भी प्रकार के शासन का विरोधी था, क्योकि शासन मे व्यक्ति को अपने विकास के लिये पूर्ण अवसर नही प्राप्त होते। प्रूधो के समय मे, समाज की व्यवस्था के साथ, धर्म विश्वास का गहरा सम्बन्ध माना जाता था। समाज-व्यवस्था मे परिवर्तन लाने के लिये परम्परागत सामाजिक नियमो तथा धर्म विश्वासो को अमान्य किये बिना संभव नही था। प्रूधो ने इस कार्य मे पहल की तथा परम्परागत सामाजिक नियमो की कटु आलोचना की।

यद्यपि फ्रान्स के प्रारम्भिक समाजवादी विचारक सेन्ट साइमन, नोवेल वावेफ, चार्ल्स फूरियर इत्यादि आध्यात्मिक प्रभाव से मुक्त नही थे। उन्होंने धार्मिक विश्वासों और सामाजिक समस्याओ की ओर ध्यान नहीं दिया था। प्रूधो के विचारो ने समाज मे एक नई चेतना पैदा की। सर्वसाधारण को उसके विचारो मे आधारहीनता की प्रवृत्ति दिंखाई देने लगी। उसका विचार था कि स्त्री-पुरुष के आचार सम्बन्धी नियमों को केवल धार्मिक भय से न मानकर वैयक्तिक विकास का साधन और व्यवस्था के लिये आवश्यक समझना चाहिये। उसके इन विचारो को क्रियात्मक रूप रूस के समाज मे प्रदान किया गया।

फ्रान्स विश्व मे पहला देश था जिसमे सर्वप्रथम समाजवादी विचारों का उदय हुआ तथा जिसने समाजवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

ब्रिटेन के समाजवादी विचारक -

समाजवादी विचारधारा का विकास फ्रान्स के समानान्तर, इग्लैण्ड मे भी हुआ। औद्योगिक क्रान्ति सर्वप्रथम ब्रिटेन मे सम्पन्न हुयी थी अत यहा समाजवादी विचारधारा का अभ्युदय एव विकास सर्वथा स्वाभाविक था। इग्लैण्ड के समाजवादी विचारको मे दो समान विचारधाराओ का विकास हुआ, एक शाखा गाडविन के अराजकतावादी विचारो की थी तथा दूसरी विचारधारा रिकार्डो के इस सिद्धान्त पर आधारित थी कि किसी वस्तु के मूल्य का निर्धारण उस पर लगाये गये श्रम के आधार पर किया जाता है। ब्रिटेन की समाजवादी विचारधारा ने आधुनिक समाजवाद के प्रवर्तक मार्क्स को भी प्रभावित किया।

यद्यपि फ्रान्स और इग्लैण्ड मे एक समान ही सामाजिक तथा आर्थिक विषमताए मौजूद थी। परन्तु फ्रान्स की अपेक्षा इंग्लैण्ड की समाजवादी विचारधारा मे नैतिकता का मिश्रण अधिक था। यद्यपि यहां फ्रान्स की अपेक्षा पूजीवाद अधिक विकसित तथा समर्थ था। इंग्लैण्ड मे कुलीनतत्र फ्रान्स की अपेक्षा कम पनप रहा था। यद्यपि लॉक तथा एडम स्मिथ के उदारवादी विचारो ने समाजवाद की नींव तैयार कर दी थी। दोनो ही विचारको ने मजदूरी और मूल्य के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। सर्वप्रथम इंग्लैण्ड मे स्मिथ ने यह विचार रखा था कि राज्य को, वस्तुओं का उत्पादन, भूमि सम्बन्धी नियम तथा उत्पादन का सग्रह, जो मजदूरो द्वारा उत्पादित किया जाता है, नियंत्रण तथा नियमन करना चाहिये।[22]

समाजवादी विचारधारा के अभ्युदय का कारण सामाजिक एवं आर्थिक विषमताएं होती है। यह विचार सर्वमान्य विचार है इस विषमता का सबसे अधिक प्रभाव समाज के सबसे निम्न वर्ग (श्रमिक वर्ग) पर पड़ता है। एक विचारक ने इंग्लैण्ड के श्रमिको की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध मे लिखा है कि...

(1) किसानो और मजदूरो का निर्वाह उन्हे मिलने वाली मजदूरी से असम्भव है।

(2) उनके निवास स्थानो की दशा अत्यन्त सोचनीय है ।

(3) पूँजीपति एवं जमींदार वर्ग लगातार मजदूरी घटाने का प्रयत्न करते रहते हैं। इसीलिए पुरुषों के स्थान पर स्त्रियां तथा बच्चो को कार्य पर लगाया जाता है, जिनसे कार्य उनकी क्षमता भर लिया जाता है तथा मजदूरी आधी या उससे भी कम दी जाती है। इस कारण से मजदूरो में बेरोजगारी बढ़ गयी है।

(4) शिक्षा प्राप्त करने का उन्हे अवसर नहीं है।

ब्रिटेन की समाजवादी विचारधारा अपने सही रूप मे रावर्ट ओवन से प्रारभ होती है। परन्तु उससे पूर्व भी कुछ विचारकों का प्रादुर्भव हो चुका था। जैसे गाडविन, रिकार्डो इत्यादि।

विलियम गाडविन (1756-1836) -

विलियम गाडविन ब्रिटेन मे आरजकतावाद का प्रबल समर्थक और वैयक्तिक सम्पत्ति का उग्र विरोध करने वाला प्रथम महत्वपूर्ण विचारक था। फ्रेन्च क्रान्ति के समय सन् 1793 ई. मे इसकी 'राजनीतिक न्याय के विषय में अन्वेषण' (Inquiry Concering Political Justice) ने इसे कीर्ति के चरम शिखर पर पहुँचा दिया। इसके विचार इतने क्रान्तिकारी थे कि इंग्लैण्ड की सरकार को उसकी पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ा।

उसका प्रथम मौलिक सिद्धान्त है कि 'शासन अथवा राज्य एक आवश्यक बुराई है उसका उन्मूलन होना चाहिये। उसके विचारानुसार मानव के मन मे कोई नैसर्गिक धारणाएं अथवा विचार नही है। वह केवल इन्द्रियो से प्राप्त होने वाले अनुभवो को ग्रहण करता है और उसमे तर्क करने की शक्ति है, इससे वह अपने अनुभवो को विचारो मे बदल लेता है। किसी वस्तु का नैतिक अथवा अनैतिक होना हमारे विचार पर निर्भर है। विचार परिस्थितियो पर निर्भर है। यदि सामाजिक संस्थाए् और परिस्थितियॉ न्याय पर आधारित हों तो मनुष्य के विचार अच्छे होगे तथा विकास भी समुचित तरीके से होगा। किन्तु सरकार शक्ति तथा हिंसा का माध्यम है, वह समाज में आर्थिक विषमताओ को स्थायी बनाती है। सामाजिक कल्याण की दृष्टि से इसका उन्मूलन होना चाहिए। गाडविन निजी सम्पत्ति के उन्मूलन का उग्र समर्थक था। सामाजिक असमानता का मुख्य आधार वैयक्तिक सम्पत्ति ही है। समाज में वस्तुओ का उत्पादन तथा वितरण समानता के आधार पर होना चाहिए। गाडविन ने ब्लांक द्वारा प्रतिपादित सिंद्धात की नीव इंग्लैण्ड में रखी कि 'प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार दिया जाना चाहिए।' वह सिद्धांत नई व्यवस्था को लाने मे शक्ति के स्थान पर बुद्धि के साधन पर बल देता था। फ्रेन्च क्रांन्ति ने यह स्पष्ट कर दिया था कि हिसा के माध्यम से व्यक्ति को नही बदला जा सकता।

चार्ल्स हाल -

19 वी शताब्दी के प्रारंभ होने तक औद्योगिक क्रान्ति के दुष्परिणाम विचारशील व्यक्तियो को स्पष्ट होने लगे थे। 1805 मे चार्ल्स ने अपनी पुस्तक 'सभ्यता के प्रभाव' (Effect of Civilization) मे अपने विचारो का प्रतिपादन किया। वह वर्ग- संघर्ष का लाभ- पद्धति के दोषो और अन्यायो

का तथा श्रमिको के उग्र असन्तोष का विवेचन करने वाला पहला ब्रिटिश विचारक था। उसने समाज को धनी- निर्धन वर्गो मे विभाजित हो जाने की उग्र आलोचना करते हुए गरीब लोगो की दशा का वर्णन करते हुए यह मानता था कि धनी श्रमिक और निर्धन लोगो की स्थिति बीजगणित के धन एवं ऋण की भांति एक दूसरे की विरोधी तथा नाशक है।

हाल का मत था की पूंजीपति अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये ही लड़ाइयां करवाते है। वर्तमान विषमता को दूर करने के लिये यह आवश्यक है कि बड़ी जमीदारियो को समाप्त कर दिया जाय व भूमि राष्ट्र की सम्पत्ति मानी जाय। इसे खेती के लिये छोटे- छोटे किसानो मे बाट दिया जाय।

रिकार्डो -

यद्यपि यह पूँजीवाद का प्रबल समर्थक था , परन्तु इसके दो सिद्धान्तो ने समाजवाद के विकास पर गहरा प्रभाव डाला। रिकार्डो का पहला मत था कि एक वस्तु का विनिमय मूल्य (Exchang Value) इस पर लगाये गये श्रम पर आधारित है। किसी वस्तु को उत्पन्न करने मे जितना समय लगता है, उसी से उस वस्तु का मूल्य निश्चित होता है। मार्क्स ने इस सिद्धान्त को पूंजीवादी व्यवस्था के लिये प्रयुक्त किया। दूसरा है- मजदूरी का सिद्धान्त (Theory of Wages), इसके अनुसार मजदूरी मजदूर द्वारा पैदा की हुई वस्तु से निश्चित नही होती वरन् उसकी स्थिति के तत्वो के अनुसार निश्चित होनी चाहिये।

थामस हाजस्किन (1787-1869 ई.) -

सन् 1825 में थामस हाजास्किन ने रिकार्डो की आलोचना करते हुये अपनी पुस्तक 'लेबर डेफेन्डेड अगेन्स्ट द क्लेम्स आफ कैपिटल' मे यह युक्ति दी कि यदि रिकार्डो के सिद्धान्त के अनुसार वस्तु का मूल्य श्रम से निश्चित होता है तो यह पूर्ण रूप से श्रमिक को ही मिलना चाहिये। इस समय मे जो हिस्सा जमीदार और पूंजीपति ले रहे है, वह श्रमिक के हिस्से को बलपूर्वक छीनना ही है। इन्ही विचारों को राबर्ट ओवन ने विकसित किया जिन्हे बाद मे समाजवाद का नाम दिया गया।

राबर्ट ओवन (1771-1858) -

'समाजवाद' शब्द का प्रथम बार प्रयोग 1807 मे राबर्ट ओवन ने ही किया था। ओवन समाज की इस अवस्था के अन्तर्विरोध से परेशान था कि समाज मे उत्पादन के साधन उन्नति कर रहे है एवं पूंजी मे वृद्धि हो रही है, परन्तु समाज मे मजदूरो की दशा अवनति की ओर है। ब्रिटेन मे समाजवादी विचारधारा को क्रियात्मक रूप देने वाला वह प्रथम विचारक था।[24] राबर्ट ओवन एक राजनीतिक विचारक की अपेक्षा सुधारवादी अधिक था। इग्लैण्ड के औद्योगिक संस्थानो मे सुधार की योजनाये राबर्ट ओवन ने ही प्रस्तुत की थी। वह अपना उद्देश्य सामाजिक अवस्था मे परिवर्तन समझता था। उस समय इग्लैण्ड के औद्योगिक मजदूर वर्ग की दशा काफी सोचनीय थी तथा उसने श्रमिको की स्थिति सुधारने के लिये सरकार द्वारा बनाने वाले कानूनो मे विशेष सहयोग दिया। सन् 1813 तक राबर्ट एक सुधारक के रूप तक ही सीमित रहा, तथा उसी समय उसने 'समाज का नया दृष्टिकोण' (A New View of Society 1813)', नामक पुस्तक का सम्पादन किया। परन्तु सन् 1817 ई. से उसके विचारों मे खुद उग्रता आने लगी। सबसे पहले ससद मे पेश 'गरीब सहायक कानून (Poor Low) पर उसने लिखा कि 'मजदूरो की निम्न अवस्था का कारण, मशीनो द्वारा उनके परिश्रमो का मूल्य घटा देना है।'[25]

सन् 1817 ई. में ओवन ने तत्कालीन स्थिति का पूर्ण विश्लेषण करते हुये अपनी साम्यवादी योजना प्रस्तुत की। इसके सम्ब्रन्ध में उसने कहा कि वर्तमान परिस्थितियो का सामना करने का एकमात्र उपाय साम्यवाद की स्थापना है। इस योजना के प्रारूप का वर्णन करते हुये, ओवन ने यह विचार रखा कि इस योजना को पहले छोटे-छोटे समुदायों मे विभक्त करके सफल बनाया जायेगा। इसके पास 1000 से 1500 एकड़ तक की भूमि हो तथा जनसख्या 500 से 2000 तक की होनी चाहिये। ''यह समुदाय सभी साधनो से परिपूर्ण होगा। यहा कृषि तथा उद्योग से होने वाली आय का संयुक्त रूप से उपयोग करेंगे तथा कोई भी व्यक्ति बेकार नही रहेगा। एक समुदाय का भूमि तथा उद्योगो पर एवं उत्पादन पर संयुक्त रूप से अधिकार होगा।''[26] यह योजना 'न्यू लैनार्क' की योजना के नाम से प्रसिद्ध हुई। फ्रान्स के समाजवादी फूरियर ने सम्भवत: इसी के आधार पर अपनी 'फैलांग' क़ी योजना बनायी थी। परन्तु संसद ने ओवन की योजना को स्वीकार नहीं किया तथा 1817 में श्रमिको ने इसका विरोध किया। इसका मुख्य कारण व्यक्तिगत स्वतंत्रता के ऊपर उसके द्वारा कुछ प्रतिबंधो का संकेत किया जाना था। श्रमिक वर्ग स्वतंत्रता के ऊपर प्रतिबन्ध के घोर विरोधी थे। दूसरा कारण-धर्म को भी

ओवन ने प्रगति के मार्ग मे अवरोधक बताया था। इससे धार्मिक व्यक्ति भी ओवन की योजना का विरोध करने लगे। सन् 1819 ई. मे उसने मजदूरो के संम्मुख भाषण (An Address to the Working Class) मे इस बात पर बल दिया कि श्रमिक वर्ग शासन के प्रति हिसा की भावना का त्याग करे तथा सहयोग का रास्ता अपनाये। सन् 1829 ई. मे उसने 'सामाजिक पद्धति' (Social System) नामक पुस्तक लिखी। इसमे उसने पूर्ण साम्यवादी स्थिति स्वीकार करते हुये व्यक्तिगत सम्पत्ति का उग्र विरोध किया। ओवन ने पूजीवाद की सबसे बड़ी बुराई', वितरण मे असमानता की ओर सकेत किया। ओवन की योजना को, ओवन के निर्देशन मे ही सर्व प्रथम अमेरिका मे क्रियात्मक रूप देने का प्रयास किया गया। परन्तु सन् 1827 ई. मे उसकी यह योजना असफल सिद्ध हुई।

राबर्ट ओवन के विचारो से हम विकास का स्पष्ट क्रम देख सकते हैं। उसकी पुस्तक 'गरीबो का संरक्षक (Poorman's Guardian, 1832) मे उन विचारो का स्पष्ट उल्लेख करती है जिन्हे अतिरिक्त मूल्य (Surplus Value) के वैज्ञानिक सिद्धांन्तो की अस्पष्ट भूमिका कहा जा सकता है। राबर्ट के अनुसार सम्पूर्ण पैदावार मजदूर एवं किसानो के श्रम से ही होती है। सहयोग द्वारा उत्पादन की पद्धति के प्रारम्भिक विचारो का श्रेय भी राबर्ट को ही है जिसका आज विश्व के सभी देशो मे सर्वमान्य प्रचार है। 'सोशलिज्म' शब्द का भी सर्वप्रथम प्रयोग राबर्ट द्वारा स्थापित सम्पूर्ण समाजवादी राष्ट्रो की सम्पूर्ण श्रेणियो के सहयोग की संस्था (Association of all classes of All Nations) के वाद-विवादो मे भी हुआ था।[27]

राबर्ट की आरम्भिक सफलता का कारण उसके द्वारा चलाये गये मजदूर सहायक आन्दोलन में धार्मिकता तथा मनुष्यता की भावना के प्रधान स्थान दिया जाना था। इस आन्दोलन मे धनिक वर्ग एवं सम्पन्न श्रेणियो के आत्माभिमान की भावना के पूर्ण होने की काफी सभावनाएं थी। इसलिये राबर्ट को इन वर्गो का काफी समर्थन मिला। परन्तु जैसे ही उसने पूंजीवादी व्यवस्था को सुरक्षित रखने वाले कारणों पर कठोर प्रहार किंया, उसके विचारो का समाज मे विरोध होने लगा एवं उसके संगठन के तत्व बिखरने लगे तथा उसका साम्यवादी आन्दोलन स्वयं ही बिखर गया। राबर्ट का आन्दोलन समाप्त हो जाने पर भी श्रमिक वर्ग के अन्दर अपने अधिकारो के प्रति चेतना बढ़ती ही गयी तथा क्रिश्चियन सोशलिस्ट मूवमेट के रूप मे सन् 1848-52 ई. मे एक सुधारवादी आन्दोलन हुआ। इस आन्दलोन का आधार तथा उद्देश्य समाज मे नैतिकता तथा आध्यात्मिकता के क्षेत्र में समानता स्थापित करना था। इस आन्दोलन ने मजदूरो मे 'सहयोग के सिद्धान्त' का समर्थन किया। इस आन्दोलन की नीव मे भी राबर्ट के सहयोग सिद्धान्त के विचार निहित थे।

यद्यपि राबर्ट ओवन को, अपने विचारो को क्रियात्मक रूप प्रदान करने मे सफलता नही मिली, लेकिन इसके विचारो का समाजवाद के इतिहास मे महत्वपूर्ण स्थान है। राबर्ट के साथ ही आधुनिक समाजवाद की विचारधारा का इग्लैण्ड मे उदय हुआ एव उसने प्रथम बार क्रियात्मक रूप देन का प्रयास किया परन्तु असफल रहा। लेकिन भविष्य मे समाजवादी विचारको के लिये उसने एक निदेशक तत्वो की श्रृंखला जोड़ दी कि इन विचारो को भी क्रियात्मक रूप प्रदान किया जा सकता है।

जान ग्रे, जो एक समाज सुधारक थे, उन्होने उत्पादन को मजदूरी के सिद्धान्त के आधार पर विश्लेषित किया। ज़ान फ्रांसिस ने, जो कि ओवन की शिक्षा का समर्थक था, उसने पूजीवाद की आलोचना की तथा सवाद (Antithesis) के कारणो की व्याख्या एव समाजवाद के विकास की श्रृंखला मे सहयोग प्रदान किया।[28]

काल्पनिक समाजवादियो के विचारो के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मार्क्स के पूर्ववर्ती समाजवादी समस्त समाज के कल्याण मे विश्वास रखते थे न कि किसी विशेष व्यक्ति, व्यक्ति समूह अथवा वर्ग-विशेष के कल्याण मे। काल्पनिक समाजवादियो ने पूजीवाद अथवा सम्पत्ति के उन्मूलन की बात नही की। वे कृत्यहीन सम्पत्ति (Un earned property) के विरुद्ध थे।

यद्यपि काल्पनिक समाजवादियो के दर्शन मे कोई त्रुटि नही थी लेकिन फिर भी वे अपने लक्ष्यो को व्यावहारिक रूप देने मे असमर्थ रहे। इनके आदर्श समाज के स्वप्न को भी साकार नही किया जा सकता। इसमे दोष 'अच्छे स्वप्न' का नही है, अपितु दोष है मनुष्य की कमजोरियों का। समाजवादी समाज तभी स्थापित हो सकता है जब लोगो मे परस्पर सहयोग की भावना हो। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने हितो की पूर्ति मे सलंग्न रहेगा, प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक प्राप्त करने की लालसा करेगा और अपने सुखो मे दूसरो को भागी बनाने से कतरायेगा तो 'समाजवाद' की स्थापना कदापि नही की जा सकती।

काल्पनिक समाजवादियों की सबसे बड़ी कमजोरी यही रही कि उन्होने मानव-स्वभाव को पूरी तरह नहीं समझा तथा उसके आदर्शवादी स्वरूप को जरूरत से अधिक बल दिया। इनका अन्य दोष 'काल्पनिक' होना है। मार्क्स ने इसे 'काल्पनिक' बताया तथा क्रान्तिकारी-समाजवाद

को उचित ठहराया। मार्क्स पूजीपतियो से अनुनय विनय के पक्ष मे नही था। उसने मानवता के आधार पर क्रान्ति को उचित ठहराया। उसका यह दृढ़ विश्वास था कि न्याय और नैतिकता की भावना के आधार पर पूंजीपतियो का ह्रदय परिवर्तन सभव नही है और न ही केवल अच्छे विचारो व सुखद कल्पनाओ के आधार पर एक नए समाज की नीव डाली जा सकती है।

काल्पनिक समाजवादी 'दार्शनिक' अधिक थे व 'समाज सुधारक' कम। उन्होने इस बात को नही समझा कि समाज में मौलिक परिवर्तन लाने के लिये मनुष्य के दिलो को जीतना होगा, दिमाग को नही। केवल विवेक के आधार पर समाज मे बदलाव सभव नही।

जर्मनी के समाजवादी विचारक -

19 वी शताब्दी के आरम्भ मे समाजवादी विचारो का जो विकास इंग्लैण्ड और फ्रॉन्स मे तीव्र गति से हुआ वह कोई स्थायी परिणाम के बिना ही 19वी शताब्दी के मध्य मे कुछ समय के लिये दब सा गया। इसके बाद इस विचारधारा का विकास जर्मनी मे बहुत तीव्र गति से हुआ। क्योकि वहां के सामाजिक सगठन का ढांचा परम्परावादी, सामन्तवादी व कुलीनतंत्री आधार पर संगठित था। इस विचारधारा के विकास मे पूर्व के विचारको ने काफी सहयोग किया।

(1) जर्मनी के आदर्शवादी दर्शन मे, जिसके प्रवर्तक कान्ट तथा फिक्टे थे तथा हीगेल जो उस समय के सबसे बड़े आदर्शवादी समझे जा सकते थे, उन्होने राष्ट्रीय समाजवाद के तत्वो को जन्म दिया। इनके विचारों मे गिल्ड समाजवाद के तत्व भी मौजूद थे। फिक्टे ने एक नवीन आर्थिक योजना प्रस्तुत की कि राज्य को विदेशी व्यापार करना चाहिये तथा समाज सगठन व्यवसाय के आधार पर होना चाहिये।

(2) दूसरा कारण, मार्क्स का उद्भव, जो कि वास्तव मे आधुनिक समाजवाद के जनक समझे जाते है, मार्क्स की विचारधारा को सबसे अधिक फ्यूरबॉख ने प्रभावित किया।

(3) आदर्शवादी विचारधारा, उस समय की व्यवस्था की प्रतिक्रिया मात्र थी। यह विचारधारा पूंजीवादी विचारधारा के विरुद्ध थी। उसने भी जर्मन समाजवाद के विकास मे सहयोग प्रदान किया। मुख्य रूप से फ्रेजवान वोडर तथा एडम मूलर ने पूंजीवादी व्यवस्था के दुष्परिणामो के कारणो की ओर संकेत किया।

(4) उस समय के आर्थिक अनुसधानो ने भी समाजवाद की विचारधारा मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। आर्थिक नैतिक तथा मनोवैज्ञानिक कारणो का भी समाजवाद के विकास मे काफी योगदान रहा।[29]

जर्मनी के समाजवादी इतिहास मे, कार्ल मार्क्स फर्डीनेड लासाल एव राडबर्ट्स के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है .-

फर्डीनेंड लासाल (1825-64) -

लासाल एक धनिक वर्ग से सम्बन्धित था लेकिन उसके विचार सन् 1860 के बाद जनता के समक्ष स्पष्ट रूप से आये, जब प्रशिया प्रान्त के नेतृत्व मे जर्मनी का निर्माण हो रहा था। जर्मनी मे उस समय दो विचारधारा प्रबल हो रही थी - एक का नेतृत्व बिस्मार्क करता था जो निरकुशता की समर्थक थी तथा दूसरी, प्रजातत्र की समर्थक थी।[30] लासाल इन दोनो ही विचारधाराओ मे से किसी का समर्थक नही था। जर्मनी के सभी समाजवादी विचारक प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हीगेल की विचारधारा के अनुयायी थे।[31]

लासाल, कार्ल मार्क्स तथा राडबर्ट्स के विचारो मे बहुत कुछ साम्यता है। लासाल बहुत सी बातो मे अपने को मार्क्स का पूर्वगामी समझता था। परन्तु फिर भी लासाल का अपना एक स्थान है। सन् 1863 ई. मे उसने पहली बार स्वतंत्र रूप से मजदूर दल का संगठन किया। लासाल के दृष्टिकोण में भावुकता की अपेक्षा वास्तविकता अधिक थी। यह विचारधारा ही मार्क्स तक पहुंच कर वैज्ञानिक हो जाती है।

लासाल ने, पूंजीवाद के अन्तर्गत उत्पादन सम्बन्धो की शोषणमूलक प्रकृति पर बल देते हुये 'मजदूरी के लौह नियम' (Iron Law of Wages) शब्दावली का आविष्कार किया। इसके अनुसार मजदूर की औसत मजदूरी (Average Wages) केवल उसके परिवार के निर्वाह की आवश्यकता के स्तर पर बनी रहती है। इसके प्रतिकार के लिये उसने ऐसे समाजवाद का सुझाव दिया जिसके अन्तर्गत उत्पादन के सभी क्षेत्रों मे उत्पादक सहकारी समितियो (Producers Cooperatives) की स्थापना की जायेगी, इनमे वस्तुओ का स्वामित्व और नियंत्रण स्वयं श्रमिकों के हाथों मे रहेगा, अत: उन्हें अपने श्रम का पूरा मूल्य प्राप्त हो सकेगा। इस तरह 'मजदूरी श्रम' (Wage Labour) और 'मजदूरी अनुबंध' (Wage Contract) का अंत करके 'मजदूरी के लौह नियम' को तोड़ा जा सकेगा।

लासाल ने 'प्रहरी राज्य' (Night watchman State) की सकल्पना का खडन करते हुये यह तर्क दिया कि समाजवाद का कार्यान्वयन हितकर राज्य के हस्तक्षेप पर आश्रित होगा। उनका विश्वास था कि आर्थिक क्षेत्र मे इस तरह के समाजवाद के साथ-साथ राजनीतिक क्षेत्र मे सार्वजनीन मताधिकार की व्यवस्था हो जाने पर सामाजिक जीवन मे श्रमिक वर्ग के आर्थिक प्रभुत्व (Economic Dominance) के अलावा राजनीतिक प्रभुत्व भी स्थापित हो जायेगा। इसके परिणाम स्वरूप पूजीवादी शोषण का सचमुच अंत हो जायेगा।

लासाल ने यह सुझाव दिया कि श्रमिक वर्ग को पूजीवादी राज्य के पतन के लिये हिसांत्मक क्रान्ति (Violent Revolution) की तैयारी करने की जरूरत नही। इसके बजाय श्रमिक वर्ग को एक राजनीतिक दल के रूप मे सगठित हो जाना चाहिये ताकि वह सार्वजनीन, समान और प्रत्यक्ष मताधिकार प्राप्त करके अपनी शक्ति को कानूनी तौर पर प्रभावशाली बना सके। अतः लासाल ने पूंजीवाद राज्य की जगह 'श्रमिक राज्य' की स्थापना के लिये सावधानिक और शांतिपूर्ण तरीके को महत्व दिया। इस तरह लासाल ने श्रमिक आन्दोलन के तात्कालिक लक्ष्य की परिभाषा देने की कोशिश की। यह लक्ष्य था, राज्य के लोकतंत्रतीय विधानमंडल मे बहुमत प्राप्त करना। इनका यह लक्ष्य मार्क्स एवम एंजेल्स की शिक्षाओ के अनुरूप नही था, क्योकि उनका विश्वास था कि वर्ग-विभाजित समाज मे पूजीपति कानूनी या शातिपूर्ण तरीको से अपनी सत्ता छोड़ने को कभी तैयार नही होगे। इसीलिये लासाल को मार्क्सवादियो की कड़ी आलोचना का निशाना बनना पड़ा।

लासाल ने समाज मे पूंजीपति और श्रमिकों के हितो का विरोध समाप्त करने का प्रयास किया। लेकिन व्यावहारिक क्षेत्र मे यह श्रमिकों को औद्योगिक पंचायती संस्था के विचार से आगे न बढ़ा सका। उसके विचारो मे मजदूरो के हाथो में राजनीतिक सत्ता का होना अनिवार्य न था। मार्क्स इसी तत्व को सर्वाधिक आवश्यक मानता है, वह मजदूर वर्ग के शासन मे ही मजदूरो के कल्याण की सर्वाधिक कल्पना करता है।

मार्क्स के इस सिद्धान्त का पूर्ण आभास हमे लासाल के दो सिद्धान्तों 'सम्मिलित उत्तरदायित्व' (Theory of Conjeoture) तथा 'पूँजी के सिद्धान्त' Theory of Capital मे देख सकते है। सम्मिलित उत्तरदायित्व से उसका अभिप्राय था आर्थिक क्षेत्र में व्यक्ति को अपने स्वयं के हित से कार्य करने का अधिकार नहीं है बल्कि सामाजिक हित की दृष्टि से समाज का आर्थिक कार्यक्रम निश्चित होना चाहिये, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार का प्रभाव समाज पर पड़ता है।[32]

पूजी के सम्बन्ध मे उसका विचार है कि पूजी ऐतिहासिक विकास से पैदा हुई है, समाज मे इसकी अत्यधिक आवश्यकता है। समाजवाद यह नही कहता कि पूजी समाज मे न रहे बल्कि वह पूजी पर व्यक्ति विशेष के आधिपत्य की अपेक्षा सपूर्ण समाज के स्वामित्व की कल्पना करता है। लासाल ने अपने विचारो को उग्र रूप प्रदान किया। उसने व्यावहारिक स्तर पर श्रमिक आन्दोलन का समर्थन किया तथा सघर्ष को अनिवार्य बतलाया। लासाल के चिन्तन मे मार्क्सवादी और गैर-मार्क्सवादी तत्व निहित है। एक ओर उसके विचारो का आधार मार्क्सवाद है जबकि दूसरी ओर उसके द्वारा प्रतिपादित अनेक सिद्धान्त मार्क्स से बहुत दूर चले गये है। जैसे- मार्क्स के लिये राज्य एक वर्ग के हाथ की कठपुतली है जिसका कार्य दूसरे वर्ग का शोषण करना है। जब समाज मे एक ही वर्ग रहेगा तो राज्य की आवश्यकता नही रहेगी। लेकिन लासाल राज्य की स्तुति करता है वह राज्य को जनहित का एक महत्वपूर्ण यन्त्र मानता है। उसने एक राज्य समाजवादी की भॉति राज्य को गरीबो के हित मे प्रयोग लाने को कहा। उसका यह विचार मार्क्सवाद का विरोधी है। ऐसा विचार प्रतिपादित करते समय लासाल यह भूल गया कि राज्य किस प्रकार श्रमिक वर्ग के कल्याण मे संलग्न हो सकेगा जबकि समाज का साधन सम्पन्न वर्ग इसे अपने लिये प्रयोग मे लाना चाहेगा।

रौडबर्ट्स -

जर्मनी मे समाजवादी विचारधारा को मार्क्स से पूर्व वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने वाला यह प्रथम विचारक था।[33] राजनीतिक क्षेत्र मे वह समाजवाद, राष्ट्रीयता व राज सत्तात्मक नीति के सम्मिश्रण का समर्थक था। वह चाहता था कि जर्मन सम्राट को ही यह अधिकार दिया जाना चाहिये कि वही समाजवाद की स्थापना का प्रयत्न करे। आर्थिक विचारों में यह अपने समकालीन विचारको से बहुत अधिक आगे था। कुछ विचारक इसे ही आधुनिक वैज्ञानिक समाजवाद का निर्माता मानते है।

वस्तु के मूल्य के सिद्धान्त के सम्बन्ध मे उसके विचार रिकार्डो व स्मिथ के ही समान थे। भूमि के लगान, व्यवसाय, लाभ और मजदूरी को वह सामाजिक पैदावार का भाग मानता था जिसे सम्पूर्ण समाज का सम्मिलित श्रम पैदा करता है। इसलिये लाभ में से पूंजीपति के हिस्से का प्रश्न ही नहीं उठता।

रौडबर्ट्स का विचार है कि पूंजीवादी व्यवस्था, उत्पादन की वृद्धि मे तो समर्थ है परन्तु समाज की विषमताओं को दूर करने मे असमर्थ रहती है। उसका विचार था कि समाज मे

उत्पादन तो निरन्तर बढ़ता जा रहा है, परन्तु श्रमिको को उसमे से केवल उतना ही भाग मिलता है जिससे वह अपना जीवन-यापन कर सके। मजदूर वर्ग भी समाज का ही एक अंग है, जो उपभोगकर्ता है। इस वर्ग को उत्पादन का कम भाग मिलता है तो उसके खर्च करने की क्षमता मे गिरावट आ जाती है। इसका प्रभाव यह होता है कि जितना उत्पादन समाज मे होता है उतना वह उपभोग नही कर पाता। जिसका परिणाम यह होता है कि उत्पादन, उपभोग के बिना ही बराबर बढ़ता जाता है। इससे उत्पादन - कार्य मे सलग्न श्रमिको को हटा दिया जाता है। दिन-प्रति-दिन समाज में इस प्रकार के श्रमिको की सख्या बढ़ती जाती है, इससे समाज मे तीव्र प्रतिक्रिया होने लगती है।

वह ऐसे समाज की कल्पना करता है जिसमे प्रत्येक व्यक्ति के लिये समान अवसर हो तथा उत्पादन आवश्यकताओ के अनुसार उत्पादित किया जाय। जब समाजवादी कार्यक्रम को पूर्ण करने का प्रश्न आता है तब वह श्रमिक वर्ग को सत्ता से दूर रहने का निर्देश देता है। वह इस प्रक्रिया को स्वाभाविक मानता है।

उसकी विचारधारा मे सबसे मौलिक विचार 'समाज के विकास का सिद्धान्त' था।[34] उसने मानव इतिहास को आर्थिक आधार पर तीन भागो में विभक्त किया। प्रथम, आर्थिक क्षेत्र का नियमन प्रकृति के नियम के अनुसार होता है। द्वितीय, इस काल मे भूमि तथा पूजी के सम्बन्ध मे वैयक्तिक अधिकार की विचारधारा का विकास हुआ। तृतीय, इस काल मे उत्पादन वैज्ञानिक आधार पर होगा जिसका उद्देश्य मनुष्यता तथा साम्यवादी सिद्धान्तो के आधार पर समाज का संगठन करना है। इस समाज मे प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकतानुसार पारिश्रमिक दिया जायेगा।

रौडबर्ट्स के आर्थिक विचार मुख्य रूप से अपने से पूर्व के विचारको से मिलते जुलते ही थे। 'जर्मनी में जिस आर्थिक-राजनीतिक विचारधारा का विकास हुआ उसके प्रतिपादक एडोल्फ बैगनर थे। रौडबर्ट्स इस विचारधारा से काफी प्रभावित हुआ। उसके समाजवादी विचारों की नीव में वैगनर के सिद्धान्तों के तत्वो का ही समावेश था।'[35]

रौडबर्ट्स के राजनीतिक सिद्धान्तो मे एक विरोधाभास है। एक ओर वह जर्मनी मे राजसत्ता और राष्ट्रीयता स्थापित करना चाहता था, दूसरी ओर वह एक समाजवादी प्रवृत्ति का विचारक था। इन दो विरोधी विचांरो का मेल नहीं हो सकता था। राष्ट्रीय समाजवाद मे मार्क्सवाद राष्ट्रीय सीमाओं को स्वीकार नहीं करता वह समाजवाद के लिये विश्व मानव समाज

की कल्पना करता है। लेकिन रौडर्बट्स के राष्ट्रीय समाजवाद से यही निष्कर्ष निकलता है कि एक राष्ट्र, जर्मनी के अन्दर ही समाजवाद की स्थापना हो तथा जर्मनी, राष्ट्र की सीमा के बाहर, दूसरे राष्ट्रो पर आधिपत्य करे। हिटलर के आधुनिक नाजीवाद के तत्व रौडबर्ट्स के दर्शन मे मिलते है।

19वी शताब्दी के मध्यकाल की इस सामाजिक शाति को न तो फ्रास की राज्य क्रान्ति, न इग्लैण्ड का चार्टिस्ट आन्दोलन और न जर्मनी की राष्ट्रीय सगठन की शक्ति ही शान्त कर सकी। इस समय ऐसी परिस्थितियो का विकास हुआ जिसमे मार्क्स व एजेल्स ने समाज के सम्मुख समानता की विचारधारा, पूजीवादी प्रणाली की असफलता और सामाजिक सगठन व आर्थिक संगठन के सम्बन्ध मे उठती हुई आयोजनाओ को लेकर समाजवादी विचारधारा के दार्शनिक पहलुओ के लिये ठोस वैज्ञानिक विचारधारा की नीव की स्थापना की।

कार्ल मार्क्स (मार्क्सवाद) -

कार्ल मार्क्स से पूर्व का समाजवाद काल्पनिक समाजवाद कहा जाता है, क्योकि वह इतिहास के किसी दर्शन पर आधारित नही था। सी.एल. वेपर के अनुसार ''उन्होने सुन्दर गुलाब के फूलों की कल्पना तो की परन्तु गुलाब के फूलो के लिये कोई भूमि तैयार नही की।''[36]

(1) समाजवादी विचारधारा को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने मे कार्ल मार्क्स और एंजेल्स का काफी योगदान रहा है। मानव समाज की नवीन व्याख्या उसके द्वारा ही की गयी लेकिन मार्क्स ने किसी नवीन विचार का प्रतिपादन नही किया बल्कि पूर्व सिद्धान्तो की वैज्ञानिक व्याख्या ही प्रस्तुत की।[37] जिन सिद्धान्तों की मार्क्स ने व्याख्या प्रस्तुत की उनका प्रतिपादन पूर्व मे हो चुका था। जैसे अतिरिक्त मूल्य क्रा सिद्धान्त- टगर्ट गाडविन, थामसन इत्यादि विचारकपहले ही कर चुके थे। पूॅजीवाद की व्याख्या-फूरियर तथा ब्लांक ने, तथा वर्ग संघर्ष की व्याख्यावानस्टेन (Van Stein), थेरी (Theiry) तथा गुजाट के द्वारा की जा चुकी थी, यह कि ''पूंजीवाद की प्रतिक्रिया के रूप मे नये सर्वहारा वर्ग का उदय होगा'' - रौडबर्ट्स द्वारा की गयी थी।[38] वर्ग संघर्ष का विचार ओवन, फ्यूरियर व रौडबर्टस के दर्शन मे मौजूद था, इतिहास की आर्थिक व्याख्या १८वी शताब्दी के अंत में उत्पन्न हो चुकी थी। मार्क्सवादी समाजवाद मे पूर्व की समाजवादी विचारधाराओं के अनेक तत्व मौजूद होने के कारण भी इसकी वैज्ञानिक व्याख्या मार्क्स द्वारा ही की गयी।

(2) मार्क्स से पूर्व जो समाजवादी विचारधाराएं थी, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उन पर धार्मिक अथवा नैतिक प्रभाव अवश्य था। जब समाजवाद वैज्ञानिक रूप मे सामने आया तब जनता धर्म, विश्वासो से विमुख होने लगी थी, जिसने मार्क्सवादी विचारधारा के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान दिया।

(3) मार्क्स से पूर्व के विचारको ने समाज के भविष्य के लिये आर्थिक सस्थाओ का विचार स्पष्ट रूप से नही रखा था। मार्क्स के दर्शन ने इस कमी को काफी सीमा तक दूर किया।

(4) पूर्व की समाजवादी विचारधारा काल्पनिक तत्वो से परिपूर्ण थी एवं इतिहास को विकास का परिणाम मानती थी। मार्क्स ने डार्विन के 'विकासवाद' के इस सिद्धान्त के आधार कि 'जिस प्रकार प्रकृति का विकास होता है उसी प्रकार मानवीय इतिहास का भी विकास होता है', इस सिद्धान्त का निर्माण किया। यह विचार दो विभिन्न विचारधाराओ के सम्मिश्रण से बना था- प्रथम विकासवादी विचारधारा तथा दूसरे क्रान्तिकारी विचारधारा से। इन्ही आधारो पर उसने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या प्रस्तुत की।

इस प्रगतिवादी विचारधारा का उदय अंग्रेजी दर्शन के अन्दर हो चुका था, जो हमे 17वी व 18वी शताब्दी में हाब्स व लॉक के दर्शन मे व भौतिकवादी विचारदर्शन फ्रान्स की क्रान्ति (1789) मे देखने को मिल जाता है।[39] मार्क्स ने इस सत्य को स्वीकार किया है कि वह जर्मन आदर्शवादी विचारको, काण्ट, फिक्टे तथा हिगेल के दर्शन से प्रभावित था। सन् 1848 ई. मे 'साम्यवादी घोषणा पत्र' प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक मार्क्स तथा एजेल्स की संयुक्त कृति है। इस पुस्तक के अन्दर मार्क्स के सभी सिद्धान्तों का समावेश है। यह एक प्रकार से उनकी विचारधारा का संग्रह है तथा यह साम्यवाद का आधार मानी जाती है। सन् 1867 ई. मे मार्क्स की पुस्तक दास कैपिटल का पहला भाग प्रकाशित हुआ (दूसरा भाग सन् 1885 मे तथा तीसरा भाग 1894 मे प्रकाशित हुआ) यह पुस्तक आर्थिक व्यवस्था, सिद्धन्तो तथा नीतियो का विश्लेषित संग्रह है। इस पुस्तक मे पूंजीवादी व्यवस्था का बहुत गंभीर विश्लेषण किया गया है। इसके बाद के दो भागो को एंजेल्स ने पूर्ण किया था।[40]

कार्ल मार्क्स ने अपनी विचारधारा को स्वयं वैज्ञानिक समाजवाद की संज्ञा दी थी। यह विचार पूर्ववर्ती समाजवादी विचारको से स्वयं मार्क्स को पृथक करती है। उसने अपने मत को स्वयं वैज्ञानिक इसलिये कहा है कि उसने एक वैज्ञानिक के समान समाज के स्वरूप एवं विकास के नियमो को खोजने का प्रयास किया है।

मार्क्स के प्रमुख सिद्धान्त निम्न है -

1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) -

हिगेल और मार्क्स का विश्वास है कि 'सत्य और उन्नति' की विरोधी तत्वो या प्रवृत्तियो के सघर्ष से ही अनुभूति होती है। दोनो मे केवल अन्तर यह है कि हिगेल के लिये विकासशील 'वास्तविकता' 'आत्मा' है जबकि मार्क्स के लिये 'पदार्थ'। मार्क्स ने अपने दर्शन मे इस सिद्धान्त की कोई स्पष्ट व्याख्या नही की है, लेनिन तथा एजिल्स ने इसकी स्पष्ट व्याख्या की है। मार्क्स इस श्रृष्टि का मूल तत्व जड़ प्रवृति (Matter) को मानता है। 'पदार्थ' का तात्पर्य इंद्रियो से स्पष्ट दिखाई पड़ने वाला जड जगत है। इसी विचार को भौतिकवादी विचार कहते है। मार्क्स किसी चेतन सत्ता को प्रकृति का मूल नही मानता। मार्क्स के अनुसार विश्व का विकास तथा उसके स्वरूप मे 'परिवर्तन', किसी वाह्य शक्ति के कारण नही, बल्कि आन्तरिक शक्ति ही उस विकास की प्रक्रिया मे सहयोग प्रदान करती है। जबकि हिंगेल वाह्य सत्ता को इसका मूल मानता था। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक वाद (Thesis) अपने प्रतिवाद (Anti thesis) को जन्म देता है जिसमे संघर्ष के बाद सम्वाद (Synthesis) की श्रेष्ठतर स्थिति उत्पन्न होती है। कालान्तर मे सम्वाद भी बाद मे परिवर्तित हो जाता है और अपने प्रतिवाद को जन्म देता है। यही क्रम चलता रहता है।

इस भौतिकवादी संसार मे कोई भी पदार्थ अपना स्वतंत्र अस्तित्व नही रखता, बल्कि एक दूसरे से सम्बद्ध है। प्रकृति एक संयुक्त समष्टि है। मार्क्स के लिये इसका स्पष्टीकरण करना आवश्यक था, क्योकि स्पष्टीकरण के बिना मार्क्स के दर्शन की नीव ही खोखली हो जाती है। प्रत्येक पदार्थ में विरोधी तत्वो की उपस्थिति अवश्य बनी रहती है, इसी विचार को हिगेल ने दूसरे तरीके से व्यक्ति किया था। उसका मानना था कि जो ऋणी के लिये ऋण लेना है वही ऋणदाता के लिये ऋण का वापस लेना है। जो हमारे लिये पूर्व का रास्ता है वही दूसरो के लिये पश्चिम का रास्ता है। विद्युत को धन और ऋण के छोर दो स्वतंत्र पदार्थ नही है। मार्क्स न इस सिद्धान्त को हिगेल से ग्रहण करते हुये, सामाजिक परिस्थितियो पर लागू किया। इस सिद्धान्त को मार्क्स ने 'आन्तरिक विरोधो का सिद्धान्त' (Theory of Inner Condadiction) की संज्ञा दी। मार्क्स का विचार है कि सृष्टि का विकास आन्तरिक विरोधो के कारण होता है। प्रत्येक वस्तु में उसका एक विरोधी तत्व निहित रहता है, इसके आन्तरिक संघर्ष से विकास की प्रक्रिया शुरू होती है। मार्क्स का विचार है कि ''स्वयं हिगेल ने अपने दर्शन को वास्तविक

अर्थ मे स्पष्ट नही किया है और इसे मैने ही सही दिशा प्रदान की है।''[41] मार्क्स तथा हिगेल मे कुछ भिन्नताए है -

(1) विश्व के मूलतत्व के सम्बन्ध मे हिगेल 'चेतन सत्ता' को महत्वपूर्ण मानता है, किन्तु मार्क्स इसे 'जड़ प्रकृति' मानता है। हिगेल का विचार आध्यात्मिक तत्व की ओर संकेत करता है जबकि मार्क्स पूर्णतया भौतिकवाद मे आस्था रखता है। हिगेल का मत है कि विश्व के सभी पदार्थ 'विश्वात्मा' के प्रादुर्भूत हुये है। मार्क्स के अनुसार 'जड़ प्रकृति' मे सब वस्तुओ का विकास होता है। इससे भिन्न चेतन सत्ता नही है। 'हिगेल के मत मे, इस विश्व मे विचार' तत्व ही वास्तविक है, किन्तु मार्क्स जड़ 'पदार्थ' को ही वास्तविक तत्व मानता है।-इस दृष्टिकोण से मार्क्स का दर्शन हिगेल के दर्शन से बिल्कुल विपरीत है।'[42]

(2) हिगेल इतिहास की दार्शनिक व्याख्या करता है जबकि मार्क्स आर्थिक व्याख्या करता है। हिगेल इसे विश्वात्मा का विकास राष्ट्रो के रूप मे मानता है, किन्तु मार्क्स का विचार है कि इतिहास का निर्माण आर्थिक कारणो से होता है। इसमे प्रधानतत्व सामाजिक वर्गो का परस्पर सघर्ष है। हिगेल के अनुसार इसमे प्रेरक शक्ति स्वय विकसित होने वाली चेतन सत्ता है। यह क्रमशः विभिन्न राष्ट्रो का रूप धारण करती है। मार्क्स के अनुसार यह शक्ति उत्पादक शक्तियो की स्वमेव विकसित होने वाली पद्धति है। यह आर्थिक वितरण तथा सामाजिक वर्गो की मौलिक पद्धतियो के रूप मे परिणत होती है।

2. इतिहास की आर्थिक व्याख्या (Economic Interpretation of History) -

सर्वप्रथम मार्क्स ने अपने द्वन्द्ववादी भौतिकवाद के सिद्धान्त के आधार पर मानव इतिहास का विश्लेषण किया। समाज मे सभी परिवर्तन आर्थिक कारणो से होते है। एंजेल्स ने लिखा है कि - 'इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या मार्क्स की सबसे बड़ी खोज थी।[43] एंजेल्स ने मार्क्स के सम्बन्ध में संकेत दिया है कि मार्क्स का एक महान कार्य था मानव इतिहास में नियम की खोज उसने अपने से पूर्व की विचारधाराओ में दिये सरल तथ्य की यह खोज की कि समाज को राजनीति, धर्म व विज्ञान से पूर्व भौतिक पदार्थों की आवश्यकता होती है, अतएव एक निश्चित समय में, एक निश्चित समाज मे, जीवन-पूर्ति के तत्कालीन भौतिक साधनो का उत्पादन

एव आर्थिक विकास की मात्रा एक ऐसा आधार होती है जिस पर समाज की सभी सस्थाए आधारित होती है, अतएव उसी दृष्टि से उन सब वस्तुओ की व्याख्या की जानी चाहिये।[44]

मार्क्स के अनुसार अर्थ से अभिप्राय केवल पूँजी से नही है, बल्कि जीविका के लिये सभी मौलिक वस्तुए, साधन तथा परिस्थितियां जीवन के लक्ष्य है। उत्पादक वर्गो की साम्यता के आधार पर समाज का वर्ग विभाजन हो जाता है। उत्पादन कार्य मे समाज के सब वर्ग भाग लेते है, परन्तु इन वर्गो के हित अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार आपस मे एक दूसरे के विरुद्ध हो जाते है। उत्पादन कार्य मे समाज के सब वर्ग श्रम नही लगाते और वितरण भी समानता के आधार पर नही होता, ऐसी स्थिति मे समाज मे वर्ग विरोध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वर्ग विरोध के कारण ही मानव समाज मे परिवर्तन होता है और समाज एक नई व्यवस्था की ओर अग्रसर होने लगता है। वह संघर्ष की प्रक्रिया ही समय-समय पर समाज की नई व्यवस्था प्रदान करती रहती है। इसी आधार पर मार्क्स इतिहास की आर्थिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। समाज का आधार आर्थिक है इसका अभिप्राय यह नही है कि व्यक्ति जो क्रियाये करता है उन सब का एकमात्र उद्देश्य आर्थिक होता है। पूंजी का महत्व इसलिये है कि सामाजिक परिस्थितियो के कारण पूजी जीवन के साधनो का प्रतीक है। मार्क्स जब यह कहता है कि इतिहास का आधार आर्थिक है, तब जीवन के साधनो के लिये संघर्ष की ओर मार्क्स सकेत करता है। जीवन के साधनो को ही अर्थ कहते है। जीवन के सब साधनों मे सब भौतिक वस्तुये आ जाती है। अर्थ शब्द का जब संकुचित अर्थ लिया जाता है तब उसका अर्थ पूंजी अथवा धन से लिया जाता है।

मार्क्स ने अपने सिद्धान्तों में व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्वपूर्ण समझा। इसलिये मार्क्सवादी दर्शन में स्वार्थ का अभिप्राय केवल व्यक्तिगत नही बल्कि वर्ग या समाज के हित से होता है। मार्क्स मानता है कि न्याय और परोपकार मे भी स्वार्थ की भावना निहित रहती है, जब मनुष्य सामाजिक न्याय के लिये प्रयत्न करता है तो उसका अभिप्राय होता है कि समाज में व्यवस्था कायम रहे, मनुष्य की विवेक बुद्धि एवं आत्मरक्षा की भावना यह जानती है कि यदि समाज में व्यवस्था कायम न रहे तो समाज का विनाश हो जायेगा और उस विनाश मे स्वयं इकाई भी न बच पायेगी। समाज के अस्तित्व में ही इकाई का अस्तित्व निहित रहता है।

आर्थिक उद्देश्य से किये जाने वाले प्रयास ही समाज के संगठन, विचार व शासन का रूप निश्चित करते हैं। मार्क्स और उसके प्रवर्तकों ने आर्थिक आधार पर ही मानव समाज के

इतिहास का विभाजन पाच भागो मे किया -

(अ) प्रारम्भिक साम्यवादी व्यवस्था

(ब) दास युग

(स) सामन्तवादी युग

(द) पूंजीवादी युग

(ई) साम्यवादी युग

प्रारम्भिक काल मे आदिम साम्यवादी अवस्था थी। लूई मर्णन की 'प्राचीनतम समाज' नामक पुस्तक के आधार पर आदिम समाज की कल्पना की गयी थी। इस अवस्था मे उत्पादन के साधनो (प्राकृतिक) पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार था। सयुक्त श्रम के साधनो पर तथा उससे मिलने वाली वस्तुओ पर सबका अधिकार होता था। इस समय सर्वत्र समानता तथा साम्यवाद का साम्राज्य था।

दास युग मे उत्पादन के साधनो मे परिवर्तन आया और समाज दो वर्गो मे विभाजित हो गया- जमींदार वर्ग तथा दास वर्ग। इस युग मे सर्वत्र दास-प्रथा का आविर्भाव हुआ। इसमे दासो के मालिक कठोरतापूर्वक अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये कार्य लेते थे। इससे प्रतिरोध की भावना उत्पन्न हुई। विरोध को कुचलने के लिये राज्य का आविष्क़ार किया गया। आदिम साम्यवाद मे राज्य नामक संस्था नहीं थी। मार्क्स की यह मान्यता थी कि राज्य का प्रधान कार्य शोषक वर्ग के हितो को सुरक्षित बनाना तथा इसी दृष्टि से कानून आदि की व्यवस्था को बनाना है। समाज मे विषमता के तत्व का आर्विभाव हुआ, उत्पादन की प्रक्रिया मे शिथिलता आ गयी- इसका कारण समाज मे आर्थिक विषमता की प्रवृत्ति थी।

सामन्तवादी युग मे उत्पादन के साधनो पर सामन्तवर्ग का आधिपत्य था। समाज मे नवीन वर्ग, 'मध्यम वर्ग' का प्रादुर्भाव हुआ। मध्ययुग की समाप्ति पर उत्पादन की शक्तियो और सम्बन्धों में परिवर्तन आने लगा। 16वी और 17वीं शताब्दी में वैज्ञानिक साधनों का विकास होने लगा। यह सामन्तवादी व्यवस्था का एक अन्तर्विरोध था। इस अन्तर्विरोध मे ही पूंजीवाद के तत्व निहित थे। इस व्यवस्था के परिवर्तन से सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तन होना स्वाभाविक था।

पूंजीवादी काल मे पूजीपति वर्ग का उत्पादन के साधनो पर आधिपत्य हो गया। ये उत्पादन के साधनो से सर्वथा वचित श्रमिको का शोषण करते है। उत्पादन की नवीन प्रणाली के कारण सामाजिक सम्बन्धो मे महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगते है। इससे समाज मे वर्ग-सघर्ष होने लगता है। सामन्त-पद्धति के तीन वर्गो के स्थान पर केवल छोटा-सा पूजीपति वर्ग और उत्तरोत्तर सख्या मे बढ़ने वाला श्रमजीवी वर्ग ही रह जाता है। औद्योगीकरण के कारण मध्यम वर्ग की कठिनाइया बढ़ने लगती है। पूजीपति वर्ग संख्या मे अत्यल्प होते हुए भी उत्पादन के साधनो पर स्वामित्व और नियत्रण रखने के कारण श्रमिक वर्ग का शोषण करता है। श्रमिक वर्ग के पास जीविका का कोई अन्य साधन न होने पर शोषण का शिकार होता रहता है। राजनीतिक पद्धति मे परिवर्तन होने लगता है। राजतंत्र के स्थान पर ससदीय लोकंतत्र की स्थापना की जाती है। परन्तु इससे उत्पादन सम्बन्धो मे कोई परिवर्तन नही आता। शनै. शनैः पूंजीवाद अपने दुष्परिणामो के कारण अपने ही स्वरूप मे आन्तरिक विरोधो को उत्पन्न करता है। पूजीपति स्वय अपना विध्वस करने के लिये श्रमिक वर्ग को जन्म देते है। सर्वहारा वर्ग क्रान्ति के बाद अपना अधिनायक तंत्र स्थापित करता है। यह संक्रमणकालीन व्यवस्था है।

अन्तिम अवस्था पूर्ण साम्यवाद की अवस्था है। इसमे उत्पादन के सभी साधनो पर समाज का स्वामित्व होगा। वितरण व्यक्तियो की आवश्यकता के आधार पर होगा न कि योग्यता के आधार पर। पूंजीपति वर्ग पूर्णतया समाप्त हो जायेगा। शोषण के प्रधान साधन राज्य का, समाज मे वर्ग-विरोध न होने के कारण, अस्तित्व स्वय समाप्त हो जायेगा। एजेल्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के सम्बन्ध मे कहा है कि 'इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के अनुसार इसमें अन्तिम रूप से निर्णायक प्रभाव डालने वाला तत्व उत्पादन है। मार्क्स ने और मैने इससे अधिक कुछ नही कहा है।'[(45)]

3. वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त (Class Struggle) -

मार्क्स का विचार है कि प्रत्येक युग में अर्थोपार्जन के कोई न कोई प्रमुख साधन होते है और जिस वर्ग का इन साधनों पर आधिपत्य होता है वही वर्ग समाज मे शक्तिशाली होता है और उसी के हाथो में राजनीतिक शक्ति होती है। दूसरे साधनहीन वर्ग उसके अधीन होते हैं। मार्क्स के विचार मे आज तक विश्व इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है। प्राचीनकाल में स्वामी और दास, मध्यकाल में सामन्त और कृषक तथा आधुनिक युग में पूंजीपति और सर्वहारा-दो विरोधी वर्ग संघर्षरत हैं। मार्क्स वर्ग-संघर्ष को समाज-परिवर्तन का साधन मानता है।

मार्क्स का मत है कि 'वर्गो के स्वरूप मे काल के अनुसार चाहे परिवर्तन हो जाता रहे लेकिन समाज मे सदैव दो वर्ग मौजूद रहे है, एक वर्ग साधनो का स्वामी तथा दूसरा साधनहीन सर्वहारा वर्ग।'[46] एक शोषक वर्ग होता है दूसरा शोषित वर्ग, दोनो सदैव एक दूसरे के विरोध मे खड़े होकर कभी प्रत्यक्ष तथा कभी परोक्ष रीति से सघर्ष करते रहे है।

कार्ल मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष के परिणामस्वरूप सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व तथा वर्गहीन समाज की कल्पना की थी लेकिन मार्क्स की इस कल्पना से उसके द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त का साम्य किस प्रकार किया जाय? मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक तत्व की कल्पना की, दूसरी ओर वर्गहीन समाज का आदर्श प्रस्तुत किया। इन दोनो सिद्धान्तो मे विरोधाभास है।[47]

4. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Surplus Value) -

एंजेल्स के अनुसार मार्क्स के दो महान आविष्कार- इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या तथा अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त थे। इन दोनो सिद्धान्तो के आधार पर ही मार्क्स ने समाजवाद को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया।[48] मार्क्स ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या करने से पूर्व मूल्य के दो आधारो, उपयोगिता मूल्य तथा विनिमय मूल्य की व्याख्या की।

उपयोगिता मूल्य (Value of Utility) :- मार्क्स ने भी अन्य अर्थशास्त्रियो के समान वस्तु मूल्य के दो आधार प्रस्तुत किये। उपयोगिता मूल्य से मार्क्स का वही अभिप्राय था जो उससे पूर्व के अर्थशास्त्रियो का था। जो वस्तुएं मनुष्य की इच्छाओ की पूर्ति करती है वे मनुष्य के लिये उपयोगी होती है। उपयोगिता का महत्व वस्तु के स्वरूप और स्वभाव पर निर्भर रहता है।

विनिमय मूल्य (Value of Exchange) :- मूल्य का दूसरा आधार विनिमय है। यह अनुपात की ओर संकेत करता है, जिसके आधार पर किसी वस्तु का विनिमय किया जाता है। मार्क्स के विचारानुसार वस्तु का वस्तु से विनिमय के अलावा एक और वस्तु से विनिमय किया जा सकता है, वह है 'श्रम'। श्रम के आधार पर ही वस्तु का विनिमय मूल्य निश्चित होता है। श्रम ही वस्तु के मूल्य का मापदण्ड है। किसी वस्तु का मूल्य उस पर लगाये गये श्रम के आधार पर निश्चित होता है। इस सिद्धान्त को मूल्य का श्रम सिद्धान्त (Labour Theory of Value) कहते हैं।

मार्क्स के विचारनुसार, उपर्युक्त नियम के अनुसार निश्चित होने वाली मजदूरी श्रमिको को नहीं दी जाती है। श्रमिक को जो पारिश्रमिक दिया जाता है। उसके बराबर मूल्य रखने वाली वस्तुओं का उत्पादन वह अल्प समय मे ही कर लेता है लेकिन श्रमिक जो अधिक समय तक

उत्पादन करता है, उस अतिरिक्त समय मे उत्पादित उत्पादन पर मालिक अपना आधिपत्य कर लेता है। यही अतिरिक्त मूल्य है। मार्क्स के अनुसार यह अतिरिक्त मूल्य भी मजदूर को मिलना चाहिये, लेकिन व्यावहारिकता मे ऐसा नही होता। इसी अतिरिक्त मूल्य से पूजी का निर्माण होता है। यह सर्वहारा वर्ग का शोषण है। इस शोषण के माध्यम से ही पूजीवाद का विकास होता है। मार्क्स पूंजी का मूल्य, सर्वहारा वर्ग का शोषण, उनके श्रम से अधिक वस्तुओ का उत्पादन तथा कम से कम मजदूरी की व्याख्या करता है। मार्क्स पूजी के दो वर्गो-स्थायी पूंजी तथा अस्थायी पूंजी को मानता है। स्थायी पूंजी से अतिरिक्त मूल्य का कोई सम्बन्ध नही है। अस्थायी पूंजी सर्वहारा वर्ग को मजदूरी के रूप मे दी जाने वाली राशि है। इसी के माध्यम से अतिरिक्त मूल्य का उत्पादन किया जाता है। पूंजीपति वर्ग अतिरिक्त मूल्य मे वृद्धि करने के लिये शोषण के साधनो मे वृद्धि करते है। इससे अन्य साधनो को प्रयोग मे लाया जाता है। इससे पूजीवादी व्यवस्था मे आन्तरिक विरोध तथा सघर्ष की चेतना का विकास होता है। पूजीवादी प्रणाली द्वन्द्वात्मक पद्धति के माध्यम से अपने स्वरूप मे परिवर्तन की ओर अग्रसर होने लगती है। मार्क्स के इस सिद्धान्त में कुछ असंगतियां प्रतीत होती है। परन्तु मार्क्स एक अर्थशास्त्री की अपेक्षा एक राजनीतिक विचारक अधिक था। मार्क्स को अतिरिक्त मूल्य सिद्धान्त के अन्दर जो असगतियां प्रतीत होती है उसका कारण आर्थिक व राजनीतिक सिद्धान्तो का सामंजस्य है। मार्क्स का उद्देश्य आर्थिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन करना नही था बल्कि आर्थिक कारण किस प्रकार राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित करते है, यह मार्क्स का एकमात्र उद्देश्य था।[49]

5. क्रान्ति का सिद्धान्त (Theory of Revolution) -

मार्क्स ने समाजवादी विचारधारा को क्रियात्मक स्वरूप तथा विकास की ओर अग्रसर करने के लिये कुछ सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया।[50] मार्क्स ने समाजवादी विचारधारा के क्षेत्र में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने के उपायो के रूप मे सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति को मान्यता प्रदान की। मार्क्स का विश्वास था कि पूंजीवाद की चरम अवस्था आने पर उसका अन्त हिसांत्मक साधनों से ही सम्भव है। वैधानिक साधनो से समाजवाद स्थापित नही किया जा सकता। 'नूतन समाज-रूपी शिशु को गर्भ मे धारण करने वाले प्रत्येक प्राचीन समाज की जननी शक्ति होती है।'[51] मार्क्स ने क्रान्ति को कई कारणो से आवश्यक समझा: प्रथम कारण उसका भौतिकवादी दर्शन था। दूसरा कारण मार्क्स का सन् 1848 ई. का कटु अनुभव था, इस समय

यूरोप के देशो मे क्रान्तिया हो रही थी। किन्तु सफल नही हुई थी। इस सगठित विरोध का सामना सर्वहारा वर्ग केवल क्रान्ति के माध्यम से ही कर सकता था। तीसरा कारण- मार्क्स का विचार था कि इतिहास मे किसी भी शासक ने सघर्ष के बिना सत्ता का परित्याग नही किया है। यह कार्य सवैधानिक साधनो के माध्यम से सब स्थानो पर सभव नही है। सर्वहारा वर्ग को राजनीतिक सत्ता को हस्तगत करने के लिये हिसात्मक साधनो तथा सशस्त्र क्रान्ति का अवलम्बन करना पड़ता है। मार्क्स ने क्रान्ति के हिसात्मक और अहिसात्मक स्वरूप की स्थिति के अनुसार उचित समझा।

6. सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतंत्र (Dictatorship of the Proletariat) -

मार्क्स ने साम्यवादी क्रान्ति की आवश्यकता के लिये क्रान्ति का नेतृत्व सर्वहारा वर्ग के हाथो मे सौपने का विचार रखा था। क्रान्ति के पश्चात् पूंजीवादी व्यवस्था की समाप्ति स्वाभाविक है। इसके बाद पूँजीवाद से समाजवाद की अवस्था मे पहुचने के लिये कुछ समय लगता है। इस समय को मार्क्स ने संक्रमण काल (Transitional Period) की सज्ञा दी। इस संक्रमण काल मे क्रान्ति से प्राप्त उद्देश्य (समाजवाद) को स्थायी रखने के लिये सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतत्र स्थापित किया जायेगा ताकि क्रान्ति के विरोधी तत्वो तथा साम्यवादी व्यवस्था के विरुद्ध क्रान्तियो के (Counter Revalution) प्रयत्नो को विफल किया जाय।

मार्क्स अपने सिद्धान्तो के स्पष्टीकरण के लिये इतिहास के तथ्यो के प्रमाण प्रस्तुत करता है। इतिहास मे इस प्रकार के तथ्य मौजूद है कि उत्पादन के साधनों के स्वामी का शासन सत्ता पर सदैव प्रभाव रहा है। शासक वर्ग सत्ता की शक्ति से उत्पादन के साधनो पर आधिपत्य स्थायी रखने के लिये भिन्न समय मे न्याय-व्यवस्था तथा कानून स्थापित करने मे सफल रहा है। इसलिये उत्पादन के साधनो पर सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित करना अति आवश्यक है। सर्वहारा वर्ग का निर्बाध शासन मार्क्स का लक्ष्य नही है। यह ऐसी व्यवस्था कायम करने का साधन है जिससे शोषक एवं शोषितो के बीच की रेखा समाप्त हो जाय। आर्थिक दृष्टिकोण से इतिहास का विश्लेषण करने पर इस प्रकार के प्रमाण मिल जाते है कि समाज की प्रारंभिक अवस्था को छोड़कर जबसे समाज में साधनहीन और साधन-सम्पन्न वर्गो का अभ्युदय हुआ है, साधन-सम्पन्न वर्ग का समाज पर आधिपत्य रहा है।

. मार्क्स सर्वहारा वर्ग की तानाशाही का तब तक समर्थन करता है जब तक कि साम्यवादी शासन की नींव दृढ़ न हो जाय। सर्वहारा वर्ग कभी भी बुर्जुआ वर्ग से समझौता नही करेगा तथा इसके द्वारा जो क्रान्ति होगी उसी के द्वारा स्थायी शान्ति स्थापित की जा सकेगी मार्क्स

ने गोटा प्रोग्राम[52] (1875) की आलोचना के साथ घोषणा की कि एक समय आयेगा जब पूजीवाद समाज साम्यवादी समाज मे क्रान्तिकारी साधनो द्वारा परिवर्तित किया जायेगा। मार्क्स की मृत्यु के एक वर्ष पूर्व एजेल्स ने घोषणा की थी कि यदि सर्वहारा वर्ग आवश्यक समझेगा तो सशस्त्र क्रान्ति का भी सहारा ले सकता है तथा हिसात्मक साधनो को भी अपना सकता है। मार्क्स के अनुसार इस क्रान्ति का अतिम उद्देश्य वर्गहीन एव राज्यहीन समाज की स्थापना करना है। सर्वहारा वर्ग की अधिनायकता, पूजीवादी व्यवस्था और साम्यवादी व्यवस्था के बीच की स्थिति है। इस अधिनायता की व्यवस्था में भी राज्य का अस्तित्व कायम रहेगा। सर्वहारा वर्ग की अधिनायकता मे राज्य शक्ति का प्रयोग, सर्वहारा वर्ग तथा सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से एव पूजीपति वर्ग के उन्मूलन के लिये किया जायेगा।

7. राज्य विषयक सिद्धान्त (Theory of State) -

मार्क्स ने राज्य के सम्बन्ध मे कोई स्पष्ट व्याख्या नही की है। मार्क्सवादी साहित्य मे राज्य-सम्बन्धी छिट-पुट विचार ही मिलते है, अन्य सिद्धान्तो की तरह एक क्रमबद्ध विवेचना नही। इस सम्बन्ध मे पहला प्रश्न इसके उदय का है। इसका विवेचन एंजेल्स ने 'परिवार, वैयक्तिक सम्पत्ति और राज्य का उद्गम' नामक पुस्तक मे किया है। इसमें एजेल्स ने यह सकेत किया है कि मानव समाज की आरम्भिक अवस्था साम्यवाद की अवस्था थी। लेकिन एंजिल्स ने इस अवस्था मे राज्य की सत्ता के बारे मे कोई निश्चित मत नही व्यक्त किया। कुछ स्थलो पर उसने इसकी सत्ता को अस्वीकार किया है, परन्तु अन्यत्र एजेल्स ने यह स्वीकार किया है कि प्रारम्भिक अवस्था मे मनुष्यो के आपसी विवादों का निर्णय करने के लिये राज्य की संस्था बनी हुयी थी। इस प्रकार एंजेल्स ने परस्पर विरोधी विचारो का प्रतिपादन किया। लेकिन मार्क्स तथा एंजेल्स ने राज्य के संगठन के सम्बन्ध मे कि किस प्रकार राज्य की उत्पत्ति हुयी - इस बात की कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं की है। केवल राज्य के उद्देश्य एवं कार्यो की विवेचना मात्र की है। अरस्तु का विचार था कि राज्यका उद्देश्य मानव समाज को उत्तम बनाना है। राज्य की सत्ता इसलिये आवश्यक है कि इसके माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्रतापूर्वक अपने व्यक्तित्व का उच्चतम विकास कर सकता है। यह सबके लिये सहयोग पर आधारित समुदाय है। किन्तु इसके विपरीत मार्क्स यह मानता है कि राज्य शासक वर्गो के हितो को सुरक्षित रखने वाला तथा सर्वहारा वर्ग के शोषण का साधनमात्र है। कम्यूनिस्ट घोषणा पत्र मे राज्य को पूंजीपति वर्ग की कार्यकारिणी समिति (Executive Committee of Bourgeois) कहा गया है। मार्क्स के मतानुसार राज्य अपनी सम्पत्ति तथा हितो को सुरक्षित बनाये रखने की दृष्टि से पूंजीपतियों द्वारा

बनाये गये सगठन के अतिरिक्त कुछ नही है। एजेल्स ने राज्य का लक्षण बताते हुये लिखा है कि यह एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के उत्पीडन करने का यंत्र मात्र है। यह मानव जीवन के विकास का उत्तम तथा स्वाभाविक साधन अथवा समाज के सभी वर्गो मे सामजस्य और सतुलन बनाये रखने वाला, उनके अधिकारो की रक्षा करने वाला तथा उनके कल्याण मे सलग्न सगठन नही है, अपितु इसका उद्देश्य एक विशेष वर्ग की प्रभुता को बनाये रखना तथा उसे अन्य व्रगो के शोषण की खुली छूट देना है, यह वर्ग आर्थिक उत्पादन के साधनो पर स्वामित्व स्थापित करने सेना, पुलिस और कानून द्वारा अपने वर्ग के आधिपत्य को सुदृढ़ बनाता है।

मार्क्स के विचारानुसार राज्य शक्ति पर आधारित है जब एक बार कोई वर्ग राजनीतिक सत्ता पर आधिपत्य कर लेता है तो शक्ति के आधार पर इसको बनाये रखने का प्रयास करता है। राजनीतिक शक्ति से अभिप्राय है कि एक वर्ग की सगठित शक्ति कायम रहे, जिसका उपयोगएक दूसरे वर्गो को दबाने के लिये किया करता है। अत· राज्य का मौलिक उद्देश्य शासक वर्ग के हितो का सरक्षण तथा अन्य वर्गो का उत्पीड़न तथा दमन करना है। मार्क्स के इस राज्य सिद्धान्त के साथ वर्ग सघर्ष के सिद्धान्त का अर्न्तसम्बन्ध है। यह वस्तुत: उसी सिद्धान्त का परिणाम है। राज्य का वास्तविक रूप, जो मार्क्स ने प्रस्तुत किया वह केवल एकांगी विश्लेषण मात्र है, किन्तु मार्क्स ने राज्य के एक पक्ष को देखकर उसके कार्यो की उपेक्षा की है, लेकिन मार्क्स ने जो राज्य के कार्यो की विवेचना की, उसमे कुछ वास्तविकता के सत्य अवश्य थे, क्योकि उस समय की अधिकांश देशो की शासन प्रणालियो मे दमनात्मक तत्वो का समावेश अपनी चरम सीमा पर था जिनका संकेत मार्क्स ने अपने सिद्धान्त मे किया है। लेकिन यह सर्वव्यापी सत्य नही है। उस समय इस प्रकार के राज्य भी अपवाद स्वरूप मौजूद थे, जिनका उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना था।

मजदूर वर्ग की अधिनायकता एवं संक्रमण काल के बाद मार्क्स ने एक ऐसी आदर्श व्यवस्था की कल्पना की है जिसमे राज्य और सरकार का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा, जिसमे व्यक्ति प्रथम बार पूर्ण स्वतंत्रता का उपभोग करेगा। उत्पादन के साधनो पर सम्पूर्ण समाज का आधिपत्य होगा, जिसमे व्यक्ति श्रम तथा योग्यता के आधार पर उत्पादन का भागीदार होगा। यह समाज केवल राज्यहीन ही नही वरन् वर्गहीन भी होगा। सर्वहारा वर्ग के शासन में पूंजीपति वर्ग का उन्मूलन पूर्णतया हो जायेगा। इसके बाद समाज में स्वत: वर्ग भेद तथा दो पृथक वर्गों की सत्ता समाप्त हो जायेगी। अत: राज्य व्यवस्था स्वत: समाप्त हो जायेगी।

एजेल्स ने इस व्यवस्था की ओर सकेत करते हुये लिखा है कि- "अन्त मे राज्य जब पूर्ण समाज का वास्तविक प्रतिनिधि बन जायेगा, तो वह अपने आपको अनुपयोगी बना देगा। उस समय समाज मे किसी वर्ग को अपने अधीन रखने वाला कोई वर्ग नही रह जायेगा। अत इस समय नियत्रण करने योग्य कोई तत्व न होने से राज्य की आवश्यकता नही रह जायेगी। इसलिये राज्य का अन्त नही किया जायेगा वरन् यह स्वत· समाप्त हो जायेगा।"[53]

एजेल्स ने एक स्थान पर लिखा है कि- "एक समय आयेगा जब राज्य सग्रहालयो मे रखी जाने वाली अतीत की वस्तु बन जायेगा।"[54] मार्क्स तथा एजेल्स की यह आदर्शवादी कल्पना, थामस मूर की यूटोपिया (जिसमे थामस ने इसी प्रकार की आदर्श व्यवस्था की कल्पना की थी) से अधिक कुछ नही है। जिस प्रकार थामस मूर की योजना वास्तविकता के क्षेत्र से काफी दूर थी, उसी प्रकार मार्क्स एव एजेल्स की राज्यहीन एव वर्गहीन समाज की योजना भी वास्तविकता से काफी दूर है।

रूस मे सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति (सन् 1917 ई.) के बाद राज्य की शक्ति मे बराबर वृद्धि होती गयी। मार्क्स एवं उसके अनुयायी विचारको द्वारा इस सिद्धान्त को सत्य सिद्ध करने के लिये यह तर्क दिया गया था कि राज्य की संस्था की समाप्ति दो आधारो पर हो सकती है। प्रथम-विश्व के सभी देश साम्यवादी बन जाये। द्वितीय- पूर्ण प्राचुर्य (Absolute) की स्थिति उत्पन्न हो जाय। इसका अभिप्राय है कि उत्पादन की मात्रा मे इतनी अधिकता आ जाय कि समाज मे किसी वस्तु की कमी न रहे।[55] जब समाज मे इस प्रकार की अवस्था आ जायेगी तब प्रत्येक व्यक्ति को विकास के समान अवसर मिलेंगे तथा समाज में वर्ग-विभेद एवं संघर्ष समाप्त हो जायेगा इस अवस्था में सक्रान्ति काल के सिद्धान्तो की कोई आवश्यकता नही रह जायेगी। सर्वहारा वर्ग की अधिनायकता तथा राज्य की आवश्यकता स्वत: समाप्त हो जायेगी। ये दोनो ही अवस्थाये असंभव सी प्रतीत हुयी है।

स्टालिन ने द्वन्द्वात्मक पद्धति के आधार पर राज्य संस्था की समाप्ति की ओर संकेत एव उसे न्यायोचित करने का प्रयास किया है :- "हम राज्य की समाप्ति हो जाने के पक्ष मे है किन्तु उसके साथ ही साथ सर्वहारा वर्ग की अधिनायकता को सुद्रढ़ बनाने का भी समर्थन करते है। यह आज तक सत्ता रखने वाले राज्यो मे अधिकतम शक्तिशाली और प्रबल सत्ता है, यह राज्य की शक्ति का उच्चतम विकास है, यह मार्क्सवाद का सिद्धांत है। क्या यह विरोधी है? हां, यह विरोधी है। किन्तु यह विरोधी एक जीवित वस्तु है और माक्सर्वादी द्वन्द्वात्मक पद्धति को सूचित करता है।"[56] इस टिप्पणी से यही निष्कर्ष निकलता है कि द्वन्द्वात्मक पद्धति से

राज्य की सपत्ति के लिये उसका अत्यन्त प्रबल होना आवश्यक है। सन् 1952 मे स्टालिन ने संकेत किया कि - ''राज्य समाजवाद के जितना समीप आयेगा, वह उतना ही अधिक शक्तिशाली होगा।''[57] यह विचार मार्क्स के मौलिक सिद्धान्तो से साम्यता नही रखता। इस दशा मे राज्यहीन तथा वर्गहीन (Stateless and Classless) समाज की कल्पना उसी प्रकार आधारहीन है जिस प्रकार पूर्व के विचारो को- सेट साइमन तथा फूरियर की काल्पनिक योजनाए।

8. मार्क्स की धर्म सम्बन्धी अवधारणा -

मार्क्स के सिद्धान्तो मे जो सबसे अधिक आलोचना का विषय रहा है वह है मार्क्सवाद तथा आध्यात्मवाद का सम्बन्ध। कुछ परम्परावादी विचारक मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्तो को तो स्वीकार करते है, परन्तु मार्क्सवाद के दर्शन भौतिकवाद एव आध्यात्मवाद से आशंकित रहते है। मार्क्स इस तरीके को अवैधानिक मानते है। इसके कुछ कारण है। प्रथम - जब आत्मा तथा परमात्मा का अस्तित्व विज्ञान तथा तर्क द्वारा सिद्ध नही दिया जा सकता तब उसका आश्रय क्यो लिया जाय? यह विंचार कि आत्मा तथा ईश्वर इन्द्रियो का विषय नही, केवल अनुभव का विषय है, तब मार्क्स की दृष्टि मे यह अन्ध विश्वास है। अनुभव इन्द्रियो के द्वारा ही होता है। इन्द्रियां विज्ञान की सहायता से आत्मा और परमात्मा की अनुभूति का निश्चय क्यों नहीं कर पाती? आत्मा तथा परमात्मा की अनुभूति केवल कल्पना मे ही क्यो होती है? मार्क्स के दृष्टिकोण मे यह सब विश्वास की वस्तु है।

मार्क्स की दृष्टि मे जो वस्तु वास्तव मे अस्तित्व में नही है वह मनुष्य की प्रगति मे किस प्रकार सहायक हो सकती है। उससे मिलने वाला विश्वास केवल मिथ्या विश्वास है। मार्क्सवाद के अनुसार धर्म, कर्तव्य तथा न्याय परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होते रहते है। लेकिन आध्यात्मवादियो के अनुसार ये कभी नहीं परिवर्तित होते। इनके मतानुसार निर्देशित धर्म कभी नही बदलता। मार्क्स के मतानुसार विकास के मार्ग पर अग्रसर होते हुये समाज को आध्यात्मिक विश्वास पीछे ले जाने का प्रयास करते है। इस मत की पुष्टि करने के लिये मार्क्सवादी इतिहास द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास करते है कि धर्म विश्वास को सदैव पूंजीवादी वर्ग ने अपने स्वार्थों की पूर्ति का साधन बनाया है तथा धर्म विश्वासों ने सदैव ही नवीन विचारो का विरोध करके, विकास के मार्ग मे अवरोध पैदा किये है। इसलिये मार्क्स ने धर्म को 'अफीम' की संज्ञा दी है।

इस काल्पनिक मत का स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया गया है कि यदि ईश्वर का अस्तित्व नही है तो मनुष्य को उसका निर्माण कर लेना चाहिये। क्योकि उसके भय के माध्यम से मनुष्य तथा समाज को उचित मार्ग पर सचालित करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार के विचारो का मार्क्स विरोध करते है। काल्पनिक भय के माध्यम से मनुष्य को यह समझाया जाताहै कि समाज मे पूजीवादी वर्ग को ईश्वर ने सर्वहारा वर्ग पर शासन करने के लिये ही बनाया है, इसका विरोध करना ईश्वर की इच्छा का विरोध करना है। आध्यात्मिकता के माध्यम से किसी उच्च आदर्श की प्राप्ति करने का प्रयास भी मार्क्स की दृष्टि मे उचित नही, क्योकि अपने ऊपर सदैव एक उच्च शक्ति का विश्वास जो व्यक्ति की सफलता और असफलता की स्वामी होती है, जिसके समक्ष व्यक्ति को अपनी वृद्धि और शक्ति की तुच्छता स्वीकार करनी ही चाहिये। व्यक्ति के आत्मविश्वास, महत्वाकांक्षा और उन्नति की सभावना पर रोक लगा देता है। मार्क्स व्यक्ति की उन्नति की कोई सीमा स्वीकार नही करता और न किसी लक्ष्य को अंतिम आदर्श स्वीकार करता है। आध्यात्मवादी मनुष्य की आत्मा को शरीर से विभक्त एक सूक्ष्य वस्तु मानते है, जो कभी नष्ट न होने वाली शक्ति का अंश है। लेकिन मार्क्स मनुष्य की बुद्धि, चेतना या मन को भौतिक पदार्थो से बना हुआ मानते है और उनकी प्रवृत्ति एव गति समाज के अपने नियमो के अनुसार होती है। इससे पृथक वे इसकी सत्ता (अस्तित्व को) स्वीकार नही करते है।

मार्क्स नैतिकता का मूल स्त्रोत मनुष्य के सामाजिक सगठन को मानते है। इस प्रकार मार्क्स नैतिकता की सभी आध्यात्मिक व्याख्याओ को अस्वीकार क़रते हैं। मार्क्स ने स्पष्ट शब्दो में स्वीकार किया है कि इतिहास के विकास मे नैतिक तत्व नही बल्कि भौतिक तत्व सहायक होते है।

मार्क्स के वैज्ञानिक अर्थशास्त्र एवं नीतिशास्त्र मे एक द्वान्द्विक एकता है जहॉ विचारकों के सिद्धान्तो एवं नैतिकता में यात्रिक पार्थक्य है। मार्क्स के मतानुसार शाश्वत नैतिकता अपना धर्म जैसी कोई वस्तु नही होती। नैतिक आदर्शों का आधार सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था है। आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तनो के साथ नैतिक आदर्शो मे भी परिवर्तन होते रहते है। कार्ल मार्क्स के दृष्टिकोण में नैतिकता का प्रयोजन वहीं तक सीमित है जहां तक वह समाज की उन्नति मे सहायक है। यदि नैतिकता समाज के विकास में बाधक बन सकती है तो मार्क्स के विचार में उस नैतिकता का कोई प्रयोजन स्वीकार नही किया जा सकता।

मार्क्स के सिद्धान्तो के महत्व के सम्बन्ध मे दो परस्पर विरोधी दृष्टिकोण है। पहला दृष्टिकोण उनके अनुकरण कर्ताओ का है। दूसरा दृष्टिकोण उनके आलोचक वर्ग का है। किन्तु इन दोनो दृष्टिकोणो मे मतभेद होते हुए भी उनके महत्व के सम्बन्ध मे एक बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि मार्क्स ने विश्व पर अमिट छाप डाली है। मार्क्स से पूर्व तक समाजवाद पुस्तको तक ही सीमित था। उसने इसे आन्दोलन बनाया। कैल्टन मानता है कि मार्क्स ने अब तक कोई पर्याप्त सैद्धान्तिक आधार न रखने वाले इस आन्दोलन को विशेष मन्तव्य प्रदान किये। रावर्ट ओवन, सेन्ट साइमन तथा प्रूधो ने मार्क्स द्वारा उपेक्षित एवं उच्चकोटि के सत्यो को प्रकट किया था, किन्तु उनके सिद्धात बौद्धिक क्षेत्र तक ही सीमित था। मार्क्स ने समाजवादी आन्दोलन के लिये वही कार्य किया जो मैकियावेली ने राज्य के सिद्धात के लिये किया था । मार्क्स के सिद्धान्तो की कितनी कटु आलोचना क्यो न की जाय किन्तु इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि विश्व के अधिकाश देशो पर उसकी विचारधारा ने गहरा प्रभाव डाला है।

कार्ल मार्क्स के बाद समाजवादी विचारधारा दो प्रधानरूपो मे विभक्त हो जाती है - क्रान्तिकारी समाजवाद (Revalutıohnary sxıalısm) तथा विकासशील समाजवाद (Evalutıonary socialısm) पहली विचारधारा क्रान्ति द्वारा सर्वहारा वर्ग की अधिनायकता स्थापित करके हिसात्मक साधनो से समाजवाद की स्थापना करने के सिद्धांत का प्रतिपादन करती है, लेनिन इसी विचारधारा के समर्थक थे। रूस मे समाजवाद की स्थापना इन्ही साधनो के माध्यम से लेनिन के द्वारा हुई। फ्रन्स में भी संघवाद के रूप मे क्रान्तिकारी समाजवाद का विकास हुआ। किन्तु इंग्लैण्ड मे एक दूसरे प्रकार के शान्तिपूर्ण उपायों से शनै: शनै: क्रमिक विकास द्वारा समजवाद की स्थापना करने के सिद्धान्त पर बल दिया गया। शान्तिपूर्ण विकास की प्रक्रिया पर अधिक महत्व दिये जाने के कारण इस विचारधारा को विकासशील समाजवाद का नाम दिया जाता है। इस विचारधारा के इंग्लैण्ड और संयुक्त राज्य अमेरिका मे विकसित होने वाले रूप समष्टिवाद फेबियनवाद, श्रेणी समाजवाद और जर्मनी में संशोधनवाद थे।

मार्क्स के बाद समाजवादी विचारधारा का विकास -

मार्क्सवादी विचारधारा को विकसित करने मे तथा उसको क्रियात्मक रूप प्रदान करने का श्रेय रूस के समाजवादी विचारक लेनिन तथा परवर्ती विचारको को है। मार्क्स ने पूंजीवादी व्यवस्था का विनाश करने वाली जिस साम्यवादी क्रान्ति की ओर संकेत किया था उसे

व्यावहारिक आधार पर क्रियात्मक रूप लेनिन ने प्रदान किया। लेनिन ने मार्क्स के सिद्धांतो को रूस मे क्रियात्मक रूप प्रदान करने के लिये उनमे कई महत्वपूर्ण परिवर्तन तथा सशोधन किये है। संशोधन के बिना उनको व्यावहारिक रूप प्रदान करने मे समय की अधिकता और व्यावहारिक कठिनाइया उपस्थित होती, उन कठिनाइयो का परिष्कार लेनिन ने उचित समझा।

मानवीय इतिहास के युग मे क्रान्ति तथा पद्धति का जो विचार मौजूद है उसे क्रियात्मक स्वरूप प्रदान करने मे लेनिन का विशेष योगदान है। लेनिन ने इतिहास की ओर सकेत किया है कि साम्यवादी समाज की स्थापना समाजवादी क्रान्ति के माध्यम से होगी। क्रान्ति तथा सघर्ष ही इतिहास के विकास मे वास्तविक तत्व होता है। लेनिन ने रूस मे तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वैज्ञानिक आधार तथा नवीन पद्धतियो के आधार पर क्रान्तिकारी आन्दोलन को सगठित किया जिसका नेतृत्व सर्वहारा वर्ग को ही करना था। मार्क्स तथा एंजेल्स ने समाजवादी विचारो को पूर्व के काल्पनिक समाजवादी विचारको से ग्रहण करके वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया लेकिन इसे क्रियात्मक स्वरूप लेनिन ने प्रदान दिया। लेनिन ने उन सिद्धान्तो की खोज की तथा उनका एकीकरण किया, जिनके आधार पर उन सिद्धान्तो को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर क्रांतिकारी शक्ति के माध्यम से पूर्ण किया जा सके।[58]

लेनिन मार्क्स के सिद्धान्तो का कट्टर अनुयायी होने के बावजूद अपने देश की विशिष्ट परिस्थितियो के कारण मार्क्स के सिद्धान्तो को स्थितियो के अनुकूल बनाने के लिये कुछ परिवर्तन आवश्यक समझता था। इससे सिद्धान्तो मे वाह्य विभिन्नता प्रतीत होती है। परन्तु आन्तरिक विचार मार्क्स से ही सम्बन्धित हैं। सेबाइन ने मतभेदों की ओर संकेत किया है कि ''लेनिन ने मार्क्स के सिद्धान्तो मे बड़ी मात्रा मे परिवर्तन किया, जिस प्रकार मार्क्स ने यह दावा किया था कि उसने हीगेल के द्वन्द्ववाद को उचित रूप प्रदान किया है इसी प्रकार लेनिन ने भी मार्क्सवाद के साथ वही किया।''[59]

जब मार्क्सवाद की भविष्यवाणियॉ मिथ्या सिद्ध होने लगी तो उससे विचारकों का विश्वास उठने लगा। अत: लेनिन ने मार्क्सवाद की ओर तुरन्त कदम बढ़ाये तथा उसे साम्राज्यवाद का नाम देकर पूंजीवाद की अन्तिम अवस्था के अनुरूप ढाल दिया। इसके विचारकों में मार्क्स के सिद्धान्तों को लेकर मतभेद पैदा हो गया था। इसी कारण यहां पर दो विचारधाराओ का निर्माण हुआ। एक का नेतृत्व प्लेख़नोव ने किया, इस वर्ग के समर्थको का विचार था कि वहां औद्योगिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव होने के कारण साम्यवादी क्रांन्ति होने में अभी बहुत समय है, क्योंकि यह पूंजीवादी व्यवस्था की चरम अवस्था मे ही संभव है। बहुसंख्यक रूसी कृषकों मे

क्रान्ति की भावना का अभाव था। अत इन विचारको का विश्वास था कि निकट भविष्य मे क्रान्ति सभव नही इसके लिये प्रयास शान्तिमय साधनो से करना चाहिये। सर्वहारा वर्ग मे अपने सिद्धान्तो का प्रचार शिक्षा के माध्यम से किया जाना चाहिये ताकि वे क्रान्ति के लिये तैयार हो सके।

दूसरा वर्ग शान्तिमय साधनो को क्रान्ति के लिये अनुपयोगी समझता था। इन साधनो से कभी साम्यवादी क्रान्ति सभव नही है। हिसात्मक साधनो से सर्वहारा वर्ग क्रान्ति का सचालन करेगा।

सन् 1903 ई. मे दोनो वर्गो मे उग्र मतभेद हो गया। लेनिन के नेतृत्व मे उग्र मतभेद रखने वालो की सख्या अधिक थी। लेनिन ने वोल्शेविक दल के माध्यम से सन् 1917 ई. मे साम्यवादी क्रान्ति को सफल बनाया। लेनिन ने निम्नलिखित सुधार मार्क्स के सिद्धान्तो मे किये.-

(1) मार्क्स के अनुसार पूॅजीवाद की चरम अवस्था के बाद ही साम्यवादी क्रान्ति संभव है, लेकिन लेनिन इसे क्रान्ति के लिये आवश्यक नही समझता था इसका प्रत्यक्ष प्रमाण रूस, जो औद्योगिक दृष्टि से अविकसित देश था, मे साम्यवादी क्रान्ति सम्पन्न हुई।

(2) मार्क्स के आर्थिक नियतिवाद (Economic Determination) के अनुसार पूजीवाद आन्तरिक विरोधो के माध्यम से पतन की ओर अग्रसर होगा। यह पतन स्वाभाविक है। उसके लिये प्रयास किया जाय या ना किया जाये। मार्क्स के ठीक विपरीत लेनिन का विचार है कि क्रान्ति आर्थिक घटनाओ के माध्यम से स्वत: नही आयेगी। इसके लिये प्रयास करना आवश्यक है।

(3) मार्क्स की घोषणा के अनुसार साम्यवादी क्रान्ति के बाद उत्पादन के साधनो-भूमि तथा उद्योग पर राज्य का स्वामित्व होगा लेकिन लेनिन ने क्रान्ति के बाद भूमि पर राज्य का स्वामित्व स्थापित नहीं किया। इससे क्रान्ति की भावनाओ के प्रति अविश्वास होना स्वाभाविक था। लेकिन देश की आर्थिक दशा सुधारने के लिये कुछ बातो मे पूंजीवादी व्यवस्था से समझौता करने के लिये नवीन आर्थिक नीति (New Economic Policy) को अपनाया।

(4) मार्क्स क्रान्ति के बाद सक्रमण काल तक सर्वहारा वर्ग की अधिनायकता को आवश्यक मानता था, इसके बाद शासन का ढॉचा लोकतत्र के स्वरूप को लिये हुये होगा, लेकिन लेनिन इस अधिनायकता को विशुद्ध शक्ति पर आधारित मानता है।

(5) मार्क्स के अनुसार, क्रान्ति की सफलता तथा नेतृत्व सर्वहारा वर्ग करेगा। परन्तु लेनिन ने विचार व्यक्त किया कि श्रमिक वर्ग की प्रवृत्ति श्रमिक संघवाद के माध्यम से अपने अधिकारो तथा आर्थिक कठिनाइयो को दूर करने की होती है। ऐसी अवस्था मे सर्वहारा वर्ग मे विरोध की भावना कुछ मन्द पड़ जाती है। लेनिन ने क्रान्ति की सफलता के लिये पेशेवर क्रान्तिकारी सगठन का निर्माण किया।

लेनिन का साम्राज्यवादी सिद्धान्त (Theory of Inperialism) -

लेनिन का विचार है कि निम्न मध्य वर्ग तथा विकासपूर्ण औद्योगिक देशो के प्रशिक्षित श्रमिको की सुरक्षा मार्क्स ने ही की है, उसने ही उन्हे संकट से बचाया है जिनकी भविष्यवाणी स्वयं उसने ही की थी। वर्गयुद्ध से रक्षा केवल औपनिवेशिक प्रदेशो के कारण हो सकी थी, क्योकि ये उनके ऊपर शासन करते थे।[60] औपनिवेशिक ज़नता के सम्बन्ध पूंजीवादियो और श्रमिको के सम्बन्ध थे। जो साम्राज्य के अभाव मे श्रमिक थे, वे साम्राज्य की उपलब्धि होते ही पूंजीपति बन गये। वास्तविक श्रमिक दुखो और शोषण की खाई मे पड़े हुये वहां के निकृष्ट निवासी रहे आये। लेनिन के मतानुसार यह स्थिति मार्क्स के विरोध मे नही, वरन् उसकी पूरक थी, यद्यपि मार्क्स ने इसका अवलोकन पूरी तरह नही किया था। मार्क्स कहता है कि जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ेगा और अन्त मे एकाधिकारी पूंजीवाद स्थापित हो जायेगा। यही प्रक्रिया आर्थिक जगत मे भी होगी। इस प्रकार के उद्योगो की एवं वित्त की स्वाभाविक प्रवृत्ति विस्तारवादी होती चली जायेगी। इसके तीन परिणाम होंगे- 'यह औपनिवेषिक जनता का शोषण करेगा, यह उसकी स्वतंत्रता का अपहरण कर उसके दुखो मे वृद्धि करेगा, और यह राष्ट्रो के बीच आपस मे युद्ध करायेगा, क्योंकि राष्ट्रीय प्रतियोगिता के लिये अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता उत्पन्न होगी और राष्ट्र अपने लिये अन्तर्राष्ट्रीय बाजार खोजेगा, तो युद्ध आवश्यक हो जायेगा।[61] अन्त मे एकाधिकारी प्रवृत्ति का विनाश हो जायेगा और नवीन व्यवस्था की स्थापना होगी। अत: मार्क्स, लेनिन के विचारानुसार गलत नही था, उसने अपनी विवेचना एक पक्षीय रखी थी। दूसरे पक्ष की ओर कम ध्यान दिया था, लेकिन उसका तर्क उचित ही था।

लेनिन का साम्राज्यवादी सिद्धान्त मार्क्स की आलोचना के विरुद्ध एक रक्षा कवच था। परन्तु लेनिन कही-कही सत्यता का अतिक्रमण भी कर गया है। ग्रेट-ब्रिटेन का साम्राज्य ससार का सबसे महान साम्राज्य था, परन्तु वह आर्थिक पूंजीवाद के द्वारा शासित कभी भी नही हुआ।

लेनिन ने पूजी के निर्यात और साम्राज्यवाद मे गहरा सम्बन्ध माना। उसके विचारानुसार जिन देशो के साम्राज्य और उपनिवेश जितने अधिक होते है, वे पूजी का उतना ही अधिक मात्रा मे निर्यात करते है। किन्तु लेनिन का यह तर्क भी सत्य सिद्ध नही हुआ।

लेनिन ने मार्क्स के भौतिकवाद तथा क्रान्तिकारी मार्क्सवाद की पुनरावृत्ति की है। लेनिन ने स्वय स्वीकार किया है कि मेरा कार्य मार्क्स की शिक्षाओ की पुनरावृत्ति करना ही है। उसने यह कार्य दो साधनो से किया। प्रथम- उसने भौतिकवाद का समर्थन किया तथा दूसरी ओर जिस साम्यवाद की उन्नति हो रही थी वह क्रान्तिकारी है, विकासवादी नही।[62] इस विचार मे भी लेनिन ने कोई नवीन विचार सलग्न नही किया। उसकी व्याख्या कट्टर सिद्धान्तवादी ही है। लेनिन ने मार्क्स के क्रान्तिकारी तत्वो पर बल दिया है।

मार्क्स अपने अन्तिम समय मे यह स्वीकार करने लगा था कि उद्योगो की दृष्टि से विकासशील देशो मे समाजवाद का स्थापन क्रान्ति के बिना शान्तिपूर्ण साधनो से भी हो सकेगा। लेकिन लेनिन ने इस मत का खण्डन किया तथा क्रान्ति को समाजवादी समाज की स्थापना के लिये अनिवार्य माना। लेनिन ने न केवल क्रान्ति की अनिवार्यता पर बल दिया वरन् कार्य पद्धति तथा उन नीतियो पर भी प्रकाश डाला जिनके माध्यम से सन् 1917 ई. की साम्यवादी क्रान्ति सफल हुई। लेनिन ने विश्व की क्रान्तियों का सूक्ष्म अध्ययन किया। उसने माना कि 'विद्रोह करना भी एक कला है, इसके कुछ नियम है- इन नियमो को कुछ व्यक्ति ही लागू तथा सफल बना सकते हैं।'[63] लेनिन की सबसे बड़ी देन 'पेशेवर क्रान्तिकारी सगठन' (Protessional Revalutionary Organ) की है।

लेनिन का क्रान्तिकारी-दल सम्बन्धी विचार मार्क्स के व्यावसायिक समूहो से सम्बन्धित विचारो का सूक्ष्म रूप है। वह मार्क्स के इन विचारों को उचित नही समझता कि कम्युनिस्ट पार्टी को मजदूरों का मालिक नहीं, उनकी सुरक्षित शक्ति होना चाहिये। लेनिन बुद्धिमानो के कर्तव्यों के विषय मे एक अमार्क्सवादी सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। स्वतंत्रता अर्जन उसके लिये बुद्धिमानों का कार्य है जबकि मार्क्स के लिये श्रमिकों का। उसका कथन है कि श्रमिक स्वय समाजवादी नही हो सकते, व्यापारिक संघवाद तथा क्रान्तिकारी सिद्धान्त उनके बीच मध्यम वर्ग के विवेकशील लोगो द्वारा ही लाये जा सकते है।[64]

लेनिन का विचार था कि दल उन व्यक्तियो को लेकर ही बनाया जाता है जो क्रान्ति के उद्देश्य के प्रति सबसे अधिक निष्ठावान होते है। जब तक उनमे सगठन, कार्यवाही व अनुशासन की एकता नही है तब तक दल का सगठन नही किया जा सकता। दल का संगठन जब केन्द्रीयतावाद के नियमो पर किया जाता है तब ही वह एक सूत्र मे आबद्ध हो सकता है। केन्द्रीय सस्थाओ का संचालन स्वीकार करने का अभिप्राय है, दल मे रहने से इनकार कर देना। इसका अर्थ है दल मे मतभेद पैदा करना।[65] लेनिन द्वारा प्रतिपादित साम्यवादी दल के सगठन से तीन निष्कर्ष निकलते है। ये तीनो ही मार्क्स के सिद्धान्तो से साम्यता नही रखते इनमे से प्रथम है- क्रान्ति का कारण विचार है, उत्पादन की भौतिक शक्तिया नही। यह विचार मार्क्स के विचारों के बिल्कुल विरुद्ध है। दूसरा- लेनिन शक्ति के प्रयोग का प्रबल समर्थक था, परन्तु मार्क्स तथा एंजेल्स परिस्थितियो के अनुसार साधनो पर बल देते है। तीसरा- क्रान्ति सदैव हिसात्मक साधनो के माध्यम से उद्देश्य की प्राप्ति कर सकती है लेकिन मार्क्स क्रान्तिकारी जनता की शक्ति मे विश्वास रखता है।

इस विचार-विश्लेषण से कभी-कभी यह प्रतीत होता है कि लेनिन ने मार्क्स के सिद्धान्तो के अनुकूल अपने विचारो का प्रतिपादन नही किया, वही यह भी प्रतीत होता है कि लेनिन रूढ़िवादी मार्क्सवादी है। उसने ट्राटस्की के इस विचार का प्रबल विरोध किया कि पूंजीवादी क्रान्ति से ही समाजवादी क्रान्ति का विकास होगा। यह प्रेरित अवसरवाद ही था, सैद्धान्तिक दोष सिद्धि नही, जिसने कि सन् 1917 ई. की रूसी क्रान्ति मे उसे अपनी स्थिति परिवर्तित करने के लिये बाध्य कर दिया था। अत: यह विचार कि पूंजीपति वर्ग तथा सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति के लिये समय दिया जाना चाहिये, एक ऐसी गुत्थी है जो उसके सिद्धान्त तथा दल सम्बन्धी विचारों से सम्बद्ध है।

सर्वहारा वर्ग की अधिनायकता सम्बन्धी नियमो मे भी लेनिन ने कई मौलिक परिवर्तन किये। मार्क्स के अनुसार- 'राज्य एक ऐसी सस्था है जो शोषण पर आधारित है।' अत: पूजीवादी व्यवस्था को समाप्त कर देने के बाद भी वहां सर्वहारा वर्ग की निरंकुश व्यवस्था उसी प्रकार बनी रहेगी जिस प्रकार क्रान्ति के पूर्व पूंजीवादी वर्ग की निरंकुश व्यवस्था मौजूद थी। लेकिन मार्क्स का विचार था कि सर्वहारा वर्ग का निरंकुश तंत्र विश्व में सबसे अधिक प्रजातांत्रिक राज्य होगा। मार्क्स ने 'कम्युनिस्ट घोषणा पत्र' मे लिखा है कि 'क्रान्ति मे सर्वहारा वर्ग का पहला कार्य शासक बन कर प्रजातंत्र की स्थापना करना होगा।' एंजेल्स ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया था कि- 'यदि कुछ निश्चित है तो यह कि हमारा दल तथा

सर्वहारा वर्ग शक्ति तब ही प्राप्त कर सकते है जबकि वहा प्रजातत्र की स्थापना की जाय। यह सर्वहारा वर्ग का निरकुश तत्र है, जो फ्रान्स की क्रान्ति से प्रमाणित हुआ है।' किन्तु लेनिन यह स्वीकार करता है कि श्रमिको मे न क्रान्तिकारी भावना निहित होती है और न ही क्रान्ति की दिशा मे वे सामर्थ्य रखते है। यह केवल सुव्यवस्थित सगठन ही कर सकते है। लेनिन इसे सर्वहारा वर्ग की अधिनायकता कहता था किन्तु वास्तविक अर्थ मे यह सर्वहारा वर्ग अधिनायकता के स्थान पर, क्रान्तिकारी दल की सर्वहारा वर्ग पर स्थापित की जाने वाली अधिनायकता है। लेनिन ने 'स्टेट एण्ड रिवोल्यूशन' मे लिखा है कि 'क्रान्ति के बाद राज्य का राजनीतिक रूप पूर्ण प्रजातंत्र हो जाता है।' लेनिन भी मार्क्स के समान सर्वहारा वर्ग की निरकुशता को प्रजातत्र का आधार मानता है। लेनिन ने लिखा है कि- ''सर्वहारा वर्ग को बलपूर्वक एकतत्र के विरोध को कुचलने के लिये और पूजीपति वर्ग की अस्थिरता को निष्क्रिय कर देने के लिये अधिकांश किसानो को अपने साथ जनवादी क्रान्ति की पूर्ति तक पहुचना चाहिये।''[66]

स्टालिन ने लेनिन की सर्वहारा वर्ग की अधिनायकता के दो रूप माने है- प्रथम, सर्वहारा वर्ग को साम्यवादी क्रान्ति को पूर्ण बनाने का साधन बनाना है। दूसरा, यह पूँजीपति वर्ग पर शासन करने वाला सर्वहारा वर्ग का राज्य है, क्रान्ति से पूर्व के राज्यो में अल्पसख्यक वर्ग (पूंजीवादी वर्ग) बहुसंख्यक वर्ग का (सर्वहारा वर्ग) शोषण करता था। लेनिन ने कहा है कि चाहे हमारा बहुमत ही क्यो न हो फिर भी हमे अधिनायकता की आवश्यकता इसलिये है कि हम पूंजीपतियो के विरोध को समाप्त कर सके, क्रान्ति के विरोधी वर्ग को समाप्त कर सके, पूंजीवादी वर्ग के विरुद्ध जनता की सत्ता कायम रख सकें।

लेनिन के बाद मार्क्सवादी सिद्धान्तो का प्रसार कार्य रूस मे स्टालिन तथा खुश्चेव ने किया। सैद्धान्तिक दृष्टि से स्टालिन ने मार्क्स तथा लेनिन के मौलिक सिद्धान्तो मे उग्र परिवर्तन किये। उसने राज्य संस्था की समाप्ति को काल्पनिक बता कर लोकतंत्र की स्थापना, क्रान्ति के बांद के विचार का परित्याग कर दिया।

समाजवाद का अन्य पश्चिमी देशों में विकास :-

सन् 1889 ई. में द्वितीय इण्टरनेशनल ब्रुसेल्स मे आयोजित की गयी। इसमे समाजवाद को विश्व स्तर का आन्दोलन बनाने का प्रस्ताव रखा गया। इससे पूर्व भी इण्टरनेशनल का आयोजन हो चुका था, परन्तु इस प्रकार का प्रस्ताव नही रखा गया था। इसमे संकेत किया गया

कि समाजवाद को विभिन्न देशो की परिस्थिति के अनुरूप ढाला जाय। जर्मनी के समाजवाद को विश्व स्तर पर संचालित करने का दायित्व ग्रहण किया गया। इर्फोर्ट प्रोग्राम (सन् 1891 ई.) ने इस विचारधारा के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण शक्ति तथा सहयोग प्रदान किया। मार्क्सवाद की वैज्ञानिकता तथा नैतिकता के सम्बन्ध मे पश्चिमी प्रजातन्त्रात्मक देशो मे कुछ विरोधी प्रवृत्ति का विकास होने लगा था। इस विभिन्नता तथा मतभेदो के कुछ कारण थे। क्योकि यूरोपीय देशो मे अभी भी व्यवस्था- सम्बन्धी विभिन्नता मौजूद थी, परन्तु सबसे महत्वपूर्ण व प्रभावी सामन्तवादी विचारधारा थी। कुछ देशो मे कुलीनतत्री तथा सर्वाधिकारवादी व्यवस्थाएं भी मौजूद थी। वे सभी व्यवस्थाए प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सर्वहारा वर्ग के शोषण का कारण अवश्य थी, इसी कारण से विरोध की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी। अब सर्वहारा वर्ग आर्थिक अधिकारो के लिये ही नही, बल्कि राजनीतिक अधिकारो के लिये भी सघर्षरत था। यूरोपीय देशो मे बुर्जुआ वर्ग अपने राजनीतिक व आर्थिक अधिकारो व उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये धर्म का सहारा ले रहा था जो कि सामाजिक शोषण का सबसे बड़ा साधन था। पश्चिमी प्रजातत्र सर्वहारावर्ग तथा पूजीवादी वर्ग मे सहयोग व समझौता की विचारधारा के विकास के लिये प्रयत्नशील था। केन्द्रीय तथा पूर्व के यूरोपीय देशो मे सर्वहारा वर्ग तथा पूजीवादी वर्ग के मध्य असमानता बराबर बढ़ती जा रही थी। इन देशो मे सर्वहारा वर्ग के संघर्ष को हीन दृष्टि से देखा जाता था।

समाजवाद के सम्बन्ध मे विभिन्न राष्ट्रो की परिस्थितियां विभिन्न प्रकार की थी। उन्ही परिस्थितियो के अनुरूप समाजवादी विचारधारा को ढालना आवश्यक था। जर्मनी में आध्यात्मवाद तथा भावनात्मक शिक्षा जनता की दास प्रवृत्ति के मूल कारण थे। इसलिये सर्वप्रथम यह प्रश्न सामने आया कि इस प्रवृत्ति को समाप्त किया जाय वहा मार्क्सवादी साजवाद का विकास समाज की इसी विरोधी प्रवृत्ति के फलस्वरूप हुआ। भविष्य मे समाजवादी विचारधारा के विकास के लिये इस आध्यात्मवादी विचारधारा को समाप्त करने के लिये इंग्लैण्ड और फ्रान्स में आन्दोलन का विकास होने लगा। फ्रान्स तथा इंग्लैण्ड मे मानवतावाद तथा व्यक्तिवादी विचारधारा अपनी चरम अवस्था पर थी। ये दोनो विचारधाराये मार्क्स के अनुसार शोषण व पूंजीवादी वर्ग के विकास मे सहायक थी। इसलिये इनको समाप्त करना अति आवश्यक था। व्यक्तिवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप इंग्लैण्ड तथा फ्रान्स मे समाजवादी विचारधारा का जन्म हुआ। विश्व में रूस को छोड़कर किसी देश में प्रत्यक्ष रूप से समाजवादी समाज की स्थापना नही हुई थी, परन्तु जर्मनी ने इसके विकास मे महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया। सन् 1878 ई. से सन् १८९० ई. मे जब इस विचारधारा के समर्थकों को देश से निकाल दिया गया तब उन्होने

भूमिगत सगठन कायम किये तथा जर्मनी मे प्रजातत्रात्मक समाजवादी दल एक सगठित शक्ति के रूप मे उभर कर सामने आया। लेकिन इस दल का आधार प्रजातत्रात्मक था। मार्क्स के सर्वहारा वर्ग के आधिनायकत्व को इसमे स्थान नही दिया गया था।

समाजवाद एक मानवीय अपील के रूप मे विश्व के सभी देशो मे फैलने लगा तथा मार्क्सवाद की प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति मे कमी आने लगी। इसका प्रधान कारण बदलती हुई परिस्थितियां थी। सन् 1912 ई. मे जो इन्टरनेशनल आयोजित की गयी उसमे फ्रेन्च समाजवादी बेसल जीन जोरिस ने इसमे नैतिकता की स्थापना का पुन विचार रखा। इस परिवर्तन से समाजवादी विचारधारा की कठोरता तथा उग्रता मे कमी आने लगी। एंजेल्स तथा मार्क्स ने अपने अंतिम चरण मे इस परिवर्तन की ओर संकेत किया था। एंजेल्स ने सन् 1895 ई. मे यह स्वीकार किया कि मार्क्सवाद के नवीन संस्करणो, जैसे - वर्ग संघर्ष जैसा कि फ्रॉन्स की क्राति मे हुआ, पर पुर्नविचार करने की आवश्यकता है। मार्क्सवादी दर्शन की कठोरता तथा उग्रता पर पुन. विचार किया जायेगा तथा समाजवाद को राष्ट्रीय परिस्थितियो के अनुरूप ढ़ाला जायेगा। साथ में सिद्धान्त एवं व्यवहार मे साम्यता स्थापित करने का प्रयास किया जायेगा।

जर्मनी मे मार्क्सवादी दर्शन मे सुधार स्वरूप सशोधनवाद का विकास हुआ, जो बर्न्सटीन के 'संशोधनवाद' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसका प्रथम कारण यह था कि मार्क्सवाद अपने को परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित करने मे 'असमर्थ हो रहा था। जर्मनी मे पूँजीवादी म्यूल वर्गर का काफी प्रभाव था तथा अस्तित्ववादी ड्यूहरिंग का बोलबाला था, लेकिन सर्वहारा वर्ग का इस पर कोई विशेष प्रभाव नहीं था। सर्वहारा वर्ग के आन्दोलन मे मार्क्सवाद का अन्य सभी विचारधाराओं की अपेक्षा प्रभाव निर्विवाद रूप से दृष्टिगोचर होने लगा था। लैटिन देशो मे जहा प्रूधोवाद की परम्पराएं सबसे अधिक समय तक बनी रही, लेकिन यहां पर भी श्रमिक वर्ग ने अपने दलो के संगठन को मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर स्थापित करने का प्रयास किया। जब मार्क्सवाद ने न्यूनाधिक रूप में उन सभी विचारधाराओ को जो उसके विरुद्ध थी, परास्त कर दिया तो उन सिद्धान्तों में अभिव्यक्त प्रवृत्तियाँ अपने लिये दूसरा मार्ग ढूंढने लगी। संघर्ष के रूप तथा उसके उद्देश्य तो बदलते गये परन्तु संघर्ष जारी रहा और मार्क्सवाद की दूसरी अर्द्ध शताब्दी का प्रादुर्भाव मार्क्सवाद के अन्दर ही मार्क्सवाद की विरोधी एक प्रवृत्ति से हुआ।

बर्न्सटीन (१८५०-१९२५) जो समाजवादी विचारधारा के समर्थक थे, उन्होने ही मार्क्सवाद के अन्दर सुझाव का प्रस्ताव रखा जो 'संशोधनवाद' के नाम से प्रसिद्ध हुआ, लेकिन यह प्रवृत्ति मूलरूप से मार्क्सवाद के मूल सिद्धान्तो के विरुद्ध थी। इस संशोधनवाद ने

मार्क्सवाद के अन्दर इतना विस्तृत सशोधन किया कि उसका स्वरूप ही परिवर्तित हो गया। दर्शन के क्षेत्र मे सशोधनवाद ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बर्न्सटीन 'सोशलिस्ट पेपर' का सम्पादक था। उसने सन् 1899 ई. मे अपनी पुस्तक विकासवादी समाजवाद (Evolutionary Socialism) का प्रकाशन किया। उसने अपने पत्र मे उन सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया जिनके आधार पर मार्क्सवाद मे सुधार करना चाहते थे। बर्न्सटीन ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या, द्वन्द्वात्मक, अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त तथा समाज का क्रान्तिकारी विकास, पूजीवादी समाज के विकास एव पतन के कारणो मे समय के अनुसार सुधार की योजना बनाई क्योकि मार्क्स की भविष्य मे सम्बन्धित घोषणाए सत्य सिद्ध नही हुई। इसलिए परिस्थितियो के अनुकूल उनमे सशोधन होना चाहिए।[67]

राजनीति के क्षेत्र मे ससोधनवादियो ने मार्क्स के मूल सिद्धान्त 'वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त' मे संशोधन का प्रस्ताव रखा कि राजनीतिक स्वतत्रता व जनवाद तथा मताधिकार के कारण वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त का कोई महत्व ही नही रह गया है। साम्यवादी घोषणा पत्र का यह विचार कि श्रमिको का कोई देश नही होता , निर्थक हो गया है। उनका तर्क था कि जनवाद मे बहुमत की इच्छा ही मूलभूत होती है, इसलिए हमे न तो राज्य को वर्गशासन का साधन समझना चाहिए और न प्रतिक्रियावादियो के विरुद्ध प्रगतिशील समाज तथा सुधारवादी पूजीपति वर्ग के साथ समझौते के विचार को ही महत्व दिया जाना चाहिए। सशोधनवादियों द्वारा उठायी गयी उन आपत्तियो ने मिल कर सुस्पष्ट विचार-पद्धति का अर्थात प्राचीन तथा सुपरिचित उदारवादी पूंजीवाद के विचारो का रूप धारण कर लिया था। उदारवादी प्रारम्भ से ही कहते आ रहे थे कि संसदीय प्रणाली वर्ग विभाजन को शनैः शनैः समाप्त कर देती है, क्योंकि बिना किसी भेदभाव के सभी नागरिको को मतदान तथा राज्य के मामलो मे समान भाग लेने का अधिकार दिया जाता है। संशोधनवाद की अनिवार्यता आधुनिक समाज मे उसके कार्गत आधारो द्वारा निर्धारित होती है। संशोधनवाद एक अनिवार्य घटना है। किसी भी ऐसे समाजवादी विचारक को जिसे समाजवाद के सम्बन्ध मे सन्देह नही होगा कि जर्मनी मे कट्टरपंथियो तथा बर्न्सटीनवादी विचारको फ्रान्स मे गेरेवादी तथा जोरेशवादी, ग्रेट ब्रिटेन मे सामाजिक जनवादीसंघ तथा स्वतंत्र लेबर पार्टी तथा बेल्जियम के बुकर तथा बैडरवेल्डे के समर्थक, इटली में सुधारवादी तथा परम्परावादी और रूस मे मोन्सेविको व वोल्शेविक के मध्य जो सम्बन्ध हैं वे इन सब देशो की वर्तमान अवस्था मे राष्ट्रीय परिस्थितियों एवं एतिहासिक तत्वो के बावजूद गहन अन्तर होते हुए भी सब में एक सी ही मूल भावना निहित थी। सशोधनवाद अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का आन्दोलन न बन सका इसका प्रधान कारण इसमे मौलिक विचारो का अभाव था। जर्मनी मे जो

सशोधनवाद का उदय हुआ उसमे उदारवादी समाजवाद के वे तत्व मौजूद थे, जो इंग्लैण्ड की व्यक्तिवादी विचारधारा मे, जे.एस.मिल तथा टॉमस पेन के विचारो मे निहित थी। वस्तुत यह प्रतिक्रिया के रूप मे उदारवादी समाजवाद के समक्ष उभर कर आयी थी, यह विचार कुछ समय बाद हेनरी जार्ज द्वारा रचित पुस्तक (Progress and poverty san from 1879) मे स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया कि भूमि पर एकाधिकार तथा श्रम बिना लगान के सिद्धात का दृढ़ रूप से विरोध किया जाये तथा उसे अनुचित सिद्ध करने का प्रयास किया जाय।

इग्लैण्ड मे मार्क्सवादी विचारधारा किसी दूसरी विचार धारा के रूप मे उभर कर सामने नही आयी। यद्धपि इंग्लैण्ड मे गिल्ड समाजवादी विचारधारा का विकास हुआ, लेकिन वह मार्क्सवाद के प्रभाव से शून्य थी। हालाकि इग्लैण्ड मे बुद्धिजीवी वर्ग मार्क्सवाद से काफी प्रभावित हुआ और उसने इस सबध मे सहयोग भी प्रदान किया। चार्टिस्ट आन्दोलन के विघटन के बाद इस विचारधारा के विकास मे गतिरोध पैदा हो गया था लेकिन मजदूर वर्ग को आन्दोलन ने बहुत ही अवसरवादी दृष्टिकोण अपनाया था। सन् 1880 ई. मे स्वतत्र प्रतिक्रिया के रूप मे समाजवादी विचारधारा का विकास हुआ। इंग्लैण्ड मे हाइडमैन ने मार्क्सवादी विचारधारा के विकास का प्रयत्न किया, लेकिन मजदूर वर्ग पर उसका कोई प्रभाव नही पड़ा। सन् 1894 ई. हालैण्ड में प्रजातंत्रात्मक समाजवादी दल का संगठन किया गया तथा बुद्धिजीवी वर्ग पर इसका काफी प्रभाव पड़ा। डेनमार्क मे प्रजातंत्रात्मक समाजवादी आन्दोलन की शुरुआत सन् 1871 ई. मे हुई। इस आन्दोलन का प्रभाव तथा इसकी शक्ति बराबर बढती गयी। यूरोप का कोई देश समाजवादी विचारधारा के प्रभाव से मुक्त नहीं था। सभी देशो में मजदूर वर्ग के आन्दोलन तथा संगठन की प्रक्रिया बराबर बढ़ती गयी।[68]

समाजवादी विचारधारा के प्रादुर्भाव तथा विकास मे फ्रान्स अग्रगण्य रहा है। फ्रान्स मे मार्क्सवादी विचारधारा का भी विकास हुआ, परन्तु दूसरे रूप मे। फ्रान्स मे अग्रेरियन समाजवाद का विकास हुआ, जो उदार समाजवाद का ही रूप था। इटली मे समाजवादी विचारधारा का उदय स्वतंत्र रूप से हुआ। यहां सन् 1892 ई. मे समाजवादी दल की स्थापना की गयी। इस दल मे कुछ मात्रा में क्रान्तिकारिता को अपनाया गया तथा इस कारण इसका सरकार के साथ मतभेद पैदा हो गया। इस दल ने क्रान्तिकारी साधनो के माध्यम से समाजवाद की स्थापना करने का प्रयास किया। उस समय इटली के सर्वहारा वर्ग पर आर्थिक तथा राजनीतिक शिक्षा का प्रभाव बढ़ता रहा था। इस दल का सबसे अधिक प्रभाव किसानों पर पड़ा।[69]

स्पेन मे समाजवादी विचारधारा के विकास का कारण वहा की औद्योगिक स्थिति थी, क्योकि स्पेन की औद्योगिक प्रणाली तथा राजनीतिक दशा ठीक नही थी। इसी प्रतिक्रिया के रूप मे सर्वहारा वर्ग मे समाजवादी विचारो का प्रभाव बढ़ने लगा। इटली के समाजवाद का रूप उदारवादी था फिर भी वहां के समाजवाद मे मार्क्सवाद तथा अराजकतावाद के तत्व मौजूद थे। यद्यपि जिस तीव्रता के साथ समाजवाद का विकास फ्रान्स, जर्मनी तथा रूस मे हुआ, उतनी तीव्रता के साथ पूर्वी यूरोपीय देशो मे नही हुआ। सर्बिया तथा बुल्गारिया मे भी समाजवादी सिद्धान्तो का विकास समाजवादी दलो के माध्यम से हुआ। आस्ट्रिया की प्रजातांत्रिक समाजवादी पार्टी ने वहा पर समाजवादी विचारधारा के विकास मे काफी योगदान दिया परन्तु इस दल ने भी उसी प्रकार के कार्यक्रमो को अपनाया जिस प्रकार के कार्यक्रम यूरोपय के देशो की समाजवादी पार्टियो ने अपनाये थे।

संयुक्त राज्य अमेरीका मे समाजवाद का विकास दूसरे रूप मे हुआ क्योकि अमेरिका की सामाजिक तथा आर्थिक दशा अन्य देशो की अपेक्षा काफी अच्छी थी। इन सामाजिक दशाओ ने समाजवाद के विकास को काफी सीमा तक प्रभावित किया। अमेरिका मे स्वतंत्र राजनीतिक संस्थाये मौजूद थी तथा सामन्तवाद के प्रभाव से कुछ सीमा तक वहां का समाज मुक्त था। श्रमिक वर्ग की आर्थिक दशा काफी अच्छी थी। इसी कारण उसके अन्दर हीनता की भावना नही थी। इन सब कारणो ने मार्क्स के वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त के विकास मे अवरोधक का कार्य किया। काल्पनिक समाजवाद की योजना के आधार पर समाजवादी कालोनी बनाने का प्रयास किया गया था, परन्तु उसमे सफलता नहीं मिल पायी थी। सर्वप्रथम सन् 1877 ई. व सन् 1887 ई. मे मजदूर वर्ग ने प्रभावित होकर आन्दोलन किये जो कि एक प्रकार से क्रिस्ट आन्दोलन के समान था।[70] औद्योगिक संघवाद के विरुद्ध वहां भी डेनियल डिलो ने लेनिन की विचारधारा के विकास का प्रयास किया।[71] एडवर्ड बेलेमी (Edward Bellany) की 'लुकिंग बैकवर्ड (Looking Backward) पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक मे श्रमिको की समस्याओ की विवेचना की गयी। इसका श्रमिक वर्ग पर काफी प्रभाव पड़ा। औद्योगिक संघवाद जो अमरीका मे काफी तीव्रता से विकसित हो रहा था, वह एक प्रकार से पश्चिमी संसदात्मक विचारधारा का सुधरा रूप था, जो मोरिस तथा हिल्फवाइट के द्वारा प्रतिपादित किया गया था। वहां पर जो समाजवादी विचारधारा विकसित हुई उस पर स्पष्ट रूप से उदारवादी विचारधारा का प्रभाव था।

प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद समाजवादी विचारधारा का विकास -

समाजवादी विचारधारा पर प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध की घटनाओ ने काफी प्रभाव डाला। एक ओर जहा समाजवाद का क्षेत्र विस्तृत होतां गया, वहा दूसरी ओर उसकी क्रान्तिकारिता मे कमी आती गयी। इसका कारण अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिया थी, जिनमे 19वी शताब्दी के बाद काफी परिवर्तन आ गया था, मार्क्स का सिद्धान्त कि राज्य शोषण का साधन है गलत साबित होता गया तथा तात्कालिक समय मे जो शासन व्यवस्था थी उसमे मूलत. परिवर्तन होता गया। वह प्रजातंत्र के प्रतिबिम्ब के रूप मे सामने आया। यह कहना तो उचित है कि समाज के अन्दर वर्ग विभाजन को समाप्त करने के लिये साम्यवादी व्यवस्था का निर्माण आवश्यक है। इस व्यवस्था से सम्बन्धित जो प्रश्न पैदा होता है वह है कि शासन व्यवस्था किस प्रकार की होनी चाहिये? इसका उत्तर प्रो. केल्सन ने दिया है कि साम्यवादी व्यवस्था मे 'मनुष्य मनुष्यो के ऊपर शासन नही, न ही शासन वस्तुओ तथा समाज के ऊपर होगा बल्कि वे स्वय अपने को शासित करेगे।' इसी प्रकार विचार बर्टेन्ड रसेल ने दिया है कि- 'इस विचारधारा के माध्यम से सर्वव्यापी साम्यता की विचारधारा का विकास होगा, कोई भी आर्थिक आदर्श केवल पूर्णरूप से आदेश होगा न कि बिना हस्तक्षेप के किसी भी वस्तु पर अधिकार।' दुर्खीम ने भी इसी तथ्य की ओर संकेत किया है कि 'व्यक्ति अपनी आवश्यकताओ के लिये किसी दूसरे पर दबाव नही डालेगा तथा अपने अधिकार का कोई भी व्यक्ति दुरुपयोग नही करेगा, उसके आदेश मे दूसरो के अस्तित्व का ध्यान रखा जायेगा। नैतिक शक्ति के आदर्श को भी महत्व दिया जायेगा, क्योंकि वह अस्तित्व को कायम रखने के लिये अनिवार्य है। नैतिक आधार पर ही सर्वोच्चता प्राप्त होगी तथा हमे बताया जायेगा कि तुम वहां मत जाओ या वह कार्य मत को।'

जो कुछ भी वैज्ञानिक समाजवादी विचारधारा मे समवर्ती विचार हो सकता है उसके माध्यम से एक नवीन सभ्यता का निर्माण होगा तथा वह अवश्य ही समाज विज्ञान को प्रभावित करेगी। इस नवीन समाजवादी व्यवस्था के माध्यम से अवश्य ही पूंजीवादी व्यवस्था की समाप्ति मे सहयोग प्राप्त होगा। यह नवीन समाजवादी विचारधारा, सर्वप्रथम समाज के कार्यशील वर्ग को संगठित करेगी एवं मानवता के आधार पर समाज की ऐतिहासिक प्रक्रिया में सहयोग की चेतना का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विकास करने मे सहायक होगी। इस नवीन व्यवस्था के द्वारा मानवता के आधार पर युद्ध की प्रक्रिया की समाप्ति की जायेगी एवं नवीन प्रकार की नैतिकता तथा समाजवाद के विकास मे सहायक होगी।

समाजवाद व्यक्तिवाद के समान नही है बल्कि आधुनिक युग मे सहकारिता के विचार का विकास करेगा। इसके विरोधी केवल उन्ही तथ्यो का विरोध करेगे जो कि दासता तथा प्राकृतिक अधिकार का समर्थन करते है। वर्तमान समय मे समाजवाद के विचारधारा के पीछे जो कमी नजर आती है वह परिस्थितियो के अनुरूप परिवर्तित होने का अभाव है।

साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस ने जिसमे वोल्शेविज्म क़ी अनुदारता व क्रान्तिकारिता मे शका उत्पन्न कर दी थी, जिसने पश्चिमी समाजवाद को नया रूप प्रदान करने के अयोग्य बना दिया था, उसी क्रान्तिकारिता के प्रभाव से एक नयी फासिस्टवादी विचारधारा का जन्म हुआ जिसने समाजवादी विचारधारा के प्रति शका तथा घृणा का भाव पैदा किया। यह समाजवादी विचारधारा (साम्यवाद) केवल नयी विचारधारा के माध्यम से ही बोल्शेविज्म के अन्दर पैदा हुई विरोधी प्रवृत्तियो एव राष्ट्रीय तथा फासिस्टवादी शक्तियो को समाप्त करके नयी व्याख्या के माध्यम से ही नैतिक तथा सामाजिक आदर्शो को कायम रख सकती है। निल ने माना था कि लगभग 80 वर्षो के बाद सभी को अपनी इच्छानुसार साम्यवादी व्यवस्था को अपनाना पड़ेगा, क्योकि वर्तमान समाज ऐसी परिस्थिति से गुजरेगा जो अन्याय पर आधारित होगा। व्यक्तिगत सम्पत्ति से सम्बन्धित सस्थाएं ही ऐसी स्थितियो को पैदा करने मे सहायक होगी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद समाजवाद के विकास मे अभूतपूर्व प्रगति हुई। समाजवादी विचारधारा विश्व के दो भागों में विभाजित हो गयी। क्रान्तिकारी समाजवाद की स्थापना पूर्वी यूरोप के देशो, पोलैण्ड, चेकेस्लोवाकिया, बल्गारिया, अल्बानिया, हंगरी, रूमानिया, यूगोस्लाविया आदि देशो मे की गयी। सन् 1949 ई. में चीन मे साम्यवादी शासन की स्थापना से समाजवाद के क्षेत्र में असाधारण वृद्धि हुई। दूसरी ओर उदारवादी समाजवाद के क्षेत्र मे भी वृद्धि होनी प्रारम्भ हो गयी। इसका प्रधान कारण वैज्ञानिक साधनो से समाजवाद की स्थापना है जिसे प्रत्येक प्रजातंत्रात्मक तथा पूंजीवादी देशो में स्वीकार किया है।

आधुनिक समाजवादी आन्दोलन समाजवाद के भिन्न रूपो का सम्मिश्रण है। काल्पनिक समाजवादियों के विचारों ने समाजवादी विचारको को काफी प्रभावित किया है। उनके मस्तिष्क में विश्व को एक नवीन आधार पर संगठित करने की रूपरेखा का प्रादुर्भाव हो गया है। मार्क्सवाद जो समाज के आर्थिक तत्व पर अधिक जोर देता है तथा वर्ग विभाजन को समाप्त करने के लिये वर्ग संघर्ष को अनिवार्य मानता है, उदारवादी समाजवाद जो वैज्ञानिक साधनो के माध्यम से समाज के निरन्तर विकास को एक नवीन सामाजिकता की ओर ले जाना चाहता है, सिंडिकेलिज्म तथा गिल्ड सोशलिज्म जिसका उद्देश्य उत्पादनकर्ताओ को उत्पादित उद्योगो

मे अधिकार दिलाना है। समाष्टिवाद जो सर्वहारा वर्ग की अधिनायकता का पक्षपाती है और पूजीवादी व्यवस्था का विरोधी है- आदि समस्त रूप हमे वर्तमान समाजवाद मे मिलते है। इन समस्त आन्दोलनो का उद्देश्य एक ऐसी औद्योगिक तथा सामाजिक प्रणाली का निर्माण करना है जिसका उद्देश्य लाभ के स्थान पर जन-समुदाय की सेवा करना हो और जो उत्पादन तथा वितरण के सामूहिक आधार पर स्थापित हो। वर्तमान समाजवादी प्रणाली सामाजिक एव आर्थिक व्यवस्था के दोष, पूजी का असमान तथा अन्यायपूर्ण वितरण, औद्योगिक अधिकार की असमानता व जीविकोपार्जन के अनिश्चय को समाप्त कर देना चाहती है। इस परिवर्तन को लाने के लिये समाजवाद के समस्त सम्प्रदाय सर्वहारा वर्ग की अपेक्षा करते है।

समाजवाद की विभिन्न विचारधाराएं -

फेबियनवाद तथा उदार समाजवाद (Fabianism and Liberal Socialism) - फेबियनवाद का अभ्युदय जनवरी सन् 1884 ई. मे इंग्लैण्ड की फेबियन सोसायटी के साथ हुआ। फेबियनवाद का विश्वास है कि क्रान्तिकारी हिसात्मक कार्यक्रम भद्दा एव अमानवीय है।[72] यह संवैधानिक तरीको मे आस्था रखता है। फेबियनवादी राजनीतिक सस्थाओ का पूर्ण उपयोग करने, अधिकाधिक व्यक्तियो को मताधिकार दिलाने, चुनावों में अपने उम्मीदवारो को खड़ा करने तथा समाजवादी विधि निर्माण मे विश्वास करते है। पीज का विचार है कि फेबियन सोसाइटी समाजवाद के मत का प्रचार करने मे, उसके प्रति सहानुभूति पैदा करने मे और स्त्री-पुरुषो को समान नागरिकता के अधिकार देने मे विश्वास रखती है।[73] यह विचारधारा भूमि और व्यावसायिक पूंजी से व्यक्तिगत और वर्गगत स्वामित्व हटा कर उस पर राष्ट्रहित के लिये राष्ट्र का स्वामित्व स्थापित कर समाजवादी प्रजातत्र का निर्माण करना चाहती है। फेबियनवादी समाज मे उत्पत्ति, वितरण, विनिमय और उपभोग की उन समस्त वस्तुओ का, जहां कि राष्ट्र व्यक्ति से श्रेष्ठतर है, राष्ट्रीयकरण होगा। फेबियन विचारको के अनुसार मूल्य का सृजन समाज करता है, न कि श्रमिक अथवा कोई वर्ग-विशेष। अत: उसका वितरण भी सामाजिक होना चाहिये। धन का उपयोग समाज की भलाई के लिये होना चाहिये, न कि किसी व्यक्ति विशेष अथवा वर्ग व समूह के लिये।[74]

फेबियनवादी विचारकों का एक महत्वपूर्ण ध्येय यह भी है कि समस्त व्यवस्था पूर्ण लोकतांत्रिक हो। उद्योगो का संगठन तथा सचालन एक जनतांत्रिक एवं विकेन्द्रित प्रणाली द्वारा होना चाहिये, जिसमे शासन जनमत के प्रति पूर्णरूपेण उत्तरदायी हो। इसी कारण वे स्थानीय

सरकारो के महत्व पर अधिक बल देते है। इस प्रकार फैबियनवादियो के लिये समाज की प्रगति का आधार केवल शक्ति नही, बल्कि विवेक-सम्मत विश्वास तथा सामाजिक न्याय को प्राप्त करने की नैतिक भावना द्वारा उत्प्रेरित शक्ति है।

उदार समाजवाद फेबियनवाद का ही परिवर्तित रूप है। उदार समाजवादी विचारक विकासवादी सिद्धान्त को मानते है। उदार समाजवादी, समाजवाद को व्यावहारिक क्षेत्र मे लागू करने के लिये वैधानिक साधनो का प्रयोग करके वर्तमान व्यवस्था मे परिवर्तन लाना चाहते है। वर्तमान व्यवस्था मे परिवर्तन करने के लिये उनकी नीति यही है कि वे विस्तृत प्रचार द्वारा जनता मे समाजवाद के प्रति सहानुभूति पैदा करे और फिर मत द्वारा संसद व एसेम्बली पर अधिकार कर ले। यदि शासन सत्ता उनके हाथ मे आ गयी तब उन्हे अपने उद्देश्य धीरे-धीरे पूरे करने मे कोई कठिनाई नही होगी तथा इसके सद्धान्तो को प्रचार के माध्यम से आगे बढ़ाया जायेगा एव आर्थिक क्षेत्र मे धीरे-धीरे राष्ट्रीय हस्तक्षेप को बढ़ावा दिया जायेगा। इस प्रकार वर्तमान प्रणाली मे शीघ्रतापूर्वक मौलिक परिवर्तन करने का विचार नही रखते, बल्कि उदार समाजवादी विचारको का मत है कि सामाजिक व्यवस्था मे परिवर्तन धीरे-धीरे ही हो सकते है और प्रत्येक परिवर्तन पूर्व की सामाजिक प्रणाली द्वारा निर्धारित होता है, इसलिये हमे वर्तमान परिस्थिति को ध्यान में रखकर भविष्य के आन्दोलन की दिशा और गति का निरूपण करना चाहिये। वर्तमान राज्य व्यवस्था समाजवाद को केवल स्थापित ही नही करेगी वरन् उसको स्थापित करने के बाद वह समाजवादियो के आदर्शों के अनुसार सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रो मे संचालन भी करेगी। उदार समाजवादियों के अनुसार राष्ट्र के स्वरूप के सम्बन्ध मे जो विचार सामने आते है, उनके सम्बन्ध मे आलोचकों का विचार है कि उदार समाजवादी राष्ट्र के कार्यो का चरम् सीमा तक केन्द्रीकरण कर देगे। लेकिन यह विचार निराधार है। उदार समाजवादी सदैव स्थानीय सरकार के क्षेत्र को विस्तृत करने का लक्ष्य सामने रखते है। जार्ज बर्नार्ड शॉ ने सन् 1889 ई. मे लिखा था कि- 'एक लोकतत्र राष्ट्र, समाजवादी राष्ट्र तब तक नही हो सकता जब तक वह जनसख्या के प्रत्येक केन्द्र मे केन्द्रीय सरकार के समान ही लोकतंत्रीय स्थानीय शासक संघ स्थापित नही कर देंगे।'

उदार समाजवादियो के कार्यक्रम और तरीको पर विचार-विश्लेषण कर लेने पर कुछ तत्व समझ आते हैं। उदाहरण स्वरूप इंग्लैण्ड के श्रमिक दल का कार्यक्रम और उसकी तकनीक इन तत्वों पर प्रकाश डालने में सहायक हो सकती है। इनमें चार लक्ष्य महत्वपूर्ण है:-

(1) एक राष्ट्रव्यापी न्यूनतम मजदूरी देना

(2) राजस्व मे क्रान्ति

(3) उद्योगो मे लोकतत्रवादी अधिकार

(4) सम्पत्ति को समाज के कल्याणकारी कार्यो मे लगाना।

प्रत्येक राष्ट्र का यह कर्तव्य होना चाहिये कि प्रत्येक नागरिक की कम से कम इतनी आय निश्चित करे जिससे उसकी शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति मे कोई बाधा न पड़े। यह उन्नति के लिये 'समान अवसर' वाले सिद्धान्त का ही रूपान्तर है। उदार समाजवादी राज्य शीघ्र ही राज्य के भारी उद्योगो का राष्ट्रीयकरण करेगा तथा अधिकारच्युत व्यक्तियो को इसका मुआवजा सरकार द्वारा दिया जायेगा, तथा सरकार द्वारा ऐसी शिक्षा व्यवस्था की रूपरेखा बनायी जायेगी, जिसमे आर्थिक व सामाजिक दशा को ध्यान मे न रखकर मानसिक उन्नति के समान अवसर प्रदान किये जायेगे। सरकार द्वारा आयकर मे बढ़ोत्तरी की जायेगी तथा आयकर के साथ सुपर टैक्स की दर भी बढ़ायी जायेगी। इसके अलावा एक पूंजीकर भी लगाया जायेगा। इग्लैण्ड में प्रथम विश्वयुद्ध के बाद यह प्रस्ताव रखा गया था। इन प्रस्तावो का तात्विक सिद्धान्त क्या है? इसका अभिप्राय है कि उदार समाजवादी अतिरिक्तार्थ के सिद्धान्त मे विश्वास रखते है। यह वैग्नर के सामाजिक व राजनीतिक सिद्धान्तो का क्रियात्मक रूप है। उदार समाजवादी भूमि के लगान और खानो से प्राप्त आय को बेकार सम्पत्ति की संज्ञा देते है, क्योकि यह अब तक पूँजीपति वर्ग का साधन रही है और अब इसे राष्ट्र कल्याणकारी कार्यो मे लगायेगा।

इस प्रकार उदार समाजवाद का आदर्श राष्ट्र मुख्य-मुख्य व्यवसायो का केन्द्रीय या स्थानीय राष्ट्रीयकरण करके और बेकार सम्पत्ति को पूंजीपति वर्ग से ग्रहण करने के बाद राष्ट्र को कल्याणकारी राज्य का स्वरूप प्रदान करने मे सहयोग प्रदान करेगा। यह सिद्धान्त तथा तकनीक सभी प्रजातंत्रीय राष्ट्रो ने आधुनिक युग में स्वीकार की है।

श्रमिक संघवाद (Syndicalism)

श्रमिक संघवाद का प्रादुर्भाव फ्रांस में हुआ। श्रमिक संघवाद सामाजिक सिद्धान्त का वह रूप है जो श्रम संघों को नये समाज का आधार तथा उस समाज को प्राप्त करने का साधन मानता है।[75] श्रम संघवाद मजदूर समाजो का आन्दोलन है जिसका उद्देश्य नवीन सामाजिक

प्रणाली को वर्तमान पूजीवाद का स्थानापन्न बनाना जिसमे मजदूर सभाएं देश के कुल उद्योग धन्धो पर अधिकार स्थापित करेगी और उनका प्रबन्ध करेगी, उपभोग को नियमित करेगी और सामाजिक हित की बातो को क्रियात्मक रूप प्रदान करेंगी।[76]

श्रमिक सघवाद मार्क्सवाद के समान राज्य को शक्तिशाली तथा अधिकारयुक्त वर्ग के स्वार्थ का साधन मानता है। इस विचारधारा के अनुसार समाज सगठन की इकाई श्रम सगठन होगा। इनका प्रथम कार्य श्रमिक वर्ग मे चेतना पैदा करना है और उन्हे श्रेणी के हित तथा आदर्श का ज्ञान कराना है। इन कार्यो को पूर्ण करने के लिये श्रमिको को स्वय संघ के आधार पर सगठित करना आवश्यक है। राजनीतिक सस्थाओ का आधार विभिन्न प्रकार के स्वार्थ वाले विचारको से सम्बन्धित रखता है। केवल वास्तविक तथा तात्विक हित वाले समूहो मे जैसे कि श्रम संघो मे, समान अवस्था के मनुष्य पाये जाते है, जिनके जीवन के समान उद्देश्य होते है, वे ही व्यावहारिक क्षेत्र मे सफल होगे। मजदूरो की राजनीतिक विचारधाराए भिन्न-भिन्न होती है तथा आर्थिक हित समान होते है, इसलिये औद्योगिक क्षेत्र मे संगठित रहते है, परन्तु राजनीतिक क्षेत्र मे वे ऐसा नही करते। वे साथ-साथ हड़ताल कर देगे, लेकिन साथ-साथ मत नही देगे। किसी भी क्षेत्र मे राजनीतिक दल केवल एक साधारण हथियार है। यह एकत्र होते है, परन्तु सार्वजनिक संकल्प को व्यक्त नहीं कर सकते।

श्रम संघवादी जनतांत्रिक पद्धति के भी विरुद्ध है। जनतंत्र के माध्यम से राजनीतिक दलो पर उन्हे कोई आस्था नही है। उनकी यह मान्यता है कि सच्चा प्रजातंत्र केवल वर्ग पर आधारित रह सकता है। श्रम संघवादियो की युद्ध मे कोई आस्था नही है। उनकी मान्यता है कि विभिन्न देशों के पूंजीपतियो के स्वार्थों मे संघर्ष के कारण ही युद्धो का जन्म होता है। पूंजीपतियो के स्वार्थ-साधन के लिये एक देश के मजदूरो को दूसरे देश के मजदूरों के विरुद्ध युद्ध की ज्वाला मे झोंक दिया जाता है और श्रमिको के आन्दोलन को भी दबाने के लिये युद्ध का प्रयोग किया जाता है। श्रमिक संघवादी उत्पादको का शासन स्थापित करना चाहते है। उनके मत मे श्रम संघों (उत्पादकों) का अधिकार समाज के केवल आर्थिक जीवन पर ही नही, अपितु राजनीतिक जीवन पर भी होना चाहिये।

श्रमिक संघवादी सीधी कार्यवाही मे विश्वास रखते है। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये ध्वंस, बहिष्कार, आम हड़ताल जैसे शक्तिशाली साधन प्रयोग मे लाते है। इनका मत है कि सीधी कार्यवाई द्वारा ही मजदूरों को उनकी स्थिति का ज्ञान कराया जा सकता है और उन्हें अन्तिम रूप से वर्ग-युद्ध के लिये तैयार किया जाता है। यह विचारक वैधानिक साधनों में

विश्वास नही रखते। फ्रान्स मे बहुधा यह हुआ है कि जब कभी मजदूर वर्ग ने अपने प्रतिनिधियो को ससद मे भेजा, तब ही उन्होने वैधानिक साधनो से उन्नति करने की मध्यवर्गीय नीति का समर्थन किया। इसलिये फ्रान्स के श्रमिक वर्ग का राजनीतिक साधनो पर से विश्वास समाप्त हो गया। उनके अन्दर यह विश्वास हो गया कि 'सीधा सघर्ष' ही उन्हे ध्येय की प्राप्ति करा सकता है। 'सीधे सघर्ष' के मत मे उनका मत है कि यह आवश्यक नही कि यह हिसक ही हो, पर यह हिसक भी हो सकता है। यह उनकी चेतना तथा सकल्प का बोधक है। 'सीधी कार्यवायी' के चार मुख्य तत्व है- हड़ताल, बहिष्कार, लेबिल (Labal) और मालहानि (Sabotage)। इनमे हड़ताल सबसे प्रमुख है, क्योकि यह श्रमिक और पूजीपति वर्ग के हित-विरोध को व्यावहारिक स्तर पर प्रस्तुत करता है तथा विरोध की मात्रा मे भी वृद्धि करता है। यह एक ओर पूंजीपति वर्ग को सगठित करता है तो दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग को भी। यह क्रान्ति का बहुमूल्य साधन है।

श्रम संघवादी माल हानि पर बहुत अधिक जोर देते है। उत्पादन की नियमित क्रियाओ मे एक प्रकार से बाधाए उत्पन्न करना जिससे कि पूंजीपति वर्ग को हानि तथा भय हो। आम हड़ताल का विचार बहुत कुछ फ्रासीसी समाजवादी विचारक लूई ब्लाक के विचारो की देन है। इस बात मे यह विचारक मार्क्सवादी विचारधारा से भिन्न है। मार्क्स का विचार है कि समाज के विकास मे वह समय आयेगा जब सर्वहारा वर्ग स्वयं क्रान्ति करेगा और उत्पादन के साधनो पर अपना अधिकार करेगा। लेकिन श्रम संघवादियो की धारणा है कि मार्क्स का विचार आवश्यकता से अधिक सुखदायी है।

सी.जी.टी. (Wntederation Generale Du Travail) के सन् 1901 ई. के अधिवेशन के पश्चात् इन विचारको से यह प्रश्न किया गया कि किस प्रकार की सामाजिक प्रणाली स्थापित करना चाहते है? विवरण मे उनकी विचारधारा भिन्न थी, परन्तु मूल बातों में वे सहमत थे। उन सब का विचार था कि मजदूर सभा नवीन सामाजिक प्रणाली की इकाई होगी। एक सिन्डीकेट एक स्थान के एक व्यापार या व्यवसाय के श्रमिको का संगठन होगा जिसका उत्पादन के कार्य मे लाये जाने वाले साधनों पर अधिकार रहेगा। राष्ट्रीय सम्पत्ति का कोई भाग किसी श्रम संघ की एकान्तिक सम्पत्ति नहीं होगा, वह केवल राष्ट्र के निर्देशानुसार उनका प्रयोग करेगा।[77]

एक स्थान पर जितने व्यवसाय होंगे उतने ही श्रम-संगठन होंगे। इन सबका एक संयुक्त रूप होगा जिन्हे श्रम संघ या बोर्स (Bourse) कहा जायेगा। आर्थिक क्षेत्र मे आंकड़े एकत्र करने का कार्य श्रम संघ को सौंपा जायेगा। यह वर्तमान राष्ट्र की केन्द्रीय प्रणाली का विनाश

कर देगा। और उद्योग धन्धो के केन्द्रीयकरण पर प्रतिबन्ध लगायेगा।[78] बोर्सेज एक राष्ट्रीय श्रमसंघ (General Confederation of Labour) के सदस्य होगे। सिण्डीकेट का राष्ट्रीय श्रमसंघ से कोई सीधा सम्बन्ध नही होगा। यह सम्बन्ध श्रम सघो के द्वारा होगा। राष्ट्रीय श्रम संघ राष्ट्रीय उत्पादन पर अधिकार रखेगा। इनका स्थानीय आधार पर सचालन नही हो सकता। इसका कार्य केवल सामान्य सूचना प्रदान करना और नियत्रण शक्ति का प्रयोग करना है।

इस प्रकार इस विचारधारा के समर्थक राष्ट्र मे राजतत्र की आवश्यकता ही नही समझते। इनका विचार है कि उनके द्वारा स्थापित किये गये भावी समाज मे स्थानीय और केन्द्रीय शासन तो अवश्य रहेगा परन्तु वह शासन यत्र के रूप मे नही रहेगा।

इस प्रकार शान्तिपरक सुधारवादी समाजवाद तथा साम्यवादी क्रान्ति द्वारा राज्य के नियत्रण के अभित्याग के कारण श्रमसंघवादियो ने अपनी विचारधारा को 'समाजवाद की एक नवीन विचारधारा' घोषित किया। यद्यपि उन्होंने कोई नवीन दर्शन नही दिया, तथापि समाजवाद प्राप्ति के तरीको मे कुछ नवीनता थी। इस विचारधारा का विकास बहुत कम हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद इस विचारधारा ने कोई उन्नति ही नही की तथा यह विचारधारा इतनी तर्कमूलक तथा सैद्धान्तिक थी कि जनसाधारण की समझ से बाहर की वस्तु हो गयी। इस विचारधारा तथा उदार समाजवाद के मध्यवर्ती एक नई विचारधारा गिल्ड समाजवाद का जन्म हुआ, जो अपनी पूर्ववर्ती दोनो विचारधाराओ की ऋणी है।

श्रेणी समाजवाद (Guild Socialism) -

श्रेणी समाजवाद का जन्म इंग्लैण्ड में हुआ। इग्लैण्ड मे कुछ ऐसे नवयुवक-समाजवादियो का उदय हुआ जिन्होने इस विचारधारा को दार्शनिक सिद्धान्त के साथ ही साथ व्यावहारिक रूप देने के लिये किसी राजनीतिक संगठन से संयुक्त करने का प्रयास किया। सन् 1906 मे श्रेणी सिद्धान्त की पुन: प्राप्ति (The Restoration of the guild Socialism) नामक पुस्तक लिखकर मध्यकाल के व्यवसायों के स्वायत्त शासन को श्रेणी समाजवाद के रूप मे पुनर्जीवित किया। ए.पी. ओरेंज, एस.जी. हाब्सन, जी.डी.एच. कोल ने इस आन्दोलन के प्रचार कार्य मे भागलिया। समाज में जनतांत्रिक व्यावसायिक संगठनो के साथ-साथ काम करती हुई राष्ट्रीय श्रेणियो के जनतांत्रिक सिद्धान्त के द्वारा मजदूरी प्रणाली की समाप्ति और उद्योग धन्धो मे श्रमिकों के द्वारा स्वायत्त शासन की स्थापना ही श्रेणी समाजवाद का उद्देश्य है। इस विचार का

तात्विक सिद्धान्त है- व्यावसायिक प्रजातंत्र। इस सिद्धान्त के अनुसार एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का सही प्रतिनधि नही हो सकता, तथापि वह उसके सामान्य उद्देश्यो के एक समूह को व्यक्त करने के लिये अवश्य प्रतिनिधित्व कर सकता है। मध्यकाल मे श्रमिक स्वयं शासित गिल्डो के सदस्य होते थे तथा उत्पत्ति के साधनो के स्वय स्वामी होते थे और उत्पादन की प्रवृत्ति और परिणाम निर्धारित करते थे। यदि वैसी ही प्रणाली अब स्थापित कर दी जाय तो वर्तमान समस्याओ का समाधान हो सकता है। सन् 1912 ई. मे गिल्ड समाजवाद इग्लैण्ड के मजदूर आन्दोलन की निश्चित शक्ति हो गया। सन् 1915 ई. मे राष्ट्रीय गिल्ड लीग (National Guild Legue) कायम की गयी।

गिल्ड समाजवाद के विकास मे चार विचारको ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। सर्वप्रथम विचारक ए.जे. पेण्टी है जिन्हे मौलिक गिल्ड मैन (Original Guild Man) कहा जाता है। इन्होने जान रास्किन और विलियम मोरिस के मार्ग का अवलम्बन करते हुये सुधार के कार्यो की ओर अपनी विचारधारा का सकेत दिया और मध्यकाल के पुन· स्थापना का प्रयत्न किया। दूसरे विचारक ए.आर. आरेज है, जिन्होने 'न्यू एज़' (New Age) नामक पत्र प्रकाशित किया, जो शिक्षित क्रान्तिकारिता का केन्द्र कहा जाता है। उन्होने इस पत्र के माध्यम से हाब्सन के विचारो का प्रचार किया, जो इस सम्प्रदाय के महत्वपूर्ण विचारक थे। हाब्सन ने इस आन्दोलन को आर्थिक आधार प्रदान किया। इस विचारधारा के सबसे बड़े विचारक जी.डी.एच कोल थे, जिन्होंने इसके सम्बन्ध मे बहुत सा साहित्य लिखा। श्रेणी समाजवाद मार्क्स के इस कथन को मान्यता देते है कि राजनीतिक शक्ति आर्थिक शक्ति के पश्चात् ही प्राप्त हो सकती है। इनका विश्वास है कि राजनैतिक क्षेत्र मे प्रजातंत्र संभव नही है, जब तक कि आर्थिक क्षेत्र मे प्रजातंत्र न हो। इसलिये यदि जनतांत्रिक ढ़ंग से उद्योग संगठित हो जाये तो समाज का जनतात्रिक सगठन स्वत: ही स्थापित हो जायेगा। श्रेणी समाजवाद सत्ता के केन्द्रीकरण को हानिकारक मानते है। इसलिये स्थानीय संस्थाओ के विकास तथा व्यवस्था पर अधिक बल देते है। गिल्ड समाजवादी, गिल्ड को लोकतत्र के आधार पर संगठित करना चाहते हैं। इसका यह अभिप्राय नही है कि उत्पादन मे संलग्न प्रत्येक श्रमिक का मत लिया जाय। यह कार्य कुशलता के मार्ग मे बाधक होगा।[79] यहा गिल्ड से सम्बन्धित लोकतंत्रवाद का केवल यही अभिप्राय है कि इसके प्रतिनिधि सार्वजनिक मत से चुने जायेंगे। यहां यह संकेत कर देना आवश्यक है कि वे अधिकारी को किसी पूर्णत: विशिष्ट कार्य करने के लिये नियुक्त किये जायेंगे, वे केवल उससे सम्बन्धित अपनी सलाह देने वाले ही होंगे और नियुक्ति भी उनके कार्य से सम्बन्धित व्यक्तियो द्वारा ही की जायेगी जिनके सहयोग से वे कार्य करेंगे। अन्य शब्दों में नेताओं का चुनने का सिद्धान्त यह होगा कि वे उन व्यक्तियो द्वारा चुने जायेंगे जिनके वे प्रतिनिधि होगे।[80]

गिल्ड समाजवादी अपने उद्देश्य के प्राप्त करने के तरीको मे एक मत नही है - 'कुछ लोग कहते है कि उस अंतिम अवस्था मे वैध उपायो से ही शेष स्वत्व श्रमिको के हाथ मे आ जायेगे, दूसरे लोगो का विचार है कि अनुकूल स्थिति मे क्रान्तिमय उपायो से काम लेना होगा और उनके लिये अभी से तैयारी करना चाहिये।'[81] कुछ गिल्ड समाजवादी सीधे उपायो का पक्ष लेते है लेकिन कोल का विचार है कि 'शीघ्रता से क्रान्ति लाना हमारा उद्देश्य नही है। हमारा उद्देश्य है- विकासवाद के मार्ग द्वारा उन सब शक्तियो को दृढ करना जिससे आने वाली क्रान्ति, गृहयुद्ध न होकर समाज मे क्रियाशील वृत्तियो का एक अतिम परिणाम व प्राप्त तथ्य-सा मालूम हो।[82]

समालोचना के लिये मध्यकालीन श्रेणी व्यवस्था के कार्यान्वयन की असभाव्यता, राज्य के कार्यक्षेत्र का सकुचन, व्यावसायिक प्रतिनिधित्व योजना की आव्यवहारिकता पृथक-पृथक श्रेणियो द्वारा स्वशासन की अनभिज्ञता, अधिकाश विषयों पर उनमे मतैक्य न होना आदि तर्क श्रेणी समाजवाद के विरुद्ध दिये जा सकते है। परन्तु इसको भी अस्वीकार नही किया जा सकता कि गिल्ड समाजवादियो द्वारा औद्योगिक कार्यो को प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत करना। समाष्टिवाद मे बढ़ती हुई नौकरशाही के खतरो के प्रति ध्यान दिलाना, उद्योगो के सम्बन्ध मे श्रमिको द्वारा भाग लेने की वांछनीयता पर बल देना और उद्योगो तथा राजनीति मे व्यावसायिक प्रतिनिधित्व प्रारम्भ करने का मूल्यवान झुकाव देना समाजवादी कार्यक्रमो के लिये कितना अधिक महत्वपूर्ण था।

समाष्टिवाद (Collectivism) -

समाष्टिवाद के मूलभूत आधार जर्मन समाजवाद तथा अंग्रेजी समाजवाद (फेबियनवाद) है। समाष्टिवाद को लोकतांत्रिक समाजवाद भी कहते हैं। क्योंकि यह वाद लोकतांत्रिक तरीको से भूमि तथा उद्योग पर व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त करके उन्हें राज्य के अधिकार मे लाना चाहता है। यह नीति अथवा सिद्धान्त है जो केन्द्रीय प्रजातात्रिक सत्ता द्वारा आजकल की अपेक्षा श्रेष्ठतम वितरण तथा उसके अधीन श्रेष्ठतम उत्पादन की व्यवस्था करना चाहता है।[83]

समाष्टिवाद में समष्टि अथवा समाज को प्रधानता देते हुये उसके हित एवं कल्याण की दृष्टि से व्यक्ति के कार्यों को नियंत्रित किया जाता है। समाष्टिवाद मे न केवल समाजवाद विचारधाराओं का अपितु अधिनायकवाद का भी समावेश होता है क्योकि वह व्यक्ति की तुलना में राज्य को विशेष महत्व प्रदान करती है। इस विचारधारा के अनुसार, किसी देश के

आर्थिक साधनो का उपयोग केवल श्रमिक वर्ग के हित के लिये नही, अपितु समस्त समाज के लिये करना चाहती है। समाज के प्रत्येक वर्ग को अन्य वर्गो के साथ सम्बद्ध मानते हुये वर्ग संघर्ष की अपेक्षा वर्ग सामंजस्य तथा सम्पूर्ण समाज के कल्याण पर अधिक बल देती है। समाष्टिवाद व्यक्ति के आर्थिक कार्यो के नियत्रण पर बहुत अधिक बल देता है। पूंजीपतियो को कारखानो मे श्रमिको से काम लेने के सम्बन्ध मे दी गयी स्वतत्रता ने समाज मे बहुत से दुष्परिणामो को उत्पन्न कर दिया है। अत उस पर यह नियत्रण करता है। ऐसे कार्य समाज की दृष्टि से वाक्षनीय न होने के कारण राज्य द्वारा रोके जाने चाहिये। उनका राज्य द्वारा रोका जाना समाष्टिवाद की एक बड़ी विशेषता है। इसलिये इसको राजकीय समाजवाद (State Socialısm) कहा जाता है। क्योकि यह राज्य की सहायता से समाजवाद स्थापित करने का प्रयत्न करता है।

यह विचारधारा विकासवाद मे आस्था रखती है। यह समाज को अन्य सजीव प्राणियो की भांति विकसित होने वाला तत्व मानता है। विकास एवं ह्रास की प्रक्रियाये शनै. शनैः सम्पन्न होती है। मनुष्य इनमे अपनी वृद्धि के माध्यम से थोड़ी तीव्रता अवश्य ला सकता है, किन्तु इनमे सहसा बलपूर्वक परिवर्तन नही लाये जा सकते। समाज की प्रगति शनै· शनै· किये जाने वाले क्रमिक सुधारो से ही हो सकती है, न कि सहसा किये जाने वाले क्रान्तिकारी परिवर्तनो से। इस प्रकार समाष्टिवादी हिसात्मक और क्रान्तिकारी उपायो के स्थान पर शान्तिमय, विकासमूलक एवं वैधानिक उपायो द्वारा समाजवाद को स्थापित करना चाहता है। समाष्टिवाद अपने हाथ मे सत्ता आ जाने पर भी समाजवादी व्यवस्था की स्थापना और उद्योगो के राष्ट्रीयकरण का कार्य धीरे-धीरे जनमत को तैयार करके ही करता है, क्योंकि उसका विश्वास है कि ऐसा करने से ही ये परिवर्तन सथायी होगे।

समष्टिवाद का दूसरा सिद्धान्त है - उसकी प्रजातंत्र में अगाध आस्था तथा व्यक्ति क़ी स्वतंत्रता को बनाये रखना। यह समाज मे प्रत्येक परिवर्तन को लोकतंत्रीय रीति तथा जनता की सहमति से ही करना चाहता है। उसकी समस्त कार्य-प्रणाली का आधार लोकतंत्रीय व्यवस्था ही है। वह अपने सिद्धान्तों का जनता में प्रचार करके जनमत को अपने पक्ष में लाना चाहता है। इग्लैण्ड मे ऐसा ही हुआ। सन् 1900 ई. में स्थापित श्रमिक दल निरन्तर प्रचार द्वारा अपनी शक्ति बढ़ाता चला गया। सन् 1924 ई. व सन् 1931 ई. मे पूर्ण बहुमत न होते हुये भी संसद में सबसे बड़ा दल था। उसके बाद इसकी प्रगति बराबर होती गयी। इस दल ने सत्तारूढ़ होने के बाद महत्वपूर्ण उद्योगों का राष्ट्रीयकरण भी किया।

इस विचारधारा के समर्थक वर्ग सघर्ष मे विश्वास न रखते हुये 'वर्ग सामजस्य' मे आस्था रखते थे। समाष्टिवाद शब्द ही इस बात पर बल देता है कि इसका उद्देश्य समष्टि का अर्थात् समाज मे पाये जाने वाले सभी वर्गो का, न कि किसी वर्ग विशेष का कल्याण करना है। मार्क्सवाद के समान यह व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा निजी उद्योगो का समूलोन्मूलन नही करना चाहता है। यह उद्योगो को कई श्रेणियो मे बाटता है। यह सभी उद्योगो का एकदम राष्ट्रीयकरण करने के पक्ष मे नही है। केवल उन्ही उद्योगो पर राज्य का स्वामित्व किया जायेगा जिनका विकास बहुत बड़े पैमान पर हो चुका है।

इस विचारधारा के सिद्धान्त और स्वरूप मार्क्सवाद आदि अन्य वादो के समान स्पष्ट और सुनिश्चित नही है। इस विचारधारा के मानने वालो को उदार (Liberal), उदार लोकतत्रीय (Liberal Democrate), सामान्य जनता के हित पर बल देने वाले तथा प्रगतिवादी कहते है।[84] इनका कोई सगठित आन्दोलन नही है। इनके सिद्धान्तो अथवा मत का कोई निश्चित संस्थापक नही है और इनके सुनिश्चित सिद्धान्त नही है। ये सामाजिक न्याय, उदारवाद, आर्थिक उदारवाद, आर्थिक लोकतंत्र तथा औद्योगिक लोकतत्र के सिद्धान्तो पर बल देते है।

आजकल सभी पूंजीपति देशो ने समष्टिवाद के सिद्धान्त स्वीकार कर लिये हैं। अमेरिका जैसे साम्यवाद के विरोधी देशों मे भी इसके मौलिक तत्वो को कानूनी रूप दिया जा चुका है। सन् 1933 ई. मे अपनी आर्थिक नीति (New Deal) द्वारा रुजवेल्ट ने श्रमिको के कार्य के घण्टो मे मजदूरी की दरो का, मूल्यो का, व्यक्तियो द्वारा बैक मे जमा की गयी धनराशि की सुरक्षा का तथा उत्पादन को नियंत्रित करने वाले कानून बनायें। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद बनाये गये विभिन्न देशो के कानूनो मे इसके मौलिक सिद्धान्त स्वीकार करते हुये कल्याणकारी राज्य बनाने की व्यवस्थाएं अधिकाधिक मात्रा मे स्वीकार की गयी है।

अराजकतावाद (Anarchism) -

'अराजकतावाद' शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द अनार्किया (Anarchia) से हुई है। जिसका अर्थ है- 'शासन का अभाव'। अत: अराजकतावांद एक क्रान्तिकारी विचार है जो राज्य तथा राजकीय शासन का उन्मूलन कर उसके स्थान पर एक राज्यहीन तथा वर्गहीन समाज का पुर्नगठन करना चाहती है। क्रोपॉटकिन, बाकूनिन, प्रोधाँ, थोरो, टॉलस्टाय, विलियम गाडविन आदि प्रमुख अराजकतावादी हैं। अराजकतावाद का अर्थ समाज में प्राय: किसी व्यवस्था का न होना समझ लिया जाता है। परन्तु अराजकतावादियो का यह अभिप्राय नही है

कि समाज मे कोई व्यवस्था न हो। वे केवल शासन व्यवस्था को समाप्त करने के पक्ष मे है। समाजवादी व्यवस्था मे शासन को समाज से इसलिये दूर नही करना चाहते कि समाज मे अव्यवस्था फैल जाय बल्कि इसलिये कि उनकी दृष्टि मे शासन समाज मे मौजूद शोषण और व्यवस्था को शक्ति के आधार पर कायम रखना चाहता है। मार्क्सवाद के दृष्टिकोण मे अराजकतावादियो का उद्देश्य गलत नही है। यह भी समाज मे आर्थिक शोषण के आधार पर निर्मित वर्ग-विभेद को समाप्त करके, नियत्रण को दूर करना चाहता है। परन्तु मार्क्सवाद अराजकतावाद से इस बात मे सहमत नही है कि समाज से मौजूदा शासन को ही समाप्त कर देने मे भविष्य मे शोषण का अन्त हो जायेगा। मार्क्सवाद साधनहीन श्रेणी के शोषण पर आधारित शासन व्यवस्था को समाप्त कर देना चाहता है। अराजकतावादी समाज मे सम्प्रभुता, मालिक अथवा राज्य की अनुपस्थिति चाहते है। अराजकतावाद राज्य के साथ वैयक्तिक सम्पत्ति का भी उन्मूलन चाहता है। मेरे-तेरे की भाव की समाप्ति ही इसका उद्देश्य है।[86]

अराजकतावादी संघो मे संगठित एक विकेन्द्रित समाज स्थापित करना चाहता है। उनके मतानुसार अराजकतावादी व्यवस्था मे राज्य अथवा बल का प्रभाव होगा, न कि व्यवस्था का प्रभाव। राज्य का स्थान यहां ऐच्छिक सघ ले लेगे जिनका गठन प्रादेशिक अथवा व्यावसायिक आधार पर होगा। इन संघो का विकास सरलता से जटिलता की ओर होगा और छोटे से छोटा संघ भी वह आधार होगा जिस पर सम्पूर्ण व्यवस्था आश्रित होगी। इस प्रकार अराजकतावाद प्रादेशिक एवं व्यावसायिक विकेन्द्रीकरण पर अधिक बल देता है। अराजकतावादियो के मतानुसार राज्य की सेनाएं वाह्य आक्रमण को रोकने मे असमर्थ रही है तथा नागरिक सेनाओ से हारी है। इसलिये उनके स्थान पर सम्पूर्ण समाज संयुक्त होकर सफलतापूर्वक अराजकतावादी समाज की सुरक्षा करेगा। वे आकस्मिक विशेष कार्यों के लिये अस्थायी समुदायों को बनाने के पक्ष मे है। अराजकतावाद के संस्थापन के लिये क्या साधन एवं उपाय होने चाहिये- इससे सम्बन्धित विचार इनके विचारों मे बिखरे हुये मिलते है। इस सम्बन्ध मे वे भी समष्टिवादियो के साधन एव उपायो से पूर्णतया सहमत है।

अराजकतावादियो का विचार है कि केवल अराजकतावादी राष्ट्र में ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सकता है। व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिये वाह्य बन्धनो की अनुपस्थिति आवश्यक है। अराजकतावाद में ही वास्तव में मनुष्य पूर्ण स्वतंत्रता का अनुभव करेगा। अराजकतावाद तीन प्रकार की स्वतंत्रताओ का प्रस्ताव रखता है - (1) वह व्यक्ति को उत्पादक की हैसियत से पूंजीवादी वर्ग के बन्धन से मुक्त कर देगा। (2) वह व्यक्ति को

नागरिक की हैसियत से राज्य के बन्धन से स्वतत्रता प्रदान कर देगा। (3) वह व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप मे नैतिक विकास के अवसर प्रदान करेगा।

शासन के स्वरूप के सम्बन्ध मे अराजकतावादियो का विचार है कि क्या सरकार आवश्यक है। आर्थिक क्षेत्र मे अराजकतावादी सार्वजनिक समाष्टिवाद मे विश्वास रखता है। प्रिस क्रोपॉटकिन के शब्दो मे 'समस्त वस्तुओ पर प्रत्येक का अधिकार है और यदि प्रत्येक पुरुष एवं स्त्री वस्तुओ के उत्पादन मे उचित सहयोग प्रदान करते है तब उसमें से प्रत्येक सदस्य उत्पन्न की हुई वस्तुओ के उपभोग करने का अधिकार रखता है।'[87]

यहा पर यह प्रश्न पैदा होता है कि प्रत्येक का भाग न्यायपूर्वक स्थापित करने के लिये क्या राज्य का होना आवश्यक नही है। इसके विपक्ष मे वे इस तथ्य पर बल देते है कि प्रत्येक राज्य का कार्य केवल यही है कि वह प्रत्येक का भाग अन्यायपूर्वक निश्चित करे। जहाँ तक स्वेच्छाचारी सरकार और उच्चवर्गीय सरकार का सम्बन्ध है वहां तक इस विवरण की सत्यता स्पष्ट है। एक या कुलीन वर्ग के व्यक्तियो का शासन, समस्त समाज के शासन के विपरीत है। यह सदैव इस बात का प्रयास करता है कि उत्पादन का असमान विभाजन करके पूंजीपति वर्ग एवं सम्पन्न वर्ग को अधिक भाग दिया जाय। परन्तु यह कथन अराजकतावादियो के अनुसार बहुसंख्या द्वारा निर्धारित प्रतिनिधि सरकार पर भी लागू होता है, न केवल आधुनिक राज्य वरन् राज्य का कोई भी स्वरूप जिसका अस्तित्व सभव है, अनावश्यक और हानिकारक है। इसके वे निम्न कारण बताते है-

(1) वर्तमान राज्य सार्वजनिक वस्तुओ पर कुछ व्यक्तियों के एकाधिकार स्थापित करने का साधन मात्र है। इस कारण इस एकाधिकार का अन्त करने के लिये जिसको वह संरक्षण प्रदान करता है, राज्य पर विश्वास नही किया जा सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अन्य किसी संगठन को राज्य का स्थानापन्न किये बिना पूंजीवाद का अन्त नही हो सकता। राज्य पर अधिकार कर लेने और उसके प्रयोग से समाज का तात्विक परिवर्तन करना असम्भव है। जैसा कि समाजवादियों का विचार है। लेकिन अराजकतावादियो के अनुसार उनका यह विचार आधार रहित है।

(2) उपरोक्त तर्क वर्तमान राज्य पर ही नहीं वरन् प्रत्येक राज्य पर लागू होता है, क्योंकि राज्य एक राष्ट्रीय प्रतिनिधि संस्था है। लेकिन राज्य प्रत्येक समस्या पर समस्त नागरिको का मत नही ले सकता। इसलिये यदि यह अत्याचारपूर्ण नही है तो अवश्य ही एक प्रतिनिधि सरकार द्वारा चलाया जाना चाहिये। इसका तर्क यह

है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व नही कर सकता। इसलिये अराजकतावाद उस सिद्धान्त का विरोधी है और अल्पज्ञो के शासन के स्थान पर विशेषज्ञो के शासन को स्थानापन्न करना चहता है।

इसलिये प्रतिनिधि सरकार या तो अनावश्यक होती है, या तो वह प्रतिनिधि ही नही होती। सामान्य संकल्प को रखने का तरीका यही है कि सब व्यक्तियो की एक सभा की जाय, प्रत्येक प्रश्न के ऊपर सामान्य संकल्प की जानकारी के लिये एक प्रतिनिधि निर्वाचित किया जाय। यह उपाय प्रतिनिधि सरकार की कार्यक्षमता मे अविश्वास पैदा करता है। प्रत्येक शासन मे शक्ति का महत्वपूर्ण स्थान रहता है, लेकिन सरकार, जो शक्ति पर आधारित होती है, इस शक्ति के उपयोग करने पर ही चल सकती है और उस शक्ति को उपयोग मे लाने के लिये मनुष्यो की आवश्यकता पड़ती है, जिन पर उनका प्रयोग किया जाय। इसलिये इनके मतानुसार सरकार अपनी प्रकृति से ही शक्ति का प्रयोग करके समाज मे वर्ग विभाजन पैदा करती है। इस प्रकार इन अराजकतावादियो के अनुसार आन्तरिक एवं वाह्य युद्ध इन सरकारो के कारण ही पैदा होते है। सरकार का अर्थ है- मजदूरी, बहिष्कार और पार्थक्य। इसके विपरीत अराजकतावाद का अर्थ है- स्वतंत्रता एव सहयोग। सरकार भय एव अहमन्यता पर आधारित है, अराजकता भ्रातृत्व पर।[88] एक अन्य अराजकतावादी विचारक के अनुसार- हमे सैनिक संगठन की आवश्यकता इसलिये पड़ती है कि हमने पृथक रूप से अपने को बहुत से राष्ट्रो मे विभाजित कर लिया है, हमको कानून के संरक्षण की आवश्यकता इसलिये पड़ती है कि व्यक्तिगत रूप से एक दूसरे से पृथक हो गये है।

अराजकतावादियो का तर्क यह है कि स्वतंत्र प्रबन्ध एवं सहयोग के नियम का पालन सगाज को प्राकृतिक जनसमूहो मे विभक्त कर देगा। वर्तमान राष्ट्रो ने समाज को कृत्रिम वर्गो मे बांट दिया है। प्राकृतिक संघ स्थापन इतना सामंजस्यपूर्ण और इतना कार्यशील होगा कि वह साधारण संघर्षो (जिसकी संभावना कम है) से विचलित नही होगा। अराजकतावादी भी अपनी विचारधारा का आधार मार्क्सवादी सिद्धान्तों को बताते है, तथा कुछ साम्यता भी है। मार्क्सवाद के अनुसार समाज को नियंत्रण एवं शोषण से बचाने के लिये उस व्यवस्था का ही अन्त करना है जिनके द्वारा यह उत्पन्न होते है। यदि समाज मे शोषण ही नही रहेगा तो सरकार की आवश्यकता ही नहीं होगी। इसी सिद्धान्त को अराजकतावादी विचारक अपनी विचारधारा का आधार मानते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1 बार्कर, *''प्लेटो एण्ड हिज़ प्रेडेसर्स''*, पृ 58
2 इनसाइक्लोपीडिया आव सोशल साइसेज़, वैल्यूम 7, पृ 191
3 वही, पृ 191
4 किरकुप, थामसन, *''हिस्ट्री आफ सोशलिज्म''* पृ 20
5 वही, पृ 23
6 मैकेन्जी, नारमन, *''सोशलिज्म''* पृ 20
7 लैडलर, हैरी, *''सोशल इकोनोमिक मूवमेन्ट''*, पृ 49
8 किरकुप, थामसन, *''हिस्ट्री आफ सोशलिज्म''*, पृ 23
9 वही, पृ 25
10 वही, पृ 25
11 वही, पृ 28
12 लैडलर, हैरी, *''सोशल इकोनोमिक मूवमेन्ट''* पृ 58
13 किरकुप, थामसन, *''हिस्ट्री आफ सोशलिज्म''* पृ 31
14 वही, पृ 36
15 ग्रे, अलेक्जेण्डर, *''द सोशलिस्ट ट्रेडीशन''* पृ 196
16 किरकुप, थामसन, *''हिस्ट्री आफ सोशलिज्म''* पृ. 41
17 यशपाल, *''मार्क्सवाद''* पृ 19
18 किरकुप, थामसन, *''हिस्ट्री आफ सोशलिज्म''* पृ. 52
19 वही, पृ 53
20 यशपाल, *''मार्क्सवाद''*, पृ. 20
21 किरकुप, थामसन, *''हिस्ट्री आफ सोशलिज्म''* पृ 54
22 इनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइसेज, वैल्यूम 7, पृ 193
23 किरकुप, थामसन, *''ऐन इन्क्वायरी इन टू सोशलिज्म''* पृ 48
24 वही, पृ. 60
25 वही, पृ 64
26 लैडलर, हैरी, *''सोशल इकोनोमिक मूवमेन्ट''*, पृ 93
27 किरकुप, थामसन, *''हिस्ट्री आफ सोशलिज्म''* पृ 67
28 वही, पृ 75
29 वही, पृ 196
30 वही, पृ. 76
31. इनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइसेज, वैल्यूम 7, पृ 196
32 किरकुप, थामसन, *''हिस्ट्री आफ सोशलिज्म''*, पृ 112
33 वही, पृ.123
34 वही, पृ. 127

35 वही, पृ 129

36 वेपर, सी एल , *''राजदर्शन का स्वाध्याय''* पृ 207

37 इनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइसेज, वैल्यूम 7, पृ 197

38 वही, पृ 197

39 वही, पृ 198

40 मेयो, हेनरी वी , *''इन्ट्रोडक्शन टू मार्क्ससिस्ट थियोरी''*, पृ 22

41 मार्क्स, कार्ल, *''कैपिटल''* पृ 30

42 मेयो, हेनरी वी , *''इन्ट्रोडक्शन टू मार्क्ससिस्ट थियोरी''* पृ 55

43 मार्क्स, कार्ल, *''कैपिटल''* पृ 28

44 मार्क्स , कार्ल एव ऐंजेल्स, *''सकलित रचनाएँ''*, भाग-1, पृ 16

45 लैडलर, हैरी, *''सोशल इकोनोमिक मूवमेन्ट''*, पृ 162-163

46 मार्क्स , कार्ल एव ऐंजेल्स, *''सकलित रचनाएँ''*, भाग-1, पृ 18

47 जोड, सी ई.एम., *''मार्डन पोलिटिकल थ्योरी''* पृ 44

48 किरकुप, थामसन, *''हिस्ट्री आफ सोशलिज्म''* पृ 158

49 इनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइसेज, वैल्यूम 7, पृ 198

50 वही, पृ 199

51 मेयो, हेनरी वी , *''इन्ट्रोडक्शन टू मार्क्ससिस्ट थियोरी''* पृ 129

52 इनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइसेज वैल्यूम 7, पृ 200

53 किरकुप, थामसन, *''हिस्ट्री आफ सोशलिज्म''*, पृ 150

54 ग्रे, अलेक्जेण्डर, *''द सोशलिस्ट ट्रेडिशन फ्राम मार्क्स टू लेनिन''* पृ 337

55 मेयो, हेनरी बी , *''इक्ट्रोडक्शन टू मार्क्ससिस्ट फिलॉसफी''*, पृ 171

56 सेलेक्टेड वर्क्स आफ मार्क्स एण्ड ऐंजिल्स, वैल्यूम-1, पृ 189

57 मेयो, हेनरी वी., *''इन्ट्रोडक्शन टू मार्क्ससिस्ट फिलॉसफी''*, पृ 172

58 सोशलिज्म थियरी एण्ड प्रैक्टिस, सोवियत मन्थली डाइजेस्ट, मार्च 1979

59 सेबाइन, जी.एच., *''ए हिस्ट्री आफ पोलिटिकल थियरी''* पृ 699

60 वेपर, सी एल , *''राजदर्शन का स्वाध्याय''*, पृ 129

61 वही, पृ 129-130

62 लेनिन, ब्ला ई , *''सकलित रचनाएँ''*, खण्ड-1, भाग-1, पृ 31-32

63 ग्रे, अलेक्जेण्डर, *''द सोशलिस्ट ट्रेडीशन फ्राम मार्क्स टु लेनिन''*, पृ 480

64 वेपर, सी.एल , *''राजदर्शन का स्वाध्याय''*, पृ 132

65 लेनिन, ब्ला ई , *''सकलित रचनाएँ''*, खण्ड-1, भाग-1, पृ 19

66 लेनिन, ब्ला.ई , *''पूर्व मे राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आन्दोलन''*, पृ 21-22

67 किरकुप, थामसन, *''हिस्ट्री आफ सोशलिज्म''* पृ 315

68 वही, पृ 318-19

69 वही, पृ 320-21

70. इनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइन्सेज, वैल्यूम 7, पृ. 205

71. वही, पृ. 205

72 शॉ , जी बी , *''रीडिग इन रेसेन्ट पोलिटिकल फिलॉसाफी''*, (एडिटेड एम स्पार्क) पृ 436
73 पीज, *''हिस्ट्री आफ फेबियन सोसाइटी''*, पृ 269
74 कोकर, एफ डब्ल्यू , *''रिसेन्ट पोलिटिकल थाट''* पृ 105
75 जोड, सी ई एम , *''मार्डन पोलिटिकल थियरी''*, पृ 63
76 मैकडोनल्ड, *''सिण्डीकेलिज्म''* पृ 50
77 लेविन, *''सिण्डीकेलिज्म इन फ्रान्स''* पृ 126-127
78 वही, पृ 135
79 कोल, जी डी एच , *''गिल्ड सोशलिज्म''*, पृ 41
80 वही, पृ 42
81 डॉ सम्पूर्णानन्द, *''समाजवाद''*, पृ 295
82 कोल, जी डी एच , *''गिल्ड सोशलिज्म''*, पृ 183,187
83 जोड, सी ई एम , *''मार्डन पोलिटिकल थियरी''*, पृ 54
84 कोकर, *''रिसेन्ट पोलिटिकल थॉट''*, पृ 595
85 वही, पृ 555
86 क्रोपॉटकिन, *''द कान्क्वेस्ट आफ ब्रेड''* पृ 9
87 वही, पृ 59
88 जोड, सी ई एम , *''मार्डन पोलिटिकल थियरी''* पृ 93

अध्याय - द्वितीय

आधुनिक भारत में समाजवाद

अध्याय - द्वितीय

आधुनिक भारत में समाजवाद

विश्व के समाजवादी इतिहास मे आधुनिक समाजवादी आन्दोलन (वैज्ञानिक समाजवाद) का उदय कार्ल मार्क्स से होता है। लेकिन यदि समाजवादी भावना की दृष्टि से प्राचीन भारतीय वाङ्मय पर दृष्टिपात करे तो यह तथ्य समक्ष आता है कि लोक कल्याण की पवित्र भावना हमारे प्राचीन ग्रन्थो मे पायी जाती है। ऋग्वेद मे दान की व्यवस्था द्वारा तथा कृपण की निन्दा करते हुये धन के समान वितरण पर बल दिया गया है। ऋग्वेद मे (4 25.7) कहा गया है कि - इन्द्र देवता कृपण धनी के साथ मित्रता नही करता है, उसके धन को नष्ट कर देता है, उसे नग्न करके मार डालता है।[1] अन्यत्र पूषा देवता से प्रार्थना की गयी है कि - ''हे, तेजस्वी पूषा देव जो दान नही करना चाहता, उसे आप दान के लिये प्रेरित करिये कृपण के मन को भी मृदु कीजिये।''[2] ऋग्वेद के दशम मण्डल (सूक्त 11 मत्र 5) मे इस बात पर बल दिया गया है कि ''समृद्ध मनुष्यो के लिये यह आवश्यक है कि वह मागने वाले को दान दे, वह दूरवर्ती बने, बहुत लम्बे रास्ते पर दृष्टि रखे, सम्पत्ति किसी के पास स्थिर न रह कर रथ के पहियो की भाँति घूमती रहे। एक के पास से दूसरे के पास जाती रहे।''[3] ऋग्वेद मे, गीता मे तथा मनुस्मृति मे उस व्यक्ति की घोर निन्दा की गयी है जो अपनी सम्पत्ति दूसरो को नही देता। उसे केवल अपने उपभोग मे ही व्यय करता है। ऐसे व्यक्ति को पापी बताया गया है। ऋग्वेद के ही शब्दो मे- ह्रदयहीन मनुष्य को अन्न प्राप्त करना बेकार है, सच कहता हूँ यह उसका वध ही है। जो अपने अन्न से न अर्यमा का पोषण करता है और न मित्र का। ऐसा अकेला खाने वाला केवल पाप का ही भागी होता है। इसी प्रकार के विचार अन्य ग्रन्थो मे भी मिलते है। ''जो अपने लिये अन्न पकाते है, वे पापी लोग अपने पाप का ही भोग करते है।''[4] इसी बात को गीता और मनुस्मृति मे दोहराते हुए, यज्ञ अर्थात् परोपकार की भावना से किये जाने वाले

कार्यो पर बहुत बल दिया गया है। यज्ञ करके शेष बचे भाग को ग्रहण करने वाले सज्जन सब पापो से मुक्त हो जाते है। किन्तु (यज्ञ न करके केवल अपने ही लिये जो अन्न पकाते है) वे पापी पाप का भक्षण करते है। वैदिक साहित्य मे समान वितरण का सम्भवत सबसे अधिक स्पष्ट उल्लेख सामजस्य सूत्र (अथर्व. 03·20) मे है, आपका जल पीने का स्थान समान हो, आप सब मे अन्न का वितरण एक जैसा हो (समानी प्रपा सह यो अन्नभाग)। इसी सूक्त मे समाजवाद के आदर्श का प्रतिपादन करते हुये कहा गया है कि- मै तुम सब को एक साथ मिल कर चलने वाला, एक मन वाला तथा समान रूप मे बॉट कर एक साथ भोजन करने वाला बनाता हूँ।''[6]

महात्मा गॉधी ने लिखा है कि समाजवाद ही नही साम्यवाद भी हर्षोपनिषद के पहले मत्र मे स्पष्ट है। इस मत्र का अर्थ इस प्रकार है कि- जगत् मे जो कुछ है, वह सब ईश्वर द्वारा बनाया हुआ है, इसलिये उसके नाम से त्याग करके तू भोग करता जा, किसी धन के प्रति लालसा न रख।''[7]

प्राचीन ग्रन्थो मे जो लोक कल्याणकारी राज्य की रूपरेखा मिलती है वह उपर्युक्त सर्वमगल भावना का ही साकार रूप है। प्राचीन भारतीय विचार मनु ने 'मनुस्मृति' मे राजा को ऐसे कार्य सौपे है, जिस पर यदि दृष्टिपात किया जाये तो यही प्रतीत होता है कि वे राजा को निरकुश सत्ता प्रदान करने के पक्षपाती नही थे। उन्होने निश्चित रूप से राजा को दैवी अथवा देवाश बताया किन्तु बल उसके दैवत्व पर है न कि उसके अधिकार अथवा चाहे जिस प्रकार शासन करने पर और दैवत्व पर बल देने का तात्पर्य यह है कि राजा के द्वारा दैवीय गुणो के आधार पर प्रजा का पालन किया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त राजा राजनीतिक प्रभु जनता के भी अधीन है। वह अपनी शक्तियो के प्रयोग मे जनता की आज्ञा पालन की क्षमता से सीमित है। मनुस्मृति मे राजा से यह उम्मीद की गयी है कि वह राज्य मे शिक्षा की व्यवस्था करे। उसे सन्तानविहीन स्त्रियो, विधवाओ तथा रोगग्रस्त स्त्रियो की देखभाल करनी चाहिये। इस प्रकार मनु राजा के कार्यक्षेत्र को अत्यधिक व्यापक कर देता है तथा समाज कल्याण कि जिम्मेदारी राज्य पर छोड़ देता है। के. मोटवानी ने अपनी पुस्तक मनु धर्मशास्त्र मे लिखा है कि ''मनु के निर्देशन मे राज्य द्वारा बनाये जाने वाले अनेक कानून वर्तमानकालीन राजशास्त्र के विद्यार्थी को समाजवादी प्रतीत होगे।''

भारतीय विचारक कौटिल्य का राज्य निश्चित रूप से लोक कल्याणकारी था। उनके विचारो मे हमे समाजवाद का अभास होता है। यद्यपि कौटिल्य के राज्य मे सामाजिक सगठन वर्णाश्रम-

व्यवस्था पर आधारित है, परन्तु राज्य एव राजा के कर्त्तव्य पालन की श्रेष्ठता पर बल दिया गया है। राज्य को समस्त जनो की शिक्षा व्यवस्था का दायित्व सौपा गया है। वह चाहता था कि राज्य की ओर से समस्त परोपकारी कार्य सम्पादित हो। राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह वृद्धो, अपगो, असहाय स्त्रियो, अनाथो, रोगियो और दुखियो की सहायता करे।

अत यह स्पष्ट है कि कौटिल्य के राज्य की अवधारणा 'कल्याणकारी राज्य' पर आधारित है क्योकि राज्य व्यक्ति के सभी पहलुओ से सबद्ध कार्यो का सम्पादन करता है। वह प्रजा की रक्षा और पालन ही नही करता, बल्कि उसका मुख्य उद्देश्य है 'योग क्षेम' की स्थापना, 'योग' का अर्थ यदि किसी वस्तु की सफलतापूर्वक उपलब्धि है, तो 'क्षेम' का अर्थ शातिपूर्वक उस वस्तु का उपयोग करना है। 'योगक्षेम' का दूसरा अर्थ है, जो नही है, उसे प्राप्त करना और जो है, उसकी सुरक्षा करना।

इस प्रकार योगक्षेम मे लोककल्याणकारी राज्य के भाव निहित है, जिनके द्वारा राज्य प्रजा के सुख, कल्याण और आनद के लिये प्रयास रता है। कौटिल्य का कथन है कि -

प्रजासुखे सुख राज्ञ प्रजाना च हिते हितम्।
तात्म प्रिय हित राज्ञ प्रजानां तु प्रिय हितम्।।

(अर्थशास्त्र, पहला अधिकरण, अठारहवॉ अध्याय)

(अर्थात् प्रजा के सुख मे राजा का सुख और प्रजा के हित मे राजा का हित है। अपने-आपको अच्छे लगने वाले कार्यो को करने मे राजा का हित नही, बल्कि उसका हित तो प्रजाजनो को अच्छे लगने वाले कार्यो का सपादन करने मे है)।

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि कौटिल्य के राज्य का उद्देश्य पुलिस - राज्य के समान न तो केवल शॉति और व्यवस्था बनाए रखना है और न केवल करो की वसूली करना है। वस्तुत उसका राज्य एक लोक-कल्याणकारी राज्य है जो प्रजा के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे अपने दायित्वो को निभाने के लिये सदा क्रियाशील रहता है।

आधुनिक युग मे महात्मा गॉधी और विनोबा भावे ने इसी सर्व मगल या सर्वोदय के प्रवर्त्तन का प्रयास किया है। इस प्रकार से भारत मे वैदिक काल से आधुनिक काल तक सर्वोदय का वास्तविक समाजवाद की प्रतिष्ठा के लिये सदैव ही प्रयास होता रहा है। प्राचीन समाजवाद की धारणा आध्यात्म और सत्य पर प्रतिष्ठित है। इस मौलिक समाजवाद मे वास्तविक आध्यात्मिक चेतना प्राप्त करने के लिये निर्गुण और सगुण की पूजा, निष्काम कर्म,

ज्ञान आदि साधन माने गये है, जिनके सम्यक् अनुष्ठान मे समत्व बुद्धि प्राप्त होती है। इस समाजवाद का लक्ष्य था अनाशक्ति और अपरिग्रह। परन्तु जब से भारतीय समाजवाद पर कार्ल मार्क्स का प्रभाव पडा, इसका उद्देश्य जनशक्ति या विधि द्वारा सम्पत्ति की सस्था को समाप्त करने का हो गया है। डॉ. लोहिया ने उचित ही लिखा है कि - समाजवादी आन्दोलन की शुरुआत भारत मे और विश्व मे एक अर्थ मे बहुत पहले ही हो जाती है, वह है अनाशक्ति का, मिल्कियत और ऐसी चीजो के प्रति लगाव समाप्त करने का, मोह घटाने का। किन्तु जब से समाजवाद के ऊपर कार्ल मार्क्स की छाप पडी, तब से एक दूसरा अर्थ सामने आ गया। वह है सम्पत्ति की सस्था को समाप्त करने का, सम्पत्ति रहे ही नही, चाहे कानून से, चाहे जनशक्ति से।''[8]

उन्नीसवीं शताब्दी में समाजवाद -

उन्नीसवी शताब्दी के धार्मिक एव सामाजिक सुधार आन्दोलन का भारत के राजनीति मे विशेष स्थान है। इसके बहुमुखी स्वरूप एव व्यापकता की दृष्टि से इस आन्दोलन को सघर्षपूर्ण आधुनिक इतिहास मे एक महत्वपूर्ण घटना मानां जा सकता है। इस आन्दोलन ने भारत की तात्कालिक जडता को समाप्त किया और देश के जन जीवन को झकझोर दिया। इसने जहॉ एक ओर धार्मिक तथा सामाजिक सुधारो का आह्वान किया वही दूसरी ओर इसने भारत के अतीत को उजागर कर भारतवासियो के मन मे आत्मसम्मान और आत्मगौरव की भावना जगाने की कोशिश की। धार्मिक उपदेशो के साथ-साथ आन्दोलन के नेताओ ने स्वतत्रता और समानता का भी उपदेश दिया। ''भारत के समसामयिक ऐतिहासिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य मे इस स्वतत्रता का अर्थमात्र बौद्धिक चितन की स्वतत्रता से ही नही, बल्कि असमानता, शोषण और अत्याचार से मुक्ति भी था।''[9]

भारत पर अग्रेजो की विजय ने भारतीय समाज की कमजोरियो एव गिरी हुयी हालत को स्पष्ट कर दिया। अत: कुछ विचारशील और बुद्धिमान भारतीयो ने देश की दुर्दशा, पिछड़ेपन और विदेशियो के समक्ष अपनी पराजय के कारणो की खोज-बीन शुरू की तथा देश के उद्धार के लिये प्रयत्न करने लगे। वैसे अधिकाश भारतीय अभी भी परम्परागत विचारो, रीति-रिवाजो एवं संस्थाओं मे विश्वास जमाएं बैठे थे, लेकिन उनमे से कुछ ने सम्पर्क मे आते ही पश्चिम के नए विचारो एवं ज्ञान के महत्व को पहचाना। पश्चिम के वैज्ञानिक ज्ञान, बुद्धिवाद (Rationalism) के सिद्धान्त और मानववाद (Humanitarianism) का इन प्रबुद्ध भारतीयो पर

गहरा प्रभाव पड़ा। वे इस नए ज्ञान एव सिद्धान्तो की सहायता से अपने समाज की भलाई मे लग गए। इसमे समाज के विभिन्न वर्गो को अपना निजी हित भी नजर आया। ''नए सामाजिक वर्ग जैसे पूँजीपति वर्ग, श्रमजीवी वर्ग, और आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग-पाश्चात्य विचारो एव ज्ञान को इसलिये अपनाना चाहते थे ताकि उनसे देश का आधुनिकीकरण हो और इन विभिन्न सामाजिक वर्गो की स्वार्थ-सिद्धि हो सके। धीरे-धीरे बाकी भारतीयो पर इन पाश्चात्य विचारो का प्रभाव पड़ा, क्योकि भारतीय उत्तरोत्तर यह महसूस करते गये कि पश्चिमी विचार केवल पश्चिमी समाज के लिये ही नही बल्कि भारत सहित सम्पूर्ण मानव जाति के लिये भी उपयोगी थे।''[10]

दयानन्द सरस्वती (1824-1883 ई.) ने 10 अप्रैल सन् 1875 ई को बम्बई मे आर्य समाज की स्थापना की। यद्यपि दयानन्द एक महान् समाज सुधारक थे, लेकिन उनके विचारो मे समाजवादी धारणा और दर्शन के प्रमुख बिन्दु मिलते है। जहॉ एक ओर उन्होने मानव समानता पर बल दिया वही दूसरी ओर भारतीय समाज के दलित तथा गिरे हुये वर्गो के उद्धार करने का हर सभव प्रयास भी किया। उनका उद्देश्य मानव मात्र की मुक्ति करना था। मानव को किसी भी बन्धन मे रहना उन्हे प्रिय नही था। दयानन्द की शिक्षाओ मे मानवतावादी सार्वभौमवाद के अश देखने को मिलते हैं। उन्होने लिखा है- ''समाज का प्राथमिक उद्देश्य मनुष्य जाति की शारीरिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक दशा को सुधार कर समस्त विश्व का कल्याण करना है। मै उस धर्म को स्वीकार करता हूँ, जो सार्वभौम सिद्धान्तो पर आधारित है और जिसमे वह सब समाविष्ट है जिसको मनुष्य जाति सत्य समझ कर सदैव से मानती आयी है और जिसका वह आगे के युगो मे भी पालन करती रहेगी। इसी को मै धर्म कहता हूँ- सनातन नित्यधर्म जिसका विरोधी कोई भी न हो सके। मै उसी को मानने योग्य मानता हूँ जो सब मनुष्यो के द्वारा और सब युगो मे विश्वास करने योग्य हो।''[11]

दयानन्द मानते थे कि सामाजिक तथा राजनीतिक कर्म और भौतिक समृद्धि का अपना मूल्य और महत्व है। इनके समाज सुधार तथा पुन स्थापना, दलितोद्धार तथा मानव असमानता को दूर करने के प्रयास तथा कार्यक्रम की योजना भारत मे राष्ट्रीय राजनीतिक प्रगति की पूर्वगामी सिद्ध हुई। उनके इस सन्देह का भी महान राष्ट्रीय मूल्य है कि किसी को (अछूतो तथा विश्व भर के लोगो को भी) वेदो का ज्ञान प्राप्त करने तथा वेदाध्ययन का समान अधिकार है।

स्वामी विवेकानन्द (सन् 1863-1902 ई.) हर्बर्ट स्पेन्सर और जॉन स्टुअर्ट मिल से प्रभावित थे। वे शैली के सर्वात्मवाद और वर्डस्वर्थ की दार्शनिकता के प्रेमी एव हीगेल के वस्तु-निष्ठात्मक आदर्शवाद पर अनुरक्त थे, फ्रासीसी राज्य क्रान्ति का प्रभाव, उस समय,

साहित्य के माध्यम मे जोरो से फैल रहा था, विवेकानन्द भी उसके स्वतत्रता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धान्त त्रय मे बडे उत्साह से विश्वास करते थे।''[12]

स्वामी विवेकानन्द अद्वैत वेदान्ती थे। वे जीव को तत्वत ब्रह्म ही मानते थे। एक सच्चे अद्वैतवादी की भॉति उनका विश्वास था कि अन्तोगत्वा सब जीव ब्रह्म ही है अत प्रत्येक मनुष्य के अन्दर ईश्वर विद्यमान है। मनुष्यो की सेवा करना ही ईश्वर की सेवा करना है। स्वामी विवेकानन्द के ह्रदय मे गरीबो और दलितो के लिये असीम सहानुभूति थी। इस दृष्टि से वे गॉधी जी के अग्रवाहक थे। वे सबसे बडे समाजवादी थे जो अमीर और गरीब के भेद को ठुकराकर पद-दलितो को सीने से लगाने का सन्देश देते थे और अपने कर्ममय जीवन मे, अपने मिशन मे यह करके भी दिखाया। उनका कहना था- ''गरीब और अभावग्रस्त, पीडित और पद-दलित, सब आओ, हम सब रामकृष्ण की शरण मे एक है। हम पूजा के इस तामझाम को यानी देवमूर्ति के सामने शख फूकना, घण्टा बजाना, और आरती करना छोड़ दे, हम शास्त्रो के पठन-पाठन और व्यक्तिगत मोक्ष के लिये सब तरह की साधनाओ को छोड दे, और गॉव-गॉव मे जाकर गरीबो की सेवा, गरीबो और पीडतो की सेवा करने का बीडा उठा ले।''[13]

विवेकानन्द ने शिक्षितो को इन शब्दो मे चुनौती दी- ''जब तक करोड़ो लोग भूख और अज्ञान मे गोते खा रहे है, तब तक मै हर आदमी को एक विश्वास घातक मानता हूँ, जिसने उनकी गाड़ी कमाई के पैसे से शिक्षा पाई है और अब उन्ही पर कोई ध्यान नही देता।''[14] विवेकानन्द ने अमीरो को उनके कपट, शोषण, और अनाचार के लिये फटकारा। बडे दर्द भरे शब्दो मे उन्होने कहा ''भारत वर्ष मे हम लोग गरीबो को, साधारण लोगो को, पतितो को क्या समझा करते है? उनके लिये न कोई उपाय है, न बचने की राह, और न उन्नति के लिये कोई मार्ग ही। भारत के दरिद्रो का, भारत के पतितो का, भारत के पापियो का कोई साथी नही- उन्हे कोई सहायता देने वाला नही, वे कितनी ही कोशिश क्यो न करे, उनकी उन्नति का कोई उपाय नही, वे दिन पर दिन डूबते जा रहे है। राक्षस जैसा नृशस समाज उन पर जो लगातार चोटे कर रहा है, उसका अनुभव तो वे खूब कर रहे है, पर वे जानते नही कि चोटे कहां से आ रही है।''[15] पर साथ ही विवेकानन्द को विश्वास था कि जब पद-दलित वर्ग, जनता का साधारण वर्ग उठ खड़ा होगा तो उनकी प्रगति को रोकने का साहस किसी मे न रहेगा। गरीबो की सर्व साधारण की शक्ति को जगाते हुये विवेकानन्द न कहा ''ऊँचे पद वालो या धनिको का भरोसा न करना। उनमे जीवन शक्ति नही है- वे तो जीते हुये भी मुर्दे के समान है। भरोसा तुम लोगो पर है, गरीब, पद मर्यादा-रहित किन्तु विश्वासी तुम्हीं लोगों पर।''[16]

यूरोप मे विकसित हो रहे पूँजीवाद की दुष्प्रवृत्ति से विवेकानन्द अत्यधिक निराश हुए। वे नए क्रान्तिकारी विचारो की ओर आकर्षित हुये, जो अभी निर्माणावस्था मे थे। वे रूस के क्रान्तिकारी अराजकतावादी विचारक प्रिन्स क्रोपाटिकिन से मिले, समाजवादी विचारो ने उनके मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला और उन्होने स्वय को एक समाजवादी कहना प्रारम्भ कर दिया। विवेकानन्द के ह्रदय मे गरीबो और पद-दलितो के प्रति असीम सवेदना थी। समाज मे उनके लिये समुचित स्थान दिये जाने को उन्होने जबरदस्त वकालत की और जन-साधारण के उत्थान को अपने कार्यक्रम का सबसे महत्वपूर्ण अग बनाया। उन्होने कहा कि ''राष्ट्र का गौरव महलो से सुरक्षित नही रह सकता। झोपड़ियो की दशा भी सुधारनी होगी, गरीबो को उनके दीन हीन स्तर से ऊँचा उठाना होगा। देश भक्त बनने की दशा मे सबसे पहला कदम यही है कि हम भूख और अभाव से पीड़ित करोड़ो व्यक्तियो के प्रति वास्तविक सवेदना का अनुभव करे और उनके उत्थान की दिशा मे कुछ करके दिखाये। यदि गरीब और शूद्रो को दीन-हीन ही रखा गया तो देश और समाज का कोई कल्याण नही हो सकता।''[(17)] विवेकानन्द के समाजवादी ह्रदय ने इन शब्दो मे चीत्कार किया- ''मै उस भगवान या धर्म पर विश्वास नही करता जो न विधवाओ के ऑसू पोछ सकता है और न अनाथो के मुँह मे एक टुकडा रोटी ही पहुँचा सकता है।''[(18)] पूँजीवादी और शोषणवादी अमीरो के प्रति उन्होने कहा ''वे लोग, जिन्होने गरीबो को कुचलकर धन पैदा किया है और ठाट-बाट से अकड कर चलते है, वे उन 20 करोड देशवासियो के लिये जो इस समय भूखे और असभ्य बने हुये है, यदि कुछ न करे, तो वे लोग घृणा के पात्र है।''[(19)]

''विवेकानन्द भारत के पहले विचारक थे जिन्होने भारतीय इतिहास की समाजशास्त्रीय दृष्टि से यथार्थवादी व्याख्या की। उन्होने राजनीतिक उथल-पुथल के प्रलयकारी विप्लवो के मूल मे सामाजिक सघर्षो का निरन्तर सूत्र ढूँढ़ निकाला। उन्होने भारत की जो व्याख्या की वह स्वरूप मे अशत. मार्क्सवादी भी है, किन्तु वह उनके अपने ढंग की मार्क्सवादी है। ऐसा कोई प्रमाण नही है कि उन्होने 'दि कैपिटल' (पूँजी) अथवा 'दि कम्यूनिस्ट मैनिफेस्टो' पढी थी।''[(20)] विवेकानन्द के अनुसार प्राचीन भारत मे राजशक्ति तथा ब्रह्मशक्ति के बीच सघर्ष चला करता था। बौद्ध धर्म क्षत्रियो का विद्रोह था। उसके कारण पुरोहितो की शक्ति का ह्रास और राजशक्ति का उत्कर्ष हुआ। आगे चलकर कुमारिल, शकर और रामानुज ने पुरोहित शक्ति के उत्कर्ष का प्रयत्न किया। उदरम्भरि ब्राह्मण पुरोहितो ने मध्ययुगीन राजपूती सामन्तवाद से मेल करके अपनी शक्ति को कायम रखने की चेष्टा की, किन्तु मुस्लिम शक्ति की प्रगति के कारण पुरोहित वर्ग के उत्कर्ष की सम्पूर्ण आशाएं ध्वस्त हो गयी, और

न पुरोहित लोग विदेशी ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही अपनी शक्ति के पुनरुत्थान का स्वप्न देख सकते थे।''[21] भारतीय इतिहास की यह समाजशास्त्रीय व्याख्या अशत मार्क्सवादी है और अशत विल्फ्रोडो पैरेटो के सिद्धान्त से मिलती जुलती है। यह मार्क्सवादी इस अर्थ मे है कि ब्राह्मण तथा क्षत्रिय निरन्तर जनता के शोषण मे लगे रहे। दलित वर्ग के शोषण की धारणा मार्क्सवादी है। ''किन्तु विवेकानन्द का सिद्धान्त पैरेटो की धारणा से इस अर्थ मे मिलता-जुलता है कि उन्होने शोषक वर्गो के बीच सघर्ष की धारणा का प्रतिपादन किया जिसे पैरेटो की भाषा मे 'विशिष्ट वर्ग का चक्रावर्तन' कहते है।''[22] इसी प्रकार विवेकानन्द के अनुसार भारतीय इतिहास मे दो सामाजिक प्रवृत्तियॉ रही है। पहली ब्राह्मणो और क्षत्रियो के बीच निरन्तर सघर्ष की प्रवृत्ति है। कभी-कभी ऐसे भी अवसर आये जब दोनो वर्गो ने परस्पर सहयोग किया। दूसरे, पुरोहितो ने अपनी धार्मिक क्रियाओ के द्वारा और क्षत्रियो तथा बाद मे राजपूतो ने तलवार के बल पर जनता का निरन्तर शोषण किया।

श्रमिक वर्ग के प्रति विवेकानन्द की गहरी सहानुभूति थी। उनके जीवनकाल मे भारत मे श्रमिक वर्ग का आन्दोलन अथवा सगठन मौजूद नही था क्योकि उस समय इस वर्ग की स्वय रचना हो रही थी। लेकिन एक महान क्रान्तिकारी की भाति विवेकानन्द ने श्रमिक वर्ग के प्रति अडिग आस्था प्रकट की और अपनी मातृभूमि के महान् भविष्य के लिये, न केवल स्वतत्रता की वरन् समाजवाद की भविष्यवाणी की। वास्तव में उन्होने भारत मे समाजवाद का नारा रूस मे समाजवादी क्रान्ति के दो दशको पूर्वही दे दिया। इन्होने एक भविष्य दृष्टा की भॉति देख लिया था कि किसी न किसी रूप मे समाजवाद निकट आ ही रहा है, और वह दिन दूर नही जब शूद्र के रूप मे ही शूद्र शासक वर्ग बन जायेगे।

स्वामी विवेकानन्द उस अर्थ मे समाजवादी नही थे जिस अर्थ मे हम आधुनिक किसी राजनीतिक दार्शनिक को समाजवादी कहते है। उनकी दृष्टि मे समाजवाद कोई एकदम निर्दोष या आदर्श व्यवस्था नही थी। उन्होने लिखा था- ''मै समाजवादी हूॅ, इसलिये नही कि मै इसे पूर्ण रूप से निर्दोष व्यवस्था समझता हूॅ, परन्तु इसलिये कि रोटी न मिलने से आधी रोटी ही अच्छी है। अन्य व्यवस्थाओ को आजमाया जा चुका है और वे विफल अथवा दोषमुक्त सिद्ध हुई है। अब इसकी (समाजवाद की) भी परीक्षा होने दो-यदि और किसी कारण से नही तो केवल नवीनता के लिये ही सही।''[23]

विवेकानन्द को दो अर्थो मे समाजवादी कहा जा सकता है। प्रथम, इसलिये कि उनमे यह समझने की ऐतिहासिक दृष्टि थी कि भारतीय इतिहास मे दो उच्च जातियो - ब्राह्मणो तथा

क्षत्रियो का आधिपत्य रहा है। क्षत्रियो ने गरीब जनता का आर्थिक तथा राजनीतिक शोषण किया और ब्राह्मणो ने उसे नवीन तथा जटिल धार्मिक क्रियाकलाप और अनुष्ठानो के बन्धन मे जकड कर रखा। उन्हे खुले तौर पर जातिगत उत्पीड़न की भर्त्सना की और आत्मा तथा ब्रह्म मे आस्था रखने के नाते मनुष्य तथा मनुष्य के बीच सामाजिक बन्धनो को अस्वीकार किया।''[24] विवेकानन्द की रचनाओ मे सामाजिक समानता का जो समर्थन देखने को मिलता है वह प्रबल पुरातनवाद तथा ब्राह्मणो की स्मृतियो मे व्याप्त सामाजिक ऊँच-नीच के सिद्धान्त का सबल प्रतिवाद है, उनका सामाजिक समानता का सिद्धान्त तत्वत समाजवादी है।

दूसरे, विवेकानन्द समाजवादी इसलिये थे कि उन्होने देश के सब निवासियो के लिये 'समान अवसर' के सिद्धान्त का समर्थन किया।[25] उन्होने लिखा- ''यदि प्रकृति मे असमानता है, तो भी सबके लिये समान अवसर होना चाहिये - अथवा यदि कुछ को अधिक और कुछ को कम अवसर दिया जाय तो दुर्बलो को सबलो से अधिक अवसर दिया जाना चाहिये। दूसरे शब्दो मे, ब्राह्मण को शिक्षा की उतनी आवश्यकता नही है जितनी कि चाण्डाल को। यदि ब्राह्मण को एक अध्यापक की आवश्यकता है तो चाण्डाल को दस की है, क्योकि जिसको प्रकृति ने जन्म से सूक्ष्म बुद्धि नही दी है उसे अधिक सहायता दी जानी चाहिये। पद दलित, दरिद्र और अज्ञानी इन्ही को अपना देवता समझो।''[26] समान अवसर का सिद्धान्त निश्चय ही समाजवादी दिशा का द्योतक है।

स्वामी विवेकानन्द तथा आधुनिक समाजवादी दार्शनिको मे आधारभूत अन्तर है। प्रथम, विवेकानन्द का, मार्क्स के समान, इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या मे विश्वास नही था और न ही उन्होने मार्क्स तथा उनके अनुयायियो की भॉति वर्ग-सघर्ष के सिद्धान्त को मानव इतिहास को समझने की कुजी माना था। विवेकानन्द आध्यात्मिक पुरुष थे, वेदान्ती थे और वेदान्त पर आधारित किसी भी सामाजिक दर्शन मे वर्ग-सघर्ष के सिद्धान्त के लिये कोई स्थान नही हो सकता। द्वितीय, विवेकानन्द का अन्य समाजवादी दार्शनिको के समान वर्गहीन समाज के सिद्धान्त मे विश्वास नही था। यद्यपि उन्होने तत्कालीन भारतीय जाति प्रथा का विरोध किया था लेकिन जातियो के उन्मूलन की बात नही कि बल्कि यह माना कि हर समाज मे किसी न किसी प्रकार के वर्ग अवश्य ही होने चाहिये। तृतीय, विवेकानन्द ने केवल मात्र आर्थिक समानता को ही सर्वाधिक महत्व नही दिया वरन् उनका आदर्श तो एक सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक भ्रातृत्व था जिसमे आर्थिक समाजवाद के अतिरिक्त नैतिक तथा बौद्धिक आत्मीयता भी होगी।

महात्मा गाँधी का समाजवाद

मोहनदास करमचंद गाँधी (1869-1948 ई.) -

महात्मा गॉधी की गॉधीवादी विचारधारा राजनीतिक चिन्तन के इतिहास मे एक निर्णायक मोड है। विचार, क्रिया और प्रभाव का समन्वय, गाधीवाद की तरह, बहुत कम विचारधाराओ मे पाया जाता है।

गॉधी जी अपने आप को समाजवादी मानते थे उनकी विचारधारा मे व्यक्तिगत स्वतत्रता, समानता, सामाजिक न्याय आदि को अत्यन्त ऊँचा स्थान प्रदान किया गया है। वे अपरिग्रह एव न्यास वादी सिद्धान्तो के द्वारा आर्थिक विषमता का उन्मूलन करके आर्थिक समानता लाना चाहते थे। वे यह मानते थे कि समाजवाद हमे पूर्वजो से प्राप्त हुआ है और उन्होने यह सीख दी है कि समस्त भूमि 'गोपाल' या 'परमात्मा' की है। इसमे मेरी और तेरी सीमाए नही है। अर्थात् जमीन और सम्पत्ति भगवान जनता या राज्य की है। उनके अनुसार समाजवाद या साम्यवाद का विचार नवीन नही है। लूई फिशर से जुलाई 1940 मे वार्तालाप करते हुये गॉधी जी ने कहा था कि मै सच्चा समाजवादी हूँ, मेरे समाजवाद का अर्थ है 'सर्वोदय'। वे किसानो, मजदूरो, गरीबो आदि का सभी प्रकार से कल्याण चाहते थे। वे उनके साथ होने वाले अन्याय, अत्याचार तथा आर्थिक शोषण को दूर करना चाहते थे।

गॉधी जी का अपरिग्रह वास्तव मे आर्थिक समानता लाने की दिशा मे एक ठोस प्रयास था। गॉधी जी के अनुसार 'अपरिग्रह को अस्तेय से सम्बन्धित समझना चाहिये। वास्तव मे चुराया हुआ न होने पर भी अनावश्यक सग्रह चोरी का-सा माल हो जाता है। परिग्रह का अर्थ है सचय या इकट्ठा करना। सत्य शोधक, अहिसक परिग्रह नही कर सकता। परमात्मा परिग्रह नही करता।''[27] अनावश्यक रूप से कोई वस्तु लेना या रखना भी चोरी ही है। चुरायी हुई नही भी हो तब भी अनावश्यक वस्तु का परिग्रह बुरा है। इस व्रत का आदर्श है दैनिक उपयोग की वस्तुओ का अनुचित सग्रह रोकना तथा आज की जो जरूरत हो उतना ही सग्रह करना। ''यदि सब लोग अपनी आवश्यकता भर को ही सग्रह करे तो किसी को तगी न हो और सबको सतोष रहे।''[28] प्रारभ मे परिग्रह का त्याग शरीर से वस्त्र उतारने के समान नही, अपितु शरीर की अस्थियो पर से मास उतारने के समान लगता है किन्तु अपरिग्रह का निरन्तर प्रयास पृथ्वी पर समानता की स्थापना करने का निश्चित मार्ग है।

गॉधी जी ने अपरिग्रह वृत का पालन इस कारण नही सुझाया कि वे निर्धनता के आदर्श अथवा साधुवृत्ति को थोपना चाहते है। अपरिग्रह से उनका वास्तविक तात्पर्य स्वैच्छिक निर्धनता से है। एक निर्धन व्यक्ति स्वैच्छिक निर्धनता का पालन करने की सामर्थ्य नही रखता, किन्तु धनाढ्य व्यक्ति के लिये स्वैच्छिक निर्धनता आदर्श है। इसके माध्यम से वह समाज मे आर्थिक समानता स्थापित करने मे सहायक बन सकता है। सामान्य व्यक्ति के लिये अपरिग्रह दैनिक उपभोग की वस्तुओ तथा विलासिता पर नियत्रण एव अपनी आवश्यकताओ को कम करके सादगीपूर्ण जीवन जीने का आदर्श है। स्वय गाधी जी ने अपरिग्रह का जीवन-पर्यन्त पालन किया और अत्यन्त सादगीपूर्ण जीवन जीया। वे भारत की गरीब जनता के समकक्ष रहकर उनकी सेवा करना चाहते थे। सत्याग्रही के लिये अपरिग्रह की दोहरी आवश्यकता है क्योकि अपनी इच्छाओ तथा सग्रह की प्रवृत्ति का त्याग किये बिना जन-सेवा का व्रत पूरा नही हो सकता। अत गॉधी जी के अपरिग्रह की धारणा आत्मशक्ति का स्त्रोत है।

गॉधी जी के आर्थिक विचारो का मूल उद्देश्य यह है कि धन-सग्रह प्रगति के मार्ग मे बाधक है। वे भारत को अमेरिका तथा यूरोप के देशो के समान भौतिकवादी दौड़ मे नैतिकता का अन्त नही करना चाहते थे। ''वे पुरुषो, स्त्रियो तथा बालको की मृत देहो पर खडी होने वाली दैत्याकार चिमनियो तथा फैक्ट्रियो को पसन्द नही करते। उनके अनुसार देश की आर्थिक समृद्धि बढने के साथ-साथ नैतिकता का स्तर दिनो-दिन घटता जा रहा है।''[(29)]

गॉधी जी के अनुसार ''भारत का आर्थिक ढाचा अथवा समस्त विश्व का आर्थिक आधार ऐसा होना चाहिये जिसमे कोई भी व्यक्ति अन्न तथा वस्त्र से विपन्न न हो प्रत्येक व्यक्ति को इतना काम मिलना चाहिये कि वह अपनी दैनिक आवश्यकताओ की न्यूनतम पूर्ति अवश्य कर सके। यह तभी सभव है जबकि जीवन से सम्बन्धित मूलभूत आवश्यक वस्तुओ का उत्पादन जनता के नियंत्रण मे हो। दैनिक उपयोग की वस्तुये उसी प्रकार उपलब्ध हो जैसे ईश्वर द्वारा प्रदत्त हवा एव पानी। शोषण की अर्थव्यवस्था को तिलाजलि दे दी जाय। आर्थिक साधनो का एकाधिपत्य न किसी देश के हाथ मे रहे, न राष्ट्र के हाथो मे और न किसी व्यक्ति समूह मे। इस साधारण सिद्धान्त की अवहेलना का अर्थ विनाशकारी हो सकता है।''[(30)] यद्यपि गॉधी जी समान वितरण के आदर्श के पक्षपाती है, किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से वे समान वितरण के स्थान पर न्याय संगत वितरण को स्वीकार करते है।''[(31)]

गॉधी जी के आर्थिक विचारो का आधार रोटी-रोजी सिद्धान्त है। टालस्टाय से गॉधी जी ने यह प्रेरणा प्राप्त की है कि जीवित रहने के लिये मनुष्य को कार्य करना चाहिये। 'गीता' के

तृतीय अध्याय मे भी यही विचार व्यक्त किया गया है कि बिना कष्ट के प्राप्त भोजन चुराये हुये भोजन के समान है। यही रोटी-रोजी सिद्धान्त का आधार है। श्रम किये बिना व्यक्ति को भोजन करने का अधिकार नही है। पूँजी तथा श्रम के मध्य विश्वव्यापी सघर्ष छिड़ा हुआ है। निर्धन व्यक्ति पूँजीपति से ईर्ष्या करता है। यदि सब व्यक्ति अपनी रोटी के लिये काम करे, वर्ग-भेद स्वत मिट जायेगा। ''रोटी-रोजी के नियम के प्रति आज्ञापालन समाज की सरचना मे अवाक क्रान्ति लायेगी। अस्तित्व के लिये सघर्ष के स्थान पर पारस्परिक सेवा के आदर्श मे ही मानव की विजय सन्निहित है। पाशविक कानून को मानवीय कानून मे परिवर्तित करना है।''[32]

आर्थिक विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से समान वितरण की व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुये गॉधी जी ने व्यक्त किया है कि सब व्यक्तियो की आवश्यकता की पूर्ति होनी चाहिये और आवश्यकता से अधिक किसी के पास नही होना चाहिये। इसके लिये समाज की सरचना मे परिवर्तन करना होगा। अहिसा द्वारा यह परिवर्तन लाया जा सकता है। व्यक्ति को अपने निजी जीवन मे परिवर्तन लाना होगा उसे भारत की निर्धनता को ध्यान मे रखते हुये अपनी आवश्यकताओ को न्यूनतम करना होगा। उसकी आमदनी बेईमानी रहित होनी चाहिये। उसे जीवन के हर क्षेत्र मे अपने ऊपर नियंत्रण लगाना होगा। जब व्यक्ति अपने जीवन मे यह उतार ले तभी अपने मित्रो तथा पड़ोसियो को इस आदर्श का उपदेश दिया जा सकता है। समान वितरण की धारणा पर ही न्यास-पद्धति (trusteeship) का सिद्धान्त आधारित है।[33]

गॉधी के न्यास-पद्धति का अभिप्राय यह है कि पूँजीपति अपनी आवश्यकता से अधिक जमीन, सम्पत्ति, कारखानो आदि का अपने आपको स्वामी न समझे। उन्हे वे समाज की धरोहर या अमानत (trust) माने। वे उनका उपयोग अपने लाभ के लिये नही अपितु समाज के कल्याण के लिये करे। यह विचारधारा अपरिग्रह के सिद्धान्त के अनुकूल है।

वस्तुत कुछ देशो मे आर्थिक विषमता को मिटाने के लिये प्राय पूँजीपति से उत्पादन के साधन छीनकर राज्य के स्वामित्व को स्थापित करने का प्रयास किया जाता रहा है। इसे पूँजीपतियो और पूँजीवाद को मिटाने का एकमात्र उपाय माना गया लेकिन गॉधीवादी विचारधारा इसे एक नई दिशा प्रदान करती है। वे समाज मे आर्थिक समानता तथा शोषण की समाप्ति के लिये सरक्षण अथवा न्यास-पद्धति का प्रतिपादन करते है। वे पूँजीपतियो से उनकी सम्पत्ति और उत्पादन के साधन जबरदस्ती छीनने के पक्ष मे नही है। वे इसे हिसापूर्ण कार्य मानते है। इससे समाज मे तनाव, कटुता, वर्ग-सघर्ष तथा हिसा का वातावरण पनपता है। यदि हिसात्मक क्रान्ति के द्वारा पूँजीपतियो का उन्मूलन कर दिया जाता है तो समाज

सम्पत्ति के उत्पादन मे उनकी क्षमताओ और योग्यताओ द्वारा उठाये जा सकने वाले लाभ से वचित हो जायेगा।

न्यास पद्धति के अनुसार, पूँजीपतियो को अपनी सम्पत्ति को समाज की धरोहर समझने के लिये समझाया जाना चाहिये। वे उस समाज की धरोहर मे से अपनी जीविका निर्वाह के लिये आवश्यक धनराशि ले सकते है। शेष धनराशि को समाज के लिये हितकारी कार्यो मे लगा दी जानी चाहिये। यदि पूँजीपति स्वेच्छापूर्वक अपनी सम्पत्ति का परित्याग करने के लिये तैयार नही है तो उन्हे अहिसात्मक असहयोग तथा सत्याग्रह के साधनो द्वारा सन्मार्ग पर लाया जा सकता है। पूँजीपति, जमीदार, उद्योगपति आदि किसानो और मजदूरो के सहयोग से ही अपने समस्त कार्य करते है तथा सम्पत्ति का उपभोग करते है, यदि वे सहयोग न दे, तो उनका अस्तित्व असभव हो जाये। अत असहयोग के अहिसक ब्रह्मात्र से पूँजीपतियो की अपनी सम्पत्ति का न्यासधर बनने के लिये बाधित किया जा सकता है।[34]

गॉधी जी राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रो मे शक्ति तथा धन का विकेन्द्रीकरण चाहते थे। क्योकि केन्द्रीयकरण को ही वे समस्त बुराइयो की जड़ मानते थे। वे यह मानते थे कि वर्तमान समय मे राज्यो के अधिकारो मे निरन्तर वृद्धि हो रही है जिसके कारण शक्ति का प्रबल केन्द्रीयकरण हो रहा है। राजनीतिक क्षेत्र मे इसे कम किया जाना चाहिये। जब बडी-बड़ी मशीनो द्वारा उत्पादन का कार्य किया जाता है तो उद्योगो का संचालन तथा पूँजी मुट्ठीभर पूँजीपतियो के हाथ मे चला जाता है और धन का समान वितरण नही हो पाता जिसका परिणाम भुखमरी, गरीबी, शोषण तथा आर्थिक विषमता होती है। जिससे न केवल राष्ट्रीय बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय तनाव, अशान्ति और महायुद्ध उत्पन्न होते है। इस समस्या के समाधान का मात्र यही तरीका है कि राजनीतिक एव आर्थिक क्षेत्र मे विकेन्द्रीकरण हो। वृहद मशीनो के उद्योगो के स्थान पर लघु ग्रामोद्योग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत ग्राम-पंचायतो को स्वशासन के समस्त अधिकार दे दिये जाने चाहिये। इनके मामलो मे राष्ट्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारो का हस्तक्षेप एव नियत्रण नही होना चाहिये। उन्हे राजनीतिक दृष्टि से स्वशासित तथा आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाया जाना चाहिये। अपने आदर्श ग्राम स्वराज्य का चित्राकन करते हुये गाधी जी कहते है कि ‘‘उसमे प्रत्येक ग्राम एक पूर्ण गणराज्य होगा। वह.अपने खाने के लिये अन्न और कपड़ो के लिये रुई उत्पन्न करेगा..... प्रत्येक ग्राम, इस प्रकार अपने शासन, उत्पादन, वितरण आदि का स्वय स्वामी होगा। आर्थिक क्षेत्र मे, लघु कुटीर उद्योगो, आदि को

प्रोत्साहन दिया जायेगा। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था बेरोजगारी, साम्राज्यवाद, शोषण, असमानता आदि की विरोधी होगी।''[35]

गॉधी जी समस्त जाति-धर्म के लोगो मे एकता तथा समानता का भाव रखते थे। वे सभी प्राणियो मे आत्मिक एकता का दर्शन करते थे। यद्यपि वे वर्णाश्रम धर्म के प्राचीन भारतीय आदर्श को मानते थे फिर भी उन्होने जाति प्रथा का विरोध किया क्योकि प्रचलित जाति प्रथा वर्णाश्रम के सर्वथा विपरीत है अत· इसको जल्द-से-जल्द समाप्त करने के पक्ष मे थे। उन्होने छुआछूत की भावना को सवर्णो की कायिक श्रम के प्रति दुर्भावना का कुचक्र माना है। वे हरिजनो के उद्धार के लिये स्वय भगी का कार्य करने से नही हिचके। आश्रमवासियो के लिये शौचालय आदि की सफाई उन्ही के द्वारा करने का आदर्श स्थापित कर गाधी जी ने वह उदाहरण प्रस्तुत किया जो भारत मे सदियो तक देखने मे नही आया। उनके अछूतोद्धार का एक और विलक्षण पक्ष भी है। उन्होने न केवल हिन्दू समाज से छुआछूत को समाप्त करने का व्रत दिलवाया है, अपितु मानवमात्र को समानता का आदर्श अपना कर हिन्दुओ को मुसलमान, पारसी, ईसाइयो आदि से भी धार्मिक तथा सामाजिक भेद-भाव के बिना एक साथ मिलकर रहने का मार्ग सुझाया है।

वास्तव मे गाधी जी का लक्ष्य सबके लिये सामाजिक न्याय और आर्थिक अवसर की समानता को प्राप्त करना है। इस दृष्टि से गांधी जी को एक समाजवादी और गाधीवाद को समाजवाद का एक विशिष्ट रूप समझा जा सकता है। किन्तु उनका समाजवाद दूसरे व्यक्तियो के समाजवाद से सर्वथा भिन्न था, वह मार्क्स अथवा किसी अन्य पश्चिमी विचारक से नही लिया गया था, उसका मूल था अहिसा मे अदम्य विश्वास। उन्होने लिखा है कि ''समाजवाद का जन्म उस समय नही हुआ था जबकि पूँजीपतियो द्वारा पूँजी के दुरुपयोग का पता चला। जैसा कि मै कह चुका हूँ, समाजवाद यहॉ तक कि साम्यवाद भी, 'ईशोपनिषद' के प्रथम श्लोक मे झलकता है। सत्य तो यह है कि जब कुछ सुधारको को ह्रदय-परिवर्तनो के साधनो मे विश्वास आता रहा तो उस चीज का जन्म हुआ जिसे वैज्ञानिक समाजवाद कहा जाता है। मै उसी समस्या को सुलझाने मे लगा हुआ हूँ जो कि वैज्ञानिक समाजवाद के सामने है।''[36]

गाधी जी समाजवाद को सुन्दर शब्द मानते है। समाजवाद मे सभी सदस्य समान है - न कोई नीचा, न कोई ऊँचा। व्यक्ति के शरीर मे सिर इसलिये ऊँचा नही है कि वह शरीर के ऊपर है, न पैर के तलवे इस कारण नीचे है कि ये जमीन को छूते है। जैसे शरीर के अग समान है वैसे ही समाज के सदस्य भी। यही समाजवाद है।[37] गॉधी जी बोल्शेविकवाद के

सम्बन्ध मे कहते है कि यह निजी सम्पत्ति के उन्मूलन मे विश्वास करता है। एक प्रकार से यह सिद्धान्त अपरिग्रह के नैतिक आदर्श का अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे किया गया प्रयोग है। लेकिन अपने वर्तमान रूप मे वोल्शेविकवाद अधिक दिनो तक चल नही सकता। क्योकि वह हिसा पर आधारित है, हिसा पर आधारित कोई भी विचार अधिक दिन नही टिकता।[38] गॉधी जी ने वर्ग-सघर्ष के मार्क्सवादी विचार को स्वीकार नही किया। वे पूँजी तथा श्रम मे कोई नैसर्गिक विरोध नही मानते। वे श्रम तथा पूँजी को समान स्तर पर रखने की आवश्यकता पर बल देते है। पूँजीपतियो को केवल श्रमिको की भौतिक आवश्यकता का ही ध्यान नही रखना है, अपितु उनका नैतिक कल्याण भी करना है। वे न्यासी के रूप मे श्रमिको के हित का पालन करे। लडाई पूँजी से नही, अपितु पूँजीवाद से है। गॉधी जी के अनुसार सम्पत्ति के निजी स्वामित्व को नष्ट करने के स्थान पर उसके उपभोग पर नियत्रण लगाने की आवश्यकता है ताकि अमीर एव गरीब के बीच की खाई को मिटाया जा सके।[39]

गॉधी जी की मान्यता है कि यदि जनता अहिसा को जीवन का आधारभूत सिद्धान्त बना ले तो वर्ग सघर्ष असभव हो जायेगा इसके द्वारा पूँजीपति को नष्ट करने के स्थान पर पूँजीवाद को समाप्त करने का मार्ग प्रशस्त होता है। पूँजीपति न्यासी के रूप मे पूँजी का उत्पादन, सग्रह एव सवर्द्धन करने के लिये आमंत्रित है। श्रमिको को पूँजी के हृदय-परिवर्तन की प्रतीक्षा नही करनी है। यदि पूँजी शक्ति है तो श्रम भी। दोनो ही शक्तियॉ रचनात्मक अथवा विध्वसात्मक कार्य मे प्रयुक्त हो सकती है। श्रमिको मे अपनी शक्ति का बोध जागृत होते ही वे पूँजी की साझेदारी की बात सोचेगे, न कि पूँजीपतियो के दास बने रहने की। प्रत्येक मनुष्य को जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति करने का समान अधिकार प्राप्त है। श्रमिको को अपने शरीर से श्रम करने के कर्त्तव्य का निर्वाह करना है और उन व्यक्तियो से असहयोग करना है जो श्रम का शोषण करते है। मूलभूत समानता मे विश्वास रखते हुये पूँजीपति एव श्रमिक को एक ही धरातलपर देखना है। पूँजीपति को नष्ट करने के स्थान पर उसका हृदय परिवर्तन करना है।[40]

आर्थिक समानता के लक्ष्य को प्राप्त करने की उनकी तकनीक तथा समाजवादियो एव साम्यवादियो की तकनीक में अतर है। गाधी जी इस सम्बन्ध मे कहते है कि ''समाजवादी तथा साम्यवादी यह कहते है कि वे आर्थिकसमानता लाने के लिये आज कुछ नही कर सकते। वे इसके पक्ष मे प्रचार करते रहेगे और अन्त मे उनके अनुसार घृणा उत्पन्न होगी और बढ़ेगी। वे कहते है कि जब उनको राज्य पर नियत्रण प्राप्त हो जायेगा, वे समाता लागू करेगे। मेरी योजना के अनुसार, राज्य व्यक्ति की आकांक्षा की पूर्ति के लिये रहेगा, न कि उनको अपने निर्देशो के अनुसार कार्य करने अथवा बाध्य करने के लिये। मै अहिसा द्वारा आर्थिक समानता की

स्थापना करूँगा, जनता को अपने विचारो के अनुरूप परिवर्तित करूँगा, घृणा के स्थान पर प्रेम की शक्ति का उपयोग करूँगा। मेरे विचारो के अनुरूप समाज को बनने तक मै प्रतीक्षा नही करूँगा, अपितु मै स्वय से ही इसका प्रारम्भ कर दूँगा। यदि मै पचास मोटरकारो अथवा दस बीघा जमीन का भी मालिक हूँ तो यह सत्य है कि मै अपने विचारो की आर्थिक समानता नही ला सकता इसके लिये मुझे स्वय को निर्धन से निर्धनतम स्तर तक अपने आपको घटाना होगा। मै गत पचास वर्षो से यही करने का प्रयास कर रहा हूँ और इस कारण से मै अपने आपको अग्रणी साम्यवादी कहने का दावा करता हूँ, हालॉकि मै धनिको द्वारा प्रस्तुत कार एव अन्य सुविधाओ का उपयोग करता हूँ। उनका मेरे पर प्रभाव नही है और जनहित की मॉग पर मै उन्हे एक क्षण मे त्याग सकता हूँ।[41]

वास्तव मे गॉधीवादी विचारधारा एक समग्र जीवन दर्शन प्रस्तुत करती है। उसमे जीवन के सभी पक्षो-आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि का विवेचन हुआ है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व की गरिमा, विकास और महत्व पर बल देती है। उसका उद्देश्य राज्यशक्ति को क्षीण और व्यक्ति को सबल बनाना है। इसमे शोषण को शातिपूर्ण उपाय से समाप्त करने का जो प्रयास (न्यास पद्धति) किया गया है, वह एक आदर्शवादी धारणा है और सिद्धान्त रूप मे समाजवादी वर्ग-सघर्ष का एक विकल्प है। वस्तुत· मार्क्स ने पूँजीपति और मजदूर के बीच सघर्ष को काफी बढ़ा चढ़ाकर अकित किया है। गॉधी जी उसे शाश्वत मूल्य व्यवस्था के अन्तर्गत लेकर सहयोग और नैतिकता का आयाम प्रदान करते है, वे आर्थिक और लौकिक समस्याओ को आध्यात्मिक तथा पारलौकिक दृष्टियो से देखते है। इस आदर्श को व्यवहार मे प्राप्य न मानकर भी नैतिकता की दृष्टि से अनुगमन योग्य मानते है।[42]

विनोबा भावे (1895-1982) -

गॉधी जी के विचारो को कार्य रूप मे परिणत करने का कार्य विनोबा ने अपने हाथो मे लिया। हरिजनोद्धार, तेलगाना मे साम्यवादी प्रभाव के विरुद्ध भूमिहीन कृषको की समस्या का निवारण, नई तालीम, राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार एव प्रसार, भूंदान-यज्ञ, काचन मुक्ति, ग्रामदान सम्पत्तिदान, गोवध निषेध आदि मानवोचित कार्य विनोबा के अथक परिश्रम तथा त्याग के परिणाम है।

विनोबा ने गॉधी की मृत्यु के पश्चात् उनके सर्वोदय सिद्धान्त को पूर्ण करने का निश्चय किया। सर्वोदय का सीधा सरल अर्थ 'सबका उदय' है, पर एक विचार के रूप मे इसके अर्थ

बहुत गहरे है। सर्वोदय की विशेषता उसकी समन्वयात्मक प्रवृत्ति है, यह सभी विचारो के अच्छे अश को ग्रहण करता है और दोषो को छोड देता है। इसका आधारभूत सिद्धान्त 'अद्वैत' है, अर्थात् सर्वोदय विचार सम्पूर्ण व्यक्तियो, समूहो, वर्गो तथा राष्ट्रो के हित भिन्न-भिन्न और विरोधी हो सकते है।'' यदि हमको हितो मे विरोध प्रतीत होता है तो इसका कारण हमारी गलत धारणाए और हमारा गलत आचार ही है। यदि हम मानव हितो की एकता मे विश्वास पैदा करे तो हम 'सर्वोदय' की वास्तविकता के निकट पहुँच सकेगे। 'सर्वोदय' मे यह मान्यता निहित है कि मानव आत्मा पवित्र है और स्वतत्रता, समानता, न्याय तथा बन्धुत्व के आदर्शो को हमे अत्यधिक महत्व देना चाहिये।''[43]

सर्वोदय मार्क्सवाद, श्रम संघवाद, श्रेणी समाजवाद जैसी समाजवादी विचारधाराओ से भिन्न है। ये विचारधाराएँ केवल श्रमजीवी वर्ग के हितो पर जोर देती है और पूँजीपति वर्ग के समूल विनाश के आकाक्षी है, लेकिन सर्वोदय तो यह मानकर चलता है कि इस प्रकार का कोई भी वर्ग भेद समाज तथा सामाजिक जीवन मे अस्वाभाविक है। मनुष्य मे प्रकृति से ही प्रेम और सहयोग की भावनाए प्रबल है। अत सकीर्ण भावनाओ के आधार पर द्वेष और सघर्ष के आधार पर, समाज को विभाजित करना सर्वथा अनुचित है। जहाँ मार्क्सवाद मनुष्य को पूर्णत भौतिकवादी प्राणी मानते हुये उसके आध्यात्मिक मूल्यो को अस्वीकार करता है, वहाँ सर्वोदय मनुष्य के नैतिक मूल्य मे विश्वास करता है- उसके आध्यात्मिक मूल्यो का जयघोष करता है। फेबियनवाद भी सर्वोदय के आदर्श को नही छू सका हैं। फेबियनवाद व्यक्ति के सबके कल्याण के लिये अपना बलिदान कर देने का अनुरोध नही करता। इसके विपरीत, सर्वोदय का लक्ष्य कुछ या बहुत से व्यक्तियो का उत्थान नही है, अधिकतम सख्या का उत्थान भी नही है, वरन् सबके उत्थान का है- ऊचे का भी और नीचे का भी, सबल का भी, बुद्धिमान का भी तथा बुद्धिहीन का भी। सर्वोदय सम्पूर्ण समाज के उत्थान को अपना लक्ष्य मानता है। अपनी इसी विशेषता के कारण यह उपयोगितावाद से भी श्रेष्ठ है जो अधिकतम संख्या के अधिकतम सुख को ही अपना लक्ष्य मानता है। सर्वोदय की ये विशेषताएँ इसे समाजवाद के सभी पाश्चात्य रूपो से भिन्न और विभिन्न बना देते है। जहॉ पाश्चात्य समाजवादी हित का अभिप्राय आर्थिक हित से लेते है वहॉ सर्वोदय आध्यात्मिक विकास को प्रधानता देता है, सर्वागीण हित की कामना करता है, कुछ या बहुत या अधिकतम की नही अपितु सबकी प्रगति की आकाक्षा रखता है।

विनोबा ने जनता की स्वतत्रता पर अधिक बल दिया है। उन्होने सत्ता को जन सेवा मे

प्रयुक्त किये जाने के उद्देश्य के साथ-ही-साथ व्यक्तियो को सबल एव स्वावलम्बी बनाना आवश्यक माना है। वे जनता को स्वावलम्बी बनाकर उसे अपनी शक्ति के प्रति जागृत करना चाहते है। दक्ष व्यक्तियो द्वारा स्वेच्छा से जनता की सहायता करने पर बल देते है ताकि जन समुदाय उन्हे प्रत्युत्तर मे सहयोग प्रदान कर सके। जनता को स्वय अपने पैरो पर खडा होना है। समाजवादियो की तरह पहले एक स्थान पर धन केन्द्रित कर फिर उसके वितरण का प्रयत्न, विपदाओ को ही आमत्रित करेगा। प्रत्येक को उसकी योग्यता एव उसके श्रम के अनुसार वेतन देने की प्रणाली भी व्यर्थ है। न्यायोचित यही है कि वेतन श्रृखला की बात किये बिना व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण शक्ति एव योग्यता समाज के हित मे प्रयुक्त करे और समाज उस व्यक्ति के भरण पोषण का उत्तरदायित्व निभाये।[44]

आर्थिक समानता की अवधारणा को विनोबा भावे ने अत्यधिक महत्व दिया है। आर्थिक समानता के बिना अच्छे समाज की कल्पना निरर्थक है। विनोबा की धारणा है कि आवश्यकताओ अथवा इच्छाओ को बहुगुणित करने के स्थान पर उनका परिसीमन करना चाहिये ताकि समाज मे समन्वय एव सतोष का वातावरण बना रहे। प्रकृति ने हमारी आवश्यकताओ के अनुरूप अनुपात मे सब वस्तुओ को उत्पन्न किया है अत· प्रत्येक व्यक्ति द्वारा केवल अपनी आवश्यकतानुसार वस्तुओ का उपभोग किया जाये, सग्रह न किया जाये, तो विश्व मे कोई व्यक्ति क्षुधापीडित अथवा अन्य प्रकार से पीडित नही रह सकता। अपनी आवश्यकता से अधिक का अधिग्रहण अपराध है, चोरी है।[45]

विनोबा के आर्थिक समानता सम्बन्धी विचारो का यह तात्पर्य नही कि वे पूर्ण समानता का अथवा गणितीय समाता के पक्षपाती है। विनोबा गणितीय समानता के स्थान पर औचित्य पूर्ण अथवा ऐसी समानता चाहते है, जैसी की हाथ की पांच अॅगुलियो मे होती है। पांचो अॅगुलियॉ बराबर न होते हुये भी पूर्ण सहयोग से एक साथ मिलकर अनेक कार्य संपादित करती है। अॅगुलियो मे अन्तर भी इतना अधिक नही कि छोटी अॅगुली एक इच लम्बी हो और सबसे बड़ी एक फुट लम्बी।[46] विनोबा के इस दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि यदि पूर्ण समानता असाध्य है तो असतुलित असमानता भी हानिप्रद माननी चाहिये इसके स्थान पर असमानता के माध्यम से समानता का प्रयोग होना चाहिये। वे समानता को विभेदक समानता भी कहते है अर्थात् ऐसी समानता जो भेदभावपूर्ण होते हुये भी औचित्यपूर्ण हो।[47]

विनोबा ने गाधी जी के 'रोटी-रोजी' सिद्धान्त का अक्षरश· समर्थन किया है। प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रयत्नो से अपना भोजन जुटाये। उद्देश्य धन सग्रह करना न हो अपितु अपना

भरण पोषण मात्र माना जाये। प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखकर उत्पादन किया जाये और उत्पादन कर्ताओ मे समानता की भावना रखी जाय तो श्रम की महत्ता एव आवश्यक वस्तुओ का उत्पादन दोनो को प्रोत्साहन प्राप्त होगा।

जहॉ तक सर्वोदय तथा समाजवाद के मध्य सम्बन्ध है तो कुछ लोगो की मान्यता यह है कि न केवल सर्वोदय की भावना समाजवादी है, बल्कि यह समाजवाद का सर्वोत्कृष्ट रूप है। किन्तु दूसरी ओर जो लोग कार्ल मार्क्स से प्रेरणा प्राप्त करते है और वर्ग-सघर्ष को समाजवाद का मूल तत्व समझते है वे लोग इस दावे को स्वीकार नही कर सकते। ''लेकिन एक जीवन पद्धति अथवा सामाजिक सगठन के सिद्धान्त के रूप मे समाजवाद का वर्ग-सघर्ष कोई अग नही है, यह तो उस पद्धति का अग है जिसके द्वारा मार्क्स तथा उसके अनुयायियो के मतानुसार समाजवादी समाज की स्थापना अपरिहार्य है। यदि समाजवाद की स्थापना इसके बिना भी हो सकती है तो वर्ग-सघर्ष को समाजवादी जीवन पद्धति का एक अभिन्न अग नही माना जा सकता। सर्वोदय के सिद्धान्त का महत्व इस बात मे है कि यह हमे बिना वर्ग-सघर्ष के ही समतावादी समाज के लक्ष्य की ओर अग्रसर करता है।''[48]

वे लोग जो उद्योग पर राज्य से स्वामित्व और नियत्रण को समाजवाद का केन्द्र बिन्दु समझते है, सर्वोदय के समाजवाद होने के दावे को ठुकराते है। क्योकि सर्वोदय की प्रवृत्ति राज्यहीन समाज के अराजकतावादी आदर्श की ओर है। वस्तुत उद्योग पर राज्य का स्वामित्व समाजवाद के लिये आवश्यक नही है, अन्यथा गैर-औद्योगिक समाजो मे तो समाजवाद का प्रश्न उठ ही नही सकता। एक जीवन पद्धति और सामाजिक सगठन के रूप मे समाजवाद विश्व व्यापक है, इसे एक कृषि-प्रधान समाज मे भी स्थापित किया जा सकता है। इसका आग्रह तो केवल इस बात पर है कि मशीन को मनुष्य का स्वामी बनाने के बजाय मानव कल्याण का साधन बनाया जाना चाहिये। इस अर्थ मे सर्वोदय मशीन प्रधान सभ्यता के विरुद्ध है। कुटीर अथवा विकेन्द्रित उद्योग व्यवस्था की अपनी योजना के द्वारा सर्वोदय हमे इस आदर्श को प्राप्त करने की समता प्रदान करता है।

समाजवाद मूल रूप से एक आचारशास्त्र अथवा नैतिकता का प्रश्न है और इसका मुख्य सम्बन्ध इस बात से है कि मनुष्य का साथियो के साथ क्या सम्बन्ध होना चाहिये। ''एक सच्चा समाजवादी वह है जो कि समाज को समानता, स्वतत्रता तथा भ्रातृत्व के आधार पर स्थापित करना चाहता है। एक सामाजिक व्यवस्था जिस हद तक इन विश्व व्यापक मानव अधिकारो पर आधारित है, उसी हद तक वह समाजवादी है। एक समाष्टिवादी या एक साम्यवादी राज्य मे

राजकीय नियोजन तथा आर्थिक जीवन पर सरकार का इतना अधिक नियन्त्रण हो जाता है कि उसके अन्तर्गत व्यक्ति के व्यक्तित्व की उपेक्षा कर दी जाती है। मात्रा-प्रधान उन्नति के ऊपर आग्रह करने मे हम गुणात्मक परिवर्तन के महत्व को भूल जाते है।''[49] सर्वोदय मे समानता, स्वतत्रता तथा भ्रातृत्व को प्राप्त किया जाता है और मानव व्यक्तित्व के विकास को भी कोई खतरा नही रहता। इसका सबसे बड़ा गुण यह है कि यह एक अच्छे समाज का मापदण्ड मनुष्य को बनाता है इसमे व्यक्ति की गरिमा मे विश्वास तथा समाजसेवा पर आग्रह का सम्मिश्रण है। यह वर्तमान व्यवस्था को एक नयी सामाजिक व्यवस्था मे परिवर्तित करने के लिये आध्यात्मिक साधनो के प्रयोग पर बल देता है। सर्वोदय समाज सच्चे अर्थो मे समाजवादी है क्योकि इसका मूल प्रेम और भ्रातृत्व मे है और यह प्रत्येक के लिये समानता और स्वतत्रता चाहता है।

अन्य भारतीय समाजवादी विचारक -

आचार्य नरेन्द्र देव (सन् 1889-1956 ई.) -

आचार्य नरेन्द्र देव ने अपना राजनीतिक जीवन तिलक एव श्री अरविन्द के अतिवादी राष्ट्रवाद के अनुयायी के रूप मे किया। गाधी जी द्वारा असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ करने पर वे उसमे सम्मिलित हुये। सन् 1934 मे उन्होने अखिल भारतीय काग्रेस समाजवादी के उद्घाटन सम्मलेन का सभापतित्व किया। आचार्य नरेन्द्र देव की गणना भारत के प्रमुख समाजरादी बुद्धिजीवियो तथा प्रचारको मे की जाती है।[50] उनकी भारतीय किसान आन्दोलन मे भी काफी गहरी रुचि थी। वे अखिल भारतीय किसान सभा के सस्थापको मे से थे। दो बार उनको इस सभा का अध्यक्ष बनाया गया। वे अनेक वर्ष तक अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की कार्यकारिणी समिति के सदस्य रहे। वे इस पक्ष मे नही थे कि समाजवादी काग्रेस से पृथक हो, किन्तु दल के निर्णय के आगे उन्हे झुकना पडा।[51]

नरेन्द्र देव जी गांधी जी से प्रभावित थे। गांधी जी के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था और गाधी जी पर उनका व्यक्तिगत स्नेह भी था। नरेन्द्र देव जी नैतिक समाजवादी थे इस कारण वे नैतिक मूल्यो को प्राथमिकता देते थे। वे समाजवाद को एक सास्कृतिक आन्दोलन भी मानते थे, इसीलिये उन्होने समाजवाद के मानववादी आधार पर बल दिया। उन्होने हिन्दू तथा बौद्ध चिन्तन का गम्भीर अध्ययन किया था, जिसके फलस्वरूप मूल्यो की पवित्रता मे उनकी आस्था

अधिक गहरी हो गयी थी।[52] उन्होने सत्य की व्यवहारवादी कसौटी को स्वीकार करने से स्पष्टत इन्कार कर दिया। उनकी दृष्टि मे सत्य प्राथमिक तथा बुनियादी चीज थी किन्तु इसके बावजूद वे गाधी जी के अहिसा के सिद्धान्त को समग्र रूप मे मानने के लिये तैयार नही थे।[53]

नरेन्द्र देव जी विचारधारा की दृष्टि से मार्क्सवादी थे। यद्यपि उन्होने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के दर्शन की विशद व्याख्या नही की, फिर भी उन्होने उसके सामान्य सिद्धान्तो का विवेचन किया। उनका कहना था कि वास्तविकता जटिल है, किन्तु द्वन्द्वात्मक पद्धति वास्तविकता को उसके समग्र तथा जटिल रूप मे समझने का प्रयत्न करती है।[54] वे द्वन्द्ववाद के सिद्धान्त तथा पद्धति को स्वीकार करते थे, किन्तु उसमे सदेह है कि वे मार्क्सवादी के रूप मे भौतिकवाद के समग्र दर्शन को अगीकार करने के लिये उद्धत थे। फिर भी वे मार्क्सवाद को भौतिकवादी एकत्ववाद के रूप मे मानते थे और गति की सार्वभौमता को स्वीकार करते थे जिसका अर्थ है कि विश्व एक प्रक्रिया है। नरेन्द्र देव जी वैज्ञानिक समाजवादी होने का दावा करते थे। उनका कहना था, ''हमारे सामने जो काम है उसे हम तभी पूरा कर सकते है जब हम समाजवाद के सिद्धान्तो और उद्देश्यो को ह्रदयगम कर ले तथा परिस्थतियो के सही ज्ञान के लिये मार्क्स द्वारा प्रतिपादित द्वन्द्वात्मक पद्धति को समझे और उसे अपने कार्यकलाप का आधार बनाने का प्रयत्न करे। हमे वैज्ञानिक समाजवाद का आश्रय लेना चाहिये, और यूरोपियाई समाजवाद अथवा सामाजिक सुधारवाद से बचने का प्रयत्न करना चाहिये। विद्यमान सामाजिक व्यवस्था का क्रान्तिकारी रूपान्तर ही परिस्थितियो की आवश्यकता को पूरा कर सकता है। उससे कम किसी चीज से काम नही चल सकता।[55]

नरेन्द्र देव जी बुखारिन की प्रसिद्ध पुस्तक 'हिस्टोरिकल मैटीरियलिज्म' (ऐतिहासिक भौतिकवाद) से काफी प्रभावित थे। उन्होने बुखारिन की वर्गो की कसौटी तथा विभाजन के सिद्धान्त को स्वीकार किया। उसकी भॉति वे भी मानते थे कि समाज मे पूॅजीपतियो तथा सर्वहारा के अतिरिक्त अन्य वर्ग भी होते है, जैसे मध्य वर्ग, संक्रमण वर्ग तथा मिश्रित वर्ग।[56] लोकतात्रिक समाजवाद के समर्थक होने के नते नरेन्द्र देव राज्य के नौकरशाही हस्तक्षेप के विरुद्ध थे। इसलिये उनका प्रस्ताव था कि मजदूरो का एक वर्ग के रूप मे उद्योग के प्रबन्ध मे साझा होना चाहिये। यद्यपि उनका गाधी जी से घनिष्ठ सम्बन्ध था, फिर भी उन्होने वर्ग-सघर्ष के सिद्धान्त का परित्याग नही किया।[57]

नरेन्द्र जी ने भारत की सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओ को वर्ग संघर्ष की दृष्टि से समझने का प्रयत्न किया। वे इस पक्ष मे थे कि निम्न मध्य वर्गो तथा सामान्य जनता के बीच

मैत्री सम्बन्ध कायम किये जाये। उनका कहना था कि साधारण जन समुदाय अनुसघनीय अधिकारो तथा लोक प्रभुत्व के सामान्य सिद्धातो से आकृष्ट नही हो सकता। उसमे वर्ग चेतना तभी उत्पन्न हो सकती है जबकि उससे आर्थिक हितो की भाषा मे बात की जाय।[58]

समाजवादी क्रान्ति के सम्बन्ध मे नरेन्द्र देव जी लेनिन के विचार से सहमत थे। लेनिन के अनुसार यह अनिवार्य नही है कि समाजवादी क्रान्ति पहले उस देश मे हो जो औद्योगिक दृष्टि से सबसे अधिक विकसित है, वह तो उस देश मे होगी, जहॉ साम्राज्यवादी श्रृखला सबसे दुर्बल है।[59] नरेन्द्र देव जी श्रमिक वर्ग को साम्राज्य-विरोधी सघर्ष का हरावल (अग्रगामी टुकडी) तथा किसानो और बुद्धिजीवियो को उसका सहायक मानते थे।[60] उन्हे कोरे सुधारवाद और सविधानवाद से सहानुभूति नही थी।[61] उनका कहना था कि ''जन समुदाय को क्रियाशील बनाने तथा देश को लोकतत्र के लिये तैयार करने का एकमात्र उपाय यह है कि किसी लोकहितकारी आर्थिक विचारधारा को अगीकार करके राष्ट्रीय सग्राम का समाजीकरण किया जाय।[62]

नरेन्द्र देव जी ने समाजवादी आन्दोलन तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। वे चाहते थे कि समाजवादियो को राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम मे सम्मिलित होकर अपनी भूमिका निभानी चाहिये। यदि वे अपने को राष्ट्रीय आन्दोलन से पृथक रखते है तो उनका यह कार्य आत्महत्या करने के समान होगा। उन्होने समाजवादियो को यह मानने की सलाह दी कि एक औपनिवेशिक देश के लिये राजनीतिक स्वतंत्रता समाजवाद के मार्ग मे एक अपरिहार्य अवस्था है।[63] नरेन्द्र देव जी ने काग्रेस के अगस्त 1942 के प्रस्ताव का समर्थन किया, और कहा कि यह प्रस्ताव स्वतत्रता के सामाजिक पहलू की व्याख्या करता है।[64] वह खेतो तथा कारखानो की सम्पूर्ण शक्ति को श्रमिक वर्ग मे निहित करना चाहता है। उनकी दृष्टि मे अगस्त प्रस्ताव का उद्देश्य जनसाधारण की सर्वोच्चता स्थापित करना था।

नरेन्द्र देव जी जन समुदाय की एकाता के समर्थक थे। वे चाहते थे कि जन समुदाय की क्रान्तिकारी भावना को तीव्र किया जाय और उन्होने स्वय ज़नता को क्रान्तिकारी कार्यवाही के लिये उत्तेजित करने के लिये कार्य भी किया।[65] उनका विचार था कि सामाजिक तथा आर्थिक मुक्ति के जिस कार्य को पश्चिमी यूरोप मे अठारहवी शताब्दी मे पूँजीपतियो ने किया था उसे भारत मे शोषितजनता के सगठन के द्वारा सम्पादित करना होगा।[66] उनकी दृष्टि मे भारतीय स्वतंत्रता सग्राम के आधार को व्यापक बनाने के लिये जनता मे रचनात्मक कार्य करना आवश्यक था।[67] भारत मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद देशी राजाओ, पूँजीपतियो तथा सामन्तो की

सहायता से अपनी जड़ो को मजबूत करने का प्रयत्न कर रहा था। इस प्रकार शोषण की व्यवस्था के स्तम्भो को दृढ़ बनाया जा रहा था। पूँजीपतियो ने भी जमीदारो के साथ समझौता कर लिया था। प्रति क्रान्तिकारी शक्तियो के इन गठबन्धनो ने शोषित जनता के कार्य को भी कठिन बना दिया था। उसे देश की राजनीतिक तथा आर्थिक दोनो ही प्रकार की मुक्ति के लिये सघर्ष करना था। ऐसी स्थिति मे औद्योगिक मजदूरो, किसानो तथा निम्न मध्य वर्गो का सयुक्त मोर्चा आवश्यक हो गया था। इसी प्रकार आर्थिक तथा राजनीतिक सघर्ष सफलता की अधिक आशा के साथ चलाया जा सकता था। इसीलिये नरेन्द्र देव जी ने देश के स्वाधीनता सग्राम के आधार को मजबूत बनाने पर बल दिया। उन्हे आशा थी कि द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त ससार मे अनेक जन क्रान्तियॉ होगी।[68]

नरेन्द्रदेव जी भारतीय कृषको के जबरदस्त हिमायती थे। वे उनका पुनर्निमाण करना चाहते थे। इसीलिये उन्होने किसानो के आर्थिक अधिकारों की प्राप्ति के लिये किसान सभाओ को सगठित किया। उनका आग्रह था कि सभी प्रकार के किसानो की शक्तियो को एक जुट किया जाय। भारत मे किसानो तथा खेतिहर मजदूरो की समस्याये बड़ी विकराल थी। जो जन समुदाय खेती-बाडी मे लगे हुये थे उनका भयकर गरीबी से किसी न किसी प्रकार उद्धार करना आवश्यक था। इसके लिये देहाती जीवन के पुनर्निमाण की एक क्रान्तिकारी योजना की आवश्यकता थी। नरेन्द्र देव स्तालिन की इस बात से पूर्णत. 'सहमत थे कि किसानो के विशाल समुदाय को समाजवादी विचारधारा से अनुप्राणित करना आवश्यक है।[69] बहुसख्यक किसानो को देश के समाजवादी पुनर्निमाण की योजना से सम्बन्ध करने के लिये सहकारी समितियो को सगठित करना और उन्हे सुदृढ़ बनाना अति आवश्यक था। नरेन्द्रदेव जी ने कृषि को सहकारी आधार पर सगठित करने का समर्थन किया। उनका आग्रह था कि ऋण निरस्त कर दिये जाये और किसानो के लाभ के लिये सस्ते ब्याज पर ऋण की व्यवस्था की जाय।[70]

भूमि-व्यवस्था का क्रान्तिकारी रूपान्तर करने के लिये आवश्यक था कि वास्तविक कृषको तथा राज्य के बीच जो बहुत से बिचौलिये थे उनका उन्मूलन कर दिया जाय। किन्तु नरेन्द्र देव जी राष्ट्रीय समस्याओ को किसानो के वर्गगत दृष्टिकोण से देखने के लिये तैयार नही थे। उन्होने 'किसानवाद' की निन्दा की, उसे एक प्रकार का ऐसा ग्रामवाद बताया जो किसानो की विचारधारा को आवश्यकता से अधिक महत्व देता था। इस बात का भय था कि किसानवाद से कहीं देहात तथा नगरो के बीच हानिकर सघर्ष न उत्पन्न हो जाय। नरेन्द्र देव जी इस पक्ष मे थे कि गांवो में सहकारी व्यवस्था[71] कायम करके लोकतांत्रिक ग्राम सरकार की स्थापना की

जाय। जनता के पिछड़ेपन को दूर करने तथा उसे नवीन आदर्शो और आकाक्षाओ से अनुप्रमाणित करने के लिये नरेन्द्र देव जी ने इस बात का समर्थन किया कि भारत के गॉवो मे किसी न किसी रूप मे नवीन जीवन आन्दोलन प्रारम्भ किया जाय।[72]

भारत के समाजवादी चिन्तको मे आचार्य नरेन्द्र देव का विशेष स्थान रहा है। उनकी गणना भारत के प्रमुख समाजवादी बुद्धिजीवियो तथा प्रचारको मे की जाती है। गाधी जी के घनिष्ठ समर्थक होते हुये भी विचारो से वे मार्क्सवादी थे। वे मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मे द्वन्द्ववाद का समर्थन करते थे किन्तु भौतिकवाद मे उनकी आस्था नही थी। वे वैज्ञानिक समाजवाद के समर्थक थे। नरेन्द्र देव एक ओर लोकतांत्रिक समाजवाद के समर्थक थे तो दूसरी ओर वे वर्ग सघर्ष के सिद्धान्त के भी। वर्ग सघर्ष के सिद्धान्त के माध्यम से उन्होने भारत की आर्थिक व सामाजिक समस्याओ का अध्ययन किया। सामान्य जनता मे वर्ग-चेतना का सचार करने के लिये उनकी दृष्टि मे निम्न मध्यम वर्ग तथा साधारण वर्ग मे मधुर सम्बन्धो की स्थापना आवश्यक थी। वे कृषको, बुद्धिजीवियो के सहयोग से श्रमिक वर्ग को साम्राज्यवाद-विरोधी सघर्ष का अग्रगामी मानते थे। वे भारतीय स्वतत्रता सग्राम को आर्थिक आधार प्रदान कर उसका समाजीकरण चाहते थे। वे किसानो को समाजवादी विचारधारा से अनुप्राणित करना चाहते थे। उनका कृषक-पुनर्निर्माण का कार्यक्रम सहकारी समितियो के सगठन पर आधारित था। वे कृषि को भी सहकारिता के आधार पर उन्नत करना चाहते थे तथा कृषको व ग्राम विकास के लिये सस्ते ऋण की व्यवस्था के पक्षपाती थे। वे गावो मे लोकतात्रिक सरकार के पक्ष मे थे।

डॉ. राम मनोहर लोहिया (1910-1967)-

डॉ. लोहिया एक सच्चे समाजवादी चिन्तक थे। उनके समाजवादी सिद्धान्तो पर गाधीवाद और मार्क्सवाद का प्रभाव होते हुये भी उसमे उनकी मौलिकता निहित है। उनकी मान्यता थी कि जब तक सामाजिक असमानताओ को समाप्त नही किया जायेगा तब तक समाजवाद की कल्पना अपने देश मे निर्मूल है। इन्होने सामाजिक समस्याओ, जिनमे मूलरूप से जाति प्रथा की समस्या है, इतना गहन विश्लेषण किया कि यदि उनके सिद्धातो को क्रियान्वित किया जाये तो वास्तव मे एक स्वच्छ समाज का निर्माण किया जा सकता है। डॉ. लोहिया ने रग-विभेद एव अस्पृश्यता के ऊपर तीव्र प्रहार करते हुये अपने मौलिक सिद्धान्तो को आदर्श के साथ व्यवहार से सम्बद्ध करने के लिये प्राचीन आदर्शो का सहारा लिया है, जिसको उन्होने अपनी रचना 'वशिष्ठ और बाल्मीकि' (सन् 1958 ई) मे निरूपित किये है। निर्गुणात्मक समता को उन्होने ठोस रूप दिया। राष्ट्र मे व्याप्त आय विषमता, मूल्यवृद्धि, भ्रष्टाचार, वर्ग व्यवस्था,

जमीदारी, आर्थिक केन्द्रीकरण और विलासिता को वे जड़ से समाप्त करना चाहते थे। इनके दर्शन मे अधिकाश विचारको और दार्शनिको की विचारधाराएँ समाहित दिखायी पड़ती है। यह तथ्य उनके व्यापक दर्शन का द्योतक है। 'इतिहास चक्र' 'नामक उनकी पुस्तक की प्रशसा पाश्चात्य देशो ने भी मुक्तकण्ठ से की है। उनकी 'चौखम्भा राज्य योजना' विश्व समाजवाद का नव दर्शन, समान असगति, वाणी स्वतत्रता और कर्म नियत्रण, अन्तर्राष्ट्रीय जमीदारी 'अन्तर्राष्ट्रीय जाति प्रथा' आदि के सिद्धान्त उनके मौलिक चितन के उदाहरण है।

डॉ लोहिया सामाजिक समानता को अधिक महत्व देते थे, लेकिन इसका यह अभिप्राय नही कि वह समता को कम महत्व देते थे। उनकी मान्यता थी कि एक समस्या दूसरी समस्या से किसी न किसी रूप मे अवश्य सम्बद्ध है। इसलिये एक समस्या के साथ दूसरी समस्या का समाधान आवश्यक है। इसी आधार पर उन्होने मार्क्स, गॉधी और सोशलिज्म (1963) की रचना की। गॉधी एव मार्क्स मे यही सबसे बडी कमी थी की एक, समस्या का एक पक्ष लेते है और उसी को मूल मानते है तो दूसरा समस्या को दूसरे पक्ष को मानते है और अपने अनुसार समस्या के समाधान के सुझाव रखते है। डॉ. लोहिंया ने इसी कमी को दूर करने के लिये ध्येय एव सामजस्य, के आधार पर इस पुस्तक की रचना की थी। मार्क्स की मान्यता थी कि समाज के परिवर्तन मे आर्थिक तत्वो का ही महत्व होता है और अनार्थिक तत्व गौण होते है। इसीलिये ही मार्क्स एव एजेल्स ने इतिहास की आर्थिक व्याख्या प्रस्तुत की। परन्तु इन आर्थिक तत्वो के अतिरिक्त अनार्थिक तत्वो का भी समाज-व्यवस्था के ऊपर प्रभाव पड़ता है। इतिहास की केवल आर्थिक व्याख्या ही नही है वरन् एक नैतिक, सौन्दर्य मूलक, राजनीतिक और धार्मिक व्याख्या भी है।

डॉ. लोहिया एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे, जो वर्ग एव वर्गहीन हो। शासन व्यवस्था के सम्बन्ध मे उनका मत था कि शासन व्यवस्था चार स्तरीय (ग्राम, मण्डल, प्रान्त तथा केन्द्र) होने पर ही आर्थिक एव राजनीतिक शक्तियो का विखराव होगा जिसके परिणाम स्वरूप जनता में चेतना आयेगी, जो किसी भी राष्ट्र के उत्थान के लिये आवश्यक शर्त होती है। इसके लिये वे क्रान्तिकारी परिवर्तन करना चाहते थे।

डॉ. लोहिया ने वर्तमान समाज व्यवस्था के आर्थिक पहलू पर ही नही, अपितु सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक पहलुओ पर भी कठोर प्रहार किया है और प्रत्येक पहलू के लिये एक विशिष्ट नीति का प्रतिपादन भी किया है। इनका विचार है कि अगर समाजवाद का एक अग ले लिया जाता है, जैसे 'वामपथी राष्ट्रीयता' या जैसे 'वामपथी

आर्थिकता' तो समाजवाद खण्डित रह जाता है, अधूरा रह जाता है ...वामपथी राष्ट्रीयता, उग्रपथी आर्थिकता, तीसरे उग्रपथी धार्मिकता, चौथे उग्रपथी सामाजिकता, पाचवे उग्रपथी राजनीतिकता।[73] अन्य समताओ की अपेक्षा सामाजिक समता का डॉ लोहिया ने प्रतिपादन अधिक सशक्त ढ़ग से किया।

भारत मे जितनी भी सामाजिक असमानताएँ मौजूद है उन सबका उद्भव जातिप्रथा का ही परिणाम है। जब तक जातिगत असमानताए पूर्ण रूपेण समाप्त नही की जाती तब तक समाजवाद की स्थापना सभव नही, क्योकि सामाजिक और आर्थिक समता की स्थापना समाजवाद का प्रधान लक्ष्य होता है। आर्थिक गैरबराबरी और जात-पॉत जुड़वा राक्षस है और अगर एक से लडना है तो दूसरे से भी लडना जरूरी है।[74] जातिप्रथा निम्न जातियो को भी आध्यात्मिक समता से वचित कर देती है और जितना वह उन्हे आध्यात्मिक समता से दूर रखती है उतना ही उन्हे सामाजिक समानता से भी। इसलिये कर्म की प्रतिष्ठा होनी चाहिये। जब तक हमारे समाज मे जाति का आधार कर्म रहा तब तक हमारे समाज मे रूढ़ियो जैसी सामाजिक बेड़ियॉ नही थी, लेकिन जाति का आधार वंशानुगत हो जाने से जाति व्यवस्था मे सामाजिक विषमताएँ पैदा होने लगी।[75]

डॉ. लोहिया ने जाति प्रथा के ऊपर जितना तीखा प्रहार किया वैसा शायद किसी विचारक ने नही किया। उनकी मान्यता थी कि गरीबी और जातिप्रथा एक दूसरे के कीटाणुओ पर पनपती है। आधुनिक अर्थतत्र के द्वारा समाजवाद तब तक नही आ सकता जब तक जातिप्रथा को समाप्त नही किया जा सकता। इस समस्या के विरुद्ध उनके दिमाग मे हर वक्त एक तूफान मौजूद रहता था। उनका विचार है कि परिवर्तन के विरुद्ध और स्थिरता के लिये जाति प्रथा एक भयकर शक्ति है।[76]

डॉ. लोहिया ने ब्रह्मज्ञान और अद्वैतवाद की तर्कपूर्ण और सार्थक व्याख्या करके यह सिद्ध किया कि जाति प्रथा समाप्त करना ही सच्चा ब्रह्मज्ञान और अद्वैतवाद है। डॉ. लोहिया ने कथोपनिषद के मंत्र 1/2/9 को प्रमाण के रूप मे रखा ''एकस्तथा सर्वभूता-तदात्मा। स्पं-रूप प्रतिरूपौ वभूव ।। को ब्रह्मज्ञान का मूलाधार बताते हुये सदेश दिया कि हम सब मूल रूप से एक है। अपने मन और शरीर से हट कर हम सबके प्रति अपनापन अनुभव करना ही ब्रह्मज्ञान है।''[77] इसी प्रकार जाति प्रथा की समाप्ति को ही अद्वैतवाद मानते हुये उन्होने कहा कि- एक तरफ तो अद्वैतवाद चला रहे है कि सब ससार एक है, सब समान है. . और दूसरी तरफ पचास तरह के झगडे करके अपने देश को हम छिन्न-भिन्न कर रहे है।''[78] वास्तव मे जाति

के आधार पर उच्च और निम्न का द्वैत बहुत बडी विडम्बना है और विशेषत भारत के लिये जहॉ 'वसुधैव कुटुम्बकम' ही सम्पूर्ण सस्कृति का आधार रहा हो किन्तु यह निश्चयपूर्वक नही कह सकते कि जाति प्रथा के नष्ट होने से सच्चा अद्वैतवाद प्राप्त हो जायेगा। लेकिन इतना अवश्य ही है कि जाति प्रथा एक विभाजक शक्ति है जिसके उन्मूलन की आध्यात्मिक आवश्यकता है। यदि जातिवाद को समाप्त कर दिया जाय तो कार्य विभाजन की दृष्टि से जाति प्रथा को जीवित रहने दिया जा सकता है।

डॉ लोहिया ने जातिप्रथा पर आर्थिक दृष्टिकोण से भी प्रहार किया। उन्होने स्पष्ट किया कि जाति के कारण प्राय· निम्न जातियॉ सार्वजनिक कार्यो से बहिष्कृत कर दी जाती है जिससे उनमे एक हीन भावना उत्पन्न हो जाती है और दासता से हर प्रकार का शोषण होता है। इसके अतिरिक्त जाति प्रथा के कारण छोटी जातिया इतनी अधिक गरीब हो गयी है कि वे अपनी पूर्ण क्षमता के साथ राष्ट्रीय कार्यो मे अपना सहयोग नही दे सकती। डॉ लोहिया की दृष्टि मे पिछडी हुई जातियो को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न करने और उनमे आत्म-सम्मान जाग्रत करने के लिये कुछ उपाय किये जा सकते है, जैसे साढे छह एकड वाली बात या खेतिहर श्रमिक की मजदूरी बढ़ाने वाली बात या ऊॅची से ऊॅची आमदनी या नीची से नीची आमदनी के बीच सीमा बाधने वाली बात।''[79] डॉ. लोहिया के इस तर्क के पीछे यही सार है कि सामान्यत निम्न जातियो के व्यक्ति ही गरीब व खेतिहर मजदूर है। उनकी आय बढा कर आर्थिक उन्नति की जा सकती है।

डॉ लोहिया ने जातिप्रथा पर सामाजिक दृष्टि से भी आक्रमण किया है। उनका विचार है कि जातिप्रथा भेदभाव को जन्म देकर समाज मे अलगाव की भावना की वृद्धि करती है। जातिप्रथा से आत्मीयता की समाप्ति हो जाती है और राष्ट्रीय विकास अवरुद्ध हो जाता है। सामाजिक दृष्टि से दो सुझाव रखे, प्रथम सहभोज और द्वितीय अन्तर्जातीय विवाह। सहभोज के सम्बन्ध मे उनका विश्वास था कि विभिन्न छोटी-छोटी जातियो के हजारो व्यक्ति सहभोज मे सम्मिलित होकर जाति-प्रथा हेतु जनपद को प्रभावशाली ढंग से प्रभावित कर सकते है और उन्होने क्रियात्मक रूप मे हैदराबाद मे इसका आयोजन भी किया। दूसरे सुझाव-अन्तर्जातीय विवाह का तात्पर्य द्विजो का आपस मे विवाह नही अपितु द्विज-अद्विज विवाह है। उनकी इच्छा थी कि उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के सम्बन्ध बहुतायत मे हो।

डॉ. लोहिया ने उच्च जातियो की पृथकतावादी नीति की कठोर आलोचना की और इस प्रकार के सिद्धान्त प्रतिपादित किये जिनसे उच्च और निम्न जातियॉ सब एक ही तरह का जीवन यापन करने की प्रेरणा प्राप्त कर सकती हो। इन्होने अस्पृश्यता को हिन्दू जाति का एक

बहुत बडा कलक माना और उसके निवारणार्थ सत्याग्रह भी किये। ''अस्पृश्यता अपराध कानून'' के पश्चात् भी विश्वनाथ मन्दिर मे शूद्रो को प्रवेश न दिया गया। इस पर उन्होने हरिजन मदिर प्रवेश आन्दोलन चलाया। आन्दोलनकर्ताओ के प्रति बहुत ही निर्दयतापूर्वक व्यवहार किया गया। अन्त मे उत्तर प्रदेश शासन को ''मदिर प्रवेश अधिकार घोषणा'' विधेयक पारित करना पडा। इस पर टिप्पणी करते हुये डॉ. लोहिया ने हरिजनो के पूजा पाठ के समान अधिकारो पर बल दिया- ''सरकार के इस आश्वासन के बाद यह सभव हो जाता है कि बनारस और दूसरी जगह के मन्दिरो मे हरिजनो और सवर्णो का भेद खत्म हो।''(80)

इस समस्या के उन्मूलन हेतु उन्होने कहा कि हरिजनो को स्वाभिमान, निर्भयता, स्वास्थ्य, सफाई तथा शिक्षा की आवश्यकता है। उनके साथ मानवोचित व्यवहार किया जाना आवश्यक है, क्योकि राष्ट्र के विकास के लिये इस वर्ग का उत्थान आवश्यक है। हरिजनो की उन्नति का आधार उनकी आध्यात्मिक और अन्त करण की स्वतत्रता है। इसीलिये पूजा-पाठ, मदिर-प्रवेश आदि के समान अधिकार उन्हे प्रात होने चाहिये।(81)

डॉ. लोहिया हरिजनो के लिये भी विशेष अवसर के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान करते है। उनके विचार से औरत, शूद्र, हरिजन, मुसलमान आदिवासियो के लिये 60 प्रतिशत स्थान सुरक्षित होने चाहिये। 'शिक्षा सभी को समान मिले', के सैद्धान्तिक आधार पर वे सभी विद्यालयो को एक समान कर देना चाहते थे। जब तक व्यक्ति को अधिकार नही दिये जाते, वह कर्त्तव्य को करने मे पूर्णतया असमर्थ रहता है। हरिजन तथा पिछड़ी जातियॉ शताब्दियो से पद-दलित रही है। इसलिये उनकी बुद्धि कुण्ठित हो गयी है। अशिक्षा और असभ्यता उनमे घुलमिल गयी है। अत उन्हे अधिकार सौप कर ही सुसस्कृत एव शिक्षित बना कर ही उनमे आत्म जागरण, साहस, कर्त्तव्य, त्याग और विश्वास के बीज बो सकते है। डॉ. लोहिया ने लिखा है कि पुराने सस्कार, परम्परा व परिपाटियो को बदल कर आदतो को बदल कर नये सस्कार और नयी आदते उनमे आये और नया मौका मिले। इसके अलावा और कोई रास्ता नही रह गया है।(82)

डॉ. लोहिया के लिये अस्पृश्यता एक नकारात्मक शब्द है। इस शब्द से केवल छुआछूत न मानने का ही अर्थ निकलता है। इसका सकारात्मक पहलू है- अस्पृश्यो को अपने भाई के समान मानते हुये खान-पान, शादी-ब्याह मे प्रेम के साथ सम्मिलित करना। हरिजनो को अपने तथा अपने को हरिजनो मे एकाकार कर लेना ही अस्पृश्यता निवारण का सही व सकारात्मक पहलू है। जिसको डॉ. लोहिया ने मन-वचन तथा कर्म के द्वारा व्यक्त किया।(83)

भारत वर्ष मे डॉ लोहिया ने वर्ग व्यवस्था का सूक्ष्म अध्ययन किया और उसे अत्यन्त मौलिक ढग से प्रस्तुत किया है। उन्होने स्पष्ट किया कि एक वर्ग समाज मे मुख्य वस्तु है- शोषण जो शोषण कर सकते है, वे अधिक पूँजी सकलन कर सकते है, जो शोषण नही कर सकते उनका शोषण होता है। शोषणकर्ताओ का अस्त्र विशेषाधिकार होता है। इनमे से कुछ विशेषाधिकार जन्म से ही प्राप्त हो जाते है और कुछ प्राप्त किये जा सकते है। विशेषाधिकार एक ऐसा अवसर है जो समाज मे बहुत छोटे से हिस्से को प्राप्त होता है। डॉ लोहिया मानते है कि भारत मे बुनियादी किस्म के तीन विशेषाधिकार है- जाति, सम्पत्ति और भाषा।

भाषा सम्बन्धी विशेषाधिकार से डॉ लोहिया का अभिप्राय अग्रेजी भाषा के ज्ञान से है। आज धन और प्रतिष्ठा अग्रेजी से जुड़ी हुई है। करोड़ो लोगो का यह विचार है कि वे तो अग्रेजी ज्ञान से अनभिज्ञ है तो शासन और प्रशासन का कार्यभार कैसे वहन करेगे? इस प्रकार इस प्रजातात्रिक राज्य मे करोड़ो व्यक्ति हीन भावना से ग्रस्त हो गये है। डॉ. लोहिया के विचार मे वर्ग उद्भव का दूसरा कारण जाति-सम्बन्धी विशेषाधिकार है। उनका मत है कि विश्व मे सक्षम और असक्षम के मध्य युद्ध हुए। सबलो ने निर्बलो को पराजित कर उन्हे अपने अधीन कर लिया। किन्तु भारत की यह विशेषता रही है कि विजेता वर्ग ने पराजित वर्ग को नष्ट न करके उनके अधिकारो को सीमित किया और अपने जीवन का एक अग उन्हे बना लिया। इस प्रकार ''हारे हुये का नाश करने के बजाय उसकी आमदनी को बाध रखने के प्रयास से जाति की उत्पत्ति हुई।''[84]

डॉ. लोहिया भी दूसरे समाजवादी विचारको के समान आर्थिक विषमता को अन्य विषमताओ से अधिक महत्व प्रदान करते है, क्योकि वर्ग उत्पत्ति का मुख्य कारण आर्थिक विषमता ही है। उन्होने यदि गरीब और कठोर श्रम करने वाले श्रमिक के जीवन को सहानुभूति पूर्वक देखा था तो श्रमिक वर्ग के विलासिता पूर्ण जीवन एव निष्क्रिय जीवन का भी घृणास्पद दृष्टि से अवलोकन किया था। डॉ. लोहिया के जो आर्थिक विषमता सम्बन्धी विचार है उन्हे अवास्तविक कह कर नकार दिया जाता है, परन्तु वास्तविकता बहुत कुछ यही है, क्योकि भारत आज आर्थिक विषमता से भयकर रूप से पीडित है। डॉ. लोहिया ने जातिप्रथा पर वास्तव मे गहरा प्रहार करते हुये कहा कि ''हिन्दुस्तान मे बुर्जुआ वर्ग ने दीन-हीन मानवता के लहराते हुए समुद्र को सोखने के लिये अगस्त्य ऋषि का कार्य किया।[85] उनके मत मे निम्न जातियो को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढग से सशक्त बना कर जाति पर आधारित वर्गो को विनष्ट किया जा सकता है। डॉ. लोहिया के मतानुसार

समाजवाद की स्थापना के लिये सार्वजनिक क्षेत्र के पदाधिकारियो के विलासितापूर्ण जीवन का दमन करना उतना ही अनिवार्य है जितना कि निजी क्षेत्र के पूँजीपति वर्ग का दमन। इस प्रकार डॉ. लोहिया ने आर्थिक-विषमता को दूर करने का अथक प्रयास किया। इस हेतु उन्होने कुछ ठोस नीतियॉ रखी थी। आय समता के लिये उन्होने 1 10 का अनुपात निश्चित किया है और इस प्रकार शोषण-रहित मूल्यनीति का भी निर्धारण किया। डॉ लोहिया ने सम्पत्ति पर आधारित वर्गो की ही नही, अपितु सास्कृतिक और सामाजिक तत्वो पर आधारित वर्गो की भी विशद व्याख्या की और उन्मूलन के लिये प्रयास भी किया।

डॉ लोहिया ने मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुये न तो गाधी जी के चरखा जैसे उपकरण को अपनाया और न नेहरू जी के समान आधुनिक भारी उद्योगो को। उनका मत है कि गॉधी जी का चरखा, नवीन छोटी मशीनो के लिये आधार हो सकता है, किन्तु यह पर्याप्त नही हो सकता। वे चाहते थे कि चरखा जैसी हाथ की मशीनो का कुछ और आधुनिकीकरण करना चाहिये। उसे बिजली, पेट्रोल आदि से चालित होना चाहिये। यहॉ डॉ. लोहिया और नेहरू के विचारो मे काफी साम्यता है। नेहरू जी भी लघु उद्योगो के आधुनिकीकरण को आवश्यक मानते थे। लघु उद्योग आधुनिक तकनीक के बिना भारी उद्योगो के समक्ष अपना अस्तित्व कायम नही रख सकते। डॉ लोहिया ने छोटी मशीनो के स्वरूप पर विचार व्यक्त करते हुये कहा कि "बिजली या तेल से चलने वाली छोटी मशीने बड़े उद्योग धन्धो का विकल्प है। इस प्रकार के कुछ मशीने मौजूद है एव बहुत सी अन्य नई मशीनो की खोज होना है। यह तकनीक वर्तमान युग मे क्रान्तिकारी परिवर्तन लायेगी। समस्या का हल बडे औद्योगिक धन्धो से सभव न होकर नई छोटी मशीनो के माध्यम से सभव है जो कि एक निश्चित सिद्धान्त और उद्देश्य के ऊपर आधारित है।"[86]

डॉ. लोहिया की योजना थी कि लघु मशीनो का निर्माण साक्षात्कार के सिद्धान्त पर होना चाहिये। वह भारतीय वैज्ञानिको को छोटी मशीनो को निर्मित करने की ओर उन्मुख करना चाहते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि अविकसित देशो के भविष्य का निर्माण करना कुशल वैज्ञानिको के हाथो मे है। डॉ. लोहिया ने सुझाव दिया कि यदि वैज्ञानिक ऐसा करेगे तो राष्ट्रीय विकास दिन-प्रति-दिन उन्नति की तरफ होगा।

डॉ. लोहिया विदेशी तकनीक को भारतीय अर्थव्यवस्था के लिये उचित नही मानते थे। इससे खतरों की सभावनाऍ अधिक बढ़ेगी। इसलिये वे भारतीयो को ही अपने आप मे सक्षम

देखना अधिक पसन्द करते थे। डॉ लोहिया को यह अधिक पसन्द था कि विदेशी वैज्ञानिको व तकनीको से शिक्षा ग्रहण करने के लिये उन्हे भारत मे ही आमत्रित किया जाय। डॉ. लोहिया का विचार था कि इन मशीनो का निर्माण निश्चित उद्योग के लिये होगा। वह शोध कार्यो को भी निश्चित उद्देश्यो के लिए ही मान्यता प्रदान करते थे। उन्होने कहा था कि आजकल की रफ्तार बदलनी पड़ेगी किसी भी अजीब और मनमाने विषय को लेकर खोज न की जाय, इसे छोड़ना पड़ेगा और उसके स्थान पर योजना बना कर खोज करनी पडेगी।

डॉ लोहिया छोटी मशीनो के औचित्य को स्वीकार करते थे। क्योकि ये मशीने भारतीय स्थिति की विशिष्ट आवश्यकताओ के अनुरूप है। छोटी मशीनो की व्यवस्था से अल्प पूँजी वाले कुटीर और लघु उद्योग धन्धे चला सकते है और आवश्यक आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकते है। इनके लाभो की ओर डॉ. लोहिया ने सकेत किया है कि -

(1) भारतीय उद्योगो का प्रयोग धनी वर्ग अपने हित मे करके श्रमिक वर्ग का शोषण करता है जबकि कुटीर उद्योगो मे उसका हिस्सा होता है।

(2) बडी मशीने भारत के सामान्य जन के लिये उनके समझ से परे की वस्तु है।

(3) श्रमिक वर्ग को छोटी मशीनो के प्रयोग से पारिश्रमिक उचित प्राप्त होता है तथा आर्थिक विकेन्द्रीकरण एव उचित प्रतिफल प्राप्त होता है।

(4) इन मशीनो द्वारा समाजवाद का प्रमुख उद्देश्य कार्य करने वाले को उचित पारिश्रमिक मिलेगा, पूर्ण होता है।

(5) आर्थिक विकेन्द्रीकरण इन्ही छोटी मशीनो का परिणाम है। आर्थिक विकेन्द्रीकरण से देश के सभी क्षेत्रो तथा सभी वर्गो का विकास होता है।[87]

मानवीय एव सामाजिक क्रियाकलापो के क्षेत्र मे पूँजी का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। सम्पत्ति के स्वामित्व की स्वाभाविक इच्छा सामान्य व्यक्ति मे निहित रहती है। सम्पत्ति के महत्व को हमेशा से ही स्वीकार किया गया है। डॉ. लोहिया इस तथ्य को स्वीकार करते है तथा इस तथ्य को वर्णित करते हुये कहते है कि ''शायद सभी लोग मानते है कि समस्त समस्याओ की जड़ सम्पत्ति है। चाहे अच्छाइयो की भी हो, लेकिन बदमाशियो की तो जरूर है।[88] समाजवादी साहित्य मे इस प्रश्न को बहुत महत्व दिया जाता है की सम्पत्ति का स्वामी कौन हो (व्यक्ति अथवा समाज) और किस सीमा तक हो। आर्थिक प्रणाली पर ही समाज की अन्य प्रणालियॉ आधारित रहती है, जैसे समाज मे आर्थिक सम्बन्ध जिस प्रकार के होगे उसी

प्रकार ही अन्य क्षेत्रो के सम्बन्ध होगे। सम्पत्ति पर वैयक्तिक स्वामित्व का दावा एव समर्थन करने वाले भी सम्पत्ति के प्रयोग को सामाजिक हित मे रखना चाहते है। समाज कल्याण की नीव ही सम्पत्ति के समाजीकरण पर आधारित होती है। सम्पत्ति के प्रयोग मे ही नही वरन् समस्त जीवन मूल्यो मे वैयक्तिक हित की समाप्ति ही समाजवाद का लक्ष्य है।

डॉ लोहिया को निजी क्षेत्र मे कोई विश्वास नही था, क्योकि आर्थिक विषमता की नीव एव शोषण निजी क्षेत्र की देन है अत व्यक्तिगत सम्पत्ति का उन्मूलन होना चाहिये। उन्होने निजी सम्पत्ति के सम्बन्ध मे कहा था कि- ''क्योकि व्यक्तिगत सम्पत्ति अभिशाप है क्योकि उसके द्वारा किसी भी अवसर पर रोजगार निर्माण नही हो सकता।''[89]

डॉ. लोहिया ने सम्पत्ति के समाजिकरण पर काफी बल दिया। वे यह जानते थे कि इसके बिना वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति नही की जा सकती। वे सम्पत्ति के समाजिकरण को ही पर्याप्त नही मानते थे। उनके मतानुसार सम्पत्ति की सस्था और सम्पत्ति से लगाव दोनो ही समाप्त करने चाहिये। उनकी मान्यता थी कि सम्पत्ति के प्रति मोह-समाप्ति का प्रयास और सम्पत्ति की सस्था समाप्ति का प्रयास एकांगी है। वे इस प्रकार की व्यवस्था के पक्षपाती थे कि जिसमे एक तरफ सम्पत्ति के प्रति लगाव समाप्त हो तथा दूसरे सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण हो। सामान्यत राज्य द्वारा जिन उत्पादन के साधनो का राष्ट्रीयकरण किया जाता है, उन उत्पादन के स्वामियो को शासन द्वारा क्षतिपूर्ति की व्यवस्था की जाती है, परन्तु डॉ लोहिया राष्ट्रीकृत उद्योगो के लिये कोई मुआवजा नही देना चाहते थे। इस सम्बन्ध मे उन्होने दो तर्क दिये। प्रथम- राज्य स्वय सम्प्रभु है अत उसे क्षतिपूर्ति के बिना सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण का अधिकार है। द्वितीय- यदि क्षतिपूर्ति देने के उपरान्त ही व्यक्तिगत सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण किया जाय, तो किसी भी सरकार के लिये ऐसा करना सभव नही होगा कि उद्योगो का राष्ट्रीयकरण कर सके। किन्तु क्षतिपूर्ति के स्थान पर वे पुर्नवास क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त को स्वीकार करते थे, जिसका अर्थ है कि राष्ट्रीयकरण के कारण जो व्यक्ति अपनी आजीविका से वचित हो जाता है उसके लिये विकल्प रोजगार या छोटे धन अनुदान की व्यवस्था हो।

डॉ. लोहिया का नेहरू जी के समान ही दृढ़ विश्वास था कि सरकार भी एकाधिकार की असीमित शक्ति पाकर शोषक हो सकती है। उनके विचारानुसार जब सरकारी उद्योगो मे अपव्यय, अव्यवस्था तथा केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति बढ़ने लगे तब उसे राजकीय समाजवाद समझना चाहिये जो कि व्यक्तिगत पूॅजीवाद से कही अधिक हानिकारक होता है क्योकि सरकार न जाने कब राष्ट्रीयकृत सम्पत्ति को करोड़पतियो के हाथ बेच दे। जैसा कि जापान मे

एक बार हुआ।[90] इसीलिये वे राष्ट्रीयकरण के साथ-साथ विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था भी चाहते थे। जिसके अनुसार राष्ट्रीयकृत सम्पत्ति का स्वामित्व ग्राम से लेकर केन्द्र तक की विभिन्न इकाइयो मे निहित होगा। डॉ. लोहिया के शब्दो मे- ''राज्य की विभिन्न सरचनाओ को गॉवो से सघ की ओर कई स्तरो पर पहुँचाने मे सामाजिक मालिकाना के माध्यम से ही सभव होगा।''[91]

राष्ट्रीयकृत उद्योगो के सम्बन्ध मे डॉ लोहिया ने अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा था कि राष्ट्रीयकृत उद्योगो के प्रबन्ध के प्रति हमे सजग रहना चाहिये, क्योकि राष्ट्रीयकृत उद्योगो मे अपव्यय तथा कुप्रबन्ध अधिक मात्रा मे पाया जाता है। उनका मत था कि मजदूर वर्ग मे उत्साह और कार्यक्षमता बनाये रखने के लिये लाभाश का उचित भाग उनको दिया जाना चाहिये तथा उद्योगो पर कड़ा प्रबन्ध रखा जाना चाहिये तब कही जाकर वह अपना कार्य सुचारु रूप से चला पायेगे। डॉ. लोहिया कहा करते थे कि- ''खाली राष्ट्रीयकरण करने से काम नही चलता। सम्पत्ति को सामाजिक बना देने से तो काम नही चल गया, क्योकि उस सामाजिक सम्पत्ति पर किस तरह का नियत्रण है, कौन लोग है, कैसे उस आमदनी का बॅटवारा करते है, जो उसमे से साल भर मे माल निकलता है उसको किस तरह से बॉटते है, इस पर बहुत कुछ निर्भर करेगा।''[92] डॉ. लोहिया राष्ट्रीयकृत उद्योगो की सुव्यवस्था, कठिन नियत्रण, आय पर उचित नियत्रण व वितरण व प्रबन्धो के सरल जीवन पर बल देकर राष्ट्रीयकरण की सार्थकता प्रमाणित की है। इसके अलावा उन्होने राष्ट्रीयकरण के सबसे बडे दोष केन्द्रीयकरण को समाप्त कर इसकी एक बहुत बड़ी बुराई को दूर कर दिया है। वास्तव मे उपयुक्त तत्वो के बिना सामाजीकरण का कोई महत्व नही रह जाता है।

लोहिया ने अपनी समाजवादी विचारो मे अन्न एव भू-सेना की कल्पना की थी। नेहरू जी ने अपनी ''सामुदायिक योजना में'' ग्रामीण विकास मे सहयोग एव सुरक्षा की दृष्टि से इसी प्रकार के एक सगठन की चर्चा की थी परन्तु उनका विचार इस सम्बन्ध मे स्पष्ट नही था। डॉ लोहिया ने अन्न एव भू-सेना के सम्बन्ध मे कहा था कि- ''जैसे बन्दूक वाली सेना वैसे ही हल वाली सेना। मोटी तरह से सोच लो हल वाली सेना जो नयी जमीन को तोडे, आबाद करे।''[93] लोहिया जी का सुझाव था कि जितना धन खाद्य सामग्री के आयात मे खर्च किया जाता है उसे भू-सेना पर खर्च किया जाना चाहिये। ऐसी भूमि जो इधर-उधर बिखरी हुई पडी है इस प्रकार की भूमि पर नवीन प्रकार की कृषि की जा सकती है। उनका विचार था कि यह केवल कल्पनामात्र नही है वरन् इसे वास्तविकता का रूप भी दिया जा सकता है। ब्रिटेन मे

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय इस प्रकार की कृषि प्रणाली अपनायी गयी थी तथा कुछ सीमा तक सफल भी हुई थी।

डॉ लोहिया का सुझाव था कि भारतीय कृषि व्यवस्था को सुदृढ करने के लिये दस लाख व्यक्तियो की भू-सेना तैयार करनी चाहिये। इस अन्न सेना के द्वारा पन्द्रह करोड एकड उपलब्ध परती जमीन से प्रतिवर्ष एक करोड एकड भूमि को कृषि योग्य बनाया जा सकता है। भारत मे कृषि कार्य के प्रयोग मे आने वाले साधनो से ही भू-सेना तैयार की जानी चाहिये। डॉ लोहिया ने कृषि कार्य मे काम आने वाले औजारो के स्तर मे सुधार की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होने यह सुझाव भी दिया कि शासन को भू-सेना के सदस्यो का व्यय वहन करना चाहिये। अन्न सेना के सैनिको के लिये सामान्य वेतन भी देना चाहिये। उनकी योजना के अनुसार अन्न सेना की वास्तविक भर्ती का कार्य भारत के विभिन्न राज्यो मे निश्चित होगा, ये राज्य इन स्थानो की पूर्ति जिला, शहर अथवा ग्राम पचायतो की सहायता लेकर करेगे, लेकिन ऐसी भर्ती की दर समय-समय पर केन्द्रीय शासन द्वारा निर्धारित की जायेगी। यह अन्न सेना पहले परती जमीन को कृषि योग्य बनायेगी और तदुपरान्त उस पर खेती करेगी। अत्यावश्यक होने पर आधुनिक साधनो का भी प्रयोग किया जायेगा।

डॉ. लोहिया का विचार था कि इस प्रकार की योजना के कार्यान्वयन मे इस बात का ध्यान रखा जायेगा कि अधिक खर्च न हो, बल्कि उचित सीमा के अन्तर्गत पूँजी को लगाया जाय। प्रति एकड़ 150 रुपये की निर्धारित राशि के आधार पर एक करोड़ एकड भूमि को कृषि योग्य भूमि बनाने के लिये 150 करोड रुपये खर्च होगे। इस कार्य को पूरा करने के लिये 10 लाख सैनिको की एक वर्ष के लिये आवश्यकता है और एक सैनिक पर प्रतिवर्ष 1000 रुपये के व्यय के हिसाब से कृषि योग्य बनायी भूमि पर खेती करने के लिये एक वर्ष के लिये 10 लाख सैनिको की आवश्यकता होगी जिन पर प्रतिवर्ष 100 करोड़ रुपया खर्च होगा। 50 करोड़ आकस्मिक आवश्यकताओ अथवा विविध खर्चो के लिये रखा जा सकता है। इस प्रकार प्रथम वर्ष मे ढाई सौ करोड़ रुपये का और दूसरे वर्ष मे एक सौ पचास करोड़ रुपये का खर्च होगा। चूँकि दो वर्षो के अन्त मे अन्न सेना इस खेती के द्वारा लगभग 40 लाख टन अन्न पैदा करेगी अत अपना कार्य प्रशस्त करने मे स्वय समर्थ होगी। डॉ. लोहिया ने अन्न एव भू-सेना को आर्थिक दृष्टि से ही लाभदायक नहीं समझा, बल्कि सामाजिक और सास्कृतिक क्षेत्र मे भी उसके महत्वपूर्ण योगदान की ओर संकेत किया। अन्न सेना एव भू-सेना 40-50 लाख व्यक्तियो की जीविका का केन्द्र बिन्दु होगी। इसके माध्यम से आर्थिक सम्पन्नता बढ़ेगी तथा

वर्ग और जाति के विचारो को ठेस पहुँचेगी। इस योजना से कृषि उत्पादन मे तो वृद्धि होगी ही, व्यक्तियो के प्राविधिक ज्ञान का भी विकास होगा। इस प्रकार डॉ लोहिया ने अन्न सेना एव भू-सेना को भारत के सर्वागीण विकास मे एक महत्वपूर्ण स्थान दिया।

डॉ. लोहिया भूमि का पुनर्वितरण करना चाहते थे क्योकि समाज मे असमानता की नीव डालने मे प्राचीन काल से ही भूमि का असमान वितरण रहा है। बडे-बडे सामन्त वर्ग, जमीदार, भूमि के एक बडे भाग पर अपना स्वामित्व रखते है। वे भूमिहीनो को अपनी जमीन मे श्रम करने के लिये लगाते है तथा पूर्ण पारिश्रमिक न देकर उनका शोषण करते है। भूमि के असमान वितरण के कारण ही असमानता का जन्म हुआ। डॉ लोहिया भी इस तथ्य को मानते है। भूमि-व्यवस्था मे, किसी आकस्मिक परिवर्तन के द्वारा ही वृहद स्तर की कृषि व्यवस्था आवश्यक रूप से, जमीदारी व्यवस्था को समाप्त करके ही प्राप्त की जा सकती है।

डॉ लोहिया ने इस समस्या की विवेचना बहुत ही सूक्ष्म ढग से की है। उन्होने मालिको और बटाईदारो के सम्बन्ध मे कहा कि ''मालिक को 75 प्रतिशत और खेतिहर किसानो को 25 प्रतिशत मिलता है। कभी-कभी उसे उपज का बहुत कम हिस्सा या कभी-कभी बराबर मिलता है।''(94) डॉ. लोहिया का विचार था कि जमीन के मालिको और बटाईदारो के मध्य उपज का उचित वितरण होना चाहिये। उनके मत मे 25 प्रतिशत उपज मालिक को और 75 प्रतिशत बटाईदार को मिलना चाहिये। इस सम्बन्ध मे उन्होने कहा था कि ''बटाईदार को सगठित करके मजबूत करना है। मजबूत करने का अर्थ है कि जब फसल मे से और मुनासिब हिस्सा लेने मालिक या सरकार आये तो अड़ जाये, लेट जाए, जेल जाए, मार खाए, मै तो यही पसन्द करूँगा। लेकिन अगर यह नही कर सकते तो डण्डा लेकर ही खड़े हो, पर फसल मत जाने दो।(95) डॉ. लोहिया की भूमि पुनर्वितरण सम्बन्धी नीति थी कि अधिक से अधिक और कम से कम जमीन के स्वामित्व मे एक और तीन का रिश्ता हो।(96)

डॉ. लोहिया राष्ट्रीय जमीदारी प्रथा के ही विरुद्ध नही थे वरन् उनकी सूक्ष्म दृष्टि ने अन्तर्राष्ट्रीय जगत को भी इस समस्या से जकड़े हुये पाया। राष्ट्रीय जमीदारी प्रथा को समाप्त करने के साथ-साथ वह अन्तर्राष्ट्रीय जमीदारी को भी समाप्त करना चाहते थे। उनके मत मे यह घटना मात्र आकस्मिक है कि किसी राष्ट्र को अधिक जमीन प्राप्त हो गयी और किसी को कम कभी किसी जमीन मे दूसरी जातियो के ऊपर कब्जा करने का, उन्हे प्राय नष्ट करने का, कुछ जातियो को अधिक अवसर मिल गया। डॉ. लोहिया का उपर्युक्त विचार उचित प्रतीत होता है कि राष्ट्रों के जमीदार जिस प्रकार आकस्मिक रूप से जमीन के एक बड़े भाग पर आधिपत्य

करने मे सफल हुये, उसी प्रकार विभिन्न राष्ट्र ने अपने-अपने क्षेत्रो मे भी यही किया। किन्तु इस विश्व मे आधिपत्य रखना और उसे निरतर बनाये रखना ही मूल आधार है जिस पर किसी राष्ट्र अथवा व्यक्ति की शक्ति खड़ी होती है। और इस प्रकार जमीदार राष्ट्रो से यह आशा करना व्यर्थ है कि वे अपने प्रदेश के किसी भाग को छोटे जमीदार राष्ट्रो को अपने समान जमीदार बनाने के लिये त्याग दे। भूमि का पुनर्वितरण किसी राज्य विशेष के अन्तर्गत व्यक्तियो के बीच ही सभव हो सकता है, क्योकि राज्य अपनी सम्प्रभुता शक्ति का प्रयोग करने मे सक्षम होता है किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय जगत मे सम्प्रभुता की अनुपस्थिति के अभाव मे यह विचार कल्पना ही प्रतीत होता है।

लोहिया समाजवाद के गभीर प्रचारक थे। समाजवादी आन्दोलन को आगे बढाने मे उनका विशेष सहयोग था। वे सच्चे गाधीवादी थे और उन्होने एक सच्चे गाधीवादी के रूप मे गाधीवाद को समाजवादी चिन्तन मे प्रमुखता देने का प्रयास भी किया। वे साम्यवादियो की तरह भारी उद्योगो की स्थापना के पक्षपाती नही थे। उन्होने कुटीर-उद्योगो तथा छोटे उद्योगो की स्थापना पर बल दिया। पूजीवाद के प्रसार तथा बेरोजगारी को रोकने का उनका यह अपना तरीका था। छोटी मशीनो तथा सहकारी श्रम के आधार पर भारत की आर्थिक समस्याओ का निदान उन्होने प्रस्तुत किया। वे कृषको तथा गावो की स्थिति मे सुधार लाने के लिये विकेन्द्रित समाजवाद की स्थापना चाहते थे। लोहिया ने एशियाई समाजवाद का मार्ग प्रशस्त किया। वे एशिया की समस्याओ को एशियाई तरीको से हल करने के पक्षपाती थे। पश्चिम का अन्धानुकरण उन्हे पसन्द नही था। आर्थिक विषमता उन्हे पसन्द नही थी किन्तु वे राष्ट्रीयकरण की नीति को ही इसका एकमात्र हल नही मानते थे। व्यक्ति की स्वतत्रता के महान् समर्थक होने के कारण उन्होने प्रशासनिक केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को विकेन्द्रीकरण के साथ समन्वित करने का आदर्श भी प्रस्तुत किया है।

जय प्रकाश नारायण (1902-1979) -

जय प्रकाश नारायण पर उन नवीन तत्वो एव विचारधाराओ का प्रभाव पड़ा, जिन्होने उनकी विचारधारा के निर्माण और विकास मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रत्येक विचारक अपने काल की परिस्थितियो की उपज होता है, जे.पी. भी उसके अपवाद नही हो सकते है। जे.पी. की विचारधारा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह एक समानान्तर रेखा मे न होकर विभिन्न मोड़ो से होकर गुजरी है। ये विभिन्न मोड़ विभिन्न विचारधाराओ की ओर संकेत करते हैं। जे.पी. का सम्पूर्ण दर्शन मूल रूप से तीन सिद्धान्तो स्वतत्रता, समता और बन्धुत्व

पर टिका हुआ है। इन्ही सिद्धान्तो के आधार पर जे पी के सम्पूर्ण चिन्तन का निर्माण हुआ है। वे एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की खोज मे है जो इन तीनो मूल्यो पर आधारित हो, इसी खोज मे वे कभी मार्क्सवाद की ओर मुड़े, कभी गाधीवाद की ओर और अन्त मे इसी खोज मे उन्होने मार्क्सवाद, गाधीवाद एव लोकतत्र के सिद्धान्तो का समन्वय कर एक ऐसी विचारधारा के निर्माण का प्रयास किया जो व्यवस्था को सबल आधार प्रदान करने की क्षमता रखती है।

मार्क्सवाद मे जे पी की पूर्ण आस्था थी। जे.पी. ने समाजवाद के सम्बन्ध मे कहा था कि - ''समाजवाद का केवल एक रूप है, एक सिद्धान्त है और वह मार्क्सवाद है।''[97] वे स्वीकार करते थे कि विभिन्न समाजवादी विचारधाराओ के मध्य प्रक्रिया और व्यूह रचना के प्रश्न को लेकर मतभेद है। परन्तु जे पी मानते थे कि अभी तक केवल साम्यवादियो ने ही अपने महान और विलक्षण सफलता के द्वारा, व्यूह रचना करके, अपने सिद्धान्तो की सार्थकता प्रमाणित की है।

निश्चय ही रूस मे समाजवाद का मार्क्सवादी प्रतिपादन है। समाजवाद सामाजिक पुनर्निमाण की पद्धति होता है। आदर्शवादियो का कोई भी वर्ग सत्ता पर आधिपत्य किये बिना समाजवाद की स्थापना नही कर सकता।[98] समाजवाद के इसी ध्येय को लेकर उन्होने 'समाजवाद ही क्यो' (सन् 1936 ई.) 'संघर्ष की ओर' (सन् 1948 ई.), 'नेशन विल्डिग इन इडिया', इत्यादि पुस्तको की रचना की।

जे पी. के ऊपर गाधी जी के व्यक्तित्व का भी काफी प्रभाव पड़ा है। स्वतत्रता का आकाशदीप जे पी को उन्नीस वर्ष की अवस्था मे ही तभी मिल गया जब उन्होने सन् 1922 मे गाधी जी के आग्रह पर पटना कालेज का परित्याग कर असहयोग आन्दोलन मे भाग लिया था। जे.पी. को अगर स्वतत्रता का ध्येय गांधी जी से मिला तो समता का ध्येय मार्क्स से। उनके चितन के विकास मे दोनो दार्शनिको का महत्वपूर्ण योगदान है। स्वतत्रता के ध्येय की पूर्ति के लिये तो जे.पी कांग्रेस मे गये, लेकिन समता के ध्येय के लिये वह तत्पर रहे, ताकि दोनो ध्येयो के लिये साथ-साथ कार्य किया जा सके। इसी आधार पर सन् 1934 ई. मे अन्य समाजवादी साथियो सहित काग्रेस समाजवादी दल की स्थापना की। उस समय उनकी विचारधारा पूर्णरूपेण मार्क्सवाद पर आधारित थी। सन् 1936 ई मे काग्रेस समाजवादी दल द्वारा प्रकाशित अपनी पुस्तक ''समाजवाद ही क्यो'' मे जे.पी. ने लिखा है कि ''और पहले से कही अधिक स्पष्ट तौर पर यह कहना संभव है कि समाजवाद का एक ही रूप व एक ही सिद्धान्त है -मार्क्सवाद।''[99]

जे पी ने अपनी इस पुस्तक मे उन साधनो की, जो कि आर्थिक, सामाजिक एव राजनीतिक क्षेत्र को समाजवाद की ओर अग्रसर करते है, विवेचना की है। परन्तु उन्होने समाजवाद की स्थापना के लिये किसी विदेशी राज्य का अन्धानुकरण न करके स्वय अपने राष्ट्र की परिस्थितियो एव साधनो की ओर सकेत किया है। यहाँ हमे सामाजिक व आर्थिक पुननिर्माण के क्षेत्र मे जे पी की विचारधारा मे विविधता के मध्य एक विचित्र एकरूपता दिखलाई पडती है, जो कि आज साठ वर्षो के बाद भी बनी हुयी है। जय प्रकाश नारायण ने समाजवाद के उद्देश्य की ओर सकेत किया है कि ''समाजवाद जो कुछ भी है एक सामाजिक निर्माण की कला है जिसका एक सामान्य उद्देश्य समस्त समाज की शांतिपूर्ण और सतुलित वृद्धि करना है ।''[100]

प्रत्येक समाजवादी का एक नैतिक कर्त्तव्य होता है कि वह समाज का सूक्ष्म अध्ययन करे, यदि समाज मे सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य किसी प्रकार की भी विषमता मौजूद होगी तो वह समाजवाद के रास्ते मे बाधक अवश्य बनेगी। एक वास्तविक समाजवादी का प्रथम कर्त्तव्य एव उद्देश्य होता है कि वह वर्तमान समाज मे मौजूद विषमताओ के निराकरण हेतु एक स्वच्छ एव सोद्देश्यपूर्ण सामाजिक नीति का प्रतिपादन करे। समाजवादी तब ही अपने उद्देश्य मे सफल हो सकता है जब वह सामाजिक विषमताओ के निराकरण का प्रयास करे, जिनसे वर्तमान समाज पूर्णरूपेण ग्रस्त है।

जय प्रकाश नारायण ने जातिप्रथा की कठोरता एव व्यवस्थापन को ब्राह्मण वर्ग की देन कहा, क्योकि ब्राह्मण वर्ग प्रारम्भ से ही शिक्षित वर्ग रहा है। इस वर्ग ने अपनी उच्चता कायम रखने के लिये सामाजिक नियमो का सृजन किया। जे.पी. के इस तर्क मे वास्तविकता का बहुत कुछ अंश है, इसे अमान्य नही किया जा सकता। वे किसी भी प्रकार की असमानता चाहे सामाजिक असमानता हो अथवा अन्य प्रकार की असमानताए उनको बहुत ही हीन दृष्टि से देखते है। जीवशास्त्रियो द्वारा प्रतिबिम्बित असमानता को मानव समुदाय पर लागू करने के सिद्धान्त को जे.पी.अनुपयुक्त समझते है।[101] असमानताए ही सभी समस्याओ के उद्भव का कारण होती है। आज समाज में जितनी समस्याए मौजूद है उन सबके मूल मे इसी समस्या के बीज छिपे हुये है। जे पी. का मत है कि हमारा हिन्दू समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित है, जो सम्प्रति मानव प्राणियो के सामाजिक पदो के अनुसार क्रमागत प्रभुत्व के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। चुनाव इन वर्तमान योजनाओ की चुनौती के रूप मे आया है। अब तक इस प्रकार की चुनौती समाज-सुधारकों की ओर से आती रही है तथा कथित निम्न वर्ग के व्यक्ति

शान्त थे। चुनाव ने इन्हे उभार दिया। वे देख रहे है कि उच्च वर्ग वाले जो उनके मुकाबले मे मुट्ठी भर है, सारा लाभ ले जाते है, वे इस सिलसिले को क्यो जारी रहने दे। सामाजिक समानता के विचार उत्पन्न हो रहे है . यही विचार हिन्दू समाज के इस भीमकाय रूप को तहस-नहस करने का भरोसा दिलाते है, जिसको नष्ट करने का स्वप्न समाज देखते रहे है।[102]

जे.पी. और लोहिया के विचारो मे काफी साम्यता है। दोनो विचारक चुनाव प्रक्रिया को जातिगत विषमता को समाप्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन मानते है। जे पी. भी जाति प्रथा की अनुदार प्रवृत्ति के लिये ब्राह्मण वर्ग को ही जिम्मेदार ठहराते है, क्योकि ब्राह्मण वर्ग ही समाजमे सबसे अधिक शिक्षित वर्ग था।[103] वर्तमान समय मे जातिवाद अपनी चरम सीमा पर है। समाज की प्रत्येक क्रिया किसी न किसी रूप मे जातिवाद के प्रभाव से सम्पन्न होती है। भारत की चुनाव प्रक्रिया भी इससे विमुक्त नही है। इस समस्या की ओर जे.पी ने सकेत करते हुये उन दलो की भर्त्सना की जो इसका सहारा लेते है।[104] जे पी ने अपने को केवल समाजवादी रूप तक ही सीमित नही रखा बल्कि एक सामाजिक पर्यवेक्षक के रूप मे सामाजिक समस्याओ के सुधार के लिये सामाजिक बुराइयो को समाप्त करना अनिवार्य समझा।[105]

जय प्रकाश नारायण ने अछूत समस्या को एक विनाशकारी समस्या के रूप मे चित्रित किया है। इन्होने काफी समय पहले ही कहा था कि ''भारत मे अछूतसमस्या बहुत बडी समस्या है। इसका निराकरण करना हमारा परम कर्त्तव्य है। निम्न कार्यो से छुटकारा दिलाया जाय तथा उनके व्यवसायो मे भी सुधार किया जाये, तभी समाज का कल्याण हो सकता है।[106] जे.पी. भी नेहरू एव लोहिया के समान ही अस्पृश्यता को विकास के मार्ग मे बाधक समझते है तथा अस्पृश्यता की समस्या का यदि समाधान नही किया जाता तो भविष्य मे राष्ट्र और समाज के लिये खतरा बन सकती है। जे पी ने लिखा है कि आज हिन्दुस्तान मे प्राथमिक सुधार की आवश्यकता है। यह हिन्दू समाज एवं राष्ट्र के स्वतत्रता के लिये एक बहुत बडा खतरा है।[107] जे.पी. की विचारधारा मे नये परिवर्तन समय के अनुसार हुये। उन नवीन विचारधाराओ के ग्रहण करने से साध्य मे कोई परिवर्तन नही हुआ लेकिन साधनो मे परिवर्तन आना स्वाभाविक था।

जे.पी. ने ह्रदय परिवर्तन पर आधारित सर्वोदय आन्दोलन की विफलता को स्वीकार किया तथा पुन. वह मार्क्सवादी साधनो मे आस्था रखते हुये क्रान्ति को समस्त समस्याओ के समाधान का मूल मानने लगे। जे.पी.ने सर्वोदयी विचारधारा को ग्रहण करने के पूर्व लिखा था

कि हमे सामाजिक क्रान्ति करनी है, गरीबी, सामन्तशाही, पूँजीवाद और जातिभेद को मिटाये बिना हम उन्नति नही कर सकते। यदि हिन्दुस्तान मे समाजवाद कायम करना है तो ऊँच-नीच जाति-पाँति का भेद मिटाना होगा।[108]

राष्ट्र की उन्नति किसी एक वर्ग विशेष का कार्य नही है। उसमे सभी वर्ग विशेष का सहयोग होना अति आवश्यक है तथा सभी वर्गो का सहयोग तब ही हो सकता है जब समाज मे समता हो। यदि राष्ट्र की उन्नति करनी है तो सामाजिक क्रान्ति और आर्थिक क्रान्ति के द्वारा न्याय होना आवश्यक है, क्योकि आर्थिक क्रान्ति की सफलता सामाजिक क्रान्ति पर निर्भर होती है। सामाजिक ऊँच-नीच के भेदभाव को समाप्त किये बिना सामाजिक न्याय नही रह सकता।[109] जे.पी. चुनाव प्रक्रिया को एव मताधिकार को अस्पृश्यता की समस्या के समाधान के लिये एक साधन के रूप मे देखते है। उनका मत है कि ''चुनाव इन वर्तमान वस्तु योजनाओ की चुनौती के रूप मे आया है।''[110]

जे पी ने वर्ग संघर्ष की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुये युवा वर्ग का आह्वान किया कि वह हरिजनो एव भूमिहीनो को वर्ग के आधार पर संगठित करने का बीडा उठाये। इस विचार से यह ध्वनि निकलती है कि उनकी विचारधारा एक नये दौर से गुजरी है। गरीबी एक सामाजिक अभिशाप है। इसको समाज से जब तक समाप्त नही कियाजाता तब तक सामाजिक सुधार और क्रान्ति सफल नही होगी। किसी भी व्यक्ति या सामाजिक जीवन के किसी भी पहलू को सामाजिक क्रान्ति की लहर से पृथक नही रखा जा सकता। इन समस्याओ के समाधान के लिये उन्होने शिक्षा प्रणाली मे पूर्ण परिवर्तन करने का सुझाव दिया। हिन्दू समाज वर्ग और जाति भिन्नता से परिपूर्ण है। वास्तविक शिक्षा वही होगी जो इन असमानताओ को मिटा दे और मानव समाज मे सहयोग की भावना का विकास करे।''[111]

जय प्रकाश नारायण ने वर्गो के प्रादुर्भाव मे सामाजिक विषमता को आर्थिक तत्व से सम्बद्ध किया है। आर्थिक तत्व वर्ग-अभ्युदय के लिये केवल पूर्ण रूपेण उत्तरदायी नही हो सकता। समाज की दूसरी असमानताए भी वर्ग उद्भव के लिये उतनी ही उत्तरदायी है जितनी आर्थिक विषमता। वर्ग अभ्युदय के सम्बन्ध मे डॉ. लोहिया एव जे पी मे काफी साम्यता है। जे.पी. का विचार है कि ''हमारी सामाजिक मूल विषमताओ का कारण यह है कि हम सामाजिक रूप से कभी अलग नही हुये है, हमारे मानस मे अब भी सामन्तवाद की मान्यताए मौजूद है। ये सामाजिक जीवन को बहुत कुछ प्रभावित करती है। हमारे यहा अभी भी वर्ग-व्यवस्था मौजूद है जो पहले कर्म के आधार पर थी और अब जन्म के आधार पर ग्रहण कर

ली गयी है। इस जन्म के आधार के कारण समाज मे वर्गो का निर्माण एव बिखराव उत्पन्न हो गया है। समाज विभिन्न वर्गो मे विभाजित हो गया है। जो व्यक्ति निम्न वर्ग के है वही आर्थिक दृष्टि से पिछडे हुये है। आर्थिक वर्गो और सामाजिक वर्णो मे ऐसा सम्बन्ध स्थापित हो गया है जो कि एक दीर्घ प्रक्रिया का परिणाम है जो आर्थिक दृष्टि से पिछडे हुये थे वही सामाजिक दृष्टि से भी पिछड़े हुये बन गये। इस वर्गो मे विषमता बढ़ती गयी।''[112]

जे.पी ने वर्ग उन्मूलन के सम्बन्ध मे सघर्षपूर्ण और शातिपूर्ण दोनो साधनो को ग्रहण किया, जो उनकी परिवर्तित विचारधारा की सूचक है। जे पी जब मार्क्सवादी थे. तब मार्क्सवाद के आधार पर ही भारत मे भारत की सस्कृति एव समाज के अनुकूल समाजवाद की स्थापना करना चाहते थे। लेकिन 80 के दशक मे जैसे-जैसे नयी परिस्थितियॉ और समस्याये देश के समक्ष आती गयी उनके अनुसार वे अपने विचार और कार्यक्रम मे परिवर्तन करते गये। ये अहिसा को एकमात्र कामचलाऊ अस्त्र मानते थे हिसा ही अतिम रूप से अस्त्र होगा।[113]

80 के दशक से जे पी की विचारधारा पर पुन मार्क्सवादी विचार दृष्टिगोचर होने लगा था। उन्होने असमानता दूर करने के लिये वर्ग सघर्ष को पुन मान्यता प्रदान की और हृदय परिवर्तन पर आधारित सर्वोदय आन्दोलन की विफलता को स्वीकार करते हुये वर्ग-सघर्ष को अनिवार्य बतलाया और युवावर्ग का आह्वान किया कि वह हरिजनो एव भूमिहीनो को वर्ग के आधार पर सगठित करने का बीडा उठा ले।[114] इस तर्क से यही अर्थ निकलता है कि वर्ग-सघर्ष एव वर्ग सगठन की उस पूर्व भूमिका पर जिसे वह काफी समय पूर्व त्याग चुके थे, उस पुन वापस लौट आये। हमारे समाज मे वर्ण व्यवस्था के कारण उत्पन्न वर्गो और आर्थिक वर्गो मे समानता के कारण यह सभव है कि भारत मे वर्ग उन्मूलन के प्रयास किये जाये। यदि इस ओर ध्यान नही दिया गया और शातिपूर्ण ढग से समाज परिवर्तन की प्रक्रिया को नही अपनाया गया तो अराजकता की स्थिति पैदा हो सकती है, और वर्ग-सघर्ष संभव हो सकता है। जे.पी वर्ग उन्मूलन एव समाज में समानता लाने के लिये प्रारभ से ही प्रगतिशील रहे है। जे पी के शब्दो मे - 'मै और मेरे साथियो के मस्तिष्क मे एक स्वच्छ विचार है कि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सास्कृतिक आन्दोलनो को चलाने के लिये एक बोर्ड की स्थापना की जाय।''[115]

जे.पी. की औद्योगीकरण की नीति मध्यममार्गी है। औद्योगीकरण के संबध मे उनके विचार नेहरू जी के नज़दीक है । उनका विचार है कि ''समाजवादी भारत में बड़े और छोटे पैमाने पर चलने वाले दो प्रकार के उद्योग धन्धे होगे। सभी बडे पैमाने पर चलने वाले उद्योग धन्धो का स्वामित्व संघ सरकार अथवा प्रांतीय सरकारो का होगा''।[116]

जे.पी भारी उद्योगो के साथ लघु उद्योगो को नेहरू के समान आवश्यक मानते है। यह उद्योग सहायक उद्योग होगे। लघु उद्योगो के सबध मे इनका कहना था कि ''छोटे पैमाने पर चलने वाले उद्योग धधो का स्वामित्व समितियो के हाथ मे होगा। इन समितियो के सचालन सम्बन्धी नियम बनाने के अतिरिक्त राज्य उनके कार्यो मे कोई हस्तक्षेप नही करेगा। राज्य द्वारा सचालित तथा उत्पादक समितियो द्वारा सचालित उद्योग धन्धो के अतिरिक्त शहर की नगर पालिकाओ द्वारा सचालित उद्योग धन्धे भी होगे। नगर महापालिका बडे उद्योग धन्धो को तो नही मध्यम और लघु उद्योगो का सचालन तो कर ही सकती है।''(117)

जे पी के लघु उद्योगो के सम्बन्ध मे विचार नेहरू के विचारो से भिन्न है। जहॉ पर नेहरू जी लघु उद्योगो का स्वामित्व निजी हाथो मे प्रदान करते है वहॉ पर जे पी वैयक्तिक स्वामित्व के स्थान पर सहकारी तत्व को अधिक महत्व देते है। जे.पी. राज्य एकाधिकार को भी अनुचित मानते है, लेकिन उद्योगो की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुये उनका प्रबन्ध राज्य के अधीन ही करना उचित समझते है। जे पी. ने जिस सहकारी तत्व को अनिवार्य बताया है उससे उनका अभिप्राय वैयक्तिक एकाधिकार पर पाबन्दी लगाना था जिससे विकेन्द्रीकरण के आधार पर उत्पादन का लाभ सम्पूर्ण समाज को प्राप्त हो सके। लघु उद्योगो की ओर सकेत करते हुये तथा उनके आधुनिकीकरण की ओर जे.पी. का विचार है कि ''छोटे और सहायक उद्योग वास्तव मे बहुत महत्वपूर्ण साबित होगे। किसान एव मध्यम वर्ग का आर्थिक जीवन वास्तव मे सुखी हो जायेगा तथा एक प्रगति का मार्ग निश्चित होगा, ग्रामीण और छोटे-छोटे कुटीर उद्योग धन्धो को पुर्नजीवित करने की भी आवश्यकता होगी। इस विकास.के लिये स्थानीय परिस्थितियो का अध्ययन भी बहुत जरूरी है, लेकिन स्थूल सिद्धान्त तो निश्चित किये ही जा सकते है।''(118) जे.पी. ने इन उद्योगो के सम्बन्ध मे सकेत किया कि जहॉ तक सभव हो से सभी उद्योग धन्धे औद्योगिक सहयोग के अन्तर्गत चलाये जाये। उद्योगो से उत्पादन और तकनीक मे उन्नति करने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। गाव वालो को, विशेषतया उत्साहित करने के लिये उन्ही उद्योगो को चलाना चाहिये जिनकी तकनीक विस्तृत उत्पादन की मशीनी तकनीक से दूर न हो। ग्राम मे सहयोग मूलक धन्धो को कायम करना सम्भव है।(119)

जे.पी. भारतीय परिस्थितियो के अनुसार उद्योगो की स्थापना करना चाहते है। नेहरू जी रूस की भौतिकवादी सम्पन्नता एव आर्थिक विकास से बहुत कुछ प्रभावित थे। वे आधुनिक तकनीक के आधार पर भारत का तीव्र गति से औद्योगीकरण करना चाहते थे। इसके लिये वे देशी एवं विदेशी, दोनो साधनो को अनिवार्य समझते थे। लेकिन जे पी. भारतीय परिस्थितियो

के अनुरूप एव आवश्यकता के अनुसार उद्योगो को प्राथमिकता देते है। जे पी भारी उद्योगो को सीमित एव लघु उद्योगो को अधिक प्राथमिकता प्रदान करना चाहते है, क्योकि परिस्थितियॉ इसी के अनुकूल है। वे नेहरू जी के समान छोटे पैमाने की उत्पादन इकाइयो मे आधुनिक तकनीक एव विज्ञान का प्रयोग करना चाहते है। जे पी. ने अपनी पुस्तक 'समाजवाद से सर्वोदय की ओर' मे प्रो हक्सले का एक कथन व्यक्त किया है कि 'मेरा व्यक्तिगत विचार और समस्त विकेन्द्रीकरण के समर्थको का भी विचार है कि जब तक शुद्ध विज्ञान के निष्कर्षो का प्रयोग बडे पैमाने पर उत्पादन और वितरण करने वाली उद्योग व्यवस्था को महगे मूल्य पर अधिक विस्तृत और अधिकाधिक विशिष्ट बनाने मे होता रहेगा तब तक सत्ता का थोड़े से हाथो मे केन्द्रीकरण के अलावा और कुछ नही हो सकता। आर्थिक और राजनीतिक सत्ता के इस विकेन्द्रीकरण के परिणाम स्वरूप जनता निरन्तर अपनी नागरिक स्वतत्रता, अपनी व्यक्तिगत स्वायत्ता और स्वशासन के अवसरो से वचित रहेगी।''[120]

जे पी.राष्ट्रीयकरण को सम्पत्ति के समान वितरण के लिये अति आवश्यक मानते है। जे पी. ने कहा है कि ''मै इस निष्कर्ष पर आता हूँ कि सम्पत्तिक असमानताओ का मूल कारण इस वास्तविकता मे है कि प्रकृति की देन, जो मानव जाति के लिये सम्पत्ति की दात्री है, साथ ही उत्पादन के कल-पुर्जो को अपने निजी स्वार्थ के लिये लोगो ने वैयक्तिक अधिकार मे कर रखा है, आर्थिक शोषण का यही कारण है। यानी मजदूर जितना उत्पादन करते है, उसमे से उतने ही छोड़ कर जितना एक निर्धारित जीवन-माप के अनुसार गुजर के लिये आवश्यक समझा जाता है, सब का सब उनसे दबा लिया जाता है।''[121] जे पी के अनुसार इस समस्या का समाजवादी हल यह है कि उत्पादन साधनो पर से वैयक्तिक स्वामित्व का उन्मूलन कर दिया जाये और इन साधनो पर समूचे समाज का स्वामित्व स्थापित किया जाये।[122] उत्पादन के साधनो पर व्यक्तिगत आधिपत्य के ह्रास और सामाजिक आधिपत्य की स्थापना होने से आर्थिक शोषण का लोप हो जायेगा। दूसरे शब्दो मे कहा जाये तो वर्तमान समाज के मूलभूत विकार का नाश हो जायेगा।

समाजवाद के मौलिक सिद्धान्त की ओर इगित करते हुये जे पी ने कहा कि समाजवाद का मौलिक सिद्धान्त यही है कि ''उत्पादन के साधनो का सामाजीकरण हो। समाजवादी निर्माण के किसी भी प्रयत्न के समय उत्पादन के साधनो पर से व्यक्तिगत आधिपत्य का अन्त करना ही होगा...। आर्थिक शोषण जब समाप्त होगा तो आर्थिक असमानता ही नही रह जायेगी।''[123] जे पी. मूल रूप से उत्पादन के साधनो का समाजीकरण करना चाहते है। उनका मत है कि समाज में व्याप्त असमानता को कैसे दूर किया जाये? इसके सम्बन्ध मे उन्होने कुछ सुझाव

रखे। उनके मतानुसार समाज मे व्याप्त असमानता को दूर करने के दो ही उपाय है कि उत्पादन के साधनो पर सब का अधिकार हो और उसमे सबको उपभोग की गारटी हो और जो कुछ पैदा होगा उसका बॅटवारा पहले काम के रूप मे और बाद मे परिणाम के रूप मे होगा। किन्तु फिर धीरे-धीरे सबसे योग्यता के अनुसार काम लेने और आवश्यकतानुसार देने की व्यवस्था की जायेगी। पैदावार का बॅटवारा करते समय कुछ अंश राज्य और रक्षा के लिये तथा आर्थिक विकास के लिये रख दिया जायेगा। उन्होने कहा कि ''समाजवाद का मौलिक सिद्धान्त क्या है? उत्पादन के सभी साधनो पर समाज भर का अधिकार हो। समाजवाद की मूलभित्ति यही है।[124]

समाजवादी ढग पर समाज का पुनर्निमाण तब तक सभव नही है जब तक उत्पादन के साधनो पर से व्यक्तिगत अधिकार समाप्त नही कर दिया जायेगा।''[125] यदि कोई राज्य समाजवाद का सगठन करना चाहता है तो सभव है कि वह तुरंत स्थापित करने मे समर्थ न हो सकेगा। लेकिन यदि उसे सफल होना है तो उत्पादन के उन बड़े सभी साधनो पर सामाजिक अधिकार कायम करना होगा। जो देश के आर्थिक जीवन पर बहुत बडा प्रभाव रखते है। विकसित समाज मे उत्पादन के साधनो के साथ ही विनिमय और वितरण के साधन भी उन्नतिशील होते रहते है। उन पर भी सामाजिक अधिकार होना चाहिये। उद्योगो का राष्ट्रीयकरण मात्र ही समाजवाद नही है। जे.पी. ने कहा है कि ''समाजवाद केवल पूँजीवाद नही है, न राज्यवाद है। उद्योगो का राष्ट्रीयकरण और कृषि का सामूहीकरण समाजवादी अर्थ-रचना के महत्वपूर्ण पहलू है, परन्तु वे अपने आप मे समाजवाद नही है।[126]

भारतीय कृषि व्यवस्था के सम्बन्ध मे जे.पी. कृषि के स्वामित्व पर सामाजिक अधिकार को अधिक उचित मानते थे। इस सम्बन्ध मे उनका कहना था कि ''यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाये तो इस सम्बन्ध मे हम पायेगे कि समाजवादी आधार पर हिन्दुस्तानी जिन्दगी को ढालने के किसी प्रयत्न की सफलता के लिये खेती मे समाजवाद अर्थात् सहकारी और सामूहिक किसानी की नितान्त आवश्यकता है।''[127] प्राय: सहकारी कृषि के सम्बन्ध मे आक्षेप किया जाता है तथा समाजवादी राज्य मे जो कृषि व्यवस्था अपनायी जाती है उस पर व्यक्तिगत स्वामित्व के समर्थक उसकी आलोचना करते है कि इसमे व्यक्तिगत स्वतत्रता का हनन किया जाता है। जे.पी.का इस सम्बन्ध मे विचार है कि- ''मुख्य प्रश्न समाजवाद की स्थापना की सम्भावना के सम्बन्ध मे नही है, किन्तु यह है कि समाजवाद के द्वारा हिन्दुस्तानी काश्तकारी, हिन्दुस्तानी किसान और हिन्दुस्तानी राष्ट्र का कितना हित होगा और इस प्रश्न का हमारे

पास प्रबल उत्तर है। हमारे हृदय मे तनिक भी संदेह नही है कि केवल समाजवाद ही भारतीय किसानी को बरबादी और दिवालियापन से बचा सकता है। अकेला यही राष्ट्र को शक्ति सम्पन्न बना सकता है।[128]

जे.पी ने जहॉ कृषि समस्याओ की ओर सकेत किया वहॉ उन्होने सुझाव भी रखे। उनका विचार है कि- ''इसका तो एक मात्र हल यही है कि भूमि के जोतो के शोषण मे किसी भी प्रकार से सहायक होने वाले निश्चित स्वार्थो का सफाया कर दिया जाये। अराजियो का राष्ट्रीयकरण करके सहयोगी और सामूहिक किसानी की स्थापना की जाये। कर्ज देने और मण्डियो की व्यवस्था सरकार और सहयोग समितियो के हाथ मे रहे तथा सहयोग समितियो द्वारा सहायता प्राप्त उद्योग धन्धो की स्थापना की जाये।[129]

जे पी सामाजिक असमानता का एक मुख्य कारण भूमि का असमान वितरण मानते है। उनका विचार है कि भूमि के पुनर्वितरण के बिना अपने लक्ष्य को हम प्राप्त नही कर सकते उन्ही के शब्दो मे ''सार्वजनिक स्वामित्व हमारा लक्ष्य है अतएव यह बात की हम किसानो को फिर से जमीन बॉटने की बात सोचे, एक अजीब सी मालूम होती है। लेकिन यह आवश्यकता इसलिये बडी ही सार्वजनिक स्वामित्व और जमीन की काश्त की तरक्की नही हो सकती। इसलिये हमे जमीन पर किसानो के स्वामित्व की बात को पहले लेना पडेगा।[130] उन्होने आगे कहा कि ''इस समय किसानो को मिली हुयी अराजी मे घोर विषमता है। जहॉ तक कुछ अराजियॉ सैकड़ो एकड़ की है वहॉ दूसरी एक एकड भी नही है। इसलिये एक बड़े फर्क को मिटाने के लिये हम जमीन का फिर से बॅटवारा करने की तजवीज पेश करते है।[131]

जे पी नेहरू जी के समान ही जमीदारी प्रथा को कृषि के विकास मे बाधक समझते थे। उनका विचार है कि जमीदारी प्रथा की मौजूदगी मे हम कृषि व्यवस्था का विकास नही कर सकते। हमारी कृषि व्यवस्था वास्तव मे असमानता के आधार पर आधारित है। समाजवादी कृषि की स्थापना के सिलसिले मे सहयोग तथा सामूहिक कृषि की दो प्रणालियॉ है। जमीदारी प्रथा की समाप्ति के बाद ज्यादा बड़ी जोतो को तोड़ने और बिल्कुल छोटी जोतो को इतनी बड़ी बनाने के उद्देश्य से कि उन पर खेती करना आर्थिक दृष्टि से अलाभकर हो, भूमि का फिर से बॅटवारा करना जरूरी होगा। गॉव की जमीन का मालिक कानून की दृष्टि से अलग-अलग न होकर समूचा गॉव ही होगा। और अलग व्यक्तियो के साथ खेत का बन्दोबस्त करना राज्य के द्वारा बनाये गये नियमो के अनुसार ग्राम पचायतो का कार्य होगा। इस प्रकार बन्दोबस्त की गयी जमीन पर किसानो का एक प्रकार का

मालिकाना हक होगा। उन जमीनो को छोड कर जिनसे बड़ी या छोटी होने के कारण घोर विषमता को दूर करने की दृष्टि से बॅटवारा करना जरूरी हो जायेगा।[132]

सन् 1952 ई. के आम चुनाव के उपरान्त जे.पी. की विचारधारा में एक नया मोड आया। सन् 1951 ई से विनोबा के नेतृत्व मे चलते हुये भूदान-ग्राम-दान आन्दोलन ने जे पी के नये चितन को एक ठोस आधार प्रदान किया। इसके प्रति उनका आकर्षण बढ गया कि उन्होने सन् 1954 ई मे बोध गया के सर्वोदय सम्मेलन के अवसर पर भूदान-ग्राम आन्दोलन के लिये अपने जीवन दान की घोषणा कर दी तथा प्रजा समाजवादी दल से त्यागपत्र दे दिया। उन्हे अपने लक्ष्य की प्राप्ति इसी विचारधारा मे दिखायी देने लगी। उन्होने कहा की किसी एक पक्ष द्वारा भू-वितरण का आन्दोलन चलाने की अपेक्षा, विनोबा जी का पक्षातीत आन्दोलन चलाने का रास्ता मुझे ज्यादा सही लगा। धीरे-धीरे मुझे यहॉ तक प्रतीत होने लगा कि विनोबा जी ने न केवल हमारे सामने भू-समस्या का हल रखा, बल्कि भूदान आन्दोलन अहिसक तरीके से सामाजिक क्रान्ति तथा समाज के नव-निर्माण का पहला कदम है।[133]

जे पी. नेहरू जी के समान ही भूमि के पुर्नवितरण मे तथा जमीदारी प्रथा के उन्मूलन मे विश्वास रखते है। उन्होने न केवल सैद्धान्तिक क्षेत्र मे ही बल्कि व्यवहार मे भी भूमि पुनर्वितरण के लिये कार्य किया। उन्होने भूदान आन्दोलन के अन्तर्गत जमीदार वर्ग से जमीन लेकर भूमिहीन किसानो मे वितरण किया।

जे पी. का आगमन भारतीय राजनीति मे एक मार्क्सवादी के रूप मे हुआ। परन्तु उद्देश्य की अपूर्णता और मार्क्सवाद की असफलता ने जे.पी को सर्वोदय की ओर आकर्षित किया। सन् 1954 ई. मे उन्होने मार्क्सवाद से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और भूदान आन्दोलन मे अपनी आस्था व्यक्त की और उसे शातिपूर्ण क्रान्ति का नाम दिया परन्तु उसमे भी जे पी. को अपना उद्देश्य पूर्ण होने मे शका हुई। जे पी ने सन् 1974 ई मे 'सम्पूर्ण क्रान्ति' की घोषणा की।

सत्तर के दशक मे जे.पी. की विचारधारा मे एक नया मोड़ आने लगा था। वे प्रत्येक समस्या के समाधान के लिये क्रान्ति की अनिवार्यता को महसूस करने लगे थे। 5 जून 1974 को पटना के गांधी मैदान की विशाल सभा मे उन्होने पहली बार 'सम्पूर्ण क्रान्ति' शब्द का प्रयोग करते हुये कहा कि ''यह आन्दोलन छात्र-संघर्ष समिति की मात्र 10-12 मागो की पूर्ति के लिये ही नही, यह सम्पूर्ण क्रान्ति की शुरुआत है। इसके उद्देश्य बहुत दूरगामी है, भारतीय लोकतत्र को वास्तविक तथा सुदृढ बनाना, जनता का सच्चा राज

कायम करना, समाज से अन्याय, शोषण आदि का अन्त करना, एक नैतिक, सास्कृतिक तथा शैक्षणिक क्रान्ति करना....नया भारत बनाना।''[134] जे.पी. ने नेहरू एव लोहिया के समान ही इस समस्या के विरुद्ध आदोलन को मान्यता प्रदान की तथा नेहरू के समान एक ऐसे सगठन का विचार रखा जिसमे व्यक्ति स्वेच्छापूर्वक अपना योगदान दे। व्यक्ति स्वेच्छापूर्वक सगठन बनाये जिसमे शिक्षण सस्थाए तथा राजनैतिक दल एव प्रत्येक नागरिक इसमे सयुक्त रूप से हिस्सा ले। प्रत्येक नवयुवक का यह राष्ट्रीय कर्त्तव्य है कि वह इस सामाजिक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये शातिपूर्ण साधनो और यदि आवश्यक हो तो हिसात्मक साधनो से भी पूर्ण करे।[135]

सम्पूर्ण क्रान्ति से जे पी. का अभिप्राय है कि समाज मे आमूल परिवर्तन हो, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सास्कृतिक, बौद्धिक, शैक्षणिक एव आध्यात्मिक परिवर्तन।''[136] इस प्रकार की क्रान्तियॉ यहॉ मिल कर सम्पूर्ण क्रान्ति होगी। सात की इस सख्या को बढाया भी जा सकता है और घटाया भी जा सकता है। उदाहरणार्थ सास्कृतिक क्रान्ति मे शैक्षणिक क्रान्ति सन्निहित हो सकती है और यदि कल्चर का एन्थ्रोपोलिजिकल अर्थ लिया जाये तो उसमे लगभग सभी कुछ आ जाता है किन्तु जो प्राथमिक समाज के सदर्भ मे लिया जाता है उसी प्रकार यदि सामाजिक क्रान्ति को भी मार्क्सवाद की भूमिका मे 'सामाजिक क्रान्ति' जैसा अर्थ लिया जाये तो आर्थिक राजनैतिक क्रान्तियॉ उसमे अवश्य आ जाती है, अन्य बहुत कुछ भी इसमे समा सकता है। यदि इनकी सख्या को बढाना है तो उदाहरण स्वरूप आर्थिक क्रान्ति मे से ही औद्योगिक क्रान्ति, कृषि से सम्बन्धित क्रान्ति व यात्रिक क्रान्ति इत्यादि भेद किये जा सकते है।

आर्थिक क्रान्ति समाज की आर्थिक रचना तथा आर्थिक सस्थाओ मे क्रान्तिकारी परिवर्तन और उनका नया क्रान्ति-कृत रूप अर्थात् क्रान्ति शब्द से परिवर्तन और नव निर्माण दोनो ही अभिप्रेरित है। आर्थिक क्रान्ति मे स्वामित्व और प्रबन्ध मे भी क्रान्तिकारी परिवर्तन आ ही जाता है। स्वामित्व और प्रबन्ध के नाते हर हालत मे राज्य प्रबन्ध ही हो यह आवश्यक नही है, स्वामित्व राज्य का भी हो सकता है। व्यक्ति या व्यक्तियो की कम्पनी या रजिस्टर्ड सोसाइटी इनके मिश्रित रूपो का भी जैसे सहयोग समिति, स्थानीय समिति, ग्राम सभा, ग्राम समूहसभा प्रखण्ड सभा, जिला परिषद आदि का भी हो सकता है और इनके कई मिश्रित रूप भी हो सकते है। यानी स्थानीय स्वामित्व तथा पूर्व वर्णित स्वामित्वो का सम्मिश्रण, उपभोक्ता का स्वामित्व, उत्पादको का स्वामित्व आदि। सामाजिक परिवर्तन ऐसा हो कि सामाजिक कुरीतियाँ दूर हो। इसमे से नया समाज निकले जिसमे सभी सुखी हो, धनी-गरीब का भेद न हो। शोषण न हो।

राजनैतिक क्रान्ति का अभिप्राय है, भारतीय लोकतत्र को लोकाभिमुखी तथा सुदृढतर बना, जनता का राज्य कायम करना, सर्वोपरि सत्ता जनता के हाथ मे होना। सास्कृतिक परिवर्तन का मतलब है, समाज मे त्याग बलिदान, प्रेम, अहिसा, भाईचारा आदि सद्गुणो का विकास। जे.पी के अनुसार ''सम्पूर्ण क्रान्ति मे व्यवस्था भी बदलेगी और व्यक्ति भी इनमे कोई आगे-पीछे नही, साथ-साथ होगा। व्यक्ति समूह के लिये जिये और समूह व्यक्ति के लिये। यह मानवीय क्रान्ति होगी, ऐसी क्रान्ति जिसमे भारत का आध्यात्म व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन मे उतर जायेगा। तब व्यक्ति अपने हितो का दर्शन समूह के हितो मे करने लगेगा। इस क्रान्ति के बिना न समाजवाद आ सेकगा, न साम्यवाद।''[137] सम्पूर्ण क्रान्ति के सारे परिवर्तन मोटे तौर पर महात्मा गॉधी की विचारधारा के अनुरूप होगे, सर्वोदय इसी क्रान्ति का दूसरा नाम है।

जे पी इस निष्कर्ष पर पहुॅचे कि सामूहिक हितो की रक्षा सामूहिक चेतना ही कर सकती है। इसी सामूहिक चेतना को वह सम्पूर्ण क्रान्ति द्वारा जगाना चाहते थे। जे पी के शब्दो मे ''हमे सामान्य जनता का राज्य चाहिये इसलिये हिसा का मार्ग तो हमारे लिये सर्वथा त्याज्य है। जहॉ कानून निष्फल हो जाता है वहॉ अहिसा से ही आगे बढना होता है। कोई कहे अहिसक क्रान्ति से रक्त ज्यादा जल्द होती है तो भ्रम है, दुनियॉ की क्रान्तियॉ देखने से ऐसा नही लगता। पुराने समाज को तोड़ने मे हिसक क्रान्ति लम्बे अरसे के बाद सफल होती है। और उसके बाद नये समाज के निर्माण मे और अधिक समय लगता है।''[138] लेकिन अहिसक क्रान्ति मे पुराने समाज को बदलने और नये समाज के गठन का काम साथ-साथ होता है। अहिसक प्रक्रिया मे यह सबसे बड़ा गुण है कि परिवर्तन और नवनिर्माण दोनो साथ-साथ चलते है।

जे पी. गॉधी जी के ही मार्ग पर चलकर इस देश मे राजनीतिक, सामाजिक क्रान्ति एव आर्थिक सास्कृतिक परिवर्तन लाना चाहते है। इसी को उन्होने नाम दिया ''सम्पूर्ण क्रान्ति'' सम्पूर्ण क्रान्ति का जे.पी. का विचार अपना मौलिक विचार नही है। डॉ लोहिया ने सप्त क्रान्ति की कल्पना की थी जिसमे वे सभी तत्व मौजूद है जिसकी कल्पना जे.पी. करते है। जे पी. ने सम्पूर्ण क्रान्ति के कारणो की ओर सकेत किया है क्योकि सम्पूर्ण क्रान्ति होनी चाहिये। आजादी मिलने के बाद से भारतीय समाज के, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक ढ़ॉचे मे कोई परिवर्तन नही हुआ है...। आजादी मिलने से लेकर आज तक राजनीतिक, सार्वजनिक और व्यावसायिक नैतिकता का ह्रास भी होता रहा है।

कुछ अशो मे जय प्रकाश नारायण अपने ध्येय मे सफल भी हुये है। सन् 1977 ई का सत्ता परिवर्तन उन्ही के प्रयासो का परिणाम रहा है। नेहरू एव जे पी की क्रान्ति सम्बन्धी अवधारणा मे काफी साम्यता है। दोनो ही विचारक अहिसक क्रान्ति के पक्षपाती है। जबकि भिन्नता यह है कि नेहरू का सोचने-विचारने का तरीका पाश्चात्य विचारको से ओत-प्रोत था जबकि जे पी. विदेशी विचारो को ग्रहण करने के बाद उनका भारतीयकरण कर देते थे। वे अधिकतर गॉधी जी के सविनय अवज्ञा सिद्धान्त को मानते थे जो कि अहिसक क्रान्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है। वे मार्क्सवादी विचारो मे आस्था रखते हुये भी मार्क्सवादी साहित्य की सबसे बड़ी देन हिसात्मक क्रान्ति से हमेशा दूर रहे।[139]

मुलायम सिंह यादव -

नब्बे के दशक मे भारतीय समाजवादी विचारधारा मे एक जबरदस्त मोड़ आया। वास्तव मे अभी तक भारत मे समाजवाद को मात्र सैद्धान्तिक रूप से देखा गया था, व्यावहारिक धरातल पर इसका अस्तित्व नाममात्र का था। समाजवाद के उद्देश्य, जैसे-व्यक्ति की अपेक्षा समाज को महत्व, उन्नति के अवसरो को ये समानता, व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धा की समाप्ति, जाति प्रथा पर प्रहार, समाज मे पिछड़े वर्गो के उत्थान हेतु प्रयास पर ज्यादा जोर दिया गया। इस समय सैद्धान्तिक या किताबी समाजवाद पर चितन न करके वस्तुस्थिति को सामने लाकर उनकी समस्याओ को हल करने का प्रयास किया जाने लगा।

यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि इन समाजवादियो मे वैचारिक दृष्टि से समानता न के बराबर है। मुलायम सिह यादव ने जहा लोहियावाद एव समाजवाद पर बल दिया वही काशीराम ने अम्बेडकरवाद पर एव लालू प्रसाद ने मध्यममार्गी पिछडा वर्ग की राजनीति पर जोर दिया। मुलायम सिह यादव की खास बात यह है कि उन्होने राजनीति मे कई बार ऐसे कार्यो को अजाम दिया, जो लगभग असंभव मान लिये गये। इन्होने डा. लोहिया के गैर कांग्रेसवाद से राजनीति शुरू करते हुये अग्रेजी विरोधी आन्दोलन से अपनी वैचारिकता ग्रहण की। लोहिया के निधन के बाद वे उत्तर प्रदेश मे चरण सिह के नेतृत्व मे पिछड़े वर्गो की राजनीति के प्रमुख स्तभ बनते चले गये। गैर काग्रेसवाद के अतिम प्रयोग 1989 के चुनाव के बाद वे उ.प्र. के मुख्यमत्री बने। लेकिन तब तक परिस्थिति बदल गयी थी और भारतीय जनता पार्टी अपनी प्रत्यक्ष साम्प्रदायिक राजनीति के जरिये कांग्रेस की प्रच्छन्न साम्प्रदायिकता को प्रतिस्थापित करने की हैसियत में आ गई। मुलायम जी ने इस मौके पर गैर कांग्रेसवाद को तिलांजलि दे दी और गैर भाजपावाद का ताना-बना बुना।

इसकी पराकाष्ठा दलित-पिछड़े-मुसलमान गठजोड मे हुई। इसे ऐतिहासिक सफलता मिली, लेकिन यह दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य मे बेहद अधूरी साबित हुई।

मुलायम सिह के विचारो मे जहॉ हम एक तरफ जातिवाद विरोध दखने को मिलता है तो दूसरी तरफ साम्प्रदायिकता विरोध भी। मुजफ्फरनगर मे पिछड़े वर्गो की एक सभा मे उन्होने एक दिलचस्प बयान दिया। उन्होने अतिपिछड़ी जातियो से अपील करते हुये कहा कि "स्वर्गीय कर्पूरी ठाकुर नाई थे, बिहार मे उनकी जात कितनी रही होगी लेकिन वे वहॉ के सबसे बड़े नेताओ मे से थे और दो बार मुख्यमत्री बने। इसी तरह चौधरी चरण सिह पहले मुख्यमत्री और बाद मे प्रधानमत्री तक बने। यह कोई उनकी जाति की ताकत के कारण नही हुआ था महात्मा गॉधी का नाम लेकर उन्होने कहा कि उन्होने अपने कुशल नेतृत्व व सिद्धान्त निष्ठा की ताकत पर देश को आजाद कराया था। बाबू राजेन्द्र प्रसाद देश के राष्ट्रपति अपनी जाति के बलबूते पर नही बने थे। जे.पी. कौन सी जात की ताकत पर नेता बने? उन्होने इसी क्रम मे डॉ. राम मनोहर लोहिया व राजनारायण वगैरह का नाम लिया। मुलायम ने कहा कि उ.प्र. मे साम्प्रदायिक ताकते और जातिवादी ताकते आज सत्ता प्राप्ति के लिये एकजुट है। पर वे इस सरकार को धारा 356 के तहत केन्द्र से बर्खास्त कराना नही चाहेगे। वे उ.प्र. मे लोगो को एकजुट करके इस सरकार को बाध्य कर देगे कि उनके लोगो पर जुल्म करना बद कर दे।[140] यहा मुलायम जातियो की राजनीतिक गोलबदी करते हुये भी दिखाई देते है और राष्ट्रीय राजनीति मे ऊपर से हस्तक्षेप के लिये जातियो की गोलबदी से परे जाने के महत्व को भी सामने रखते है।

मुलायम सिह और चौधरी चरण सिह की एक महत्वपूर्ण समानता थी "पिछडे वर्ग के राजनीतिकरण की प्रक्रिया" चरण सिह की ही तर्ज पर मुलायम सिह भी पिछडे वर्गो को आरक्षण देने के हिमायती रहे लेकिन चरण सिह की भॉति मुलायम ने ब्राह्मणवाद विरोधी होते हुये भी कभी ब्राह्मणो के खिलाफ कोई जातिगत अभियान नही छेड़ा। न ही वे कभी खुलकर उनकी जातिगत आलोचना मे सलग्न हुए। आरक्षण के बारे मे मुलायम के विचार हमेशा सामाजिक सतुलन के पक्ष मे रहे। उनकी मान्यता थी "आरक्षण व्यवस्था गरीबी मिटाओ कार्यक्रम नही है। सविधान मे सामाजिक और शैक्षणिक पिंछड़ेपन का उल्लेख है, आर्थिक पिछड़ेपन का नही। सरकारी नौकरियो को आरक्षण से आर्थिक मजबूती जरूर आती है, लेकिन आरक्षण सामाजिक प्रतिष्ठा के लिये आवश्यक है। ऊँची जाति के गरीब लोगो के आर्थिक विकास के लिये भी हर तरह का प्रयास किया जाना चाहिये। किसी भी सरकार का यह दायित्व है कि गरीबी की सीमा रेखा से नीचे रहने वाले लोगो का स्तर उठाया जाये। मै पहले

भी कह चुका हूँ कि ऐसे लोगो के लिये विशेष योजनाए भी बनाई जा सकती है, लेकिन उनके लिये आरक्षण का प्रावधान नही हो सकता। सच्चाई तो यह है कि पिछडे वर्ग को भी सरकारी नौकरियो मे आरक्षण की सुविधा सविधान लागू करते समय ही मिलना चाहिये थी।[141]

मुलायम सिह साम्प्रदायिकता के कड़े विरोधी है। उन्होने भारतीय सविधान मे निहित धर्मनिरपेक्षता मे अपनी पूरी आस्था व्यक्त की है। अपने राजनीतिक जीवन मे साम्प्रदायिक शक्तियो का उन्होने डटकर मुकाबला किया यह बात दूसरी है कि इस हेतु उनको अपनी सरकार भी गॅवानी पडी थी। सन् 1992 ई मे अयोध्या मे बाबरी मस्जिद गिरा दिये जाने पर उन्होने इन साम्प्रदायिक शक्तियो की जमकर आलोचना की। उन्होने कहा कि ''भाजपा की नीति और साजिश एकदम फासिस्ट थी। वही उसने लागू की। अयोध्या की हालात के बुरे नतीजे निकलेगे। इसकी गुंजाइश हमेशा से थी। जब अयोध्या की शर्म का इतिहास लिखा जायेगा तो काग्रेस को भी इस कुकृत्य के साझीदार के रूप मे दर्ज होना पडेगा।[142] उन्होने साम्प्रदायिक ताकतो को चुनौती देने और लोगो मे धर्मनिरपेक्षता के प्रति आस्था मजबूत बनाने के लिये अगस्त सन् 1990 ई मे वामपंथी पार्टी एव बहुजन समाज पार्टी के सहयोग से 'साम्प्रदायिकता विरोधी समिति' बनाई। यह देश मे अपने प्रकार का पहला प्रयोग था। इस समित ने प्रदेश मे जगह-जगह साम्प्रदायिकता विरोधी रैलियॉ निकाली और साम्प्रदायिक ताकतो से निबटने के लिये लोगो मे जागरूकता लाने का प्रयास किया।

मुलायम सिह के शासनकाल (1989-91) की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि ''अल्पसंख्यको को सुरक्षा प्रदान करना और उनके कल्याण के उपाय करना'' रहा है। उन्होने सिक्ख समुदाय मे भी सुरक्षा का भाव पैदा किया। राज्य मे अल्पसंख्यक आयोग गठित किया जिस पर अल्पसख्यक समुदाय की समस्या पर विचार करने और सुझाव देने का जिम्मा था। अल्पसख्यक की भाषा और सस्कृति की रक्षा के लिये प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर उर्दू पढाने की सुविधा मुहैया कराने और उसके लिये पर्याप्त सख्या मे शिक्षक नियुक्त करने का फैसला लिया। दूसरी तरफ शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े मुसलमानो के बच्चो को पास मे ही सुविधा मुहैया कराने के लिये स्कूल खोलने और उनकी फीस माफी व उन्हे वजीफा देने का फैसला किया गया।

मुलायम सिह ने एलान किया कि वह किसानो और मजदूरों के कल्याण को प्राथमिकता देगी। गाँव और खेती का विकास किया जायेगा। खास तौर से दलितो को शोषण के शिकजे से मुक्त करने पर खास जोर दिया जायेगा। सरकार ने यह भी वायदा किया कि वह किसी

तरह का जातिवाद अभियान नही चलायेगी और विधान सभा मे सभी पार्टियो की राय लेकर विकास कार्यक्रम आगे बढाए जायेगे। मुलायम सिह को विश्वास था कि गरीब तबको की सरकार बनने के बाद अन्य पार्टियो के गरीब समर्थक तत्व भी अपने-अपने दलो मे आवाज बुलद कर पायेगे।[143]

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि भारतीय समाजवादियो मे वह गहराई तथा परिपक्वता देखने को नही मिलती जो प्लैखनाव, बुखारिन अथवा रोजा लक्जमवर्ग की रचनाओ और विचारो मे पायी जाती है। उनका कोई मौलिक सैद्धान्तिक योगदान नही है किन्तु उनका महत्त्व इस बात मे है कि उन्होने भारत के खेतिहर जातिबद्ध तथा अविकसित अर्थतत्र और राजतत्र के सन्दर्भ मे मौलिक समाजवादी चिन्तन की आवश्यकता पर बल दिया है। वस्तुत भारत मे मूल शोषित तत्व मजदूरी भोगी श्रमिक वर्ग नही है, गॉव के भूमिहीन मजदूर तथा किसान इस देश के सर्वाधिक शोषित वर्ग है। अत ग्रामवासियो की समस्याओ का विश्लेषण करना आवश्यक है। भारतीय समाजवादी प्रचलित जाति-संघर्ष तथा वर्ग सघर्ष का अन्त करना चाहते है। वे नियोजन को स्वीकार करते है, किन्तु वे समग्र और निरपेक्ष नियोजन के स्थान पर खण्डश नियोजन के पक्षपाती है। इसके अतिरिक्त भारतीय समाजवादियो ने इन तीन प्रमुख समस्याओ पर गभीर चितन किया है - अविकसित अर्थतत्र मे किसानो की भूमिका, वर्ग सघर्ष तथा नियोजन।

भारतीय समाजवादी मुख्यत राजनीतिक स्वतत्रता तथा आर्थिक पुनर्निमाण का समन्वय करना चाहते थे, स्वामी दयानन्द सरस्वती राजनीतिक स्वतत्रता के अनुयायी थे उन्होने जिस राज्य व्यवस्था का समर्थन किया है वह कल्याणकारी राज्य है। इसमे धर्म और नैतिकता की रक्षा के साथ सामाजिक समानता की चर्चा और सार्वजनिक शिक्षा के प्रबध, अनाथो एव विधवाओ के संरक्षण और बाल विवाह एव बहु-विवाह जैसी कुप्रथाओ के उन्मूलन का सुझाव दिया गया है। स्वामी दयानन्द वास्तव मे एक आदर्शवादी सिद्धान्त लिये हुये थे इसलिये समाजवाद पर वे गहरा छाप नही छोड़ सके। स्वामी विवेकानन्द मानवतावादी विचारक थे। उनकी दृष्टि मे आर्थिक और सामाजिक समानता का सिद्धान्त समाजवाद का मूल मत्र है। उनके आदर्श समाजवादी समाज मे किसी के शोषण की कोई गुंजाइश नही है। उन्होने समाजवाद को व्यक्तिवाद के विपरीत रूप मे देखा, पूँजीवाद के विपरीत रूप मे नही। लेकिन वास्तव मे भारत में समाजवाद की स्थापना कैसे हो? इस प्रश्न पर विवेकानन्द जी अधूरे रह जाते है। महात्मा गांधी वर्गहीन और राज्यहीन समाज की स्थापना करना चाहते थे। बीसवीं शताब्दी मे भारत में समाजवादी विचारों का प्रारंभ गांधी जी ही करते है। गांधी जी की समाजवादी कल्पना

मार्क्सवाद के विपरीत जाती है। वे ऐसे आदर्श समाज व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे जो सत्य एव अहिसा पर आधारित हो। धनवान एव निर्धन के भेद को मिटाकर गाधी जी वर्गहीन समाज की स्थापना करने का विचार देते है। इसके लिये वे किसी भी तरह की क्रान्ति का विरोध करते है। इसके लिये उन्होने 'न्यासिता का सिद्धान्त' दिया। इसके लिये गाधी जी पूँजीपतियो के 'ह्दय परिवर्तन' की माग करते है ताकि पूँजीपति अपनी सम्पदा को निजी सम्पत्ति न समझकर सम्पूर्ण समाज की धरोहर समझे। गाधी जी के विचारो ने डॉ लोहिया, जय प्रकाश नारायण, पडित नेहरू को प्रभावित किया। उनके कई सिद्धान्तो को इन विचारको ने ग्रहण किया तथा आदर्श को यथार्थ मे बदलने का प्रयास किया।

डॉ लोहिया ने एक समाजवादी बुद्धिजीवी के रूप मे सूक्ष्म चितन तथा मनन किया था। उन्होने समाजवादी चिन्तन की समस्याओ को एशियायी दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया लेकिन उनके समाजवादी विचार परिस्थितियो के अनुसार बदलते रहे। अपने जीवन के अन्तिम दिनो मे उन्होने एक 'नवीन समाजवाद' का नारा दिया इस हेतु उन्होने छह-सूत्री योजना का निरूपण किया। राष्ट्रीयकरण पर ज्यादा बल दिया। वयस्क मताधिकार पर आधारित 'विश्व ससद' का समर्थन किया। यह एक जटिल तथा यूटोपियाई सुझाव प्रतीत होता है। जो कि भारत के सम्बन्ध मे व्यावहारिक प्रतीत नही होता है। जय प्रकाश नारायण ने भारत मे समाजवादी आन्दोलन को काग्रेस के झडे के नीचे चल रहे राष्ट्रीय स्वतत्रता सग्राम के साथ सम्बद्ध किया। उन्होने समाजवादी दर्शन को दो युद्धो का समरघोष बनाया-राष्ट्रीय स्वतत्रता सग्राम तथा सामाजिक क्रान्ति। भारत के जर्जरित ग्रामीण समाज की विकराल दरिद्रता के सन्दर्भ मे जय प्रकाश जी ने उन सामाजिक तथा यान्त्रिक बन्धनो के उन्मूलन पर बल दिया जो कृषि के उत्पादन मे बाधा डाल रहे थे। सर्व प्रथम वे मार्क्सवाद से प्रभावित हुये तत्पश्चात् वे गाधीवाद की ओर झुके फिर व्यावहारिक राजनीति से अलग होकर सर्वोदय आदोलन के प्रचार मे जुट गये अन्त मे उन्होने अपने 'समग्र क्रान्ति' पर बल दिया। इस प्रकार जय प्रकाश जी के विचार व्यावहारिक रूप ग्रहण नही कर सके। वर्तमान समय मे लोहियावादी नेता मुलायम सिह यादव समाजवाद को वास्तविकता के साथ स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे है। जहा एक ओर वे पिछड़े वर्गो के उत्थान हेतु प्रयत्न करते है वही दूसरी ओर एक राष्ट्रीय कृषि नीति बनाये जाने के पक्षधर रहे है। लेकिन इनका समाजवाद एकागी है जो की मात्र राजनीति से प्रेरित है। उनके विचार किस प्रकार के समाजवाद की स्थापना करेगे यह भविष्य की बात है।

आधुनिक भारत के निर्माता पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भारत मे न केवल समाजवाद लाने का प्रयास किया बल्कि उसे एक नया स्वरूप भी प्रदान किया। अन्य भारतीय समाजवादी

विचारको और नेहरू जी मे कमोवेश रूप मे समानता पायी जाती है परन्तु नेहरू जी पर मार्क्स के प्रभाव के कारण तथा साम्यवादी रूस की आर्थिक प्रगति ने उन्हे एक अलग दृष्टिकोण प्रदान किया। नेहरू जी ने अपने ऊपर गाधी जी के प्रभाव को त्याग न सके इसी कारण वे अन्त तक अहिसावादी बने रहे। इन सब का उनके ऊपर यह प्रभाव पडा कि उन्होने स्वय का एक अलग समाजवादी दृष्टिकोण विकसित किया। नेहरू जी का समाजवाद 'प्रगतिशील समाजवाद' था। यह 'वैज्ञानिक समाजवाद' था लेकिन मार्क्सवाद से दूर भी था। यह गाधीवादी समाजवाद था लेकिन तीव्र औद्योगीकरण का पक्षपाती था। स्वतत्रता के पश्चात् सन् 1964 ई तक नेहरू जी सत्ता मे बने रहे। अपनी सरकारी नीतियो के माध्यम से वे सामाजिक आर्थिक पुनर्निमाण हेतु 'समाज का समाजवादी ढॉचा' (Socialist pattern of society) स्थापित करने के लिये कृत सकल्प रहे। नेहरू जी की समाजवादी विचारधारा और उसका क्रियान्वयन तथा उसकी सफलता के अध्ययन का प्रयास अगले अध्याय में किया जा रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 ऋग्वेद 3/25/7
2 वही, 6/53/3
3 वही, 10/117/5
4 वही, 10/117/6
5 वही, 10/117/6
6 गीता, 3/13
7 हरिजन, 20 जनवरी सन् 1937 के अक से
8 डॉ लोहिया, *''समाजवादी आन्दोलन का इतिहास''*, पृ 1
9 शुक्ला, रामलखन, *''आधुनिक भारत का इतिहास''* (स) हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय-1998, पृ 342
10 वही, पृ 343
11 सरस्वती, दयानन्द, *''सत्यार्थ प्रकाश''*, सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड, दरियागज, नई दिल्ली, अध्याय 6 पृ 125
१२ 'दिनकर', रामधारी सिह, *''सस्कृति के चार अध्याय''*, लोक भारती प्रकाशक, एम जी मार्ग इलाहाबाद (1999) पृ 500
13 ताराचन्द, *''भारतीय स्वतत्रता आन्दोलन का इतिहास''* (दूसरा खण्ड) नई दिल्ली, पृ 368
14 स्वामी विवेकानन्द पत्रावली, प्रथम भाग, पृ 83 (अद्वैत आश्रम अल्मोडा)
15 वही, पृ 368
16 वही, पृ 368
17 द कम्पलीट वर्क्स आफ स्वामी विवेकानन्द (अद्वैत आश्रम, अल्मोडा) जिल्द 6 पृ 389
18 वही, पृ 389
19 वही, पृ 390
20 वर्मा, वी पी , *''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन''* (लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1995-96) पृ 148
21 विवेकानन्द, *''मार्डन इण्डिया''* (द कम्पलीट वर्क्स आफ स्वामी विवेकानन्द), जिल्द 4 पृ 394-95
22 वर्मा, वी पी , *''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन''*, पृ 148-49
23 ''द कम्पलीट वर्क्स आफ स्वामी विवेकानन्द'', जिल्द 6 पृ 389
24 वर्मा, वी पी , *''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन''* पृ 149
25 वही, पृ 149
26 ''द कम्पलीट वर्क्स आफ स्वामी विवेकानन्द'', जिल्द 6 पृ 321
27 गॉधी, मो क , *''अपरिग्रह और अनाशक्ति''* (सम्पादक यशपाल जैन) सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली (1998) पृ 7
28 वही, पृ 7
29 द कलेक्टेड वर्क्स, खण्ड 13, पृ 313
30 यग इण्डिया, 15 11 1927
31 वही, 17 3 1927
32 हरिजन, 29 6 1935
33 हरिजन, 25 8 1940
34 हरिजन, 25 10 1952
35 गॉधी जी, *''हिन्द स्वराज''*, नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद (1958) पृ 151
36 यग इण्डिया, 20 1 1920
37 हरिजन, 13 7 47
38 यग इण्डिया, 15.11 1928
39 वही, 21 11 1929

40 वही, 26 3 1931
41 बोस, एन के , *''सेलेक्शन्स फ्राम गाँधी''*, बम्बई, पृ 37-38
42 वर्मा, डॉ एस एल , *''समकालीन राजनीतिक चितन''*, मीनाक्षी प्रकाशन (मेरठ) 1989, पृ 237-238
43 नारायण, जय प्रकाश, *''ए पिक्चर आफ सर्वोदय, सोशल आर्डर''* (अखिल भारतीय सेवा सघ, तजौर, 1955) पृ 43
44 वास्टो, लेजा डेल, *''गाँधी टू विनोबा''* (राइटर एण्ड कम्पनी, लदन 1955) पृ 213-214
45 भावे, विनोबा, *''भूदान यज्ञ''*, (नवजीवन पब्लिशिग हाऊस, अहमदाबाद 1953) पृ 66-69
46 हरिजन, जनवरी 26, 1952
47 हरिजन, 20 दिसम्बर 1952
48 सूद जे पी , *''आधुनिक राजीतिक विचारो का इतिहास''*, भाग-4 (के नाथ एण्ड कम्पनी, मेरठ, 1984 85) पृ 228
49 वही, पृ 229
50 वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद, *''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन''*, पृ 530
51 किन्तु नरेन्द्रदेव ने कहा कि अगस्त 1947 तक काग्रेस एक राष्ट्रीय मोर्चा थी, अब वह अपने इस रूप को खो बैठी है और एक पार्टी बन गयी है। उन्होने काग्रेस की सत्तावादी तथा केन्द्रीकरण की प्रवृत्तियो की आलोचना की। (आचार्य नरेन्द्रदेव, *''राष्ट्रीयता और समाजवाद''*, पृ 317019
52 वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद, *''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन''*, पृ 531
53 वही, पृ 531
54 नरेन्द्र देव, *''सोशलिज्म एण्ड नेशनल रिवोल्यूशन''*, पृ 148
55 वही, पृ 24-25
56 वही, पृ 417-19
57 नरेन्द्र देव जी ने यहाँ तक कह दिया कि गाँधीवादी हिंसा वर्गहीन समाज मे अन्तत पर्यवसित होने की क्षमता रखती है। ''अहिसा व्रत के अपने इस अनुसधान से इसे (गाँधीवाद को) यह तथ्य मिला है कि वर्ग भेदो और सामाजिक तथा आर्थिक विषमताओ को मिटाये बिना समाज में से हसा का उन्मूलन नही हो सकता। अत वर्गहीन समाज इसका ध्येय है और समत्वयुक्त समाज की एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था इसे करनी है जिससे जनतत्रता का भाव नष्ट न हो और मनुष्य की सर्वश्रेष्ठता स्थापित हो।'' (राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृ 740, वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद, ''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन'', पृ 532 से उद्धत)
58 नरेन्द्र देव, *''सोशलिज्म एण्ड नेशनल रिवोल्यूशन''*, पृ 8
59 वही, पृ 22-23
60 वही, पृ 23
61 वही, पृ 28
62 वही, पृ 29-30
63 वही, पृ 4
64 वही, पृ 167
65 वही, पृ 149
66 वही, पृ 68-69
67 वही, पृ 87
68 वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद, *''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन''*, पृ 533
69 नरेन्द्र देव, *''सोशलिज्म एण्ड नेशनल रिवोल्यूशन''*, पृ. 87
70 वही, पृ 161
71 वही, पृ 54
72 वही, पृ 183
73 डॉ लोहिया, *''भारत मे समाजवाद''* पृ 16

74 डॉ लोहिया, *''जाति प्रथा''* पृ 18
75 वही, पृ 3
76 वही, पृ 84
77 डॉ लोहिया, हैदराबाद आर्य समाज सभा मे दिये गये भाषण, सन् 27 मई 1960
78 डॉ लोहिया, *''धर्म पर एक दृष्टि''*, पृ 16
79 डॉ लोहिया, *''निराशा के प्रति कर्त्तव्य''*, पृ 28
80 डॉ लोहिया, भाषण सन् 1956 सितम्बर 18-19, नागपुर
81 डॉ लोहिया, *''जाति प्रथा''* पृ 24
82 वही, पृ 113
83 वही, पृ 19
84 वही, पृ 41
85 डॉ लोहिया, *''भाषा''* पृ 75-76
86 "The small machine run by electricity or oil in the answer Only a two such machines exist, many will have to be invented Tecnology, which the modern age has kept ever changing will have to make a revalutionary break with the present The problem will not be solued by going back to latermachines, discorded by modern civilization, but by in venting new ones with a definite principle and aim " Dr Lohia, "Marx, Gandhi and Socialism", P 326
87 लोहिया का भाषण, रीवा, 26 जनवरी 1957
88 डॉ लोहिया, *''समाजवाद की अर्थनीति''* पृ 23
89 डॉ लोहिया, *''मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म''* पृ 326
90 डॉ लोहिया, *''भारत मे समाजवाद''* पृ 11
91 "Social ownership shall be held at various level corresponding to various structures of the state from village to federation " Dr Lohia, "Marx, Gandhi and Socialism", P 258
92 डॉ लोहिया, *''समाजवाद की अर्थनीति''* पृ 13
93 डॉ लोहिया, भाषण, बम्बई 1964
94 डॉ लोहिया, *''क्रान्ति के लिये सगठन''*, पृ 201 (भाग-1)
95 वही, पृ 120
96 वही, पृ 186
97 लाल, डॉ लक्ष्मीनारायण, *''जय प्रकाश नारायण''* पृ 24
98 वही, पृ 64-65
99 नारायण, जय प्रकाश, *''समाजवाद ही क्यो''* पृ 64
100 वही, पृ 91
101 वही, पृ 65-66
102 नारायण, जय प्रकाश, *''सघर्ष की ओर''*, पृ 59
103 नारायण, जय प्रकाश, *''नेशन बिल्डिग इन इण्डिया''* पृ 17
104 मसानी, मीनू, *''जे पी , मिशन पार्टी एकम्पिलश्ड''* पृ 56
105 वही, पृ 56
106 नारायण, जय प्रकाश, *''मेरी विचार यात्रा''*, भाग-2, पृ 85 (सर्व-सेवा-सघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी)
107 नारायण, जय प्रकाश, *''नेशन बिल्डिग इन इण्डिया''* पृ 190
108 बेनीपुरी, रामवृक्ष, *''जय प्रकाश की विचारधारा''*, पृ 423
109 नारायण, जय प्रकाश, *''नेशन बिल्डिग इन इण्डिया''* पृ 423

110 बेनीपुरी, रामवृक्ष, *''जय प्रकाश की विचारधारा''*, पृ 295
111 नारायण, जय प्रकाश, *''समाजवाद क्यो और कैसे''* पृ 325
112 नारायण, जय प्रकाश, *''सघर्ष की ओर''* पृ 20
113 8 अगस्त 1977, *''सामाजिक क्रान्ति''* धर्मयुग के अक से
114 जे पी का भाषण, *''पाञ्चजन्य''* 4 सितम्बर 1977
115 लाल, अवध बिहारी, *''सम्पूर्ण क्रान्ति के सूत्रधार - लोक नायक जय प्रकाश''*, पृ 115
116 जे पी का भाषण, 41 सितम्बर 1977, पटना
117 मसानी, मीनू, *''जे पी मिशन पार्टी एकम्पिलश्ड''* पृ 49
118 नारायण, जय प्रकाश, *''समाजराद क्यो और कैसे''*, पृ 27
119 वही, पृ 28
120 नारायण, जय प्रकाश, *''समाजवाद क्यो और कैसे''* पृ 132
121 वही, पृ 133
122 नारायण, जय प्रकाश, *''समाजवाद से सर्वोदय की ओर''*, पृ 55-56
123 नारायण, जय प्रकाश, *''सघर्ष की ओर''*, पृ 75-76
124 वही, पृ 78
125 नारायण, जय प्रकाश, *''समाजवाद क्यो और कैसे''* पृ 1-8
126 वही, पृ 17
127 वही, पृ 18-19
128 लाल, डॉ लक्ष्मी नारायण, *''जय प्रकाश नारायण''*, पृ 18
129 नारायण, जय प्रकाश, *''सघर्ष की ओर''* पृ 98
130 वही, पृ 94
131 वही, पृ 95
132 वही, पृ 13
133 वही, पृ 13
134 नारायण, जय प्रकाश, *''समाजवाद क्यो और कैसे''* पृ 24
135 नारायण, जय प्रकाश, *''जीवन दान''* पृ 9
136 नारायण, जय प्रकाश, *''सम्पूर्ण क्रान्ति की खोज मे मेरी विचार यात्रा''* (स) सर्व-सेवा-सघ, प्रकाशक, वाराणसी, पृ 86
137 वही, पृ 86
138 लाल, अवध बिहारी, *''सम्पूर्ण क्रान्ति के सूत्रधार, जयप्रकाश''*, पृ 8
139 नारायण, जय प्रकाश, *''सम्पूर्ण क्रान्ति की खोज मे मेरी विचार यात्रा''*, पृ 112
140 जनसत्ता, 6 जून 1997
141 दुबे, अभय कुमार, *''मुलायम सिंह यादव''* एक आलोचनात्मक अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997 पृ 52
142 वही, पृ 104
143 विद ए न्यू मेडेट, फ्रट लाइन, 31 दिसम्बर 1993

अध्याय - तृतीय

पं. जवाहर लाल नेहरू का समाजवाद

अध्याय - तृतीय

पं. जवाहर लाल नेहरू का समाजवाद

प्रत्येक विचारक, दार्शनिक, नेता एवं अन्य बुद्धिजीवी उन परिस्थितियो की उपज होता है जिनमे उनका प्रादुर्भाव हुआ हो। समय के अनुसार जिन व्यक्तियो मे अपने आपको परिवर्तित करने की क्षमता नही होती, वह अपने आपको उन स्थितियो मे स्थिर रखने मे असमर्थ पाते है, जिसमे रह कर उन्हे कार्य करना पड़ता है। यही कारण है कि समय की दृष्टि से वे पीछे रह जाते है। प्रत्येक विचारक के उस अपरिपक्व मस्तिष्क पर अधिक प्रभाव पड़ता है जिन परिस्थितियो से उसे युवावस्था से होकर गुजरना पड़ता है। किसी भी विचारक पर उन परिस्थितियो के अलावा दूसरे तत्वो का भी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है, जैसे उस समय का साहित्य, उस समय के विचारक तथा अन्य प्रभावी व्यक्ति, जिनके सम्पर्क मे रह कर कार्य करना पड़ता है। ये सभी तत्व किसी भी विचारक के चितन को निर्धारित एव सही दिशा देने मे सहायक होते है। पूर्व की विचारधाराओ को वर्तमान की परिस्थितियो से सम्बद्ध करने एव विश्लेषित करने पर ही नवीन विचारधाराओ का उद्भव होता है, उसी समान विचारको पर भी पूर्व और वर्तमान की उन प्रबल विचारधाराओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। विश्व के महान चिन्तक भी इससे उन्मुक्त नही रहे है। नेहरू जी, इसके अपवाद नही हो सकते। इनकी विचारधाराओ के उद्भव एव विकास मे पूर्व और वर्तमान के चिन्तको एव विचारधाराओ का प्रभाव स्पष्टत· दृष्टिगोचर होता है।

नेहरू जी का प्रादुर्भाव ही ऐसे परिवार मे हुआ था जो कि उस समय राजनैतिक गतिविधियों का केन्द्र था। प्राथमिक रूप से उनके चिंतन पर उनके परिवार के वातावरण का

अत्यधिक प्रभाव पड़ा जो कि जीवनान्त तक उनके ऊपर बना रहा। उनकी विचार शैली पर भी उनके लक्षण स्पष्टत दृष्टिगोचर होते है।[1]

नेहरू जी तीन व्यक्तियो से अत्यधिक प्रभावित हुये, इस तथ्य को उन्होने स्वीकार भी किया। प्रथम अपने पिताश्री मोतीलाल नेहरू से, द्वितीय उन पर गाधी जी का प्रभाव पडा जिनसे उन्होने यथा सभव बनने की शिक्षा ग्रहण की, तीसरे, श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर का प्रभाव उनके ऊपर पड़ा, नेहरू जी का अन्तर्राष्ट्रीयतावाद टैगोर से ही प्रभावित है।[2] इसके अतिरिक्त उनके चितन के उद्भव एव विकास मे विदेशी विचारको एव दर्शन का भी काफी योगदान रहा है, जिसकी चर्चा उन्होने अपनी पुस्तक 'आटो बायोग्राफी' (सन् 1936 ई) मे की है।

नेहरू जी ने अपने पिता श्री मोतीलाल नेहरू से स्वतंत्रता तथा साहस की भावना एव अभिजातीय अहकार विरासत मे पाया था। नेहरू जी को अपने पिता के प्रति गभीर-निरपेक्ष तथा दृढ अनुराग और स्नेहपूर्ण श्रद्धा थी। श्री मोतीलाल नेहरू मे शक्ति, दृढता तथा अविचल सकल्प एव जोखिम उठाने की क्षमता के जो गुण विद्यमान थे उनका जवाहरलाल जी पर गहरा प्रभाव पड़ा।[3] मोतीलाल नेहरू अज्ञेयवादी थे। वे बुद्धिजीवी तथा यथार्थवादी भी थे। इसलिये उन्हे किसी विकल्पातीत सत्ता मे विश्वास नही था और न वे उच्च सत्ता की रहस्यात्मक अनुभूति के विचार को ही हृदयगम कर सकते थे। अपने पिता के पुत्र होने के नाते नेहरू जी कभी अपनी माता की धार्मिक निष्ठा को आत्मसात न कर सके।[4] तीस वर्ष से भी अधिक गाधी जी जैसे धार्मिक तथा पैगम्बरतुल्य व्यक्ति के निकट सम्पर्क मे रहने पर भी नेहरू जी सशयवादी ही बने रहे। यह सत्य है कि नेहरू जी कट्टर अथवा उग्र नास्तिक अथवा भौतिकवादी नही थे। किन्तु वे अध्यात्मवादी भी नही थे।[5]

नेहरू जी का अभिजातीय तथा मध्यमवर्गीय स्वभाव गाधी जी के साहचर्य से बहुत कुछ संयत और नम्र हो गया था। नेहरू जी के मन मे गान्धी जी के प्रति सदैव गम्भीर भावनात्मक अनुराग रहा।[6] अपने पत्रो मे वे उन्हे स्नेहपूर्वक बापू कहकर सम्बोधित किया करते थे। नेहरू जी की गाधी जी से सर्व प्रथम भेट सन् 1916 की लखनऊ कांग्रेस मे हुई। सन् 1920 मे वे गाधी जी के प्रभाव मे आ गये। उन पर गांधी जी की प्रबल निष्ठा तथा कार्य के लगन का गहरा प्रभाव पड़ा था।

गाधी जी सदैव कार्य पर बल दिया करते थे। उनकी इसी बात ने नेहरू जी को विशेष रूप से आकृष्ट किया।[7] गाधी जी की कार्यप्रणाली ने भी नेहरू जी को प्रभावित किया, क्योकि उससे सफलता मिली थी। गांधी जी के व्यक्तित्व मे जो सामजस्यपूर्ण संतुलन तथा भावनात्मक

एकता देखने को मिलती थी उसकी नेहरू जी भूरि-भूरि प्रशसा करते थे। मई सन् 1933 ई मे जब गाधी जी २१ दिन का उपवास प्रारम्भ करने जा रहे थे, नेहरू जी ने उनको एक तार दिया जिसमें उन्होने लिखा था ''मै अपने को एक ऐसे देश मे खोया हुआ अनुभव कर रहा हॅू जिसमे केवल आप ही एक सुपरिचित भूमि चिन्ह है। मै अधेरे मे टटोल रहा हॅू, किन्तु पगपग पर ठोकर खा रहा हूॅ। कुछ भी हो मेरा स्नेह तथा विचार सदैव आपके साथ रहेगे।''(8)

वस्तुत नेहरू जी दो कारणो से गाधी जी की ओर आकृष्ट हुये थे। प्रथम, नेहरू जी गाधी जी के साहस तथा सब प्रकार की कठिनाइयो और विपत्तियो के प्रति उनकी चुनौती की भावना के बड़े प्रशसक थे। दूसरे, उन्होने देखा कि गाधी जी के नेतृत्व तथा राजनीतिक कार्यकलाप के महत्वपूर्ण परिणाम हुये थे। गाधीवादी होने के नाते नेहरू ने सदैव कर्म तथा विचारो की एकता का समर्थन किया। गाधी जी ने राजनीतिक क्षेत्र मे जो नैतिक मार्ग अपनाया था उसका भी नेहरू जी पर काफी प्रभाव पडा। गान्धी जी ने केवल साध्यो की शुद्धता पर ही बल नही दिया था, वे साधनो की पवित्रता को भी आवश्यक मानते थे। इसका भी नेहरू जी पर गहरा प्रभाव पड़ा।(9) कुछ समय से नेहरू जी साधनो की श्रेष्ठता के इस विचार को बार-बार दुहराने लगे थे और कहने लगे थे कि नैतिक नियम निष्ठुरता के साथ काम करते है।(10) स्वतत्रता सग्राम के दिनो मे भी नेहरू जी ने अहिसा को केवल एक नीति के रूप मे स्वीकार किया, गाधी जी की भॉति उन्होने उसे कभी धर्म मानकर अगीकार नही किया। किन्तु उन्होने व्यावहारिक आधार पर अहिसा का समर्थन किया। वे मानते थे कि हिसा से समस्याओ का वास्तविक समाधान नही होता, केवल दिखावटी समाधान भले ही मिल सके।

नेहरू जी ने देश को एक सन्तुलित, संयमशील और आदर्श राष्ट्रवाद के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। राष्ट्रीयता सबधी उनकी मान्यता सकुचित नही थी। मातृभूमि के प्रति भावुकता से भरे सबध को वे राष्ट्रीयता मानते थे। उन्होने कहा ''हिन्दुस्तान् मेरे खून मे समाया हुआ है उसमे बहुत कुछ ऐसी बात है जो मुझे स्वभावत उकसाती है।''(11) पर मातृभूमि के प्रति नेहरू जी का प्यार अन्धा नही था। मानवता के कल्याण मे नेहरू भारत के कल्याण का दर्शन करते थे। वे टैगोर जी के समन्वयात्मक सार्वभौमवाद और विश्व बन्धुत्व की भावना से प्रभावित थे। नेहरू जी को धार्मिक राष्ट्रवाद के प्रति सहानुभूति नही थी। दयानन्द, विवेकानन्द और श्री अरविन्द के राष्ट्रवाद सम्बन्धी धार्मिक दृष्टिकोण मे उन्हे कोई आकर्षण नही था।(12) निश्चित रूप से उनकी दृष्टि अन्तर्राष्ट्रीयवादी थी। उन्होने अपने देश को, काग्रेस को और सम्पूर्ण मानव समाज को एक व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण प्रदान किया। नेहरू जी की धारणा थी कि ''हम एक ऐसे समय

मे रह रहे है जबकि विदेशी मामले जैसा शब्द ही अप्रासगिक है। हम एक दूसरे पर अधिकाधिक अवलम्बित होते जा रहे है। जगत मे इस देश और उस देश जैसे सकीर्ण दृष्टिकोण के स्थान पर विश्व के दृष्टिकोण को अपना रहे है। संकीर्ण राष्ट्रीयता भी राजनीतिक कट्टरता का एक रूप है।''[13] उनकी यह अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि टैगोर जी से ही प्रभावित थी।

नेहरू जी को मानव स्वभाव की सर्जनात्मक सभावनाओ मे विश्वास था। वे वैज्ञानिक मानवतावाद के आदर्श को स्वीकार करते थे। अपनी 'भारत की खोज' मे उन्होने लिखा है कि(१४) टैगोर भारत के महानतम मानवतावादी थे। किन्तु टैगोर का मानवतावाद इस दार्शनिक विश्वास पर आधारित था कि परमात्मा सम्पूर्ण विश्व मे व्याप्त है। इसके विपरीत नेहरू जी सशयवादी थे, इसलिये वे मनुष्य को केवल एक अनुभवगम्य वस्तु मानत थे। नेहरू जी किसी ऐसी शाश्वत और अपरिवर्तनशील सत्ता मे विश्वास नही करते थे जो मनुष्य के अस्तित्व को प्रयोजन प्रदान करती हो। इसी दृष्टि से उनका चिन्तन रवीन्द्रनाथ के दर्शन से भिन्न था।

नेहरू जी पर प्राचीन भारतीय वेदान्त के दर्शन का भी प्रभाव दिखलाई पडता है। उन्होने अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' मे न केवल विज्ञान की महानता पर बल दिया वरन् आध्यात्मिकता को भी मानव जीवन के लिये आवश्यक माना है। समाजवाद के सन्दर्भ मे उन्होने साम्यवाद की आलोचना की तथा गाधी जी की ही भॉति साधनो की पवित्रता पर बल दिया। यद्यपि उन्होने कई दृष्टियो से साम्यवाद की आलोचना की लेकिन अत तक वे कुछ दृष्टियो से मार्क्स के विचारो से प्रभावित भी रहे। उदाहरणार्थ - वे अन्त तक शोषण का विरोध करते रहे तथा साम्राज्यवादियो की आलोचना करते रहे।

नेहरू जी सन् 1905 ई. मे इग्लैण्ड विद्या अध्ययन के लिये गये थे। सन् 1906 ई मे वहॉ आम चुनाव हुए जिनमे उदारवादियो की विजय हुयी।[15] इस घटना का नेहरू जी पर काफी प्रभाव पड़ा। इंग्लैण्ड के उदारवाद के प्रति उनकी आस्था बराबर बनी रही, जिसके लिये आगे चलकर नेहरू जी भारत के सदर्भ मे, समाजवाद शब्द का प्रयोग करते थे। यह समाजवाद नही था, वरन् सीधा-सादा इंग्लैण्ड का उदारवाद था। कैम्ब्रिज मे शिक्षा ग्रहण करते समय नेहरू जी का राजनीति की ओर मानसिक लगाव मेरीडिथ टाऊनलैण्ड की 'एशिया और यूरोप' नामक कृति की देन थी, जिसे नेहरू जी ने स्वय स्वीकार किया है।[16] इस प्रकार की पुस्तके, जिसमे एशिया एव यूरोप की राजनीतिक घटनाओ का जिक्र रहता था, नेहरू जी बडे चाव से पढ़ते थे, जिसका उनके मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। नेहरू जी ने उसी समय फेबियन और समाजवादी सिद्धान्तो से सम्बन्धित पुस्तको का अध्ययन किया, जिसकी वजह

से उनका समाजवाद के प्रति एक अस्पष्ट सा आकर्षण पैदा हुआ। फेबियनवाद ने नेहरू के ऊपर गहरा प्रभाव डाला क्योकि इस विचारधारा ने लोगो को यह समझाया कि समाजवाद एक सहज रूप से ग्रहण किया जाने वाला सिद्धान्त है। इसको लाने मे किसी हिसा, क्रान्ति या किसी अकस्मात किये जाने वाले परिवर्तन की आवश्यकता नही है। इस विचारधारा ने ब्रिटेन को एक नयी दशा प्रदान की। औद्योगिक क्रान्ति द्वारा उत्पन्न कई सामाजिक और आर्थिक विकृतियो के बावजूद ब्रिटेन ने किसी हिसक क्रान्ति की आवश्यकता महसूस नही की। फेबियन समाजवादियो के अनुसार भूमि और सम्पत्ति पर सामाजिक नियंत्रण होना चाहिये किन्तु इस प्रक्रिया मे सम्पत्ति की वृद्धि मे कोई व्यावधान नही होना चाहिये। इसके अतिरिक्त इस व्यवस्था का प्रचलन एकदम क्रान्ति द्वारा नही बल्कि शनै शनै होना चाहिये नेहरू जी इस विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित हुये किन्तु वे यह भी जानते थे कि इस प्रकार की विचारधारा का पूर्ण औचित्य तभी समझा जा सकता है जब यह औद्योगीकरण के सन्दर्भ मे समझी जाय। फेबियन समाजवाद के जिस विचार से उन्हे सबसे अधिक प्रेरणा मिली वह था परिवर्तन के पीछे हिसा की भावना का न होना। नेहरू जी ने अपने समाजवादी सिद्धान्त मे इसे समाहित किया। नेहरू जी के चिन्तन मे ब्रिटिश उदारवाद का भी अत्यधिक प्रभाव रहा। वस्तुत· उदार समाजवादी, विकासवादी सिद्धान्त को मानते है। वे वैज्ञानिक साधनो के माध्यम से वर्तमान राजतत्र (स्टेट) मे परिवर्तन करना चाहते थे। जिससे वह समाजवाद को स्थापित करने मे सहायक बन सके और कायम भी रखा जा सके।[17] नेहरू जी इसी प्रभाव के कारण प्रत्येक समस्या (आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक) का समाधान वैज्ञानिक साधनो के माध्यम से करना चाहते थे।

नेहरू जी ने रूस की क्रान्ति की 10वी वर्षगाठ मे भाग लिया। नेहरू जी रूस की आर्थिक, शैक्षिक प्रगति को देखकर काफी प्रभावित हुये तथा इसी अनुभव के आधार पर उन्होने 'सोवियत रसिया' (सन् 1928 ई) नामक पुस्तक की रचना की। उन्होने इस पुस्तक मे लिखा है कि ''रूस के अनुभवो से भारतीयो को बहुत ही बड़ी सहायता मिल सकती है। रूस की स्थिति से भारत की स्थिति अधिक भिन्न नही है...।[18] इस रूसी यात्रा का यह परिणाम निकला की उन्हे यह दृढ़ विश्वास हो गया कि रूस ही विश्व में साम्राज्य विरोधी राज्य है तथा रूस और भारत सयुक्त रूप से मिलकर ब्रिटिश साम्राज्य विरोधी नीति का अनुकरण कर सकते है।[19]

नेहरू जी को मार्क्स की विश्व तथा इतिहास की धारणा से प्रेरणा मिली थी। अपनी 'आत्मकथा' मे उन्होने स्वीकार किया कि साम्यवादी जीवन दर्शन ने उन्हे आशा तथा सान्त्वना

दी थी। साम्यवाद अतीत की व्याख्या करने का प्रयत्न करता है और भविष्य के लिये आशा प्रदान करता है।[20] नेहरू जी को मार्क्सवादी इतिहास दर्शन के वैज्ञानिक, धर्मविद्या विरोधी तथा अन्धविश्वास विरोधी दृष्टिकोण ने विशेषकर प्रभावित किया था। ऐतिहासिक व्याख्या का मार्क्सवादी सिद्धान्त तथा उसका विकास सम्बन्धी दृष्टिकोण नेहरू जी को पसन्द आया। उनके मन पर यह सैद्धान्तिक प्रभाव सन् 1930-32 के विश्व व्यापी आर्थिक सकट से और भी अधिक पुष्ट हो गया। उन्हे ऐसा लगा कि मार्क्सवादी विश्लेषण तथा निष्कर्ष समीचीन है। किन्तु नेहरू को मार्क्सवाद मे पूर्ण विश्वास कभी नही हुआ। उन्होने ऐतिहासिक व्याख्या के सम्बन्ध मे मार्क्सवादी सिद्धान्त का प्राय प्रयोग किया था किन्तु वे साम्यवाद की सत्तावादी कार्य प्रणाली को स्थायी रूप से कभी सहन न कर सके थे। 'भारत की खोज' मे उन्होने मार्क्सवाद एव लेनिनवाद के सम्बन्ध मे कहा है कि ''मार्क्स तथा लेनिन के अध्ययन ने मेरे मन पर शक्तिशाली प्रभाव डाला और मुझे इतिहास तथा सामयिक घटनाओ को एक नई दृष्टि से देखने मे सहायता दी। मार्क्सवादी दर्शन मे बहुत तत्व ऐसा था जिसे मै बिना किसी कठिनाई के ग्रहण कर सकता था - उसका एकत्ववाद, मन तथा पदार्थ का अद्वैत, पदार्थ की गतिशीलता, तथा क्रिया और अन्योन्य क्रिया, कारण और कार्य, वाद, प्रतिवाद और सवाद के माध्यम से विकास तथा छलाग दोनो के द्वारा सतत परिवर्तन का द्वन्द्व नियम। उसने मुझे पूर्ण रूप से सतुष्ट नही किया और न मेरे मन के सभी प्रश्नो का उत्तर दिया।

. अन्य लोगो की भॉति साम्यवादियो के व्यवहार तथा उनके आधारभूत प्रेरणाओ अथवा सिद्धान्तो के बीच सामान्यत जो अन्तर देखने को मिलता है वह मुझे पसन्द नही है। सामान्य मार्क्सवादी दृष्टिकोण ने, जो वैज्ञानिक जानकारी को वर्तमान स्थिति के न्यूनाधिक अनुरूप है, मुझे बहुत कुछ सहायता दी। किन्तु उस दृष्टिकोण को स्वीकार करते हुये भी उसके निष्कर्ष तथा उसके आधार पर की गयी अतीत तथा वर्तमान की घटनाओ की व्याख्या कभी स्पष्ट रूप से मेरी समझ मे नही आयी। सामाजिक विकास के सम्बन्ध मे मार्क्स का सामान्य विश्लेषण असाधारण तौर पर सही जान पडता है, फिर भी बाद मे अनेक ऐसी घटनाए घटी है जो निकट भविष्य को ध्यान मे रखते हुये उनके दृष्टिकोण से मेल नही खाती।[21] सन् 1952 ई. मे नेहरू जी ने यह घोषणा करके साम्यवादियो को लगभग पागल बना दिया कि दर्शन-विज्ञान तथा आर्थिक चितन के क्षेत्रो मे पिछले सौ वर्षो की प्रगति ने मार्क्सवाद को पुराना सिद्ध कर दिया है। अत स्पष्ट है कि नेहरू जी के मन मे मार्क्सवाद और साम्यवाद के प्रति ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप मे अथवा उसके विरोध से जो मानसिक सात्वना मिलती थी उसके कारण जो संवेगात्मक अनुराग उत्पन्न हो गया था वह आयु की वृद्धि तथा समय के परिवर्तन के साथ-साथ बहुत कुछ क्षीण हो गया।[22]

नेहरू जी के ऊपर गाधी जी का काफी प्रभाव था। परन्तु गाधी जी के सिद्धान्तो के प्रति उनकी आस्था बहुत ही सीमित रही। भारत के सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक विकास के सम्बन्ध मे उनमे और गाधी जी मे अन्तर ही नही वरन् महान अन्तर था।

नेहरू राजनीति मे सत्य का समावेश चाहते थे किन्तु सत्य की उनकी अवधारणा, गाधी की आध्यात्मिकता लिये हुए नही थी, वे पारलौकिक सत्य की अपेक्षा यथार्थ के सत्य को मानते थे। उन्होने गाधी जी के साथ सत्याग्रह मे भी भाग लिया परन्तु वे गाधी के ह्रदय परिवर्तन की अवधारणा से सहमत नही थे, वे विशुद्ध सामाजिक सुधारवादी थे और लक्ष्य था मानवतावाद। मानव की गरिमा को स्वीकार करना, उसकी क्षमताओ का आदर करना और उसकी प्रगतिशीलता पर विश्वास करना-यही सत्य का सच्चा अनुकरण है। सत्य को अदृश्य ईश्वर से जोड कर देखने की प्रवृत्ति नेहरू मे नही थी। मानव के कल्याण के लिये सतत् प्रयत्नशील रहना यही उनके सत्य की पराकाष्ठा थी, एक ओर उनकी दृष्टि भारत के प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण की ओर थी दूसरी ओर उनकी चिता भारत को उन्नतिशील देशो की बराबरी पर लाने की थी। वे एक आदर्शो के बाहर जाकर अपना समय नष्ट नही करना चाहते थे।

गाधी जी के अहिसा के सम्बन्ध मे भी नेहरू ने गाधी जी के अहिसा के सिद्धान्त को पूर्णतया नही माना। वे मानते थे कि अहिंसा एक बहुत उच्च आदर्श है, किन्तु इसका अनुसरण एक सीमा तक ही किया जा सकता है, नेहरू जी अपराधी को क्षमा करने के पक्ष मे नही थे, गाधी जी अपराधी को क्षमादान के द्वारा सही रास्ते पर लाने के समर्थक थे। गाधी जी और नेहरू जी की कल्याणकारी राज्य की धारणा मे बहुत कुछ भेद दिखलायी पडता है। वे कल्याणकारी राज्य को गाधी जी का हिसात्मक राज्य नही मानते थे। वे उसे धर्म पर नही बल्कि धर्म निरपेक्षता पर आधारित करना चाहते थे। नेहरू जी का दृष्टिकोण अधिक यथार्थवादी था।[23] गांधी जी अपने आदर्श राज्य को रामराज्य कहते थे। नेहरू जी को इस पर आपत्ति थी क्योकि उन्हे इसमे हिन्दू धर्म के प्रति आग्रह की गध आती थी फिर भी उन्होने अपनी इस आपत्ति पर विशेष बल नही दिया। किन्तु गाधी जी एव नेहरू जी के आदर्श राज्य की कल्पना मे अहिसा का महत्व, शक्ति का प्रयोग, छोटे अथवा बडे उद्योग आदि अनेक तत्वो को लेकर भेद देखा जा सकता है।

गाधी जी बड़े उद्योगो के विरुद्ध थे और देश में कुटीर उद्योग और ग्रामोद्योग की स्थापना करना चाहते थे। दूसरी ओर नेहरू जी आधुनिक विज्ञान के समर्थक थे और दरिद्रता को दूर करने के लिये बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण का महत्व स्वीकार करते थे। उन्होने कहा कि ''मै

ट्रैक्टरो तथा बड़े उद्योगो का हामी हूँ और मेरा विश्वास है कि भूमि पर दबाव को कम करने के लिये, दरिद्रता को दूर करने के लये तथा रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये और अन्य बहुत से उद्देश्यो के लिये भारत मे तेजी के साथ औद्योगीकरण होना आवश्यक है परन्तु इसके साथ ही मेरा यह भी विश्वास है कि औद्योगीकरण का पूरा लाभ उठाने के लिये तथा उसके बहुत से खतरो से बचने के अत्यन्त सतकर्तापूर्वक नियोजन आवश्यक है।[24]

गाधी जी एव नेहरू जी के सामाजिक आदर्शो मे अन्तर को स्पष्ट करते हुये आबिद हुसैन ने लिखा है कि ''नेहरू जी के सामाजिक आदर्श की तुलना गाधी जी के आदर्श के साथ करने पर पूर्णतया भिन्न दिखायी पडती है। दोनो ही स्वतत्रता तथा समानता मे दृढ विश्वास रखते है किन्तु गाधी जी स्वतत्रता पर तथा नेहरू जी समानता पर अधिक बल देते है। अन्त मे यह भेद धार्मिक तथा धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण का है।''[25] गाधी जी व्यक्ति से आरम्भ करते थे किन्तु नेहरू कल्याणकारी राज्य को पहले मानते थे। गांधी जी ने ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त मे पूँजीपतियो के ह्रदय परिवर्तन की बात कही है। नेहरू जी इस सभव नही मानते थे और इसीलिये उनके अर्थशास्त्र मे ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त के लिये कोई स्थान नही था।

नेहरू जी का समाजवादी चिंतन -

नेहरू जी के समाजवादी चितन का क्रमबद्ध विकास सन् 1929 ई. के लाहौर काग्रेस अधिवेशन से प्रारम्भ होता है, जिसमे काग्रेस ने 'पूर्ण स्वाधीनता' का प्रस्ताव पारित किया था। लाहौर अधिवेशन मे दिये गये अपने अध्यक्षीय भाषण मे नेहरू जी ने कहा- ''मुझे यह साफ कबूल कर लेना चाहिए कि मै समाजवादी और गणतत्रवादी हूँ और राजा महाराजाओ मे मेरा विश्वास नही है, या उस व्यवस्था मे ही जो उद्योग-व्यवसाय के उन आधुनिक महाराजाओ को पैदा करती है, जिनका लोगो की जिन्दगियो और किस्मत पर पिछले राजा-महाराजाओ के भी मुकाबले कही ज्यादा बडा अधिकार है, और जिनके तौर तरीको मे वैसा ही लुटेरापन है जैसा कि पुरानी सामन्तशाही मे था।[26] इस भाषण से स्पष्ट होता है कि नेहरू जी की समाजवाद मे निष्ठा थी, पर देश की परिस्थितियो को देखकर उन्होने अपने इसी भाषण मे कहा कि हमारे समक्ष तीन बड़ी समस्याएँ है- अल्पसख्यक, देशी रियासते और मजदूर तथा किसान, इन समस्याओ पर नेहरू जी ने समाजवादी तरीके से विचार किया और इन्हे हल करने का प्रयत्न भी किया। नेहरू जी ने अपने समाजवादी विचारो को कार्यरूप देने का प्रयत्न भी किया उन्होने देशी रियासतो के उन्मूलन, उद्योगो के विकास व कृषि सुधार कार्यक्रमो पर विशेष बल भी दिया।

झाँसी प्रान्तीय राजनीतिक अधिवेशन 27 अक्टूबर 1929 ई मे नेहरू जी ने अपने समाजवादी चितन का स्पष्टीकरण करते हुये यह कहा कि ''हमारी समस्त बुराईयो का एक ही निदान है और वह है, समाजवाद। इसलिये हमारा ध्येय समाजवाद होना चाहिये। समाजवाद की स्थापना एक ही दिन मे नही हो सकती, किन्तु धीरे-धीरे नीति का निर्धारण करके अमीर गरीब की दूरी कम की जा सकती है और आर्थिक शोषण तथा आर्थिक विषमता को समाप्त किया जा सकता है। इस समय देश मे औद्योगीकरण का विकास हो रहा था, इसलिये नेहरू जी ने श्रमिको की समस्या की ओर विशेष ध्यान दिया और उन्हे अनेक सुविधाये देने की बात कही।[27]

नेहरू जी के समाजवादी विचार निरतर बदलते रहे। सन् 1934 में जब काग्रेस मे एक समाजवादी दल बना, तो नेहरू ने उसकी सदस्यता स्वीकार न करते हुये भी उस दल के समाजवादियो का समर्थन प्राप्त किया और उसका समर्थन भी किया। उन्होने स्वीकार किया कि आमतौर पर मै काग्रेस सोशलिस्ट ग्रुप के साथ हूँ, जिसने मार्क्सवादी नजरिये के साथ वैज्ञानिक समाजवाद को अपनी मजिल माना है।[28] मई 1934 ई मे आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता मे समाजवादी दल का पहला अधिवेशन पटना मे हुआ जिसमे नरेन्द्र देव के अलावा जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन, सम्पूर्णानन्द, अशोक मेहता आदि प्रमुख समाजवादियो ने भाग लिया।[29] कतिपय विद्वानो का मत है कि अब तक नेहरू जी मार्क्सवाद से प्रभावित थे और अपने लेखो तथा भाषणो मे समाजवाद, उपनिवेशवाद, पूँजीवाद, वर्ग सघर्ष, औद्योगीकरण, आर्थिक विषमता आदि प्रश्नो पर मार्क्सवादी तरीके से विचार करते थे।[30] नेहरू जी के प्रारम्भिक समाजवादी विचार अस्पष्ट और विरोधाभाषी से प्रतीत होते थे। सन् 1929 ई. के बाद वे मार्क्सवाद-लेनिनवाद के निकट आ गये थे और उन्होने गाधी जी के खादी कार्यक्रम तथा ट्रस्टीशिप सिद्धात की आलोचना की थी, जिससे उनके एव गाधी जी के मतभेद बढ़ गये।[31] दूसरी ओर सुभाष चन्द्र बोस ने लिखा है कि नेहरू अपने को समाजवादी क्रान्तिकारी कहते है पर व्यवहार मे वे महात्मा गाधी के वफादार अनुयायी है। संभवत यह कहना कठिन होगा कि उनकी बुद्धि वामपथियो के साथ है, पर ह्रदय महात्मा गांधी के साथ।[32]

सन् 1936 ई. के बाद नेहरू जी के समाजवादी चिन्तन मे एक नया मोड़ आया। लखनऊ काग्रेस के 49वे अधिवेशन मे अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होने कहा- ''मेरा विश्वास है कि विश्व की समस्याओ और हिन्दुस्तान की समस्याओ को हल करने की कुजी समाजवाद

के पास है और जब मै इस शब्द का प्रयोग करता हूॅ तो अस्पष्ट मानवतावादी रूप से नही, बल्कि वैज्ञानिक और आर्थिक रूप से करता हूॅ। जो भी हो, समाजवाद आर्थिक सिद्धान्त से भी कुछ बड़ी बात है, यह एक जीवन दर्शन है और इस रूप मे मुझे प्रभावित करता है। समाजवाद के सिवाय गरीबी, व्यापक बेकारी, अध पतन और भारतीय जनता की गुलामी को खत्म करने का दूसरा कोई रास्ता मुझे नजर नही आता।''(33) इसके लिये नेहरू जी भारतीय राजनैतिक और सामाजिक ढॉचे मे बहुत बड़ा और क्रान्तिकारी परिवर्तन करना चाहते थे। वे जमीन और उद्योग धन्धो मे निहित स्वार्थो और भारतीय रजवाड़ो की सामन्ती और स्वेच्छाचारी व्यवस्था को खत्म करना जरूरी समझते थे। नेहरू जी सीमित अर्थ मे व्यक्तिगत सम्पत्ति की समाप्ति और वर्तमान लाभ प्रणाली को सहयोग सेवा के ऊॅचे आदर्श मे बदलना चाहते थे। नेहरू जी ऐसी नई सभ्यता के अनुयायी थे जो मौजूदा पूॅजीवादी व्यवस्था से बुनियादी तौर पर अलग होगी और ऐसी सभ्यता की झॉकी उन्हे सोवियत रूस मे मिल चुकी थी यद्यपि उन्होने स्वीकार किया कि ''रूस मे जो कुछ भी हुआ उससे मुझे बेहद तकलीफ है और जिससे मै सहमत नही हूॅ।''(34) लेकिन उनकी नजर उस महान और लुभावनी नयी व्यवस्था और नयी सभ्यता पर थी जो हमारे निराशापूर्ण युग के लिये अत्यन्त आशाप्रद लक्षण है।

नेहरू जी ने समाजवाद को सिर्फ एक आर्थिक सिद्धान्त ही नही बल्कि एक धर्म भी माना उनके अनुसार ''समाजवाद मेरे लिये एक आर्थिक सिद्धात ही नही जिसे मै पसद करता हूॅ, बल्कि यह एक धर्म है जिस पर मै दिल और दिमाग से विश्वास करता हूॅ। मै हिन्दुस्तान की आजादी के लिये काम करता हूॅ, क्योकि मेरी राष्ट्रचेतना विदेशी प्रभुत्व को नही सह सकती, इसके लिये मै इस वजह से और ज्यादा काम करता हूॅ कि मै इसे सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन का अनिवार्य अग मानता हूॅ।''(35) नेहरू जी चाहते थे कि कांग्रेस एक समाजवादी सस्था बन जाय लेकिन उन्हे यह भी आशंका थी कि काग्रेस जिस रूप मे गठित है, उसमे से ज्यादातर लोग इतना आगे जाने के लिये तैयार न होगे।

नेहरू जी मार्क्सवादी-लेनिनवादी व्यवस्था को अक्षरत स्वीकार करने के पक्ष मे नही थे। उन्होने विजय लक्ष्मी पडित को लिखे गये अपने एक पत्र मे यह स्पष्ट किया कि ''मै रूस मे जो कुछ हुआ, उस सबको न तो ज्यो का त्यो स्वीकार करता हूॅ और न समर्थन देता हूॅ। मै रूस का अन्धानुकरण नही करना चाहता, इसलिये मै साम्यवाद के स्थान पर समाजवाद शब्द का प्रयोग करना अधिक उपयुक्त समझता हूॅ।''(36) इस कथन से स्पष्ट है कि नेहरू जी भारत के लिये साम्यवाद के स्थान पर समाजवाद की स्थापना उपयुक्त मानते है। उनका विश्वास

था कि भारत मे गरीबी और बेकारी की जटिल समस्या को हल किये बिना समाजवाद की स्थापना असभव है। वे भारत की समस्या का एकमात्र समाधान समाजवाद को ही मानते है, इसीलिये उन्होने अपने समाजवाद का आधार भारत की आर्थिक सामाजिक पृष्ठभूमि को बनाया। नेहरू जी को भारत की गरीबी, अपमान एव दासता से मुक्ति के लिये समाजवाद ही एकमात्र रास्ता नजर आया लेकिन उन्होने इसे काग्रेस पर कभी जबरन थोपने का प्रयास नही किया। तथापि उन्होने यह प्रयत्न अवश्य किया कि कांग्रेस अपने कार्यक्रमो का सचालन समाजवादी ढ़ॉचे के अनुरूप ही करे।

नेहरू जी ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के आलोचक थे। वे कहते है कि ब्रिटिश पूँजीवाद का अन्त किये बिना समाजवाद की स्थापना संभव नही है। वे फॉसीवाद को एक विचित्र खिचड़ी बता कर उसका कडा विरोध करते है।[37] अपनी पुस्तक 'विश्व इतिहास की झलक' मे उन्होने साम्राज्यवाद और फॉसीवाद की अनेक उदाहरण देकर कटु आलोचना की है।

नेहरू जी के समाजवादी चिन्तन की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होने समाजवाद और राष्ट्रीयता मे समन्वय स्थापित किया। समाजवाद के प्रश्न पर उनका न केवल गॉधी जी से, वरन् नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण, सुभाषचन्द्र बोस, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, वल्लभ भाई पटेल, एम एन. राय आदि नेताओ से उनका वैचारिक मतभेद भी हुआ।[38]

नेहरू जी ने अपने निबन्ध "लखनऊ से त्रिपुरी तक" मे सन् 1936 से 1939 ई तक की देश की राजनीतिक घटनाओ पर प्रकाश[39] डाला है। इसमे हरिपुरा काग्रेस अधिवेशन (1938 ई.) का विवरण भी शामिल है, जिसमे सुभाषचन्द्र बोस गाधी जी की इच्छा के विरुद्ध काग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। इसी समय से नेहरू और काग्रेसी समाजवादियो के बीच टकराहट आरभ हो गई और एक बार उन्होने यहॉ तक कह दिया कि "स्वाधीनता से पहले कोई समाजवाद नही हो सकता वास्तव मे नेहरू जी ने गाधी वादियो और समाजवादियो दोनो को यथा संभव संतुष्ट करने का प्रयत्न किया।" उन्होने लिखा है कि "मैने इसकी पूरी कोशिश की कि पुराने नेताओ और नये समाजवादी गुट मे को समझौता करा सकू, क्योकि मेरा ऐसा विचार है कि साम्राज्यवाद से लड़ने मे दोनो की जरूरत है।"[40] इस प्रकार नेहरू जी ने कांग्रेस के अन्दर की दोनो विचारधाराओ-गाधीवाद और समाजवाद को एक साथ लेकर चलने का प्रयत्न किया, परन्तु उनमे मेल कराने मे सफल न हो सके।

स्वाधीनता के बाद भी नेहरू जी के समाजवादी चितन मे प्रजातांत्रिक समाजवाद की झलक दिखाई देती है। प्रधानमत्री पद से बोलते हुये उन्होने अपने भाषण मे जिन आर्थिक व सामाजिक समस्याओ को दूर करने का आश्वासन दिया, उनके मूल मे उनकी समाजवादी भावना निहित है। इन समस्याओ मे आर्थिक विषमता का उन्मूलन, गरीबी का विकास, किसानो व मजदूरो को सुविधाये, जन साधारण के लिये भोजन, आवास व वस्त्रआदि की उपलब्धता आदि मुख्य है।(41) सन् 1950 मे नेहरू जी ने अपने समाजवादी विचारो को व्यावहारिक रूप देने के लिये पंचवर्षीय योजनाओ का कार्यक्रम प्रारभ किया।(42) इन योजनाओ की प्रेरणा उन्हे रूस की समाजवादी व्यवस्था से मिली थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारूप मे राष्ट्रीय विकास, सामाजिक सुधार और आर्थिक प्रगति जैसे समाजवादी कार्यक्रम शामिल किये गये थे।(43) सन् 1952 ई. मे नेहरू जी ने देश मे सामुदायिक योजनाओ को चलाकर अपने समाजवादी विचारो को कार्यरूप दिया। काग्रेस के अवाड़ी अधिवेशन (1955 ई.) मे नेहरू जी ने देश मे समाजवादी समाज की स्थापना की घोषणा की। इस अधिवेशन मे नेहरू जी ने कहा था कि उनका समाजवाद रूसी साम्यवाद या अन्य समाजवादी देशो से भिन्न है। समाजवाद का अर्थ धन के वितरण से ही नही है और न ही केवल कल्याणकारी राज्य से है।(44) सन् 1956 ई. में पारित नई औद्योगिक नीति में अवाड़ी कांग्रेस अधिवेशन मे पारित प्रस्तावो को कार्य रूप दिया गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे भी अनेक समाजवादी कार्यक्रमों को स्थान दिया गया। सन् 1950 ई. मे नेहरू जी ने अपने एक भाषण मे कहा ''मैं उस प्रकार का राज्य नियंत्रित समाजवाद नही चाहता जिसमे राज्य सम्पूर्ण सम्प्रभुता सम्पन्न हो जाता है और लगभग सभी कार्यो पर नियंत्रण रखता है। इस दृष्टि से मै आर्थिक दृष्टि का विकेन्द्रीकरण पसन्द करूँगा।(45)

कांग्रेस के भुवनेश्वर अधिवेशन (1964 ई.) मे नेहरू जी ने अपने विचारो मे भारत को एक समाजवादी राज्य बनाने की बात कही और यह भी कहा कि एक गरीबी रहित एवं रोग रहित समाज की स्थापना का प्रयास किया जायेगा।(46) इससे स्पष्ट होता है कि उनके समाजवादी चिन्तन मे एक नया मोड़ आ गया है। अब वे स्पष्ट रूप से लोकतांत्रिक समाजवाद के हिमायती बन जाते है जो कि व्यक्ति की गरिमा और सामाजिक न्याय पर आधारित है।(47) इस अधिवेशन मे जो प्रस्ताव पारित हुए उसके अनुसार लोकतंत्र और उसकी विचारधारा समाजवाद का साधन है। समाजवाद के इस नये रूप को विद्वानों ने नेहरू का समाजवाद कहकर पुकारा है जिसमे व्यक्ति का सम्मान, लोकतांत्रिक व्यवस्था और मानवतावादी दृष्टि की प्रधानता है।

वस्तुत· नेहरू जी का समाजवादी चिन्तन विकासमान रहा है। प्रारम्भ मे वे एक कल्पनावादी समाजवादी के रूप मे हमारे सामने आते है यह अवधि सन् 1920-1929 ई. तक के मध्य की मानी जा सकती है। बाद मे वे मार्क्सवाद-लेनिनवाद से प्रभावित होते है इस समय इनके ऊपर रूसी अर्थव्यवस्था का जबरदस्त प्रभाव दिखाई पड़ता है। यह अवधि सन् 1929 से 1934 ई. तक की मानी जा सकती है। सन् 1934 से सन् 1937 ई. तक के मध्य उनका मार्क्सवाद से मोहभग होता नजर आता है वे एक समाजवादी विचारक के रूप मे, जिसके अन्दर लोकतत्र के प्रति अगाध प्रेम भरा हो, सामने आते है। द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने के बाद वे गांधीवाद से प्रभावित होकर अपने समाजवादी चिन्तन मे आध्यात्मिकता को प्रमुख स्थान देने लगते है और स्वाधीनता के बाद वे लोकतांत्रिक समाजवाद के समर्थक बन जाते है। नेहरू जी के समाजवादी विचारो की समीक्षा करते हुये अनेक विद्वानो ने यह मत व्यक्त किये है कि स्वाधीनता से पूर्व नेहरू जी के समाजवादी विचार जितने प्रखर थे उतने प्रधानमंत्री बनने के बाद नही रहे।[48] नम्बूदरीपाद जैसे कुछ साम्यवादी नेताओं ने नेहरू के समाजवादी विचारो की आलोचना की है।[49] माइकेल ब्रेचर ने उनके समाजवादी चिन्तन को उलझन भरा बताया है।[50] लेकिन इन आलोचनाओ मे सत्य का अंश काफी कम है। वास्तव मे नेहरू जी ने अपने समाजवादी चिन्तन को अपने लेखन द्वारा स्पष्ट करने की चेष्टा की है। वे मुख्यत: एक लोकतांत्रिक समाजवादी है और वे लोकतांत्रिक मूल्यो के आधार पर नये भारत का निर्माण करना चाहते है। उनके प्रयासो को समझने के लिये समाजवाद से सबधित कुछ विशिष्ट नीतियो/विचारों का विश्लेषण करना आवश्यक है।

नेहरू जी के आर्थिक विचार -

समाजवाद मे आर्थिक तत्व का महत्व सर्वाधिक होता है। इस तथ्य को सभी समाजवादी विचारक स्वीकार करते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक समाजवाद के जन्मदाता कार्ल मार्क्स ने आर्थिक तत्व को समाज के निर्माण का निर्णायक तत्व माना है। कार्ल मार्क्स के विचारानुसार समाज के निर्माण और सामाजिक विकास की प्रगति एवं दिशा, उत्पादन एवं विनिमय की पद्धति पर निर्भर करती है। अपने जीवन के सामाजिक उत्पादन मे मनुष्य ऐसे निश्चित सम्बन्धों मे बंधते है जो अपरिहार्य एवं उनकी इच्छा से स्वतंत्र होते है। उत्पादन के ये सम्बन्ध उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास की एक निश्चित अवस्था के अनुरूप होते हैं। उन्हीं उत्पादन सम्बन्धो के आधार पर समाज की आर्थिक प्रणाली का निर्माण होता है, जो कि वास्तविक

आधार होती है जिस पर वैज्ञानिक, सामाजिक और राजनीतिक भवन का निर्माण होता है, कार्ल मार्क्स ने लिखा है कि "भौतिक जीवन की उत्पादन पद्धति जीवन की सामान्य सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक प्रक्रिया को निर्धारित करती है। मनुष्यो की चेतना उनके अस्तित्वो को निर्धारित नही करती बल्कि उल्टे उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को निर्धारित करता है।[51] कार्ल मार्क्स ने आर्थिक, भौतिक तत्व के सम्बन्ध मे कि, किस प्रकार यह सामाजिक विकास को प्रभावित एवं संचालित करता है, कोई स्पष्ट व्याख्या नही की है। इस कार्य को मार्क्स के सहयोगी एजेल्स ने किया। एंजेल्स ने लिखा है कि - "समस्त सामाजिक परिवर्तनो तथा राजनीतिक क्रान्तियो के अन्तिम कारण न तो मनुष्य के मस्तिष्क मे और न उनके चरम सत्य और न्याय सम्बन्धी विशेष ज्ञान मे पाये जाते है, वरन् वे तो उत्पादन तथा विनिमय प्रणाली में होने वाले परिवर्तनो मे निहित है।"[52]

समाजवाद का केन्द्रीय लक्ष्य शोषण का अन्त करना होता है। इस कारण से वह शोषण के साधनो का अन्त कर देना चाहता है। उत्पत्ति और विनिमय के ऐसे साधनो का जिनके माध्यम से शोषण किया जाता है, राष्ट्रीयकरण कर देना उसका प्रमुख राष्ट्रीय कार्य है। कुछ समाजवाद विरोधी विचारको का यह मत है कि समाजवादी राष्ट्र उत्पत्ति और विनिमय के सम्पूर्ण साधनों का राष्ट्रीयकरण कर देना चाहता है, जिसमें वैयक्तिक क्षेत्र के लिये कोई स्थान नही होगा। इस तर्क के अनुसार उपभोग के सामान के अतिरिक्त और कही भी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होगी। कुछ असमाजवादी तो यहां तक विचार व्यक्त करते है कि समाजवादी प्रणाली में उपभोग के साधनो का भी राष्ट्रीयकरण कर दिया जायेगा। लेकिन यह विचार तर्क संगत नहीं है। उत्पादन के समस्त साधनों का राष्ट्रीयकरण कर देने का तर्क हास्यास्पद एवं अनुपयुक्त है। समाजवाद उत्पत्ति के उन साधनो का राष्ट्रीयकरण कर देने का प्रयास करेगा जिसके माध्यम से श्रमिक वर्ग का शोषण किया जाता है। यदि कोई वस्तु शोषण में सहायक नही है तो वह वैयक्तिक अधिकार क्षेत्र में होगी। वस्तुत: समाजवाद किसी भी व्यक्ति विशेष अथवा नागरिक को समाज के उत्पादन के साधनो से वंचित नहीं रखता। जो कुछ भी विचार इसमे निहित है, यह केवल यही है कि यह व्यक्ति विशेष को उनके अधिकारो से वंचित न करके उनके परिश्रम से स्वयं अनुचित लाभ उठाने से रोकता है।

नेहरू जी आर्थिक क्रान्ति की प्रधानता और अपरिहार्यता को स्वीकार करते है। यद्यपि मार्क्स एवं एंजेल्स ने आर्थिक तत्वो पर आवश्यकता से अधिक बल दिया है तथापि इसमे कोई संदेह नही कि समाज-व्यवस्था के निर्माण एवं विकास मे अनार्थिक कारणों की अपेक्षा

आर्थिक कारणो का प्रभाव अधिक पड़ता है। नेहरू जी हिन्दुस्तान की असली समस्या आर्थिक समस्या को मानते थे उन्ही के शब्दो मे - ''हिन्दुस्तान के असली मसले क्या है?[53] अनिवार्य रूप से वह राजनीतिक स्वतत्रता चाहता है और यह चाह तब तक सबसे ऊपर बनी रहने वाली है जब तक सारे साम्राज्यवादी नियत्रण दूर नही हो जाते। लेकिन इसके पीछे और इसको ठोस बनाने वाली समस्याए आर्थिक है - पीस डालने वाली गरीबी की, मध्यम वर्ग की बेहिसाब बेकारी की, औद्योगिक कामगरो की और ख़ास तौर से देहातो के बाशिन्दों की।''[54] ब्रिटिश राज ने जमीन पर बोझ बढ़ाते रहकर देहातो की बेकारी को लगातार बढ़ाया था। धीरे-धीरे औद्योगिक काल के पहले की अर्थव्यवस्था को खत्म कर दिया गया, लेकिन उसकी जगह किसी नये धन्धे की व्यवस्था नही की गई औद्योगिक पूँजीवाद के आरम्भ में जब इंग्लैण्ड मे व्यवस्था परिवर्तन हुआ था तो भूमिहीन किसानो और कारीगरों को बड़ी मुसीबते उठानी पड़ी थी। लेकिन धीरे-धीरे और ख़ासी कशमकश के बाद उन्हे नयी फैक्टरियो मे जगह मिल गई। सरकार की निष्ठुर पॉलिसी के जरिये हिन्दुस्तान मे यह परिवर्तन फुर्ती से हुआ, लेकिन कुटीर उद्योगो और दीगर छोटे उद्योगो मे लगे हुये जो बेशुमार कारीगर और दूसरे लोग बेकार हो गये, उनको काम में लगाने का कोई नया रास्ता नही खोला गया। बहुत से लोग बार-बार के अकाल में मारे गये दूसरे लोग खेती बाड़ी के काम मे लग गये, जिसकी वजह से जमीन पर ज्यादा दबाव पड़ा।[55]

उद्योगो का विकास इतनी तीव्र गति से नही हो सका कि उससे जमीन पर पड़ने वाला दबाव कम हो सके। यह दबाव तब तक बढ़ता रहा जब तक जमीन इतने छोटे-छोटे टुकड़ों मे नही बट गयी कि आर्थिक लाभ की दृष्टि से बिल्कुल बेकार हो जाये। इसकी वजह से देहात की बेकारी और लोगो की कंगाली बेइन्तहा बढ़ी। ''हिन्दुस्तान का यही खास मसला है और उसकी गरीबी की बुनियादी वजह है। पिछले वर्षो की मन्दी और अनाज की कीमत की गिरावट ने मसले को और बढ़ा दिया है और छोटे और मध्यम वर्ग के जमीदारो तक को ऐसी हालत मे पहुंचा दिया है कि वे दिवालियापन के कगार पर खड़े है।''[56]

मध्यम वर्ग के लोगो में भी बेकारी बहुत तेजी से बढ़ी, जिनके लिये सरकारी या अर्द्ध सरकारी नौकरियो और लिखने पढ़ने के उन धंधो के सिवा और कोई राह नही खुली है जहॉ पहले से ही काफी भीड़ है। वे ही हिन्दुस्तान के असली मसले है। इन मसलों को हल करने के लिये अब तक कोई पुख्ता काम नही किया गया।[57]

किसी समाजवादी के लिये सर्फ समाजवादी तरीको से ही इसका हल निकल सकता है, एक ऐसी स्कीम बनाई जाय जिसका असर खेती-बाडी, उद्योग धन्धो, सचार व्यवस्था, शिक्षा और समाज-सेवा के कामो पर पड़े, जिनका देहाती इलाको मे शायद ही कोई इंतजाम है। सके एक हिस्से को लेकर और बाकी हिस्सो को छोडकर कुछ ज्यादा काम नही किया जा सकता। खेती-बाड़ी को बड़े पैमाने पर सहयोगी और सामूहिक खेती की बुनियाद पर खड़ा करना होगा, बड़े उद्योगो और कुटीर उद्योगो को तेजी से आगे बढ़ाना होगा...।[58]

नेहरू जी की आर्थिक नीति एक दम स्पष्ट थी। वे किसी हद तक राजनीतिक स्वतंत्रता और समानता के हिमायती थे लेकिन आर्थिक स्वतत्रता और समानता के बिना वे बेमानी हो जाते है। इस कारण उनके लिये राजनीति का कुछ ज्यादा मतलब नही रह गया, सबसे ज्यादा अहम सवाल आर्थिक समानता का था। इसलिये उनके आर्थिक कार्यक्रम की बुनियाद इंसानियत वाला नजरिया है न कि रुपयों के लिये इसान की कुर्बानी। सन् 1929 ई. मे लाहौर अधिवेशन मे अपने अध्यक्षीय भाषण में नेहरू जी ने स्पष्ट तौर पर कहा कि "अगर कोई उद्योगअपने मजदूरों को भूखा रखे बिना नही चलाया जा सकता तो उस उद्योग को बन्द कर दिया जाय। अगर जमीन पर काम करने वाले मजदूरो को पेट-भर खाने को नही मिलता तो जो बिचौलिये उनके पूरे हिस्से से उन्हें महरूम रखते है उन्हे जाना होगा। खेत या कारखानो मे काम करने वाले हर मजदूर का अगर कम-से-कम भी हक माना जाय तो उसे जो न्यूनतम मजदूरी दी जाय वह इतनी तो हो कि उससे वह मामूली आराम की जिन्दगी बसर कर सके और कामों के उसके घंटे भी इंसानियत का ख्याल करके ही तय किये जाये ताकि उसकी ताकत और हिम्मत जवाब न दे जाये।[59]

आर्थिक सुधारो हेतु नेहरू जी का दृष्टिकोण गाधी जी के दृष्टिकोण से बिल्कुल भिन्न था। वे गांधी जी के ट्रस्टीशिप (न्यास-पद्धति) से कदापि सहमत नही थे। उनका कहना था कि यह बेकार और बकवास है।[60] क्योकि ट्रस्टीवाले सिद्धांत का मतलब यह है कि अच्छा या बुरा करने की ताकत खुद ही ट्रस्टी बन बैठे शख्स के पास है, और वह उसका इस्तेमाल अपनी मर्जी के ही मुताबिक करेगा। अगर निष्पक्ष ट्रस्टी कोई हो सकता है तो राष्ट्र ही, न कि कोई एक शख्स या एक जमात।"[61]

नेहरू जी अपनी आर्थिक नीतियो द्वारा ऐसे राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे जहाँ ऊँच-नीच और सामाजिक असमानता न रहे। वे ऐसी सामाजिक व्यवस्था के पक्षधर थे जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के लिये पूरे विकास की संभावना हो, शोषण न हो और जिसमे न केवल राजनीतिक

बल्कि आर्थिक जनतत्र भी हो, जिसका मतलब है आर्थिक समानता। नेहरू जी जब भी कभी आर्थिक समस्या के बारे मे सोचते थे तो उसमे बेरोजगारी का मसला और भूमि समस्या को भी शामिल करते थे। इन समस्याओ को वे समाजवाद के परिप्रेक्ष्य मे देखते थे क्योकि उनके लिये समाजवाद एक आर्थिक नीति है, और सिर्फ वही देश की समस्याये सुलझा सकता है। वे कहते थे कि ''आप चाहे या न चाहे समाजवाद आ कर ही रहेगा।''(62) वे अन्य लोगो को चुनौती भी देते थे कि ''वह विश्व-समस्याओ के समाधान के लिये समाजवाद के सिवाय कोई दूसरी सुविचारित योजना मुझे बताये।''(63) लेकिन इसके लिये उन्होने किसी जोर जबरदस्ती या हिसात्मक मार्ग अपनाये जाने की बात नही किया वे चाहते थे कि पूँजीवादी वर्ग समाजवाद को समझे, या कम से कम उसके आर्थिक सिद्धान्तो को समझे, और समझने के बाद नेहरू जी उनसे यह उम्मीद करते थे कि इस परिवर्तन मे वे उनकी मदद करेगे। नेहरू जी किसी से यह उम्मीद नही करते थे कि वह अपनी जायदाद छोड़ दे, लेकिन यदि पूँजीवादी वर्ग इस परिरर्तन मे उनकी मदद करेगा तो बेशक यह शातिपूर्ण होगा। इस परिवर्तन मे यदि कुछ देर लगे तो भी नेहरू जी को यही स्वीकार था।

नेहरू जी ने कांग्रेस के करांची अधिवेशन के प्रस्तावों की प्रशसा की जिसमे यह कहा गया कि ''सर्व साधारण के शोषण का अंत करने के लिये राजनैतिक स्वतंत्रता मे लाखो भुखमरो की आर्थिक स्वतंत्रता भी निहित होनी चाहिये।'' नेहरू जी इस अधिवेशन के इस प्रस्ताव के भी हिमायती थे कि आधारभूत उद्योगों और नौकरियो, खनिज साधनो, रेल्वे, जल मार्गो, जहाजरानी और सार्वजनिक यातायात के अन्य साधनो पर राज्य का स्वामित्व अथवा नियंत्रण होगा। अपने प्रधानमंत्रित्व काल मे नेहरू जी ने इन्ही आर्थिक नीतियो का अनुसरण करना मुनासिब समझा।

नेहरू जी भारत की आजादी और एकता के लिये गरीबी के उन्मूलन और अपने समाज मे कल्याणकारी नीतियो को लागू करने के लिये तीव्र आर्थिक विकास को ही आधार मानते थे। तृतीय पंचवर्षीय योजना के लिये 'नियोजित विकास के उद्देश्य नामक अध्याय में उन्होने यह गौर किया है कि ''सभी नागरिको, खासकर निम्न आय समूह या कार्य के अवसर के अभाव वाले लोगो को उच्च जीवन स्तर हांसिल कराने के लिये दीर्घकाल तक उच्च आर्थिक विकास दर बनाए रखना एक अनिवार्य शर्त है।''(64) काग्रेस के अवाड़ी अधिवेशन को सम्बोधित करते हुये उन्होंने कहा था कि ''पूरी दुनिया मे समाजवाद, यहाँ तक कि साम्यवाद भी अगर लागू हो जाये, तो भी यदि हमारी राष्ट्रीय आय बहुत आगे न बढ़े, तो भारत मे हम एक

स्थिति विशेषकर पटसन और रुई को सुधारना। (3) आर्थिक उपरिव्यय अर्थात् सड़के बनाना, रेलो के इंजन तथा अन्य सामान का प्रतिस्थापन करना, सिचाई तथा जलविद्युत परियोजनाओ का निर्माण करना, (4) ऐसे विकास कार्यक्रम को निर्मित एवं कार्यान्वित करना जिससे कि आगामी वर्षो मे विशाल विकास योजनाओ की नीव डाली जा सके।[67] प्रथम योजना मे कृषि को उच्चतम प्राथमिकता दी गयी। इस योजना मे यह ठीक ही उल्लेख किया गया ''पहले पॉच वर्षो के लिये हमारे विचार से, कृषि जिसमे सिचाई तथा सचालन शक्ति भी समाविष्ट है, को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिये। इसे महत्व देने का उद्देश्य चालू परियोजनाओ को पूरा करना है। इसके अतिरिक्त हमारा यह दृढ़ निश्चय है कि उद्योगो के लिये आवश्यक कच्चे माल तथा खाद्यान्न के उत्पादन मे भारी वृद्धि किये बिना, औद्योगिक विकास की तीव्र गति को कायम रखना सभव नही होगा।[68]

दूसरी योजना (1956-61) मे प्रसिद्ध नेहरू-महालनोबिस विकास रणनीति लागू की गई, जो तीसरी योजना (1961-66) मे भी जारी रही। प्रो. महालनोबिस ने द्वितीय योजना तैयार करने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। दूसरी योजना मे विकास के एक ऐसे ढ़ांचे को बढ़ावा देने का प्रयास किया गया जिससे देश मे समाजवादी स्वरूप के समाज का निर्माण हो सके। दूसरी योजना के मुख्य उद्देश्य थे : (1) राष्ट्रीय आय में 25 प्रतिशत वृद्धि, (2) बुनियादी तथा भारी उद्योगो के विकास पर विशेष जोर देते हुये तीव्र औद्योगीकरण (3) रोजगार के अवसरों का तेजी से विस्तार, और (4) आय एवं सम्पत्ति मे 'असमानताओ' को कम करना तथा आर्थिक अधिकार का समान वितरण।[69] भारी उद्योगों के विकास के साथ-साथ श्रम-गहन छोटे और गृह उद्योगो का विकास करना भी तय पाया गया ताकि उपभोक्ता वस्तुओ का उत्पादन किया जा सके। यह समझा गया कि सामुदायिक विकास योजनाओ के तहत कृषि मे सामुदायिक कार्यक्रम के जरिये श्रम का आधिकाधिक उपयोग करेगे और पूँजी का उत्पादन करेगे। इनमे कृषि सहकारिताओ की अपनी भूमिका होगी।

नेहरू-महालनोबिस रणनीति का एक और महत्वपूर्ण अंग विकास और समानता पर जोर था। इसलिये उद्योग और खेती में संकेन्द्रण और वितरण के प्रश्न पर काफी ध्यान दिया गया, हालांकि इसमे अपेक्षित सफलता नही मिली। रणनीति मे विकास तथा समानता को एक-दूसरे का विरोधी नही समझा गया, यह माना गया कि उच्चतर विकास से समानता के उच्चतर स्तरो तक पहुँचा जा सकता है। साथ ही, इसे गरीबी से निबटने के लिये आवश्यक माना गया। इसलिये तेज विकास पर ज्यादा ध्यान दिया गया।[70]

तीसरी योजना (1961-66) का उद्देश्य आत्मनिर्भर विकास की दिशा मे महत्वपूर्ण प्रगति करना था। इसके तात्कालिक उद्देश्य थे: (1) राष्ट्रीय आय मे पॉच प्रतिशत वार्षिक से अधिक की वृद्धि करना एव पूँजी निवेश की ऐसी व्यवस्था करना जिससे आगामी योजना अवधियो मे यह वृद्धि दर बनी रहे। (2) खाद्यान्न उत्पादन मे आत्मनिर्भरता प्राप्त करना और उद्योग तथा निर्यात की आवश्यकता पूरी करने के लिये कृषि उत्पादन बढ़ाना। (3) इस्पात, रसायन ईंधन और बिजली जैसे आधारभूत उद्योगो का विस्तार तथा मशीन निर्माण क्षमता को विकसित करना ताकि लगभग 10 वर्ष की अवधि मे देश के अपने ससाधनो से औद्योगीकरण की आवश्यकताओ को पूरा किया जा सके, (4) मानव संसाधन का पूरा-पूरा उपयोग करना एव रोजगार के अवसरो मे पर्याप्त वृद्धि सुनिश्चित करना, (5) अवसरो की समानता का क्रमश: विकास करना, आय सम्पत्ति की असमानता को कम करना तथा आर्थिक अधिकारो का समान वितरण करना।[71]

अपने समाजवादी ध्येय की स्थापना करने के लिये नेहरू जी ने जिस नियोजन का सहारा लिया उसके विकास की शुरुआती मंजिलो मे कई मोर्चो पर काफी प्रगति दीख पड़ती है। यह काल प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओं का है अर्थात् साठ के दशक के मध्य तक का। औपनिवेशिक काल की तुलना मे अर्थतंत्र ने प्रभावशाली विकास किया। भारत की राष्ट्रीय आय का कुल राष्ट्रीय उत्पाद (G.N P.) औसतन 4 फीसदी प्रति वर्ष के हिसाब से बढ़ी। यह आंकड़ा 1951 से 1964-65 के बीच की अवधि के लिये है। औपनिवेशिक शासन के अंतिम पचास वर्षो की तुलना मे यह विकास चार गुना था। आजादी के बाद भारत द्वारा हासिल विकास की दर विकसित देशो द्वारा तुलनात्मक मंजिल, अर्थात् उनके विकास के शुरुआती दौर से मिलती जुलती है।[72] प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. के.एन. राज के शब्दो मे "अक्सर यह समझा जाता है कि जापान" ने 19वी सदी के दूसरे भाग मे और 20वी सदी के प्रथम चतुर्थाश मे तेजी से विकास किया। लेकिन 1893-1912 की अवधि मे राष्ट्रीय आय के विकास की दर 3 फीसदी से कुछ कम ही रही, और अगले दशक मे 4 फीसदी से आगे नही बढ़ी। इन मानदण्डो को ध्यान मे रखते हुये भारत के पिछले डेढ़ दशक (1950-65) मे उपलब्ध विकास की दर संतोषजनक है।[73]

विकास की दर बढ़ाने के लिये निवेश की दर बढ़ाना जरूरी था। इस अवधि की

एक महत्वपूर्ण उपलब्धि बचत और निवेश दरो मे वृद्धि थी। एक हद तक छिटपुट आकडो के आधार पर चौथी योजना के मसविदे मे हिसाब लगाया गया कि भारतीय अर्थतत्र मे घरेलू बचत और कुल निवेश, दोनो ही 1950-51 मे राष्ट्रीय आय का 5 5 फीसदी थे, जो 1965-66 मे बढ़कर क्रमश: 10 5 और 14 फीसदी हो गये। बाद के वर्षो मे आन्तरिक बचत और निवेश के बीच का अन्तर अशत. विदेशी मुद्रा भडार तोड़कर पूरा किया गया। खासकर स्टार्लिग बचत बहुत बड़ा था, करीब १६ अरब रुपयो के बराबर। यह 1947 मे भारत को अदा किया जाने वाला इग्लैण्ड का कर्जा था, जो कि युद्ध के दौरान इंग्लैण्ड ने भारत से जबरदस्ती हांसिल किया था। आशिक रूप से इसे विदेशी सहायता और कर्जे से पूरा किया गया। हिसाब लगाया गया है कि 1965-66 मे कुल निवेश 1951-52 की तुलना मे ऊपरी आकड़ो मे पॉच गुना तथा वास्तविक ऑकड़ो मे तीन गुना था।[74]

कृषि के क्षेत्र मे आजादी के बाद व्यापक सुधार लागू किये गये। ग्राम स्तर पर कृषि के विकास के लिये तथा सामुदायिक विकास से सम्बन्धित कार्य का जाल बिछा दिया गया। सिचाई, ऊर्जा कृषि अनुसंधान, इत्यादि क्षेत्रो मे आधारभूत रचना के विकास के लिये बड़े पैमाने पर निवेश किया गया। इन सारे कदमो के फलस्वरूप खेती का काफी विकास हुआ। 1965-66 को छोड़ कर प्रथम तीन योजनाओ के दौरान भारतीय कृषि का विकास 3 फीसदी के वार्षिक दर से हुआ। यह औपनिवेशिक काल के अंतिम पचास वर्षो के दौरान हासिल विकास की दर से ७.५ गुना ज्यादा थी।

प्रथम तीन योजनाओ मे उद्योगो का विकास तो कृषि से भी तेज हुआ। 1951 तथा 1965 के बीच वह 7.1 फीसदी प्रति वर्ष की कुल दर से बढ़ा। उद्योगो के इस विकास ने तेजी से आयातित वस्तुओ की जगह ले ली, शुरू में उपभोक्ता वस्तुओ की, बाद मे मूल वस्तुओं और अन्य सामानों की, विशेष तौर पर दूसरी योजना से। मूल वस्तुओं पर जोर का इस तथ्य से पता चलता है कि दूसरी योजना के खर्चे का 70 फीसदी धातु, मशीनरी और रसायन उद्योगो में था, तीसरी योजना मे यह आंकड़ा 80 फीसदी हो गया। "1951 तथा 1969 के बीच औद्योगिक उत्पादन का कुल आंकड़े में तीन गुना वृद्धि का कारण उपभोक्ता उद्योगो में 70 फीसदी की वृद्धि, बीच के किस्म की वस्तुओं मे चार गुना वृद्धि, और मूल वस्तुओ के उत्पादन मे दस गुना वृद्धि थी।[75] निम्न तालिका से स्पष्ट है कि औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्रो मे 1951 से

1961 के मध्य कितनी वृद्धि हुई''[76] -

औद्योगिक क्षेत्र	सन् 1951	सन् 1961
सामान्य	55	109
कपड़ा	80	103
मूल धातु	47	119
मशीनरी	22	121
इलेक्ट्रिकल मशीनरी	26	110

नेहरू जी की औद्योगिक - नीति संबंधी विचार -

नेहरू का मत है कि - ''मुझे, आपको समाजवाद के लिये काम करना है। हमको यह समझना चाहिये कि वास्तविक समाजवाद को पिछड़े एवं विकासशील देश में नहीं लाया जा सकता। समाजवाद एवं साम्यवाद उस औद्योगिक सभ्यता के शिशु थे जिसने कि भौतिक संसाधनो को आगे बढ़ाया। इस प्रकार समाजवाद भौतिक संसाधनो, सामाजिक न्याय एव मिल जुलकर काम करने के लिये विकास के सिद्धान्त पर आधारित है।''[77]

औद्योगीकरण के कारण पूँजीवाद का जन्म हुआ पूँजीपति वर्ग ने उत्पादन के साधनो पर एकाधिकार कर लिया। इन साधनो का प्रयोग करने के लिये तथा उत्पादन सामग्री को क्रियात्मक रूप मे लाने के लिये श्रमिक वर्ग को रखना अनिवार्य था। मजदूर वर्ग अपने श्रम से धन का उत्पादन करते है जिसके विनिमय मे पूँजीपति वर्गउनको पारिश्रमिक देते है, लेकिन यह वेतन अपेक्षाकृत बहुत कम होता है। जितना पारिश्रमिक मजदूर वर्ग को मिलना चाहिये उतना उन्हे नहीं दिया जाता। वह पूँजीपति के कोष मे संचित होता रहता है। यह इसी दशा का परिणाम है कि समाज के विभिन्न वर्गो की आर्थिक दशा में इतना अन्तर दृष्टिगत होता है।

औद्योगीकरण के सम्बन्ध मे नेहरू जी का विचार है कि ''औद्योगीकरण के कारण सम्पूर्ण विश्व में पूँजीवाद को बल मिला है - रूस की अपेक्षा। औद्योगिक मशीनीकरण का यह परिणाम होगा कि उत्पादन अधिक मात्रा में होगा और पूँजी का अधिक निर्माण होगा लेकिन यह पूँजी एक छोटे से समूह के हाथ मे चली जायेगी जो नये उद्योगों की स्थापना करेगे परन्तु श्रमिक

वर्ग फिर भी गरीब ही रहेगे।''[78] लाभाश मे से सर्वहारा वर्ग को बहुत ही कम भाग मिलता है। औद्योगिक क्रान्ति और पूँजीवाद ने उत्पादन की समस्या मे तो सुधार किया है लेकिन इसने वितरण की समस्या, और जो नवीन पूँजी का निर्माण होता है, इसमे कोई भी सुधार करने मे वह अपने आप मे असमर्थ रहा है। इसलिये 'समान रूप से वितरण' की समस्या आज भी समाज में बनी हुई है।

वास्तव मे यह उचित ही है कि हमारे यहाँ जितनी भी समस्याये है और आपसी संघर्ष है, यह सब वितरण से सम्बन्धित है। यह प्राथमिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है कि वितरण प्रणाली मे सुधार किया जाय।[79] उत्पादन और वितरण दोनो का अन्तर्निहित सम्बन्ध होता है। उत्पादन प्राथमिक आवश्यकता होती है, लेकिन उत्पादन अपने आप मे तब ही सार्थक होता है, जबकि उसका उचित वितरण किया जाय। यह सब समाजवाद मे ही सभव है। औद्योगीकरण के सम्बन्ध मे नेहरू जी की जो भी अवधारणा है वह डॉ. लोहिया एवं जयप्रकाश नारायण की अवधारणा से भिन्न है जहां नेहरू तीव्रतम औद्योगीकरण के पक्षपाती है तथा वृहद उद्योगो को अधिक महत्व प्रदान करते है वहां डॉ. लोहिया मध्यम मार्ग का अनुकरण करके केवल छोटी मशीनो को ही चित समझते थे तथा जे.पी. वृहद एवं लघु दोनो प्रकार के उद्योगो को प्रगति के लिये आवश्यक मानते है।

गांधी जी के कुटीर उद्योग के विपरीत नेहरू जी तीव्र औद्योगीकरण में विश्वास करते थे। उनका मत था कि भारत औद्योगिक प्रगति के बिना विकसित देशो की श्रेणी मे नही आ सकता। ''मै देश का तेजी से औद्योगीकरण में विश्वास रखता हूँ और मेरा ख्याल है कि इसी तरह सही मायने मे लोगों का स्तर ऊँचा उठेगा और गरीबी दूर की जा सकेगी।[80] लेकिन नेहरू जी की नजरों में गांधी जी के खादी प्रेम की भावना कभी कम नहीं हुयी। उन्होंने स्वीकार किया कि ''गुजरे वक्त मे मैंने खादी के कार्यक्रम में तहेदिल से साथ दिया है और आगे भी ऐसा ही करने की उम्मीद रखता हूँ, क्योकि मेरा विश्वास है कि हमारी मौजूदा अर्थनीति में खादी और ग्रामोद्योग की खास अहमियत है। उनका सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक महत्व है, जिसे मापना तो मुश्किल है, लेकिन जिन लोगो ने उनके असर को परखा है, उनके लिये स्पष्ट है। लेकिन मैं उन्हें महत्वपूर्ण समस्याओं के समाधान के बजाय बदलाव के दौर का अस्थायी साधन ही मानता हूँ। बदलाव का यह दौर लम्बा हो सकता है, और हिन्दुस्तान जैसे मुल्क मे, औद्योगिक विकास के बाद भी, ग्रामोद्योगो की महत्वपूर्ण गो कि दोयम दर्जे की, भूमिका बनी रहेगी।[81]

नेहरू जी औद्योगीकरण को अनिवार्य मानते हुये भी उससे सभावित समस्याओ से भी अवगत थे। कुछ ही स्थानो मे पूँजी के एकीकरण से हिसा और एकाधिकार का जो हमारे वर्तमान आर्थिक ढ़ॉचे मे मौजूद है, यह वृहद उद्योगो के कारण नही वरन् वृहद उद्योगो के व्यक्तिगत एकाधिकार मे होने के कारण यह समस्या पैदा होती है तथा अन्याय और हिसा का जन्म होता है, जबकि बड़े उद्योगो का पूँजीपति वर्ग द्वारा दुरुपयोग किया जाता है। यह सत्य है कि मशीनो के माध्यम से मनुष्य के हाथ मे एक विशेष शक्ति आ जाती है जिससे रचनात्मक और ध्वसात्मक तथा अच्छा एवं बुरा दोनो बहुउद्देश्यीय प्रयोग किये जा सकते है। नेहरू जी का मत है कि ''बड़े उद्योगो द्वारा निर्मित बुराइयो को दूर किया जा सकता है। यह आवश्यक है कि निजी स्वामित्व और लाभ प्राप्त करने वाले समाज मे हिसा को बढ़ावा मिलता है। एक समाजवादी समाज मे इस प्रकार की समस्याये नही रहेगी।''[82] नेहरू जी बड़े उद्योगो की कमियो को स्वीकार करते हुये भी उनकी आवश्यकताओ को अधिक महसूस करते थे। लघु उद्योगो की तुलना मे वृहद उद्योगो से राष्ट्रीय आय मे अधिक वृद्धि तथा आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त किया जा सकता।

सन् 1944 मे नेहरू ने कहा था कि ''औद्योगीकरण के बिना स्वतंत्रता को खतरा हो सकता है। जो अविकसित देश है यदि वे औद्योगीकरण को नही अपनायेगे तो इनकी अर्थ व्यवस्था पर नियत्रण विकसित देशो का हो जायेगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारी उद्योगो की स्थापना की जायेगी आधार उद्योग पर सार्वजनिक हित की दृष्टि से राज्य का स्वामित्व एवं नियत्रण होगा। उन्ही के शब्दों में - ''आज के आधुनिक युग के सन्दर्भ में कोई भी देश जो कि अन्योन्याश्रित अन्तर्राष्ट्रीय संरचना के तहत राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से स्वाधीन नही हो सकता है। जब तक कि वह पूर्ण रूपेण औद्योगिक एवं बलशाली न हो।''[83]

नेहरू जी औद्योगीकरण को इसलिये भी आवश्यक समझते थे कि विकसित देशो द्वारा अल्पविकसित देशो का जो शोषण कियाजाता है उनसे बचा जा सके। नेहरू जी ने वृहद उद्योगो को भारतीय अर्थ व्यवस्था के विकास के लिये भी अनिवार्य बताया। उनका विचार था कि इस समय भारत की तीन प्रमुख मौलिक आवश्यकताएं है। यदि देश औद्योगिक रूप से विकसित हो जाता है तो दूसरे इसे वृहद इंजीनियरिंग तथा मशीनो का निर्माण करने वाले उद्योग लगाने चाहिये तथा वैज्ञानिक शोध संस्थानों तथा बिजली से सम्बन्धित उद्योगों का निर्माण करना चाहिये। यह सब योजनाओ की नीव होते है। नेहरू जी का यह मत था कि कोई भी देश वर्तमान समय मे अपने अस्तित्व को तभी कायम रख सकता है जबकि वह अपना

औद्योगिक विकास करे। बहुत से देशो के आर्थिक विकास का सूक्ष्म अध्ययन करने के पश्चात् नेहरू जी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यदि भारत को कठोर सघर्ष के बाद प्राप्त की गयी आजादी को कायम रखना है और अपने आर्थिक और सामाजिक विकास की ठोस नीव रखनी है तो उसे आधुनिक राष्ट्रीय उद्योगो के विकास को प्राथमिकता देनी चाहिये। जब नेहरू जी राष्ट्रीय उद्योग की चर्चा करते है तो उसका अभिप्राय भारी उद्योगो से होता है इस सम्बन्ध मे दूसरी पचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार करने वाली ''काउसिल आफ नेशनल डेवलपमेन्ट'' के समक्ष भाषण देते हुये उन्होने कहा था कि - ''अगर हम भारत का विकास चाहते है तो हमे भारत का सही मायने मे औद्योगीकरण करना चाहिये। हमे ऐसी मजबूत नीव रखनी चाहिये जिस पर की औद्योगिक भारत का ढ़ॉचा खड़ा किया जाये। तात्पर्य यह है कि हमे भारी उद्योगो को प्राथमिकता देनी चाहिये।[84] नेहरू जी द्वारा बनायी गयी तथा अमल मे लायी गयी नियोजित अर्थनीति मे देश के आर्थिक विकास के आधार के रूप मे राष्ट्रीय भारी उद्योगो का विकास करना मूलभूत सिद्धान्त था। नेहरू जी का विश्वास था कि औद्योगीकरण शक्ति-साधनो के मजबूत आधार पर खड़ा होना चाहिये। इसलिये विद्युत शक्ति के उत्पादन की वृद्धि के लिये भी प्रयास करना चाहिये।

नेहरू जी ने अवाड़ी कांग्रेस अधिवेशन मे ''समाजवादी ढ़ॉचे पर समाज के निर्माण'' का प्रस्ताव पेश किया तथा अपने लक्ष्य को पूर्ण करने के लिये इस प्रस्ताव को ग्रहण किया। इससे नेहरू जी का अभिप्राय उत्पादनो के साधनो के सामाजिक स्वामित्व से तथा राष्ट्रीय उत्पादन एवं राष्ट्रीय पूॅजी का समानता के आधार पर वितरण से था।''[85]

नेहरू जी ने भारतीय परिप्रेक्ष्य में भारी उद्योगो के महत्व को स्पष्ट करते हुये कहा था कि ''जहॉ तक मेरा विचार है और यह वास्तविकता भी है कि भारी उद्योगो में खतरा अधिक रहता है और बड़ी-बड़ी मशीनो का प्रयोग भी इसका स्वाभाविक परिणाम है। दूसरा इसका स्वाभाविक परिणाम शक्ति का केन्द्रीकरण है। लेकिन मेरा निश्चित रूप से यह मत नही है कि भारी उद्योगों को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया जाय, लेकिन यह विचार भी नही है कि विश्व मे जितने भी विकसित देश है वे सब भारी मशीनो के माध्यम से ही विकसित हुये है। यह संभव है कि इसके बिना उत्पादन का स्तर निम्न हो सकता है। इसका सीधा प्रभाव जीवन स्तर पर पड़ेगा, जो कि निम्न होगा।''[86] स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत की आर्थिक दशा काफी खराब थी। उस समय बड़े उद्योगों के सम्बन्ध मे नेहरू जी ने कहा था कि भारी उद्योगो मे लागत अधिक आती है जबकि लघु उद्योगो मे कम, दोनो मे काफी अन्तर है। भारी उद्योगों के

उत्पादन मे समय अन्तराल अधिक रहता है जबकि लघु उद्योग जैसे-कपड़ा उद्योगो मे बहुत ही शीघ्र उत्पादन शुरू हो जाता है। लघु उद्योग दैनिक उपभोग की वस्तुओ का उत्पादन कर सकते है जबकि भारी उद्योग स्टील एव लोहे से निर्मित रेल इत्यादि वस्तुओ का उत्पादन करते है। इन वस्तुओ का उपभोग इतनी तीव्रता से नही किया जा सकता है। उन उद्योगो मे उत्पादन और लागत के मध्य काफी लम्बा समय अन्तराल रहता है और पूँजी अपने पूँजी चक्र मे आ जाती है। इस प्रकार एक नवीन समस्या देश के समक्ष आ जाती है इससे उत्पादन तो तुरन्त नही हो पाता, परन्तु पूँजी काफी मात्रा मे बाजार मे आनी शुरू हो जाती है और मुद्रा प्रसार की सम्भावनाए बढ़ने लगती है जिसका सीधा प्रभाव जनता के जीवन स्तर पर पड़ता है।

इतनी सब जानकारी के बाद भी नेहरू जी भारी उद्योगो को राष्ट्रीय विकास के लिये अनिवार्य मानते है। नेहरू जी के शब्दो मे- "जिन व्यक्तियो ने दूसरे राष्ट्रो के इतिहास का अवलोकन किया है, शायद उन व्यक्तियो को मालूम है कि औद्योगीकरण के माध्यम से कितनी समस्याये पैदा हुई। लेकिन फिर भी विकास औद्योगीकरण के माध्यम से ही होता है, औद्योगीकरण भारी उद्योगो के ऊपर आधारित है, यदि हमे वास्तव मे राष्ट्रीय स्वतंत्रता को कायम रखना है तथा अधिक से अधिक अपना जीवन स्तर ऊँचा उठाना है तो भारी उद्योगो की स्थापना अति आवश्यक है। जितना भी भारी उद्योगो से हम दूर होते चले जायेगे उतनी ही विकास के सम्बन्ध मे अधिक कठिनाइयाँ पैदा होती चली जायेंगी तथा यह भी संभव है कि बेरोजगारी भी बढ़ जाय।"[87]

सामान्यत: मशीनीकरण के ऊपर एक आरोप लगाया जाता है कि इसके माध्यम से अतिरिक्त उत्पादन की संभावनाएँ बढ़ती हैं। इस समस्या को वितरण व्यवस्था में सुधार किये बिना दूर नही किया जा सकता। नेहरू जी के अलावा और दूसरे समाजवादी भी इस समस्या को स्वीकार करते है कि बिना मशीनीकरण के वास्तव मे मानवीय श्रम शक्ति का उचित प्रयोग नही हो सकता। यदि मानवीय श्रम का उचित प्रयोग करना चाहते है तो यह केवल मशीनो के माध्यम से ही संभव है। ये इस तर्क को भी स्वीकार करते है कि मशीनीकरण के माध्यम से कुछ बेरोजगारी अवश्य बढ़ेगी, लेकिन उसे दूसरे साधनो के माध्यम से दूर किया जा सकता है। केवल प्राथमिक समाज के समान मानवीय श्रम के ऊपर आश्रित रहना उचित नहीं। भारतीय समाजवादियों का विचार है कि मशीनो का उचित प्रयोग न होने के कारण एकाधिकारी एवं अत्याचारी राज्य का निर्माण होने की सम्भावनाएँ बढ़ सकती है। उन्होने वास्तविकता की ओर संकेत किया कि आज मनुष्य स्वतंत्र रूप से सभी वस्तुओं का निर्माण नही कर सकता।[88]

नेहरू जी के शब्दो मे सभी समस्याएँ विकास से सम्बन्धित होती है। वे भारत को विकसित देखने के साथ ही साथ इसलिये भी औद्योगीकरण मे विश्वास रखते थे ताकि कृषि भूमि से जन सामान्य का भार कम हो तथा उन्हे यह भी विश्वास था कि सुरक्षात्मक साधनो का उत्पादन लघु उद्योगो के द्वारा नही कर सकते। उनका मत था कि ''औद्योगीकरण का लाभ समानता के आधार पर होना चाहिये। योजना बनाते समय इस बात का सतर्कता पूर्वक ध्यान रखना चाहिये कि औद्योगीकरण का लाभ समता के आधार पर हो जिससे इसके खतरे से बचा जा सके।''[89]

नेहरू जी को असमानता और गरीबी को दूर करने का रास्ता औद्योगीकरण मे दिखायी पड़ता था। नेहरू जी का विश्वास था कि यदि औद्योगीकरण और स्त्रोतो का योजनाबद्ध विकास किया जाय तो समस्या का निराकरण किया जा सकता है। उनका मत है कि उचित योजना के बिना हम अपने उद्योगो को सही रूप से संचालित नही कर सकते। नेहरू जी भारी उद्योगो को विकास के लिये बहुत ही आवश्यक समझते थे। उन्ही के शब्दो मे - ''भारत में बड़े कारखानो के अभाव में कोई वास्तविक समृद्धि या राष्ट्रीय स्तर मे प्रगति की कल्पना संभव नही है।''[90] नेहरू जी भारी उद्योगो पर पूर्णरूपेण नियंत्रण एवं स्वामित्व राज्य का ही स्वीकार करते थे। वे मध्यम दर्ज के उद्योगो को भी मान्यता प्रदान करते थे। उनका मत था है कि ''मै मध्यम दर्जे के उद्योग और भारी उद्योगो के विरुद्ध नही हूं। मैं चाहता हूं कि जितने भी आधार उद्योग है वह सब राज्य के अधीन होने चाहिये तथा मध्यम एवं लघु उद्योग सहकारिता के अधीन होने चाहिये।''[91]

भारी उद्योगों के माध्यम से ही केवल हम अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति नही कर सकते। कुछ ऐसी उपभोग की वस्तुये होती है जिनका उत्पादन हम भारी उद्योगो मे नही कर सकते। उनका उत्पादन लघु उद्योगो मे ही संभव एवं सस्ता रहता है। गांधी जी तो सम्पूर्ण उत्पादन लघु एवं कुटीर उद्योगो के माध्यम से ही उचित समझते थे, क्योकि भारत की परिस्थितियां उनकी दृष्टि में कुटीर एवं लघु उद्योगो के लिये ही उचित थीं। उनका मत था कि शक्ति एवं पूँजी का विकेन्द्रीकरण लघु उद्योगो के माध्यम से ही संभव है क्योकि भारत मे मानवीय श्रम की अधिकता है। नेहरू जी भी कुछ अंशों मे लघु उद्योगों के महत्व को स्वीकार करते थे। आधुनिक काल में जितने भी विकसित देश हैं उनके विकास में अधिकांशत: या बहुत कुछ लघु उद्योगों का भी हाथ रहता है। संयुक्त राज्य अमेरिका की 30 प्रतिशत जनसंख्या तथा जापान की 80 प्रतिशत एवं स्विटजरलैण्ड पूर्ण रूप से लघु उद्योगो पर ही

आश्रित है। सन् 1918 के औद्योगिक आयोग के शब्दो मे "उस समय जबकि आधुनिक उद्योग प्रणाली के जन्म स्थान पश्चिमी योरोप मे असभ्य लोग निवास करते थे भारत अपने राजाओ, सम्पदा एव अपने कारीगरो की दक्षता के लिये प्रसिद्ध था।" सन् 1848-1956 ई. मे दोनो औद्योगिक नीतियो मे लघु उद्योगो के विकास पर विशेष जोर दिया गया। अत: योजना आयोग ने भी हमारी विकास योजनाओ मे इन्हे विशिष्ट स्थान दिया है। नेहरू जी का विचार था कि "हमे लघु उद्योगो का निर्माण क्रमबद्ध पैमाने पर करना चाहिये, क्योकि यह आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से भी आवश्यक है। जो देश लघु उद्योगो को पूर्ण रूप से त्याग देते है उन्हे कुछ न कुछ परेशानी अवश्य उठानी पड़ती है....हमे औद्योगीकरण के समय लघु उद्योगों को ध्यान में रखना चाहिये, तथा वृहद पैमाने पर भारत मे उनका विकास करना चाहिये और इन उद्योगो को स्वतंत्रता भी प्रदान करनी चाहिये। मै यह नही कह सकता कि इस विज्ञान के युग मे आने वाली भावी पीढ़ी लघु उद्योगो को देख भी पायेगी या नही। इसलिये हमे इनका विकास करना चाहिये।"[92]

नेहरू जी का मत है कि केवल भारी उद्योग सम्पूर्ण आवश्यकताओ की पूर्ति नही कर सकते। इसलिये लघु उद्योगो का भी आधुनिकीकरण करना चाहिये। तब ही यह अपने अस्तित्व को कायम रख सकते है। उन्ही के शब्दो मे - "ग्रामीण उद्योग, बिना आधुनिक साधनो के एवं तकनीकी ज्ञान के, आवश्यक एवं आधुनिक साज-सामानों का निर्माण नही कर सकते।[93] लेकिन हमे यह सदैव याद रखना चाहिये कि इतने बड़े देश में इतनी बड़ी जनसख्या की आवश्यकताओ की पूर्ति वृहद उद्योग नही कर सकते। हमे ग्रामीण एवं लघु उद्योगो का निर्माण वृहद स्तर पर करना चाहिये, लघु एवं भारी उद्योगों मे सामंजस्य पैदा करना चाहिये। हमे मानवता के नाते यह कभी भी नही भूलना चाहिये कि हम अधिक उत्पादन की लालसा करे। मै अन्तिम रूप से कहना चाहता हूँ कि एक मानवता के नाते सबका विकास हो।"[94] लघु उद्योगो का राष्ट्रीय विकास मे महत्वपूर्ण योगदान रहता है। नेहरू जी ने कहा था कि- "लघु उद्योग राष्ट्र की सम्पन्नता मे सहयोग प्रदान कर सकते हैं। आज जो बेरोजगारी की सबसे बड़ी समस्या है, उस समस्या को सुलझाने हेतु ग्रामीण उद्योगों का विकास महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। मेरा विश्वास है कि खादी और ग्रामीण उद्योग के विकास की भारत में एक स्थायी आवश्यकता है। यह केवल बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिये ही नही बल्कि राष्ट्र की सम्पूर्ण सम्पन्नता के लिये भी आवश्यक है।[95]

नेहरू जी तीव्रता से विकास करने के लिये आधुनिक तकनीक के पक्षपाती थे। उनका विचार था कि हम आधुनिक साधनो के बिना शक्ति के साधन स्त्रोतो का प्रयोग नही कर सकते। नेहरू जी उदारवादी समाजवाद के पक्षपाती थे इसकी प्रगति के लिये वह शांतिपूर्ण वैधानिक साधनो को प्रथमिकता प्रदान करते थे, शीघ्रतापूर्वक कार्य खतरो से भरा हुआ होता है, चाहे जनता का अथवा सरकार का पूर्ण समर्थन ही क्यो न प्राप्त हो। वह सार्वजनिक क्षेत्र के महत्व को स्वीकार करते थे परन्तु निजी क्षेत्र को भी कुछ सीमा तक स्वतत्रता प्रदान करना चाहते थे। वह इस तत्व की वास्तविकता को जानते थे कि वैयक्तिक क्षेत्र को एकदम समाप्त नही किया जा सकता, क्योकि निजी क्षेत्र काफी वृहद है, किसान वर्ग भी इसमे आता है। इससे स्पष्ट है कि वे निजी क्षेत्र को विकास कार्यो मे स्थान देने के लिये सहमत थे- ''मै निजी क्षेत्र तथा निजी सम्पत्ति का भी स्वागत करता हूँ। इससे सरकार का दायित्व कम होता है। पूर्ण रूप से विकसित देशो मे जैसे-अमेरिका इत्यादि की आर्थिक दशाए हमारी आर्थिक स्थितियो से भिन्न है, लेकिन भारत मे एक ठोस नींव रखनी चाहिये। निजी क्षेत्रो की भी विकास कार्यो मे महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मुझे इस सम्बन्ध में कोई शंका नही है। मै इन दोनो क्षेत्रो मे कोई संघर्ष नही देखना चाहता।[96]

नेहरू जी का मत है कि जब मै सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के सम्बन्ध मे बात करता हूँ तो सामान्य रूप से भूमि तथा लघु उद्योग निजी क्षेत्र मे होगे। यद्यपि मै सहकारी तत्व को बहुत अधिक महत्व दूँगा। केवल एक यही रास्ता है जिस पर हम सफल होगे, क्योंकि भारी उद्योगो के समक्ष लघु उद्योग तब तक सफल नही हो सकते जब तक कि उन दोनों में संयुक्त रूप से सहकारिता का तरीका न अपनाया जाय, नही तो केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति बढ़ेगी और समान लाभ सबको नही मिल पायेगा।

आजादी के वक्त उपनिवेशवादी इतिहास के बावजूद, और उसके विरोध में भारत ने एक ऐसा स्वतंत्र आर्थिक आधार तैयार कर लिया था, जिसके सहारे आगे बढ़ा जा सकता था और स्वतंत्र तथा तेज औद्योगीकरण का काम लिया जा सकता था।[97] यह स्थिति उन कई उत्तर औपनिवेशिक देशों से अलग थी, जो नव-उपनिवेशवाद का शिकार बने। उनकी राजनीतिक आजादी मात्र औपचारिकता थी, जबकि उनके आर्थिक हित अपने पूर्व उपनिवेशवादी शासक देश के साथ जुड़े हुये थे।

आजादी के बाद आगे विकास के सम्बन्ध में देश मे एक आम सामाजिक सहमति थी। जैसे गांधीवादी, समाजवादी, पूँजीपति और साम्यवादी (कुछ संकीर्णतावादी दौरो को छोड़)

निम्नलिखित एजेंडे पर करीब-करीब सहमत थे- आत्मनिर्भरता पर आधारित आर्थिक विकास को बहु आयामी रणनीति, मूल उद्योगो सहित आयात के विकल्प मे तीव्र औद्योगीकरण, साम्राज्यवादी और विदेशी पूँजी के प्रभुत्व पर रोके, भूमि सुधार जिसमे शामिल थे- जमीदारी उन्मूलन, काश्तकारी सुधार, सहकारी सस्थाओ की स्थापना, कर्जा, बिक्री, इत्यादि के लिये सहकारी सेवा संस्थाये, समान अवसर के लिये विकास, अर्थात् गरीबो तथा कल्याणकारी कामो तक मे सुधारवादी विकास माडल, राज्य द्वारा आर्थिक विकास मे केन्द्रीय भूमिका, विशेषकर सार्वजनिक क्षेत्र के जरिये उत्पादन प्रक्रिया मे हिस्सेदारी, इत्यादि[98] सबसे महत्वपूर्ण बात थी जनतांत्रिक एव सामाजिक उदारवादी ढ़ॉचे के तहत इस योजनाबद्ध तीव्र औद्योगीकरण की असाधारण कोशिश।

मूल वस्तुओ और भारी तथा मूल उद्योगो के विकास के लिये बड़े वित्त की जरूरत थी। यह महसूस किया गया कि इस काम मे सार्वजनिक क्षेत्र को प्रमुख भूमिका अदा करनी होगी। नेहरू तथा वामपंथी राष्ट्रवादी, एवं पूँजीपति सार्वजनिक क्षेत्र की इस भूमिका पर एकमत रखते थे। उनमे इसकी व्यापकता और अधिकार-रोज के बारे मे मतभेद था। नेहरू जी एवं वाम राष्ट्रवादी सार्वजनिक क्षेत्र को समाजवादी दिशा मे एक कदम मानते थे। दूसरी ओर पूँजीपति इसे स्वतंत्र पूँजीवाद विकसित करने का एक जरिया तथा विकास को बराबरी के साथ मिलाकर समाजवाद रोकने का एक उपाय समझते थे। खासकर शुरुआती वर्षो मे इन दो रुझानो के बीच तनाव स्पष्ट था।

सन् 1947 मे, नेहरू जी के नेतृत्व मे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने एक आर्थिक कार्यक्रम समिति गठित की। उसने सार्वजनिक क्षेत्र के लिय प्रतिरक्षा, प्रमुख उद्योग और जनसेवाएँ तय की। इतना ही नहीं, समिति ने आगे कहा क़ि ''वर्तमान उद्यमो के मामले मे निजी से सार्वजनिक स्वामित्व में हस्तांतरण पॉच वर्षो के बाद शुरू होगा।[99] इस बात पर पूँजीपतियों ने काफी हो-हल्ला मचाया। 1948 के औद्योगिक नीति मे समझौते के चिन्ह दिखाई देते है। इसमें निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रो के अधिकार क्षेत्र निर्धारित किये गये। इसमे कहा गया कि किसी भी वर्तमान उद्योग के राष्ट्रीयकरण के सम्बन्ध मे दस वर्षो बाद समीक्षा की जायेगी और परिस्थिति के मुताबिक निर्णय लिया जायेगा। दिसम्बर 1954 ई. में भारतीय संसद ने 'समाज की समाजवादी प्रणाली' को अपना सामाजिक तथा आर्थिक उद्देश्य माना। काग्रेस के अवाड़ी अधिवेशन (सन् 1955) ने इन्ही रास्तो पर तीव्र वामपंथी मोड़ लिया। इन बातों के बावजूद सन् 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव तथा दूसरी योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र के प्रसार

की बात करने के बावजूद वर्तमान उद्योगो के राष्ट्रीयकरण का कोई उल्लेख नही किया। वास्तव मे 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' का माडल पेश किया गया। इसमे सार्वजनिक व निजी क्षेत्र न सिर्फ सह अस्तित्व मे रहते है बल्कि एक दूसरे के पूरक भी होते है। राष्ट्रीय योजना की सीमाओ मे निजी क्षेत्र को विकसित होने के लिये अधिकाधिक प्रोत्साहन दिया गया। यह अलग बात है कि दूसरी योजना मे भारी और मूल वस्तुओ के उद्योगो पर जोर देने के कारण सार्वजनिक क्षेत्र की ओर झुकाव बढ़ गया क्योकि सभी मानते थे कि इसी क्षेत्र मे इन उद्योगो का विकास हो सकता है।

यह तथ्य उल्लेखनीय है कि नेहरू जी ने अपनी विचारधारात्मक स्थितियो पर बहुत जोर देने या उन्हें थोपने से इन्कार कर दिया। इससे स्तालिनवादी मार्क्सवादी वामपंथियो मे काफी निराशा हुयी। तीस के दशक के अंत से विकसित होते नेहरू जी के समाजवादी विचार जनतंत्र से अविभाज्य थे। इसीलिये, उन्होने योजना तथा सार्वजनिक क्षेत्र सम्बन्धी कदम समाज की सहमति से जनतांत्रिक तरीको से ही लागू किया। नेहरू जी की दृष्टि मे योजना पर अमल सहमति से, न कि आदेश से होना चाहिये था।

नेहरू जी ने योजना काल में भारत के औद्योगिक विकास एवं उत्पादन में विविधता लाने का प्रयास किया जिससे अनेक नई किस्म की वस्तुओ का उत्पादन होने लगा है। देश का औद्योगिक स्वरूप पूर्णतया परिवर्तित हो गया है। वस्तुत. नेहरू जी ने प्रथम पंचवर्षीय योजना आरम्भ किये। यद्यपि औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव 1948 ने इस सम्बन्ध में आधारभूत ढ़ॉचा प्रदान किया जहॉ कुटीर व लघु उद्योगों के विकास पर बल दिया गया था, साथ ही औद्योगिक सम्बन्धों को सुधारने के लिये उचित मजदूरी व श्रमिको के लिये आवास सुविधा बढ़ाने की बात स्वीकार की गई थी। उद्योगीकरण के जुभारू तथा सचेत प्रयास विस्तृत आधार वाली औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव सन् 1956 मे ही किये गये।

द्वितीय योजना काल में घोषित सन् 1956 मे घोषित औद्योगिक नीति में बड़े पैमाने के उद्योगो को तीन श्रेणियों में बाँटा गया। इन श्रेणियो के सम्बन्ध मे यह भी स्पष्ट किया गया कि इनमें राज्य का किस रूप में एवं कितना स्थान होगा। प्रथम अनुसूची में 17 उद्योग शामिल किये गये जिनके भावी विकास का एकमात्र दायित्व सरकार का होगा। द्वितीय अनुसूची में 12 उद्योग रखे गये जिनके बारे में यह कहा गया कि ये धीरे-धीरे सरकार के स्वामित्व में आयेगे और इस क्षेत्र मे साधारणतया नये कारखाने सरकार के द्वारा स्थापित किये जायेंगे। शेष सभी उद्योग तृतीय श्रेणी मे रखे गये। जिनका विकास सामान्यतया निजी

क्षेत्र के लिये छोड़ दिया गया। लेकन साथ मे यह भी कहा गया कि यदि सरकार चाहेगी तो इस क्षेत्र मे प्रवेश कर सकेगी। इसका अर्थ यह हुआ कि निजी क्षेत्र को आधुनिक सरचना तथा दूसरे उद्योगो मे केवल पूरक भूमिका अदा करनी है। इस नीति के अनुसार उपभोग्य वस्तु उद्योग निजी क्षेत्र मे रहेगे लेकिन ये राज्य की सामाजिक एवं आर्थिक नीति से मार्ग दर्शित होगे। इस प्रकार आने वाली योजनाओ में भी त्वरित औद्योगिक विकास के लिये भारी तथा आधारभूत उद्योगो के विकास पर बल दिया गया। इसके समानान्तर ही लघु उद्योगो के कुछ विशिष्ट उत्पादो के निर्माण को प्रमाणित करके लघु क्षेत्र के विकास को भी प्रोत्साहन दिया गया। इस नीति प्रारूप मे संतुलित क्षेत्रीय विकास पर भी जोर दिया गया ताकि उन्नति को बढ़ावा मिल सके।[100]

प्रथम योजना मे औद्योगिक विकास के कार्यक्रमो को अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नही हो सका क्योकि विशाल औद्योगीकरण की कोई योजना प्रारम्भ करने के लिये जिस कृषि विकास तथा देशी-विदेशी पूंजी, तकनीकी ज्ञान के विकास की आवश्यकता होती है उसी को इस योजना मे प्राथमिकता दी गयी। कुल योजना व्यय का मात्र 7 6 प्रतिशत औद्योगिक विकास हेतु रखा गया। योजना के पॉच वर्षो मे उद्योगो एवं खनिजो के विकास पर सार्वजनिक व्यय 55 करोड़ तथा निजी क्षेत्र द्वारा 220 करोड़ रुपये व्यय किये गये।[101]

औद्योगिक विकास की दृष्टि से द्वितीय पंचवर्षीय योजना एक क्रान्तिकारी योजना कही जा सकती है क्योंकि भावी औद्योगिक विकास की आधारशिला वस्तुतः इसी योजनावधि में रखी गयी। सन् 1956 में नवीन औद्योगिक नीति के अन्तर्गत सरकार ने तीव्र औद्योगिक विकास का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। भारी इंजीनियरिग, भारी विद्युत उपकरण, भारी मशीन औजार आदि उद्योगों की नींव इसी अवधि मे रखी गयी। एल्युमीनियम, सीमेन्ट, सूती वस्त्र, चीनी, कागज आदि उद्योगों मे निर्धारित उत्पादन लक्ष्यो की पूर्ति संतोषजनक रही। इस योजना की उल्लेखनीय सफलता लोहा तथा इस्पात उयोग का विकास था। सार्वजनिक क्षेत्र मे राऊरकेला, भिलाई तथा दुर्गापुर मे तीन बड़े कारखाने स्थापित किये गये। कई अन्य उद्योगो जैसे- साइकिल, सिलाई मशीन, टेलीफोन तथा बिजली का सामान इत्यादि के उत्पादन में भारी वृद्धि हुई संगठित उद्योगो का उत्पादन इन दस वर्षों में दुगना हो गया। औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक जो 1950-51 मे 100 था, 1960-61 मे बढ़कर 1994 हो गया। इस योजना में उद्योग व खनिज के विकास के लिये 790 करोड़ रुपये रखे गये थे किन्तु वास्तविक

व्यय 938 करोड़ रुपये हुआ। औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956 के पश्चात् उद्योग व खनिज क्षेत्र के विनियोग मे उल्लेखनीय प्रगति हुयी[102] सगठित उद्योग व खनिज क्षेत्र मे विनियोग -

	(करोड़ रुपये मे)
प्रथम योजना	55
द्वितीय योजना	938
तृतीय योजना	1726

तीसरी योजना के प्रथम चार वर्षो मे उत्पादन की वृद्धि दर 8-9 प्रतिशत के आसपास थी किन्तु अतिम वर्ष मे यह गिरकर 5 3 प्रतिशत रह गई। इस गिरावट का मुख्य कारण पाकिस्तान से 1965 मे हुआ संघर्ष था। जिसके कारण योजना के कार्यक्रमो मे यथोचित परिवर्तन करना पड़ा ताकि प्रतिरक्षा कार्यक्रमो को प्राथमिकता दी जा सके। पूरे योजना काल मे औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि की औसत दर 8 2 प्रतिशत रही। इस योजना मे उद्योगो व खनिज विकास पर 1726 करोड़ रुपये व्यय किये गये जबकि प्रावधान 1520 करोड़ रुपये का था। इस योजना मे अपने उत्पादन लक्ष्यो को प्राप्त करने वाले उद्योगों मे एल्युमीनियम, चीनी, ट्रान्सफार्मर, पटसन का सामान, डीजल इंजन तथा पेट्रोलियम से बने पदार्थ आदि प्रमुख थे। योजना के शुरु के दो वर्षों बाद उर्वरक, भारी रसायन पदार्थ और सीमेन्ट के उत्पादन में भी वृद्धि हुई। रेल और सड़क परिवहन तथा संचार क्षेत्र के उपकरणो तथा रेल के डिब्बे व इंजनों की आपूर्ति के बारे में वस्तुतः देश आत्मनिर्भर हो चुका था।

राष्ट्रीयकरण पर नेहरू जी के विचार-

नियंत्रित उत्पादन और पूँजी का, समानता के आधार पर, वितरण समाजवादी राज्य का मुख्य लक्ष्य होता है। अल्पमत और बहुमत को समानता के स्तर पर लाने के लिये बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग अनिवार्य है। क्योंकि स्वेच्छा से कोई भी अपने अधिकारो का त्याग नही कर सकता। नेहरू ने सम्पत्तिगत समानता लाने के लिये कानून की बाध्यकारी शक्ति के प्रयोग को अनिवार्य बताया था। उनका तर्क बहुत कुछ सीमा तक वास्तविकता के समीप था। क्योकि निजी सम्पत्ति के स्वामी अपनी सम्पत्ति को स्वेच्छा से सार्वजनिक.प्रयोग के लिये नही दे सकते है।

'' कुछ लोगो ने नेहरू को बताया कि व्यक्तिगत सम्पत्ति का व्यक्ति की सहमति के बिना राष्ट्रीयकरण करने का प्रयास अनुचित दबाव होगा और इस प्रकार यह अहिसा के सिद्धान्त के विपरीत है। लेकिन उनकी अहिंसा सम्बन्धी अवधारणा ऐसे सिद्धान्तो को स्वीकार नही करती थी।''[103]

यद्यपि राष्ट्रीयकरण के सम्बन्ध मे नेहरू के विचारो मे विरोधाभास मिलता है, फिर भी वे इसे अनिवार्य मानते है। नेहरू समाजवाद से प्रभावित रहते हुये भी व्यक्तिगत उद्योगएवं सम्पत्ति के काफी सीमा तक पक्षपाती थे। संसद मे भाषण देते हुये इन्होने कहा था कि ''कोई भी आधुनिक राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता को बड़े उद्योगो की सहायता के बिना कायम नही रख सकता, जो कि राज्य के नियत्रण मे रहने चाहिये तथा स्वामित्व भी राज्य का ही होना चाहिये।....मै आपसे कहना चाहता हूँ कि तुम कल्पना नही कर सकते क्योकि समाजवाद बिना राष्ट्रीयकरण के नही आ सकता। इसलिये हमे सभी उद्योगो का राष्ट्रीयकरण कर देना चाहिये।''[104]

आर्थिक समानता के सम्बन्ध मे नेहरू जी ने कहा था कि ''आर्थिक समानता स्थापित करने के लिये राज्य बाध्यकारी साधनो का ही प्रयोग कर सकता है। इसमे कोई शंका नही कि प्रारंभ मे भारत मे सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक परिवर्तन के लिये आवश्यक रूप से कानून की बाध्यकारी शक्ति की आवश्यकता होगी।''[105] नेहरू जी ने सन् 1934-35 ई. मे कहा था कि यदि जनहित के लिये निजी सम्पत्ति की वयस्कता हुयी तो राज्य हस्तक्षेप करके जनता की मांग को कानून के अनुसार लागू कर सकता है तथा निजी सम्पत्ति के स्वामियों पर कुछ सीमाए लगायी जा सकती हैं।''[106]

नेहरू जी कही-कहीं तो एक उग्र समाजवादी के समान सम्पत्ति को दासता की जड़ मानते है और कही उसके विपरीत चले जाते है। एक स्थान पर उन्होने राष्ट्रीयकरण के संबध मे कहा था कि - ''मै राष्ट्रीयकरण मे आस्था नही रखता। जब तुम उद्योगो के राष्ट्रीयकरण की चर्चा करते हो तो मुआविजा देना पड़ेगा, मै यह उचित नहीं समझता। क्योकि इससे हमे अपने आय के स्त्रोतो की बरबादी जनता को मुआविजे के रूप में देनी पड़ेगी। यह एक दूसरा मामला है कि समयानुसार हम इन्हे उसके अनुसार परिवर्तित कर सकें. मैं ऐसे साधनो के संबंध मे नही कर रहा हूं जैसे बैंकिंग, क्योंकि आधारभूत है। इन्हे राज्य के नियंत्रण मे लिया जा सकता है। लेकिन दूसरे उद्योग निजी क्षेत्र में भी हो सकते हैं...नेहरू जी ने आगे कहा कि कुछ नये उद्योग राज्य द्वारा स्थापित किये जायेंगे तथा जो

निजी उद्योग है और उचित रूप मे नही चल रहे है उनको भी राज्य जनहित के लिये अपने अधिकार क्षेत्र मे ले सकता है।''[107]

इससे स्पष्ट होता है कि नेहरू जी सभी उद्योगो के राष्ट्रीयकरण के पक्ष मे नही थे वरन् वह उन्ही उद्योगो को सार्वजनिक क्षेत्र मे रखना चाहते थे जिनका केवल सार्वजनिक दृष्टि से महत्व हो। नेहरू जी ने अवाड़ी कांग्रेस अधिवेशन (सन् 1955 ई.) मे समाजवादी आधार पर समाज के निर्माण का लक्ष्य ग्रहण किया था। उस समय शासन सत्ता नेहरू जी के हाथ मे थी लेकिन इसके लिये नेहरू जी ने कोई ठोस प्रयास नही किया। सभी उद्योगो के राष्ट्रीयकरण का विचार उन्हे स्वीकार नही था। नेहरू जी भारत का यूरोपीय आधार पर औद्योगीकरण करना चाहते थे, उसमे चाहे निजी उद्योगो द्वारा अथवा सार्वजनिक उद्योगो द्वारा उत्पादन मे वृद्धि, नेहरू जी की दृष्टि मे निरन्तर होती रहे। यदि जनता के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना है तो इसके लिये प्राथमिक आवश्यकता होगी उत्पादन मे वृद्धि। नेहरू जी कहते है कि - ''इसके लिये सार्वजनिक और निजी दोनो प्रकार की पूँजी को महत्व देना होगा। सरकारी पूँजी को विद्यमान उद्योगो के राष्ट्रीयकरण के लिये लगाना अदूरदर्शिता है। इसके लिये ऐसा करने से हमारे संसाधनो का अपव्यय होगा और कुल मिला कर उत्पादन मे वृद्धि नही होगी...।''[108]

कृषि व्यवस्था के सम्बन्ध में नेहरू जी के विचार -

यदि समाजवाद की किसी देश मे स्थापना करनी है तो जीवन और उसके मापदण्डो को गांवो और शहरों में बराबर वृद्धि करनी होगी। उस समस्या पर चाहे जिस दृष्टि से विचार किया जाये, भारतीय कृषि को समाजवाद के प्रयोग से अलग नही रख सकते। आर्थिक क्षेत्र मे न्याय और सम्पन्नता ही समाजवाद का लक्ष्य है, न्याय की सार्थकता सम्पन्नता पर निर्भर करती है और भारत मे प्रचुरता उद्योग तथा कृषि पर आधारित है। चूँकि उद्योगो के लिये आवश्यक कच्चे माल की पूर्ति कृषि से ही होती है अत: कृषि विकास पर ही भारत की आर्थिक सुदृढ़ता निर्भर है। लेकिन वास्तविकता यह है कि भारतीय कृषि इतनी पिछड़ी हुयी है कि खाद्यान्न की दृष्टि से भी भारत आत्म निर्भर नही है। यद्यपि खेती के ऊपर सम्पूर्ण देश एवं सरकार का ध्यान गया है क्योंकि जब तक भारत की कृषि व्यवस्था का विकास नही होगा तब तक वास्तविक अर्थों मे भारत का विकास नहीं हो सकता। देश मे अधिकांश लोगों को संतुलित और पूर्ण भोजन ही नहीं मिलता और कुछ प्रतिशत जनसख्या तो वास्तविक जीवन-स्तर से नीचे अपना जीवन गुजार रही है।

नेहरू जी भारतीय कृषि के पिछड़ेपन के लिये अग्रेजी शासन को जिम्मेदार ठहराते है। उनका विचार था कि- ''नया पूँजीवाद समस्त दुनिया मे जो बाजार तैयार कर रहा था, उससे प्रत्येक दशा मे हिन्दुस्तान के ढ़ॉचे पर प्रभाव पड़ा। ऐसे गॉव जहॉ बाहरी मदद की आवश्यकता न थी, और जहॉ परम्परा से धन्धे आपस मे बॅटे हुये थे, अब अपने पुराने रूप मे बच नही सकते थे। लेकिन जो परिवर्तन हुआ वह स्वाभाविक क्रम मे नही था और उसने हिन्दुस्तानी समाज की सारी नीव को अस्त-व्यस्त कर दिया।''[109] इसका एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि हमारे समाज का जिसके पीछे सामाजिक अनुमति और नियत्रण था और जो जनता के सांस्कृंतिक अधिकार का अग था, अचानक ही अपने आप बदल दिया गया, और एक दूसरा ढ़ॉचा, जिसका सचालन बाजार से होता था, लाद दिया गया। हिन्दुस्तान अपने सम्पन्न स्वरूप को कायम न रख सका। इसका स्वाभाविक परिणाम कृषि पर पड़ा और हमारी कृषि व्यवस्था विकास की अपेक्षा, पीछे की ओर बढ़ने लगी। भारतीय कृषि और उद्योग का संतुलन बिगड़ गया श्रम का परम्परा से चला आने वाला विभाजन बिगड़ गया। नेहरू जी ने कृषि व्यवस्था के पिछड़ेपन के कारणो को स्पष्ट करते हुये कहा था कि - ''जमीदारी प्रथा जारी करने से जमीन की मालिकी के बारे मे एक बिल्कुल नयी धारणा बनी और इससे उन लोगो पर एक नयी और प्रबल चोट आयी। अब तक जो धारणा थी, उसमें जमीन पर तो नहीं, बल्कि जमीन की उपज पर विशेषकर सामूहिक स्वामित्व था, शायद अंग्रेज इसको पूरी-पूरी तरह समझ नही पाये, लेकिन शायद कुछ अपनी वजहो से उन्होने खास तौर पर जानबूझ कर अंग्रेजी व्यवस्था जारी की।''[110]

नेहरू जी ने इस सम्बन्ध मे जो तर्क दिया वह कुछ सीमा तक वास्तविकता के समीप है। जमींदारी प्रथा तो समाप्त हो गयी, परन्तु सामन्तवादी प्रवृत्ति अभी हमारे समाज में मौजूद है। भारतीय कृषि व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने मे इस तत्व का मुख्य हाथ रहा है। नेहरू इसी तत्व को कृषि व्यवस्था के पिछड़ेपन के लिये जिम्मेदार ठहराते है। जमीन को इस ढ़ंग से जायदाद बना देने से केवल एक आर्थिक परिवर्तन नही हुआ बल्कि उसका प्रभाव अधिक गहरा पड़ा और उसने सहयोग पूर्ण सामाजिक ढ़ॉचे की धारणा पर चोट की।

जमीन के मालिको का नया वर्ग समाज मे पैदा हुआ एक ऐसा वर्ग जिसको ब्रिटिश सरकार ने खड़ा किया था। और जो बहुत कुछ हद तक सरकार से मिला जुला था। पुराने ढ़ॉचे के टूटने से कई समस्याएं पैदा हुई। नेहरू जी हिन्दू-मुस्लिम समस्या का मूल इसी जमीदारी प्रथा मे देखते थे। उनका विचार था कि- ''इस नई हिन्दू-मुस्लिम को यही पर पाया जा सकता

है। जमीदारी प्रथा पहले-पहले बिहार मे, जहॉ उसे ढ़ॉचे मे, जो स्थायी बन्दोबस्त के नाम से मशहूर है, बड़े-बड़े जमीदार बनाये गये।''[111] इस व्यवस्था का कृषि प्रणाली पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। नेहरू जमीदारी प्रथा के पूर्ण रूप से कड़े विरोधी थे तथा उन्होने सन् 1930-31 मे सयुक्त प्रान्त के किसानो की समस्या के समर्थन मे जमीदार वर्ग के स्वार्थो पर कठोर प्रहार किया था। उन्होने उस समय की सरकार से आग्रह किया कि जमीदार वर्ग और किसानो के सम्बन्धो मे सुधार किया जाये। नेहरू जी भूमि व्यवस्था मे, ऐसा परिवर्तन चाहते थे जिससे उत्पादन वृद्धि और आपसी सम्बन्धो मे सुधार हो सके। नेहरूजी ने जहां जमीदारी प्रथा, कृषि की अव्यवस्था की चर्चा की वहॉ पर उन्होने ऐसे सुझाव भी रखे कि जिससे इस प्रकार की समस्याओ का निराकरण हो तथा कृषि मे उत्पादकता बढ़े।

आजादी के एक या दो वर्षो के अदर ही, अर्थात् सन् 1949 आते-आते जमीदारी उन्मूलन बिल या भूमि काश्तकारी कानून कई प्रदेशो मे बनाए गये जैसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, मद्रा, आसाम और बम्बई। जी.बी. पंत की अध्यक्षता मे बनी यू.पी. जमींदारी उन्मूलन समिति की रिपोर्ट कईयो के लिये नमूना बनी। लेकिन देश के विभिन्न हिस्सों के जमीदारो ने जमीदारी उन्मूलन कानूनो की वैधता का विरोध किया। उदाहरण के लिये पटना उच्च न्यायालय ने भूस्वामियो की अपील स्वीकार कर ली। कांग्रेस सरकार ने जवाब मे संविधान मे सशोधन किये। प्रथम संशोधन 1951 मे और चौथा 1955 मे किया गया। उनका उद्देश्य जमीदारी उन्मूलन लागू करने के लिये राज्य विधायिकाओ के हाथ मजबूत करना, और मूलभूत अधिकारों एवं मुआवजे के प्रश्नों को अदालतो की परिधि से बाहर रखना था।

जमीदारी उन्मूलन एक्ट अधिकतर राज्यो मे सन् 1956 तक पास किया जा चुका था। लेकिन उन्हे लागू करने में एक बड़ी दिक्कत भूमि सम्बन्धी पर्याप्त रिकार्डों का अभाव था फिर भी, यह कहा जा सकता है कि सन् 1956 तक, और अवश्य ही पचास के दशक के अंत तक, ब्रिटिश भारत के जमींदारों, और तब तक भारत मे शामिल हो चुके रजवाड़ो के जागीरदारो जैसे बिचौलियो के उन्मूलन का काम खत्म हो चुका था। इस बात को देखते हुये कि समूची प्रक्रिया जनतांत्रिक ढ़ॉचे के तहत पूरी की गई, जिसमें लगभग हिसा का प्रयोग नही हुआ, कहा जा सकता है कि सारा काम काफी कम समय मे पूरा किया गया।[112]

नेहरू जी के जमींदारी उन्मूलन की सोच से, भारत में जमीदारों द्वारा काश्तकारो का शोषण किये जाने की व्यवस्था का अत हो गया। अब कृषकों का सरकार से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया जिससे उनको सरकारी सहायता मिलने मे आसानी रहती है। जमींदारी उन्मूलन

से करोड़ो काश्तकारो को भूस्वामित्व के अधिकार मिल गये जिससे वे अब कृषि भूमि मे स्थायी सुधार करने लगे है और मन लगाकर काम करने से उत्पादन मे भी वृद्धि हुई है। जमीदारो के अन्त से सामन्तवादी व्यवस्था का भी अन्त हो गया जिससे कृषक स्वतत्रतापूर्वक कार्य कर सकते है। तथा वे लोकतत्र व समाजवाद मे हिस्सेदार बन सकते है।[(113)]

नेहरू जी ने भूमि सुधारो का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य काश्तकारी से सम्बन्धित कानून बना कर किया। भारत के विभिन्न राज्यो मे राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियॉ इतनी विविध थी कि काश्तकारी कानूनो एवं उनके अमल मे भारी अंतर था। फिर भी उनके कुछ समान उद्देश्य थे और समय के साथ-साथ आम तौर पर उनके बीच से एक मिलती-जुलती रूप-रेखा उभरी। काश्तकारी सुधारो की तीन प्रमुख विशेषताएं थी। पहला, उन काश्तकारो के लिये काश्तकारी की गारंटी करना, जिन्होने विशेष अवधि तक उस जमीन पर खेती की हो, जैसे- छह वर्ष। यह अवधि एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे भिन्न थी। दूसरा, काश्तकारो द्वारा दी गयी लगान को एक (उचित) स्तर पर लाना। यह आम तौर पर लगान पर दी गयी जमीन के कुल उत्पादन का एक चौथाई से एक-छठा हिस्सा था। तीसरा उद्देश्य था, काश्तकार को उसके द्वारा जोती जा रही जमीन के स्वामित्व का अधिकार मिलना, लेकिन कुछ सीमाओ के साथ। काश्तकार को बाजार के भाव से काफी कम, कुछ विशेष वर्षो का वार्षिक लगान, जैसे आठ वर्षों का लगान दाम के रूप में अदा करना होता था। यह बाजार भाव का करीब 40 प्रतिशत पड़ता था।[(114)]

जमीन पर अनुपस्थित भूस्वामी का अधिकार फिर से स्थापित करने की सीमा तय की गई। यह बड़े भूस्वामियो से सम्बन्धित था। प्रत्येक राज्य द्वारा तय की गई एक विशेष सीमा से अधिक पर पुन: खेती आरम्भ नहीं की जा सकती थी। प्रथम योजना मे ''पारिवारिक भू सम्पत्ति की तीन गुना की सीमा तय की गई। पारिवारिक भू सम्पत्ति का अर्थ एक हल द्वारा जोती जाने वाली भूमि तय पाया गया। इसके विपरीत, छोटे भूस्वामियों के हक में, यह निर्णय किया गया कि भू स्वामी की सारी जमीन नहीं ली जानी चाहिये, और काश्तकार की जमीन प्रत्येक राज्य द्वारा तय हदबंदी से अधिक नही होनी चाहिये।

द्वितीय योजना में नोट किया गया कि ''छोटे किसानो की आर्थिक परिस्थितियाँ काश्तकारों से इतनी अलग नही है कि काश्तकारी कानून उन्हें हानि पहुँचाये।''[(115)] इसलिये योजना मे सुझाव दिया गया कि बहुत छोटे भू-स्वामी अपनी सारी जमीन पर फिर से स्वयं खेती कर सकते हैं। लेकिन काश्तकारी कानूनो का वास्तविक अमल कही अधिक जटिल था। जैसा कि

सन् 1973 मे कृषि सम्बन्धो के योजना कमीशन के टास्क फोर्स के प्रमुख पी.एस. अप्पू ने नोट किया, छोटे भूस्वामियो के लिये बनाये गये कानूनो का बड़े भूस्वामियो ने राजस्व अधिकारियो से सांठ-साठ करके दुरुपयोग किया।[116] तीसरी योजना मे यह भी नोट किया गया कि बड़े भू स्वामियो ने अपनी जमीने अपने सम्बन्धियो एव अन्य लोगो के नाम लिख दी, ताकि वे छोटे भूस्वामी, कहलाए। फिर उन्होने छोटे मालिको के लिये बनाए गये कानूनो का प्रयोग इन जमीनो से काश्तकारी के बेदखल करने के लिये किया।[117]

अनुपस्थित भू-स्वामियो को अपनी जमीन पर फिर से खेती के अधिकार और 'व्यक्तिगत जोत' की ढ़ीली-ढ़ाली परिभाषा का प्रयोग बड़े पैमाने पर काश्तकारो को बेदखल करने के लिये किया गया। कानून बनाने तथा उन्हे लागू करने मे असाधारण देरी का फायदा उठाकर निहित स्वार्थ ने इन कानूनो से फायदा मिलने वालो को पहले ही बेदखल कर दिया।

इन सबके बावजूद नेहरू जी की जमीदारी उन्मूलन, काश्तकारी कानूनो का कुल मिलाकर काफी व्यापक प्रभाव पड़ा। इनके कारण भूमि सुधारो के एक मुख्य उद्देश्य अर्थात् निवेश करने वाले तथा उत्पादक प्रगतिशील किसानों का तबका तैयार करने मे काफी मदद मिली। भारत के भूमि सुधारो के एक गहन अध्ययनकर्त्ता अर्थशास्त्री डैनियल थोर्नर ने सन् 1968 मे ही नोट किया कि कमियो, खामियो, कानूनो से बचने इत्यादि जैसी घटनाओ के बावजूद ''दसियो लाख ऐसे खेतिहार अब बेहतर काश्तकार या अमल मे बालिन बन गये जो पहले कमजोर काश्तकार या मालिक की इच्छा से काश्तकार थे।''[118]

जमींदारी उन्मूलन के कारण करीब दो करोड़ बेहतर जोत वाले काश्तकार भू-स्वामी बन गये। कई बार अनुपस्थित जमींदार फिर से खेती मे शामिल हुये और अपनी 'व्यक्तिगत' खेती शुरू की। रैयतवारी इलाको मे करीब आधे काश्तकार, जैसे बम्बई और गुजरात में, भू-स्वामी बन गए। इसके अलावा करीब आधे (बम्बई मे करीब 70 प्रतिशत) ऐसे जमीन का प्रयोग, जिन पर से काश्ताकारों को बेदखल किया गया, भू-स्वामियो द्वारा सीधी खेती के लिये किया गया अर्थात् उन्हें छिपे तौर पर फिर से लीज पर नही लगाया गया। इसके अलावा पूर्व रैयतवारी इलाकों में काफी संख्या में छोटे काश्तकारों को जोत का अधिकार मिला। पं. बंगाल जैसे भूतपूर्व जमींदारी इलाको में भी करीब आधे बरगादारों को स्थायी जोतो का अधिकार मिला। इनमे उन तीस से पचास लाख खेतिहरो को भी जोड़ा जाना चाहिए जिसे हदबन्दी से बची अतिरिक्त जमीन मिली।[119]

नेहरू जी की इस नीति से अधिकाश लोगो को अपने जीवन को सुचारु ढ़ग से चलान का सहारा मिला। उन्हे काम करने की प्रेरणा मिली। काश्तकार और बटाईदार जिन्हे जोत के अधिकार मिले औरजो कम दर वाले कर दे रहे थे, काश्तकार जिन्हे स्वामित्व के अधिकार मिले, भूमिहीन जिन्हे हदबन्दी से फाजिल जमीन मिली, अनुपस्थित भू-स्वामी जो प्रत्यक्ष खेतिहर बने। इनमे से कई अब अपने स्त्रोतो या वित्तीय सस्थाओ से कर्जे के आधार पर प्रगतिशील किसान बने। ये संस्थागत स्त्रोत अधिकाधिक गरीब किसानो के लिये उपलब्ध थे।[120]

ग्रामीण क्षेत्रो के विकास के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम शुरू किये गये। यह कार्यक्रम गांवो मे कल्याणकारी राज्य की नीव डालने वाले थे। हालांकि ये कृषि के विकास के लिये भी बनाए गये थे, पर इनमे मुख्यत: कल्याण का उद्देश्य ग्रामीण भारत का चेहरा बदलना था ताकि लोगो का जीवन स्तर सुधारा जा सके।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम समिति स्तर पर 1952 मे शुरू किया गया, जिसमे 55 विकास प्रखंड चुने गये। प्रत्येक प्रखंड मे 100 गांव और करीब 60 से 70 हजार की आबादी थी। 1960 के दशक के मध्य मे आकर देश का अधिकाधिक सामुदायिक प्रखंडो के जाल मे ढ़क गया, जिसमे 6,000 प्रखंड विकास पदाधिकारी और करीब 6,00,000 भी एल. डब्ल्यू. या ग्राम सेवक नियुक्त किये गये जो इस कार्यक्रम को लागू कर सके। इस कार्यक्रम मे ग्रामीण जीवन के हर पक्ष को लिया गया था, खेती बेहतर बनाने की विधियो से लेकर संचार, स्वास्थ्य और शिक्षा मे सुधार आदि सभी पहलुओ को लिया गया था।

इस कार्यक्रम में लोगो द्वारा आत्मनिर्भरता तथा आत्म-सहायता और उत्तरदायित्व पर मुख्य रूप से जोर दिया जाना था। यह एक प्रकार से मूलत: जनता के अपने कल्याण के लिये, जनता के एक आंदोलन के रूप में संगठित किया जाने वाला कार्यक्रम था। जैसा कि नेहरू ने इस कार्यक्रम के शुभारंभ के अवसर पर 1952 मे कहा था कि इसका मूल लक्ष्य ''जनता के बीच नीचे से शक्ति संचार करने''[121] का था। एक तरफ यह ''आवश्यक था कि योजना बनाई जाये, उसका निर्देशन, संगठन और संयोजन किया जाये, परन्तु दूसरी तरफ, उससे भी ज्यादा जरूरी, निचले स्तर से स्वत: विकास की आवश्यक परिस्थिति तैयार करना था।''[122] इसके अलावा कार्यक्रम में भौतिक उपलब्धि का लक्ष्य तो रखा गया था, परन्तु इसका मूल उद्देश्य ''समुदाय और व्यक्ति को विकसित करना तथा व्यक्ति को अपने गांव और व्यापक अर्थों में भारत का निर्माता बना देना था।''[123] उन्होने कहा, ''प्राथमिक वस्तु है इसमें लगा मानव।''[124] इसका एक दूसरा बड़ा उद्देश्य पिछड़े तबके को उठाना था-

''हमारा लक्ष्य अवसर की समानता और अन्य पक्षो को अधिक से अधिक ऊंचे स्तर पर ले जाना होना चाहिये।''[125] 1952 और उसके बाद के वर्षो मे, नेहरू बार-बार सामुदायिक विकास कार्यक्रम और उसके साथ जुड़ी राष्ट्रीय विस्तार सेवा की चर्चा ''नई सरकार''[126] और एक ''महान क्रांति'' तथा[127] ''भारत के पुनरुत्थानशील भावना का प्रतीक''[128] के रूप मे किया करते थे।

इस कार्यक्रम को विस्तार कार्यो मे अच्छी सफलता प्राप्त हुई। जैसे-बेहतर बीज, खाद आदि होने के परिणामस्वरूप आमतौर पर खेती का विकास तेज हुआ और खाद्य उत्पादन बढ़ा। इसके अलावा सड़क, तालाब, कुआ, स्कूल तथा प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र आदि का निर्माण और शिक्षा एव चिकित्सा सुविधाओ का विस्तार हुआ। परन्तु जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि कार्यक्रम अपने एक प्रमुख उद्देश्य मे असफल हो गया- वह था अपनी विकास गतिविधियो मे लोगो की पूरी भागीदारी। न केवल इससे अपनी मदद स्वय करने की भावना का विकास नही हो सका, बल्कि इसने सरकार से उम्मीदो और सरकार पर निर्भरता को और बढ़ा दिया। धीरे-धीरे इसका झुकाव सरकारी काम जैसा हो गया और अफसरशाही ढ़ाँचे का हिस्सा बनकर ऊपर से शासित होने लगा। पूरा कार्यक्रम रोजमर्रा की तरह बन गया। प्रखंड विकास पदाधिकारी पारंपरिक सब-डिविजनल पदाधिकारी के प्रतिरूप बन गये और ग्रामसेवक उनके कर्मचारी। जैसा कि नेहरू ने बाद मे 1963 के दौरान कहा कि जहां यह पूरा कार्यक्रम इस प्रकार बनाया गया था कि किसान को ''लीक पर से हटाया जा सके, जो पिछले कई युगो से उसी पर जीता चला आ रहा है'' वहां यह कार्यक्रम खुद ही ''उसी लीक मे धंस गया है।''[129]

नेहरू भारतीय कृषि-व्यवस्था के लिये सहकारी कृषि प्रणाली को उचित मानते थे। नेहरू जी का विचार था कि ''भूमि व्यवस्था मे किसी आकस्मिक परिवर्तन के द्वारा ही वृहद स्तर क्री सहकारी और सामूहिक कृषि आवश्यक रूप से जमीदारी प्रथा को ही समाप्त करके प्राप्त की जा सकती है।''[130] वे कृषि प्रणाली के विकास के लिये सहकारी कृषि प्रणाली को ही एकमात्र उपाय समझते थे। उनके शब्दों में - ''भारत में कृषि के प्रगति के लिये सहकारिता ही एकमात्र रास्ता है। सहकारी खेती एवं संयुक्त खेती भारतीय कृषि व्यवस्था के लिये सही तरीका है।''[131]

प्राय: यह कहा जाता है कि सहकारी कृषि कुछ भयावह रास्ते की ओर अग्रसर होती है। जैसा कि साम्यवादी व्यवस्था मे हुआ लेकिन सहकारी कृषि प्रणाली का साम्यवादी व्यवस्था से

कोई सम्बन्ध नही होता है। नेहरू जी ने कहा था कि "जो व्यक्ति सहकारी कृषि प्रणाली के माध्यम से साम्यवादी व्यवस्था की कल्पना कर के डरते है, मुझे अत्यन्त हास्यास्पद लगता है। नेहरू जी ने आगे कहा कि यदि ऐसा किसी दबाव के कारण करना पड़ता है तो मै सहमत हूँ। सयुक्त एव सहकारी कृषि का विचार निश्चित रूप से सामाजिक है। मेरा विश्वास है कि सहकारी कृषि भारत की आवश्यकताओ के लिये उचित रहेगी। जब मै भारत की आवश्यकताओ के सम्बन्ध मे कहता हू तब मै किसी प्रकार के सैद्धान्तिक विचार नही रख रहा हूँ, क्योकि मेरा विश्वास है कि प्रत्येक देश की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखना चाहिये।"(132)

हमारे देश मे जोत की सीमा बहुत कम है- एक एकड़ या एक एकड़ से भी कम है। किसी भी तरह की वास्तविक उन्नतिपूर्ण कृषि की कल्पना एक एकड़ या दो एकड़ वाले किसान से करना असंभव है। वह बहुत ही कुशल किसान है जो ऐसा कर लेता है। नेहरू छोटे किसानो के लिये सहकारी कृषि प्रणाली को आवश्यक समझते थे। उन्होने कहा था कि - "छोटे किसानो के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वे सहकारी कृषि के उपायों के द्वारा एक साथ कार्य करे और वृहद स्तर की कृषि व अधिक साधनो के लाभ को प्राप्त करे। यहॉ तक कि सहकारी सेवाओं को अधिक ज्ञान व प्रशिक्षण की आवश्यकता है जो कि प्रथम प्रयास है, और यदि हम उसे सफलतापूर्वक कर लेते है तो हमारा दूसरा प्रयास भी आसान हो जाता है।"(133) नेहरू जी सहकारी प्रणाली के साथ किसानो को भारी करो मे छूट देने के पक्ष मे थे। इसके समर्थन मे उन्होंने सन् 1931 ई. में संयुक्त प्रान्त के किसानो की समस्या को लेकर कहा था कि यदि कृषक वर्ग भारी करो मे दबा रहेगा तो उससे अत्यधिक उत्पादन की कल्पना करना निर्रथक है।

नेहरू जी के 'राज्य' सम्बन्धी विचार-

समाजवादी चिंतन मे यद्यपि आर्थिक तत्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व होता है, तथापि इसमे सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक तत्व भी अपना अलग-अलग महत्व रखते है। समाजवाद एक जीवन दर्शन है और जीवन में इन सभी तत्वों का यथोचित स्थान होता है। अनार्थिक तत्वों में राजनीतिक तत्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार ही राज्य का आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक ढ़ॉचा निर्धारित होता है। विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओ मे नागरिक एवं राज्य के सम्बन्ध भिन्न प्रकार के होते हैं। लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्थाओ के अन्तर्गत नागरिको को अधिक अधिकार एवं अधिक स्वतंत्रताएं प्राप्त होती है, जबकि राजतंत्र,

निरंकुश तंत्र एव साम्यवादी व्यवस्थाओ मे कम। समाजवादी (पूर्व) रूस तथा चीन के उदाहरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार केन्द्रीभूत और एकाधिपत्यपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था समाजवादी व्यवस्था को भी परतन्त्रतापूर्ण बना देती है। अत प्रश्न यह उठता है कि राजनीतिक व्यवस्था कैसी हो? यह प्रश्न ही यह निश्चित करता है कि समाजवादी दर्शन मे व्यक्ति को कहॉ तक स्वतत्र व्यक्तित्व रखने की अनुमति है तथा कहॉ तक स्वतत्र व्यक्तित्व प्रदान करता है। समाजवादी राज्य के सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न समाजवादी विचारक अपनी इच्छानुसार एक आदर्शवादी राज्य की रूपरेखा प्रस्तुत करते है। परन्तु भावी राज्य की रूप रेखा भावी काल एवं परिस्थितियो के ऊपर निर्भर होती है। इसके सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कोई भी समाजवादी विचारक नही कह सकता है।

लेकिन अधिकांश समाजवादियो का विचार है कि राष्ट्र के बहुत से कार्य जैसे न्याय, संरक्षण और औद्योगिक कार्य अपरिहार्य है, जो सरकार का अस्तित्व अनिवार्य बना देते है। इसलिये वे सरकार को नष्ट नही करने देना चाहते बल्कि उस पर अपना आधिपत्य रखना चाहते है, जिससे वे समाजवादी समाज के उद्देश्यों की प्राप्ति तथा उसका समस्त समाज के हित के लिये प्रयोग कर सके और सर्वहारा वर्ग के शोषण पर रोक लगा सकें। वर्तमान समाजवादियो का सरकार के सम्बन्ध मे यही विचार है। वास्तव मे सरकार की समाप्ति का पक्ष लेने वाले समाजवादी (मार्क्सवादी) 'सरकार' शब्द का संकीर्ण अर्थ मे प्रयोग करते है। ऐंजिल्स का विचार है कि सर्वप्रथम कार्य, जिसके द्वारा सरकार अपने को वास्तव मे समाज की प्रतिनिधि संस्था बनाती है- ''समाज के नाम पर उत्पत्ति के साधनो पर अधिकार कर लेना है, यही उसका अन्तिम स्वतत्र कार्य भी है। कुछ ही समय के पश्चात्, सामाजिक जीवन मे राष्ट्र का हस्तक्षेप अनावश्यक हो जाता है और तब सरकार का स्वरूप स्वत: ही नष्ट हो जाता है, तब मनुष्यों के शासन का स्थान वस्तुओ की क्रियाओ और उत्पत्ति क़ी क्रियाओ का प्रबन्ध ले लेता है। सरकार को नष्ट नही किया जाता, स्वयं ही उसका स्वरूप लुप्त हो जाता है।''[134] इसी तथ्य पर वैबेल ने अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा था कि - ''वर्गीय शासन पर अवलम्बित समाज के लिये राष्ट्र का सगठन नितान्त आवश्यक है। जिस समय व्यक्तिगत सम्पत्ति के नष्ट होने से वर्गीय शासन नष्ट हो जाता है, उसी समय राष्ट्र के अस्तित्व की न तो कोई आवश्यकता ही रह जाती है और न आशा ही। लेकिन वे इसके आगे लिखते हैं कि ''ऐसा शासन प्रबन्ध आवश्यक है जिसके अन्तर्गत सभी कार्य आ जाये।''[135]

इन उदाहरणो से दो तथ्य सामने आते है। एक तो यह कि ये विचारक राष्ट्र शब्द का प्रयोग प्रचलित अर्थ मे नही वरन् सकीर्ण अर्थ मे कर रहे है तथा दूसरा तथ्य यह है कि राष्ट्र का अन्त हो जाने के पश्चात् प्रबन्धकारिणी समिति का होना आवश्यक हो जायेगा। यह एक सर्वमान्य साधारण सा विचार है कि किसी सस्था के बिना प्रबन्ध नही हो सकता इसलिये प्रचलित भाषा मे मार्क्सवादियो के विचारानुसार राष्ट्र की सत्ता तो कायम रहेगी परन्तु उसके स्वरूप तथा कार्यो मे अवश्य परिवर्तन हो जायेगा।

यह विचार सभी समाजवादियो के समक्ष रहा है कि राष्ट्र मे लोकतत्र का क्या स्वरूप होगा? बिना लोकतत्रवाद के समाजवादी राष्ट्र का होना असंभव है, फिर वर्तमान काल मे लोकतत्रवाद की ओर प्रत्येक का विशेष झुकाव है, इस झुकाव को व्यक्तिगत सम्पत्ति रोकती है। जब व्यक्तिगत सम्पत्ति नष्ट हो जायेगी, तब इसके मार्ग से बाधाएं हट जायेगी और पूर्ण लोकतत्रवाद के स्थापित होने मे विलम्ब न होगा।

समाजवादी लोकतंत्र में केन्द्रीकरण के विनाश का अंश बहुत अधिक रहता है। वर्तमान काल मे केन्द्रीकरण और उसकी उच्च शाखा वर्गीय शासन के विरुद्ध (ब्यूरोक्रेसी) विचारधारा फैल गयी है। मनुष्यो ने अपनी इच्छानुसार अनेक छोटे-छोटे संघ स्थापित कर लिये है, जिसके उद्देश्य विभिन्न है, जो राष्ट्र को भिन्न-भिन्न प्रकार से विभाजित कर देते हैं, उनके अनेक कार्यो को अपने हाथ मे ले रहे है और नागरिको के हितो से सम्बन्धित अनेक कार्य कर रहे हैं। इन संघों का राजनीतिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में कोई विशेष महत्व नही, पर कम से कम यह स्पष्ट है कि व्यक्ति विशेष की इच्छा के प्रकटीकरण का.अत्यन्त प्रभावशाली साधन तथा मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास का साधन, अब राष्ट्र मे नहीं बल्कि छोटे-छोटे भिन्न-भिन्न प्रकार के संघो मे है। राष्ट्र का स्वरूप इतना विस्तृत है कि उसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा प्रकट नही कर सकता। समाज मे कार्यशील शक्तियॉ इतनी विस्तृत है, सरकार का ढ़ॉचा इतना विभिन्न है तथा, घटनाओं को निश्चित करने वाले कारण इतने कठिन है कि उन पर अधिकार करना तो दूर रहा, उनको समझना भी जनसामान्य के समझ के बाहर की वस्तु है। इस प्रकार के सामाजिक संगठन के समक्ष व्यक्ति नि:सहाय तथा शक्तिहीन सा मालूम पड़ता है। व्यक्तियो मे यह विश्वास होने लगता है कि वे शक्तिहीन हैं और उनकी इच्छाओं का होना या न होना समाज के विकास पर कोई प्रभाव नहीं डालता इसलिये यदि सामाजिक कार्यो में मनुष्य का विश्वास पुन: जागृत किया जाय तो राष्ट्र की सत्ता को विभक्त करके उसके कार्यो को बाँट देना चाहिये। एक व्यक्ति को बहुत से संघों का सदस्य होना चाहिये, जिनके पास

उत्पादन सम्बन्धी और स्थानीय शासन सम्बन्धी कार्यकारिणी शक्तियाँ हों, जिससे व्यक्ति यह अनुभव कर सके कि समाज उसके लिये है और समाज की घटनाएं तथा विधान उसके हाथ मे है। अराजकतावादियो का भी यही उद्देश्य रहता है तभी वह कहता है कि समाज छोटे-छोटे संघो के पद सोपान (Hierarchy) के आधार पर सगठित होना चाहिये। इसे साधारण ढ़ग से प्रारम्भ होकर कठिन की ओर क्रियाशील होना चाहिये परन्तु ऐसे समाज मे वर्तमान राष्ट्र के समान एक केन्द्रीय शक्ति की आवश्यकता महसूस होगी क्योकि बहुत सी समस्या राष्ट्रीय आधार पर ही हल की जा सकती है। समाजवादी राष्ट्र के बहुत से कार्यो मे परिवर्तन होंगे। राष्ट्र के जो कम से कम कार्य है उनको तो समाजवादी राष्ट्र पूँजीवादी राष्ट्र के समान ही संचालित करेगा। लेकिन इसके अतिरिक्त पूँजीवादी राष्ट्र का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा करना है। समाजवाद के अन्तर्गत व्यक्तिगत सम्पत्ति केवल नाममात्र की ही रह जायेगी। इसलिये इसकी रक्षा करना राष्ट्र का कोई प्रमुख कार्य नही होगा। उस समय राष्ट्र के दो प्रमुख कार्य होगे, एक तो समाज की स्वतत्रता के साथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कायम रखना दूसरे शब्दों मे व्यक्ति तथा व्यक्तियो के समूह की शोषण से रक्षा और दूसरे राष्ट्रीय सम्पत्ति का शासन और विधान। लोकतंत्र राष्ट्र व समाज का इतना सरल संगठन है, जो समाज की अच्छाई एवं हितो के लिये सामूहिक रूप से कार्य करता है।

समाजवाद के अन्तर्गत राष्ट्र के स्वरूप का आधार बन्धुत्व एवं सहयोग होगा। चूंकि अधिकांश युद्ध बाजारो पर आधिपत्य स्थापित करने के लिये किये जाते रहे है। इसलिये समाजवाद इस संघर्ष को जड़ समूल नष्ट कर देना चाहता है। वह युद्धो का होना असंभव बना देगा। जातियों का पूर्णरूप से एकीकरण तो असंभव है, क्योंकि भाषा, संस्कृति, आर्थिक व सामाजिक व्यवस्थाओ का अन्तर पूर्णरूपेण समाप्त नही किया जा सकता। परन्तु उनका निष्कर्ष निकालने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय समझौता संघ की स्थापना की जा सकती है। इस सघ का कार्य समिति होगा। वास्तव में समाजवाद का अर्थ राष्ट्र में लोकतंत्रवाद की तथा विश्व मे विश्वबंधुत्ववाद की स्थापना करना है।

वर्तमान काल में शक्ति के विकेन्द्रीकरण के ऊपर जोर दिया जा रहा है, जिससे नागरिको को अधिक स्वतंत्रताए और अधिकार प्राप्त हो। नेहरू जी ने अपने विचारानुसार एक ऐसे समाज की कल्पना की है जो वर्ग एवं वर्गहीन हो। वे मार्क्सवाद से प्रभावित होकर भी मार्क्सवाद को अपूर्ण समझते हैं। वे इस तथ्य को स्वीकार करते है कि मार्क्सवाद ने उन्हें प्रभावित किया है, परन्तु वह संतुष्ट करने मे असमर्थ रहा है। नेहरू ने समाजवादी ढ़ाँचे पर

आधारित समाज की कल्पना की, जो वर्ग एव वर्गहीन होगा। जहॉ लोकतात्रिक मूल्यो एवं समाजवादी सिद्धान्तो के आधार पर समाज का निर्माण किया जायेगा।

नेहरू जी ने राजनैतिक विकेन्द्रीकरण का, सैद्धान्तिक परिवेश मे, सशक्त प्रतिपादन किया है। राजनैतिक विकेन्द्रीकरण, राजनैतिक समता एव सम्पन्नता का प्रतीक है। जिस प्रकार आर्थिक प्रजातत्र के बिना राजनैतिक प्रजातंत्र असंभव है, उसी प्रकार राजनैतिक प्रजातंत्र के बिना आर्थिक प्रजातंत्र असंभव है। राजतंत्र एवं कुलीनतंत्र में राजनैतिक शक्ति एक व्यक्ति तथा कुछ कुलीनो मे केन्द्रित रहती है। आधुनिक प्रजातंत्रो मे भी शनैः शनै शक्ति का केन्द्रीकरण एक विशेष समूह के हाथो में देखा जाता है। परिणाम स्वरूप जनता का अधिकाश भाग एक केन्द्रित शक्ति के हाथ मे कठपुतली मात्र रह कर अपंग हो जाता है। जिससे प्रजातात्रिक व्यवस्था नवीन उन्मुक्त सभ्यता के लिये अपर्याप्त प्रतीत होने लगती है। प्रजातंत्र की इस पर्याप्तता के कारण ही सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व का उद्भव हुआ। सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व और आधुनिक प्रजातंत्र दोनो ही मानव की आकांक्षाओ को पूर्ण करने में असमर्थ है, क्योकि दोनों ही व्यवस्थाओ में राजनैतिक और आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण कुछ ही सीमित व्यक्तियो के हाथों में हो जाता है। एक व्यक्ति अथवा संस्था मे राजनैतिक अथवा आर्थिक शक्तियो का केन्द्रीकरण निरंकुशता की दूसरी परिभाषा है। प्लेटो भी इस सम्बन्ध मे इस तथ्य को अच्छी प्रकार जानता था कि राज्य की राजनैतिक और आर्थिक शक्ति का एक ही हाथों मे आ जाना किसी भी प्रकार से वांछनीय नही हैं। इसी प्रकार उसने आदर्श राज्य के शासको की वैयक्तिक सम्पत्ति के अधिकार से वंचित करते हुये कहा था कि - ''उनके पास उतनी ही सम्पत्ति होनी चाहिये जितनी की जीवन-यापन के लिये नितान्त आवश्यक हो। उनके पास ऐसा कोई घर या भण्डार नही होना चाहिये जहॉ व्यक्तियो का प्रवेश निषिद्ध हो।''[136]

यद्यपि प्लेटो ने उत्पादक वर्ग को सम्पत्ति का अधिकार दिया तो परन्तु उन्हें राजनैतिक अधिकारो से वंचित कर दिया प्लेटो भी इस बात से परिचित था कि दोनो शक्तियो का सम्मिलन किसी भी सीमा तक उचित नही है।

नेहरू जी राजनैतिक सत्ता के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति से अनभिज्ञ नही थे, परन्तु जहॉ उन्होंने राजनीतिक आर्थिक विकेन्द्रीकरण के लिये ''पंचायती राज्य'' योजना का विचार प्रतिपादित किया वही पर उन्होंने परोक्ष रूप से केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को स्वीकार किया है। आधुनिक समय में चाहे लोकतांत्रिक व्यवस्था हो अथवा समाजवादी राज्य व्यवस्था, राज्य की प्रवृत्ति सत्ता के केन्द्रीकरण की ओर बढ़ रही है। यह समस्या नेहरू जी के समय के पूर्व से

ही चर्चा का विषय रही है, जिसका उन्होने गहन अध्ययन किया था। हम केन्द्रीकृत अधिकार से पलायन नही कर सकते। यह दो मे से एक जैसा कि वृहद कारपोरेशन के या ट्रेड यूनियन के समान नही हो सकती। परन्तु सभी मे केन्द्रीकरण के अधिकार की प्रवृत्ति रहती है। नेहरू जी यह समझते है कि - ''सभी प्रकार के केन्द्रीयकरण व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर थोड़ा सा अतिक्रमण करते है। वे व्यक्तिगत स्वतत्रता को अक्षुण्य बनाना चाहते है। लेकिन समाज को केन्द्रीयकरण से बचाना असंभव है, यह भी समझते है।''(137) इस प्रवृत्ति से पूर्णरूपेण परिचित होते हुये भी नेहरू जी ने व्यवहारिक क्षेत्र मे आर्थिक एवं राजनीतिक सत्ता के केन्द्रीकरण का पूर्णरूपेण समर्थन किया। यही उनकी आलोचना का मुख्य आधार रहा है।

नेहरू जी ने राज्य के सम्बन्ध मे कोई नवीन सिद्धान्त निरूपित नही किया है जिस प्रकार की चौखम्भा योजना डॉ. लोहिया ने प्रस्तुत की। नेहरू जी एक प्रजातंत्रवादी विचारक थे, इस तथ्य को नेहरू जी ने बार-बार अपने भाषणो में स्वीकार किया है। उनका मत है कि ''इस तरह मेरा लक्ष्य आत्मनिर्भर लोकतंत्रीय समाज एवं राज्य है और उसके साथ मे समाजवादी शब्द भी जोड़ देना चाहता हूँ अर्थात् लोकतंत्रीय समाजवादी राज्य (डेमोक्रेटिक सोशलिस्ट स्टेट) इसको स्थापित करने के लिये हमे सुधारात्मक साधनो के बजाय क्रान्तिकारी साधनो को अपनाना होगा। क्रान्तिकारी साधनो से मेरा अभिप्राय हिसात्मक परिवर्तनो से नही है वरन् वास्तविक अर्थ मे क्रान्ति है।''(138)

नेहरू जी का लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रति अत्यधिक झुकाव था। इसका सबसे बड़ा कारण, लोकतांत्रिक व्यवस्था के अन्दर विचारों की परिपक्वता एवं शिक्षा प्राप्ति। मानवीय स्वभाव पर परिवेश का प्रभाव पड़ना एक मनोवैज्ञानिक एवं प्राकृतिक कारण है। दूसरा कारण, आधुनिक युग में इस व्यवस्था से अच्छी और कोई राज व्यवस्था नही है। नेहरू जी के विचारो पर साम्यवादी और समाजवादी सिद्धांतो का भी प्रभाव पड़ा। पाश्चात्य लोकतांत्रिक राज्य उनकी दृष्टि मे पतन की ओर जा रहे थे। उन्होने कहा था कि 'केवल रूस से आशा की कोई किरण फूट सकती है। परन्तु मै उन सब बातों का समर्थन नही करता जो रूस मे हुआ और न ही मै साम्यवाद शब्द के स्वीकृत एवं रूढ़ अर्थ मे साम्यवादी हूँ।''(139) जिस कारण प्रारम्भिक वर्षो में वे साम्यवाद की ओर झुके, वह था सिद्धांतों का ध्रुव-वैपरीत्य। उनकी दृष्टि मे विश्व साम्यवाद और फासिज्मवाद मे से एक को चुनने जा रहा था। इस सम्बन्ध में उन्होने कहा था कि ''मेरा ध्रुव विश्वास है कि आज दुनिया को मूलत: साम्यवाद के किसी रूप मे एक को चुनना होगा। और मै पहले के पक्ष में हूँ अर्थात् साम्यवाद के पक्ष मे....कोई मध्यम मार्ग नही

है। मै साम्यवादी आदर्श को चुनता हूॅं।''[140] नेहरू जी ने राज्य के स्वरूप को अधिक से अधिक सामाजिक संगठनवाद की प्रक्रिया के (Modern state as socially function organision) समान कहा। यदि नेहरू जी के सामाजिक संगठन की प्रक्रिया की व्याख्या की जाय तो वह राज्य की वकालत करते है। उनका विचार है कि राज्य व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करता है, विदेशी एवं आन्तरिक खतरो से तथा व्यक्ति को शैक्षिक एव विकास के अवसर प्रदान करता है जिनके आधार पर स्वय को एक सही स्थिति मे ढाल सके।

राज्य के मौलिक कर्त्तव्यों के सम्बन्ध मे नेहरू जी का मत है कि सर्वप्रथम राज्य को यह प्रयास करना चाहिये कि उन सभी प्रकार की बाधाओ को रास्ते से दूर करे जो जनसामान्य के विकास मे बाधक होती है तथा उसे जनता की प्रारम्भिक आवश्यकताओ को पूर्ण करना चाहिये। नेहरू जी स्वतंत्रता को कायम रखने के लिये आर्थिक व्यवस्था मे केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के पक्ष में थे। नेहरू ने कहा था कि ''यदि राज्य आर्थिक क्षेत्र के भाग मे केन्द्रीकृत होता है तो यह वैयक्तिक अधिकारो की सुरक्षा के लिये महत्वपूर्ण है।''[141] नेहरू जी का विचार था कि अविकसित अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत सामान्य यह प्रवृत्ति पायी जाती है कि एक वर्ग अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिये अनेको प्रकार के साधन अपनाते है।

नेहरू जी संघात्मक व्यवस्था के समर्थक थे क्योकि इस व्यवस्था में केन्द्र और राज्य के अधिकारो का विभाजन संविधान द्वारा होता है। इसमे केन्द्र राज्य के अधिकारो का हनन (सैद्धान्तिक क्षेत्र मे) नहीं कर सकता परन्तु आर्थिक मामलों में नेहरू जी केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाने के पक्ष में थे। वैसे सभी अधिकार संविधान प्रदत्त हैं लेकिन सभी प्रक्रियाये संविधान के अनुसार होंगी, क्योकि नेहरू जी वैज्ञानिक प्रक्रिया मे अधिक विश्वास रखते थे। नेहरू जी कि लोकतांत्रिक राज व्यवस्था के ऊपर हमे गर्व करते थे, क्योकि इसके अन्तर्गत राजनैतिक स्वतत्रता की समाप्ति नही होती बल्कि एक अच्छे साधनो के माध्यम से आर्थिक् एवं सामाजिक स्वतंत्रताओं को पूर्ण किया जाता है। यह राज्य का एक महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है कि मानवीय पक्ष के विकास के सभी अवसर प्रदान करे। नेहरू जी सत्ता के ऊपर आधिपत्य करने मे किसी प्रकार का संकोच नहीं करते थे। वे खुली ऑखों से देखते थे कि सत्ता का स्त्रोत कहॉ पर है। नेहरू जी ने इस बात की ओर संकेत किया कि इसका निर्णय जनता को करना होगा कि राज्य का कार्य और निर्देशन उचित प्रकार से हो रहा है अथवा नही।

नेहरू जी ने एक लोक कल्याणकारी राज्य का स्वरूप प्रस्तुत किया है। नेहरू जी राज्य के निर्माण में आर्थिक तत्वों को काफी महत्वपूर्ण मानते थे। उनका यह विचार मार्क्स के

'इतिहास की समाजवादी व्याख्या' से काफी समानता रखता है। लेकिन वे मूलरूप से आर्थिक तत्व को ही सर्वेसर्वा नही मानते थे। वह लोककल्याणकारी राज्य की नीव समाजवादी आधार पर रखना चाहते थे। वास्तव मे यह सत्य है कि समाजवादी आधार पर निर्मित अर्थव्यवस्था लोक कल्याणकारी राज्य के निर्माण मे सहायक होगी। परन्तु यह आवश्यक नही कि लोक कल्याणकारी राज्य केवल समाजवादी सिद्धान्तो के आधार स्वरूप खड़ा होगा। लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना भारत या विश्व में तब तक नही हो सकती, चाहे समाजवादी राज्य हो अथवा साम्यवादी, जब तक राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय अधिक नही होगी।[142] नेहरू जी का समाजवादी आधार पर निर्मित समाज व राज्य का विषय आलोचना विषयक अवश्य है। यू.एन. ढ़ेबर की अध्यक्षता मे सन् 1954 के अवाड़ी कांग्रेस अधिवेशन मे 'समाजवादी आधार' को स्वीकार किया गया था परन्तु यदि अवाड़ी काग्रेस से (सन् 1954 ई.) लेकर भुवनेश्वर काग्रेस (सन् 1964 ई.) जब कि नेहरू जी गम्भीर रूप से बीमार हो गये थे, के मध्य काग्रेस के क्रिया कलापो का विश्लेषण करे तो मालूम होगा कि नेहरू के जीवन काल मे समाजवादी समाज रचना की दिशा मे कोई उपलब्धि नही हुई। बार-बार समाजवाद के सम्बन्ध मे ऐसे प्रस्ताव पारित करने से वामपंथी विचारको एवं दलो पर विपरीत प्रभाव पड़ा।

नेहरू जी आर्थिक और राजनीतिक विकेन्द्रीकरण को व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिये आवश्यक समझते थे। इसी तथ्य को दृष्टि मे रखते हुये राजनीतिक विकेन्द्रीकरण एवं स्थानीय प्रशासन के लिये ''पंचायती राज्य' की रूपरेखा प्रस्तुत की। नेहरू जी ने कहा था कि ''जब हमने आजादी प्राप्त की तो हमने लोकराज्य कायम किया तथा नागरिको को वयस्क मताधिकार प्रदान किया गया। लोगो ने अपने-अपने राज्यों की विधानसभाओ एव लोकसभा के लिये प्रतिनिधि चुने। एक तरह से यह सही दिशा मे कदम था। किन्तु अपने प्रतिनिधि चुनने से लोकतंत्र नही आया।'',[143] हमने निश्चय किया कि सभी राज्य मे पंचायत हो। यह रोजमर्रा के प्रशासन मे मदद देगी। प्रशासन की जिम्मेदारी सिर्फ बड़े अफसरो के हाथों में ही नहीं होनी चाहिये बल्कि देश मे करोड़ो लोगो मे बॉट देनी चाहिये। ''पंचायती राज'' एक शक्तिशाली प्रयोग है। यह भले ही हिन्दुस्तान के प्रत्येक हिस्से में सफ़ल न हो, मगर उसकी कल्पना विशाल है वह कहीं-कहीं कामयाब हो रहा है।[144]

नेहरू जी ग्राम पंचायतों को प्रशासनिक एवं आर्थिक अधिकार देने के पक्षपाती थे। उन्होंने कहा था कि 'मै उस हालत मे हूँ जब ''पंचायती राज'' के लिये मेरे मन मे पूरा जोश है, मै महसूस करता हूँ कि हिन्दुस्तान की मौजूदा हालत मे यह एक बुनियादी और क्रान्तिकारी

चीज है, जिसे हमे देश के पॉच लाख से अधिक गॉव मे खड़ा करना है। ससद या राज्य की विधानसभाए ही लोकतत्र नही है। वह ऐसा तत्र है जो हर एक आदमी को उकसाता है और प्रत्येक आदमी को अपनी मुनासिब जगह लेने की ट्रेनिग देता है तथा वह यह ट्रेनिग भी देता है कि जरूरत पड़ने पर देश मे कोई भी जगह ले सके''।[145] नेहरू जी ने एक बार कहा था कि यदि हम इस कठिनाई को पार कर लेते है तो धीरे-धीरे हर मजिल पर स्वशासन के तरीको को बढ़ा सकेगे उन्होने पंचायती राज के साथ-साथ सहकारी आन्दोलन को भी महत्वपूर्ण माना। इससे स्वशासन के साथ ग्राम पचायते आर्थिक दृष्टि से भी सशक्त होगी। इससे अर्थव्यवस्था मे लोकतत्र आयेगा। उनके शब्दो मे- ''पंचायती राज और सहकारी समाज'' से गांवो मे राजनीतिक लोकतंत्र ही नही बल्कि आर्थिक लोकतंत्र भी कायम होगा। व्यक्ति आत्मनिर्भर और मजबूत होगे।''[146]

नेहरू जी की ''ग्राम पंचायत राज'' योजना वास्तव मे स्थानीय स्वशासन की दिशा मे एक महत्वपूर्ण कदम था तथा इसको व्यावहारिक स्तर पर भी लागू किया गया। जो स्थानीय प्रशासन की दिशा में सफल प्रयोग सिद्ध हुआ, इससे राजनैतिक और आर्थिक विकेन्द्रीकरण को भी प्रोत्साहन मिला।

शासन व्यवस्था सम्बन्धी विचार-

नेहरू जी ने प्रजातंत्र के सम्बन्ध मे कोई नवीन सिद्धान्त निरूपित नहीं किया है। मौलिक रूप से नेहरू जी का जो व्यक्ति के व्यक्तित्व मे विश्वास था, वह लोकतत्रीय व्यवस्था के ही कारण था। नेहरू जन-सम्प्रभुता में आस्था रखते थे, परन्तु सरकार के सम्बन्ध मे उनका दृष्टिकोण बहुत ही आलोचनात्मक था। (प्रारम्भिक काल में) सरकार के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण, विदेशी शासन की उपज थी। वह सरकार को दण्ड का साधन मात्र समझते थे। नेहरू जी सरकार की बाध्यकारी एवं दण्डात्मक प्रवृत्ति के आलोचक होते हुये भी वह सरकार की इस शक्ति मे कुछ विश्वास रखते थे। अधिकार चेतना के द्वारा ही मानव के व्यक्तित्व का विकास होता है और व्यक्ति में निहित अधिकार राज्य के द्वारा ही पूर्णता प्राप्त कर सकते है। अत: व्यक्तित्व के विकास के लिये शक्ति और दण्ड का प्रयोग आवश्यक है। व्यक्ति के व्यक्तित्व के लिये राज्य का अस्तित्व भी आवश्यक है। नेहरू कानूनो में दिखाई पड़ने वाली हिंसात्मक प्रवृत्ति का समर्थन करते हैं। वे व्यक्तिगत हिंसा की अपेक्षा राज्य के हिसात्मक प्रवृत्ति को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि वह कानूनों एवं आज्ञाओ पर आधारित है। नेहरू जी के अनुसार

व्यक्तिगत समूहो की हिसा की अपेक्षा राज्य के कानूनो के हिसात्मक कार्य काफी उचित है जबकि उनसे राज्य के कार्यो मे क्षमता बढ़े। कानूनो मे भय का भाव आवश्यक है। नेहरू के शब्दो मे ''जब एक राज्य निरकुश होकर हिसात्मक गतिविधियो मे संलग्न हो जाता है तब वह किसी व्यक्ति विशेष के प्रयत्नो से ठीक न होकर एक भयंकर राजा के भय एवं निर्दयता से ठीक होता है।''[147]

नेहरू जी राज्य के कानूनो मे दण्ड शक्ति के पक्षपाती होते हुये भी उसको सीमित करना चाहते थे। वरना सरकार के कार्यो मे स्थायित्व की कमी और बिखराव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। उन्ही के शब्दो मे ''राज्य को हमेशा बल एवं हिंसा के सिद्धांत पर आधारित होना चाहिये अन्यथा वह दिन दूर नही जब बल का यह तत्व घटकर न्यूनतम अवस्था तक पहुॅच कर समाप्त हो जायेगा।''[148] नेहरू जी कानूनो मे इस प्रकार की शक्ति को इसलिये अनिवार्य मानते थे कि उनसे जन-सामान्य मे इस प्रकार का भय रहे कि कानूनो का उल्लंघन करने पर दण्ड का विधान भी मौजूद है तथा राज्य कार्य भी सुचारु रूप से चलता रहे। नेहरू जी ने इस सम्बन्ध मे अपना वैधानिक तर्क प्रस्तुत किया है कि ''हिंसा आधुनिक राज्य व सामाजिक व्यवस्था का प्राण है। राज्य की बाध्यकारी सत्ता के बिना कर वसूल नही होंगे। राष्ट्रीय राज्य का अस्तित्व ही आक्रामक और सुरक्षात्मक हिंसा पर आधारित है।''[149]

नेहरू जी का विचार था कि सरकार को अपनी इस शक्ति का प्रयोग सदैव जन सामान्य के विकास के लिये करना चाहिये, न कि उनका दमन करने के लिये। सरकार सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये बाध्यकारी शक्तियो का प्रयोग अवश्य करेगी। सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति शासन में ही निहित होती है। यदि कानून की तरफ से मनुष्यों को यह अधिकार दे दिया जाये तो वह उन मनुष्यो और समूहो को निरोपित कर देगा जो अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये समाज को हानि पहुंचा सकते हैं। इस शक्ति का प्रयोग तब तक होगा जब तक्र मनुष्य और राज्य अपने आप मे पूर्ण नहीं हो जाते तथा स्वार्थ के स्थान पर सम्पूर्ण अच्छाई अपनी चरम सीमा पर नही पहुॅच जाती। नेहरू जी स्वयं इसका प्रयोग सामाजिक जीवन को अनुशासित एवं अवज्ञा तथा अराजकता को निरोधित करने के लिये कायम रखना चाहते थे। उनका कानूनों एवं आदेशों मे दृढ़ विश्वास था। नेहरू जी ने कानूनो और आज्ञा के सिद्धांत को व्यवहारिक जीवन मे एक आदर्श के रूप में स्वीकार किया है।

नेहरू जी ने एक अच्छी शासन-व्यवस्था की प्रकृति के सम्बन्ध मे अपने तर्क रखे। उन्होंने कहा कि एक अच्छी सरकार का औचित्य इस बात पर निर्भर करता है कि वह उत्पादन और

उपभोग की क्षमता तथा जन सामान्य का शारीरिक-मानसिक स्तर कहा तक ऊँचा करने मे समर्थ होती है। उन्ही के शब्दो मे ''स्वराज्य को मै अपने देश के लिये अच्छा मानता हूँ, लेकिन मै इस बात के लिये तैयार नही हूँ कि स्वराज्य को वास्तविक अच्छे शासन की कीमत पर लागू किया जाय। स्वराज्य जो अपने औचित्य को प्रमाणित कर सके ऐसा शासन समूह के लिये बेहतर शासन सिद्ध होगा।''[150]

नेहरू जी के दिमाग मे एक अच्छी शासन व्यवस्था का विचार था। वह शासन व्यवस्था मे सब अच्छाईयॉ देखना चाहते थे, जो होनी चाहिये। नेहरू जी के अनुसार शासन व्यवस्था का वही स्वरूप अच्छा हो सकता था, जो मानवीय विकास को प्रोत्साहन दे तथा जन सामान्य को अच्छे जीवन के अवसर प्रदान करे। नेहरू जी सरकार के इस सिद्धान्त मे आस्था नही रखते थे कि जो सरकार कम से कम शासन करे वही अच्छी है। उनके अनुसार वही सरकार अच्छी हो सकती है जो जनता के उद्देश्यो की पूर्ति करे। नेहरू जी ने पूर्व के राज्य और सरकार की ओर संकेत किया है कि इस समय शासन व्यवस्था को वैयक्तिक स्वार्थो की पूर्ति का साधन तथा सम्प्रभुता पर वैयक्तिक अधिकार माना जाता था। अब उस व्यवस्था का समय गुजर चुका है। वर्तमान काल मे सम्प्रभुता पर जन-सामान्य का अधिकार माना जाता है। शासन को आज बहुत से कार्यो का सम्पादन करना पड़ता है। वे समाजवादी सिद्धान्तो से प्रभावित थे। वह सरकार की कार्य प्रणाली से देश का म्युनिसपिलीकरण करना चाहते थे ''सरकार केवल वाह्य आक्रमण और आन्तरिक सुरक्षा से आपकी रक्षा नही करेगी बल्कि आपको शिक्षित करने के लिये भी अवसर प्रदान करेगी और औद्योगिक प्रगति के इस माध्यम से जनता का जीवन स्तर ऊँचा उठाने का प्रयास करेगी एवं संस्कृति के विकास के पूर्ण अवसर प्रदान करेगी। सभी प्रकार की सुविधायें और अवसर प्रदान करने का दायित्व सरकार के ऊपर है।''[151]

नेहरू जी का विचार था कि कोई भी सरकार तब तक सफल नहीं हो सकती जब्र तक जनता उसे सहयोग न प्रदान करे। उन्ही के शब्दों मे ''जनता के सामान्य कार्यो का तथा जनता के सहयोग के आधार पर ही सामान्य रूप से समस्याओं का समाधान हो सकेगा। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि कानून चाहे कितने अच्छे क्यो न हो, सरकार तब तक सफल नही हो सकती जब तक जनता उसे सहयोग न दे। जनता के सहयोग के आधार पर ही एक खराब राजनीतिक सरकार भी अच्छे परिणाम निकाल सकती है।''[152] प्रशासन अपने आप मे एक अच्छाई ही नहीं है बल्कि वरन् इससे जनता का कल्याण भी होता है।

नेहरू जी ससदात्मक व्यवस्था (प्रणाली) के समर्थक थे और उन्होने इसे ही भारत के लिये उचित माना। व्यवस्थापिका की व्यवस्था आधुनिक प्रजातंत्रो मे है। व्यवस्थापिका ही आधुनिक समय मे जनता का प्रतिबिम्ब एव प्रतीक दोनो है। ससदात्मक सरकार एक प्रजातत्रीय विचार है, समाजवादी व्यवस्था और ससदात्मक प्रजातत्र मे कोई अन्तर व सघर्ष नही है। लेकिन मै कहना चाहता हूॅ कि जैसे-जैसे ससदात्मक प्रजातंत्र मे वृद्धि होगी, उसी प्रकार वैयक्तिक स्वामित्व के साथ संघर्ष बढ़ता जायेगा।[153] नेहरू जी स्वयं को लोकतांत्रिक समाजवादी मानते है। वह लोकतत्र को राजनैतिक आधार के साथ आर्थिक आधार भी प्रदान करना चाहते थे। उनके मत मे राजनैतिक प्रजातंत्र और आर्थिक प्रजातंत्र दोनो ही एक दूसरे को पूर्ण बनाते है। उन्होने कहा कि ''भारत प्रजातंत्र के माध्यम से समाजवाद के रास्ते पर चल कर ही उन्नति प्राप्त कर सकता है। सैद्धान्तिक समाजवाद के आधार पर नही बल्कि व्यावहारिक समाजवादी सिद्धान्तो के आधार पर ही उन्नति सभव है। यही भारत के लिये उचित है और समय की भी मांग है।[154]

एक समाजवादी विचारक होने के नाते प. नेहरू के धर्म सम्बन्धी विचार काफी महत्वपूर्ण हैं। क्योकि समाजवाद और धर्म में विरोध रहता है। इसी कारण नेहरू जी ने धर्म के प्रति निरपेक्ष भाव रखा। उन्होंने भारत मे साम्प्रदायिकता को समाप्त कर एक धर्मनिरपेक्ष राज्य के निर्माण की बात सोची थी। वे सामाजिक समानता लाने के लिये जातिगत भेदभाव समाप्त करना चाहते थे। आर्थिक, राजनीतिक समानता के साथ-साथ सामाजिक समानता भी उनके लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण था। ऊॅंच-नीच, अछूत की भावना जो कि भारत वर्ष में प्राचीन समय से चली आ रही थी, उसे नेहरू जी ने कभी स्वीकार नहीं किया। अत: नेहरू जी के धर्म, जाति प्रथा उन्मूलन, अस्पृश्यता एवं अस्पृश्यता निवारण, तथा साम्प्रदायिकता निवारण पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

धर्म एवं राजनीति के सम्बन्ध पर नेहरू जी के विचार-

धर्म और राजनीति के सम्बन्ध समाजवादी राज्य में क्या हो? यह एक रोचक प्रश्न है। प्राचीनकाल से ही धर्म और राजनीति को एकबद्ध करने का प्रयत्न किया जाता रहा है। प्लेटो और अरस्तू ने राज्य को नैतिकता से घनिष्ठतम रूप से जोड़ा था। रोमन राज्य की उत्पत्ति और अस्तित्व का आधार सर्व धर्म ही था। मध्ययुग धर्मसत्ता और राजसत्ता के द्वन्द्व से भरा पड़ा है। सर्वप्रथम मैकियावेली ने राज्य सत्ता को धर्मसत्ता से अलग करने का विचार रखा, लेकिन

पूर्णरूप से हाब्स ने धर्म का राजनीति से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया। मार्क्स ने धर्म को अफीम की संज्ञा देकर धर्म का पूर्णरूपेण विरोध किया। परन्तु दूसरी तरफ जो दूसरे विचारक है जैसे - ग्रीन, गांधी इत्यादि ने धर्म को एवं नैतिकता को राज्य से जोड़ने का प्रयास किया है। लेकिन समाजवादियो ने धर्म की कटु आलोचना की है।

असमाजवादियो का विचार है कि समाजवाद धर्म और धार्मिक विश्वास के विरुद्ध है। परन्तु यह धारणा निर्मूल है, धर्म समाजवाद का कोई प्रयोजन नही। नेहरू जी ने अपनी बहन श्रीमती प्रेमा को एक पत्र लिखा था कि "विवाह, स्त्री अथवा पुरुष सम्बन्धी प्रश्नो का समाजवाद से क्या ताल्लुक बहुत व्यापक अर्थ मे समाजवाद जीवन का एक दर्शन है। इसलिये जीवन के सभी पहलुओ को इसके दायरे मे गिना जा सकता है। लेकिन साधारण तौर पर यह आर्थिक सिद्धान्त माना जाता है। जब मै समाजवाद की बात करता हूँ तो मेरा मतलब उस आर्थिक सिद्धान्त से होता है और मेरी राय मे धर्म, विवाह और नैतिकता की बातो को इससे सम्बद्ध करना बेहूदापन है।[155] जो समाजवाद में आस्था नही रखते उनकी शंका साम्यवादी घोषणापत्र के उस भाग पर है - कानून सदाचार है और धर्म सामान्य जनता के लिये पूँजीपतियो की रूढ़िगत भावनाएं है, जिनके आधार पर उनके बहुत से स्वार्थो की पूर्ति होती है। जर्मनी के सामाजिक लोकतंत्रवाद के दर्शन मे कहा गया था कि धर्म से व्यक्ति का व्यक्तिगत सम्बन्ध है जिससे समाज का सामूहिक रूप से कोई सम्बन्ध नही। समाजवाद का मत धर्म के विचारो से परे है, इसमे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी सभी धर्म के स्त्री पुरुष कन्धे से कन्धा मिलाकर उन्नति के मार्ग की ओर अग्रसर हो सकते है।[156]

नेहरू जी धर्म को वैयक्तिक और आन्तरिक अनुभूति की वस्तु समझते है। उसके वाह्य स्वरूप के सम्बन्ध मे, जो आज समाज में दिखाई पड़ता है, उसके नेहरू जी कट्टर विरोधी थे। उनके मतानुसार - "हिन्दुस्तान सब बातों से ज्यादा धार्मिक देश समझा जाता है और हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख तथा दूसरे लोग अपने-अपने मतों का अभिमान रखते है।..... और आवश्यकता इसे जड़, मूल से नष्ट करने की है।[157] नेहरू जी ने धर्म के वाह्य आडम्बर स्वरूप की आलोचना करते हुये कहा कि- "अन्ध विश्वास और प्रगति विरोध, जड़ (प्रमाण-रहित) सिद्धान्त और कट्टरपन, अन्ध विश्वास और शोषण नीति (न्याय अथवा अन्याय है) स्थापित स्वार्थों के संरक्षण का नाम ही धर्म है।"[158]

नेहरू धर्म का क्षेत्र अन्तर तक ही सीमित रखते थे। यदि वह वाह्य विश्व मे फैलाव का प्रयत्न करता है, अथवा विशेषाधिकारो को संरक्षण प्रदान करता है तो वह धर्म नही है, ''मुझे धर्म कट्टरता और रूढ़ियॉ कतई पसन्द नही है और अब समाज मे वे कमजोर पड़ रही है। मै किसी भी रूप मे इसका पक्षपाती नही हूॅ। मै इस बात का समर्थन नही कर सकता कि जाति या धर्म के नाम पर विशेषाधिकार सग्रह हो। धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार और किसी भी सस्कृति के अधिकार की बात मुझे कतई अच्छी नही लगती। ....इन सामाजिक अभिशापो को उखाड़ कर फेक दे, जिसने हमारे मुद्दे को धुंधला कर रखा है, यह गुलामी की सियासत, अधिकार, डर और नफरत पर टिकी हुई है।[159]

वाह्य धर्म का स्वरूप हमेशा ही प्रगतिशील विचारो का विरोधी रहा है और नैतिकता और आध्यात्मिकता को दूसरे लोक के पैमाने से न नापकर इसी लोक के पैमाने से नापना हो तो धार्मिक दृष्टिकोण अवश्य ही राष्ट्रो की नैतिकता और आध्यात्मिक प्रगति मे कोई सहायता प्रदान नही करता है। बल्कि बाधा ही डालता है। आम तौर पर धर्म ईश्वर या परमतत्व की असामाजिक या वैयक्तिक खोज का विषय बन गया है। नैतिक पैमानो का सम्बन्ध समाज की आवश्यकता से नही रहता, बल्कि पाप के अत्यन्त गूढ़, आध्यात्मिक सिद्धान्तो पर वे आधारित रहते हैं। और संगठित धर्म तो हमेशा स्थापित स्वार्थ ही बन जाता है। इस तरह लाजमी तौर पर यह परिवर्तन और प्रगति के लिये एक विरोधी (प्रतिगामी) शक्ति होता है।[160] नेहरू जी ने इसी संबंध मे कहा है कि ''धर्म क्या चीज़ है? शायद वह व्यक्ति की आन्तरिक उन्नति, एक खास दिशा में, जो अच्छी समझी जाती है उसकी चेतना का विकास है।[161]

इस आन्तरिक उन्नति से नेहरू जी का अभिप्राय था कि धर्म इसी भीतरी परिवर्तन पर जोर देता है और बाहरी परिवर्तन को इस आन्तरिक विकास का ही एक अंग या रूप मात्र मानता है। आन्तरिक विकास का वाह्य विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। लेकिन इसके साथ-ही-साथ वाह्य परिस्थितियों का आन्तरिक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। नेहरू जी आन्तरिक विकास के लिये वाह्य विकास को अनिवार्य मानते थे। वाह्य विकास से उनका अभिप्राय सम्पन्नता से था। उन्हीं के शब्दो में - ''जो आदमी आर्थिक परिस्थितियों का शिकार है और जीवन संघर्षों के बंधन और बाधाओ से घिरा हुआ है, वह शायद ही किसी ऊँची चोटी की आत्म चेतना को पैदा कर सके....। वह कभी आन्तरिक उन्नति मे सफल नही हो सकता है।[162]

नेहरू जी ने आन्तरिक चेतना के विकास को आर्थिक सम्पन्नता से सम्बद्ध किया है। जो आलोचना का विषय होते हुये भी, भारतीय परिवेश मे सर्वथा नवीन विचार है। अभी तक आन्तरिक विकास और वाह्य सम्पन्नता एक दूसरे के स्पष्टत: विरोधी रहे है (भारतीय परिवेश मे)। नेहरू जी की इस धर्म की व्याख्या पर स्पष्टत· पाश्चात्य धर्म की विचारधारा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

नेहरू जी राजनीति को धर्म से सम्बद्ध करने के पूर्ण विरोधी थे। उन्होने पाश्चात्य धर्म सम्प्रदायो के अध्यक्षो द्वारा राजनीति मे प्रवेश की कड़ी आलोचना की है। गांधी जी पूर्णरूपेण धार्मिक विचारक थे। उन्होने कहा था कि - ''कोई भी आदमी धर्म के बिना जीवित नही रह सकता। गांधी जी सभी चीजो को, जिसमे राजनीति भी सम्मिलित है, धर्म से सम्बद्ध करते थे। उनका मानना था कि सत्य के प्रति उनकी आस्था ने ही उन्हे राजनीति मे ला खीचा था। जो लोग यह कहते है की धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नही वे धर्म के अर्थ को नही समझते। नेहरू जी इस विचार से सहमत नही है। उनका विचार है कि ''लोकतंत्र के उचित क्रियान्वयन के लिये, राष्ट्रीय एकता एवं सामाजिक सुदृढ़ता के विकास के लिये यह आवश्यक है कि भारतीय जीवन से सम्प्रदायवाद को समाप्त कर दिया जाय।''[163]

जहॉ गांधी जी धर्म को राजनीति से जोड़ना चाहते थे वहा नेहरू जी इसको पूर्णरूप से अलग रखना चाहते थे। उनके विचारानुसार राजनीति और धर्म के सम्मिलन के सम्बन्ध मे जो बात करते है तथा इसके सम्बन्ध में जो कुछ मुझे जानकारी है तथा गांधी जी ने धर्म और नैतिकता के आधार पर जो राजनीति का स्तर खड़ा किया, इस चीज का निर्णय न्यायपूर्वक भविष्य मे विश्व करेगा। लेकिन इस रास्ते को नेहरू जी उचित नही समझते थे। धर्म और राजनीति का संयोग एक बहुत ही संकीर्ण शब्द है, इसमे कोई शंका नही कि यह बहुत ही खतरनाक संयोग है। यह सम्पूर्ण देश के लिये भी हानिकारक है और बहुमत तथा अल्पमत दोनो के लिये भी नुकसानदायक होगा।[164] नेहरू ने इसके परिणामो की ओर संकेत किया कि- 'मेरा विचार है कि देश के इतिहास ने इसके पूर्व परिणामो को देखा है। अल्पमत ने धर्म के आधार पर समाज तथा देश के साथ सदैव बलात्कार किया है। राजनीति और आर्थिक योजनाओं में कभी भी धर्म को स्थान नही देना चाहिये।''[165]

नेहरू जी धर्म निरपेक्ष राज्य मे आस्था रखते थे। धर्म निरपेक्ष राज्य न धार्मिक होता है और न अधार्मिक, न धर्म विरोधी। ऐसा राज्य धार्मिक कार्यों और सिद्धान्तों से सर्वथा पृथक होता है। धर्म निरपेक्ष राज्य में सभी नागरिको को धार्मिक विश्वास, पूजा एवं आत्मा की स्वतंत्रता

का अधिकार होता है। नेहरू जी का मत था कि धर्म के मामले मे सबको स्वतत्रता होगी परन्तु विशेषाधिकार अथवा अन्य प्रकार के प्रचार जो राज्य और दूसरे समुदायो के धर्मो पर आघात करेगे, सहन नही किये जायेगे। धर्म से अनास्था का मुख्य कारण यह था कि धर्म के आधार पर ही भारत का विभाजन और साम्प्रदायिकता की विभीषिका को नेहरू जी ने देखा था। लेकिन नेहरू जी का धर्मनिरपेक्षतावाद आलोचना का विषय है। नेहरू जी की धर्म निरपेक्षता मे अवसरवाद शामिल था, यह तथ्य उनके काश्मीर झगड़े से सम्बन्धित व्यवहार से सिद्ध हो गया। कश्मीर मे जनमत सग्रह के अपने प्रस्ताव को उचित ठहराने के लिये उन्होने लियाकत अली को तार भेजा था, दूसरे शब्दो मे यह जिन्ना के द्वि राष्ट्र सिद्धान्त को स्वीकार करना था। जब निजाम हैदराबाद का मामला आया तब वे इस सिद्धान्त को भूल गये। उन्होने केरल मे कांग्रेस दल के साथ मुस्लिम लीग को मिलाकर सरकार बनाने की अनुमति देकर यह बात प्रमाणित कर दी कि साम्प्रदायिकता के विरुद्ध भाषणो के बावजूद वे राजनीतिक दृष्टि से उसका उपयोग करने के विरोधी नही थे। नेहरू जी धर्म विरोधी होते हुये भी धर्म मे विश्वास रखते थे। उन्होने संकेत किया कि- ''धर्म मे और कुछ भी हो, उसमे कुछ ऐसी चीज भी है जो मनुष्यो की गहरी आन्तरिक आकांक्षा को भी पूरी करती है, नहीं तो इसका इतनी जबरदस्त शक्ति बनना कैसे संभव था।[166]

जाति प्रथा के उन्मूलन पर नेहरू जी के विचार -

जाति प्रथा प्रचीन समय से ही आलोचना का विषय रही है। आधुनिक काल मे जाति की कठोरता को तोड़ने के लिये मध्यम वर्ग में बहुत से आन्दोलन हुये है और उनका कुछ प्रभाव भी पड़ा लेकिन जहॉ तक आम जनता का प्रश्न है कोई विशेष प्रभाव नही हुआ है। इन आन्दोलनो का तरीका यह था कि वे सीधे-सीधे हमला बोल दिया करते थे। इसके बाद गांधी जी ने इस मामले को हिन्दुस्तानी तरीके से अपने हाथ में लिया-यानी घुमाव के तरीके से और उनकी निगाह आम जनता पर रही। उन्होने काफी सीधे तरीके से आक्रमण किया लेकिन उन्होने चारो वर्णों के मूल और बुनियाद मे कार्य करने वाले सिद्धान्त को चुनौती नही दी।

नेहरू इन विषमताओ को दूर करने के लिये आर्थिक सम्पन्नता को अनिवार्य तत्व मानते है। यदि आर्थिक सम्पन्नता की स्थिति में समाज पहुंच जाय तो जातिप्रथा जैसी समस्या भी स्वाभाविक रूप से स्वत: सुलझ सकती है। नेहरू जी जाति व्यवस्था के कर्म सिद्धान्त से कुछ सीमा तक सहमत हैं। उनका मत है कि जाति प्रथा जब तक कर्म के आधार पर रही उसका

स्वरूप यूरोप के व्यापारिक श्रेणियो के समान था। जाति व्यवस्था ने प्राचीन काल मे भारतीय समाज को स्थायित्व प्रदान करने मे कुछ सीमा तक सहयोग प्रदान किया। लेकिन समय परिवर्तन के साथ जब यह व्यवस्था जन्म के आधार पर स्थापित हो गयी तो वह राष्ट्रीय विकास के मार्ग मे अवरोधक बन गयी। जाति व्यवस्था राष्ट्रीय विकास के लिये एक हानिकारक समस्या है। जन्म के आधार पर होने से इसने एक भ्रामक समस्या को जन्म दिया। इसके वर्तमान रूप को पूर्णत· बदल देना चाहिये, क्योकि यह प्रजातात्रिक दशाओ के मार्ग मे अवरोधक है। नेहरू जी के मतानुसार इस समस्या के समाधान के लिये हमे वर्तमान समाज के आर्थिक क्षेत्र मे मौलिक परिवर्तन करने चाहिये। इस आर्थिक परिवर्तन से मानवीय जीवन की दशाओ मे प्रकृतिश: परिवर्तन स्वाभाविक है। इससे जीवन के मूल्यो मे भी परिवर्तन होगा तथा सामाजिक संगठनो से भी संघर्ष की सम्भावनाओ का अन्त हो जायेगा।[168]

वर्तमान समाज के विकास के संबंध मे नेहरू ने कहा कि - ''मेरा सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध मे जो विचार है वह सैद्धान्तिक न होकर पूर्णरूपेण व्यावहारिक है। आज विश्व के सभी देश इस विकृति से ग्रस्त है, जिसे जितनी जल्दी संभव हो दूर किया जाय...।[169] नेहरू जी समाज को सुचारु रूप से कायम रखने के लिये सहयोग की भावना पर जोर देते है। समाज का आधार सहयोग होना चाहिये, जबकि जाति व्यवस्था में सहयोग सम्पूर्ण समाज के साथ नही वरन् एक विशेष जातिगत समूह के साथ होता है.... तभी सामाजिक स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता को स्थिर रखा जा सकता है।[170]

यदि दूसरे समाजो के समान हम भारत के मूल उद्देश्य और संगठन पर दृष्टिपात करें तो विभिन्नता काफी सीमा तक मिल सकती है, जैसे कही जन्म के आधार पर, कहीं पूँजी के आधार पर, गहरा मतभेद है। इसको समाप्त करना बहुत बड़ी चीज नही है। ''हमारा पहला कर्त्तव्य होगा जो विभाजन समाज मे मौजूद है, उसे समाप्त किया जाय तभी हमारा सामाजिक जीवन उज्जवल होगा। मैं दोबारा कहता हूँ कि जाति व्यवस्था तथा समाज में धर्म के आधार पर जो विभाजन है उसे समाप्त किया जाय। आर्थिक आधार पर समाज में जो श्रेणियाँ बनेगी उनको मैं स्वीकार तो करता हूँ, परन्तु पूर्णरूपेण नही।[171] किसी भी सामाजिक समस्या के निराकरण के लिये नेहरू जी जन-सामान्य के सहयोग को अत्यधिक महत्व देते हैं, क्योकि कानून भी समाज में तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक की कानून के साथ समान सहयोग स्थापित न करे। शासन ने जातिगत विषमता, छुआछूत इत्यादि समस्याओ के सम्बन्ध में कानूनों का सृजन किया लेकिन उनका प्रभाव अभी तक नगण्य है। ''समाजवादी समाज का

आधार सहयोग होना चाहिये न कि बल। समाजवादी समाज इस बात का प्रयास करेगा कि.... समाजवादी समाज के निर्माण मे कुछ समय अवश्य लगेगा जिसमे जातिगत समस्याओ का कोई स्थान नही होगा। कही कही यह प्रक्रिया बहुत तीव्र हो सकती है जैसे रूस मे।''[172]

नेहरू जी समाजवाद को सभी समस्याओ के समाधान का मूल समझते थे। ''मेरा विश्वास है कि विश्व की समस्याओ का एक ही समाधान है, वह है- समाजवाद। जब मै इस शब्द का प्रयोग करता हूॅ तो मै कोई अस्पष्ट तरीके या जनसेवी तरीके पर नही बल्कि वैज्ञानिक और आर्थिक दृष्टिकोण से करता हूॅ। इसके माध्यम से ही हम सामाजिक बुराइयो को दूर कर सकते है। इससे ही सामाजिक ढ़ॉचे मे मौलिक परिवर्तन हो सकता है।[173] यदि हम समाजवादी व्यवस्था को अपना लेते है तो हमे उन सब जातिगत रीति-रिवाजो से जिनका आधार जन्म जाति अथवा और कुछ है मुक्ति मिल सकती है। हमारी भावी सामाजिक व्यवस्था मे जातिगत बन्धन नही होगे।[174] जातिगत समस्याओ के सम्बन्ध मे जहॉ नेहरू जी ने आर्थिक सम्पन्नता को अनिवार्य समझा वही उन्होने दूसरे साधनो को भी स्वीकार किया है इनमे नेहरू जी ने शिक्षा को अनिवार्य माना है। शैक्षिक सस्थाएं असमानता के क्षेत्र में अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। शिक्षा के माध्यम से ही एक नवीन समाज का निर्माण किया जा सकता है। इनकी स्थापना जातिगत अथवा साम्प्रदायिक आधार पर नही होनी चाहिये। समाज जितना शिक्षित होगा सामाजिक असमानताएं उतनी ही कम होगी।[175] शिक्षा वास्तव मे किसी भी समस्या के समाधान के लिये आवश्यक साधन होता है। शिक्षित समाज में जातिगत बन्धनो को कोई स्थान नही दिया जाता। जैसे-जैसे शिक्षा और आर्थिक सम्पन्नता मे वृद्धि होगी। जातिगत मान्यताएं ढ़ीली पड़ती जायेगी। नेहरू जी ने सामाजिक समस्याओ के समाधान के लिये आन्दोलन को भी मान्यता प्रदान किया है। सामाजिक समस्याओ को दूर करने के लिये उनसे प्रभावित सभी पक्षों का अवलोकन करना चाहिये.... समस्याओ के कारणो का विश्लेषण करके उनकी जड़ो की गहराई तक पहुचना चाहिये।[176]

नेहरू जी ने सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिये सामाजिक कल्याण बोर्ड (सोशल वेलफेयर बोर्ड) का विचार रखा।[177] जिसकी शाखाएं केन्द्र और राज्य मे खोली जानी थी। इस बोर्ड का काम सामाजिक समस्याओ का विश्लेषण तथा उनके कारणो का निराकरण होगा। इसी प्रस्ताव मे यह विचार भी रखा गया कि सामुदायिक योजनाएं प्रस्तुत की जायेगी तथा शिक्षा का प्रसार किया जायेगा। शिक्षित समुदाय सामाजिक समस्याओ के निदान का प्रयास करेगे। सेवाग्राम जैसी अन्य सामाजिक संस्थाए खोली जाये जिसमे शिक्षित समुदाय

स्वेच्छा से अपना योगदान प्रदान करेगे। नेहरू जी की यह योजना अवश्य ही इसमे सहायक सिद्ध हो सकती थी, लेकिन यह विचार तक ही सीमित रही। इसको क्रियान्वित न किया जा सका। जिस भावी समाज की नेहरू जी कल्पना करते थे, वह संघर्षो से मुक्त होगा। यही उस समाज का मूल उद्देश्य होगा, बल्कि उन कारणो को भी दूर किया जायेगा, जिनके कारण व्यक्ति एव व्यक्ति के मध्य संघर्ष की दशा मौजूद है।[178] जाति प्रथा से उत्पन्न असमानताओ को दूर करने के लिये नेहरू ने युवको को क्रान्ति के लिये प्रेरित भी किया क्योकि असमानता ही क्रान्ति का कारण होती है। प्राचीन सिद्धान्तो को (सामाजिक) जनतत्र और स्वतत्रता के अनुरूप परिवर्तित करना होगा।[179] नेहरू जी ने जाति व्यवस्था से उत्पन्न विषमताओ का विश्लेषण एक विश्लेषक के समान न करके एक वैधानिक व्यक्ति के समान किया। लेकिन वास्तविकता यह है कि नेहरू जी ने कभी भी जातिगत उच्चता के ऊपर प्रत्यक्ष रूप से आक्रमण नही किया, जबकि यह हमारे समाज की सबसे जटिल समस्या रही है।

अस्पृश्यता एवं अस्पृश्यता निवारण पर नेहरू जी के विचार -

अस्पृश्यता जाति प्रथा का आवश्यक परिणाम है, क्योकि जो जाति प्रथा समाज मे न्याय व स्थिरता के लिये निर्मित की गयी थी, उसी से कालान्तर मे उच्चता तथा निम्नता की भावना का विकास हुआ। शनै-शनै यह उच्चता और निम्नता की भावना इतनी अधिक मजबूत हो गयी कि शूद्रों के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न हो गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उच्च जातियॉ निम्न वर्णो के प्रति अलगाव की भावना रखने लगी और उनका स्पर्श भी पाप समझा जाने लगा। इसके समाधान के लिये समय-समय पर प्रयास होते रहे है। इस समस्या को समूल समाप्त करने के लिये गौतम बुद्ध, दयानन्द सरस्वती तथा महात्मा गांधी इत्यादि ने प्रयास किये। पं. नेहरू ने भी इस समस्या के समाधान के लिये सुझाव दिये तथा प्रयास किये। इस समस्या की जड़े इतनी गहरी है कि इसका समाधान निकट भविष्य मे दिखायी नही पड़ता। इस अस्पृश्यता की जड़े जाति प्रथा मे है और जब तक जातिप्रथा को समाप्त नही किया जायेगा तब तक अस्पृश्यता की समस्या समाप्त नहीं हो सकती।

समाज में आज जो गरीब है कमोवेश वही सामाजिक दृष्टि से अस्पृश्यता के पात्र है। नेहरू जी का मत है कि गरीबी को समाप्त करने पर ही जाति प्रथा तथा छुआछूत के बन्धनो को तोड़ा जा सकता है।[180] नेहरू जी ने समाज में समूल परिवर्तन करने का विचार ही नही रखा बल्कि समाज मे प्रचलित बुराईयो की आलोचना भी की। सामाजिक बुराईयो के प्रति

उन्होने न केवल अपनी असहमति प्रदान की बल्कि सामाजिक न्याय के लिये संघर्ष का भी आह्वान किया। हमे अस्पृश्यता के प्रति असहमति प्रदान करनी चाहिये तथा इसके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण भी अपनाना चाहिये। हमे सामाजिक ढ़ॉचे से इन बुराईयो को दूर करने के लिये सक्रिय भाग लेना चाहिये। तभी मानव समुदाय सुखी रह सकेगा।(181)

प्रत्येक समस्या के समाधान के लिये जन सहयोग की आवश्यकता होती है। किसी भी समस्या का समाधान तब तक नही हो सकता है, जब तक जनता अपना सहयोग और सहमति न दे दे। समाज का आधार सहयोग होना चाहिये। जब तक छुआछूत की समस्या का समाधान नही होगा तब तक सहयोग की कल्पना समाज के एक वर्ग से व्यर्थ है।(182) नेहरू जी ने कहा है कि - ''मै छुआछूत जैसी समस्या को मजबूती से तोड़ना चाहता हूँ, मै जातिगत विभाजन को भी दृढ़ता से समाप्त करना चाहता हूॅ। मैं इस हिन्दू समाज की कठोरता को समाप्त करके मानवीय सम्बन्धो को कायम रखना चाहता हूॅ।(183)

अस्पृश्यता की समस्या समाज मे एक रूढ़ि का रूप ले चुकी है। इस समस्या का एक मात्र समाधान नेहरू जी समाजवादी समाज मे ही संभव समझते है। उन्होने कहा था कि अगर हम समाजवादी समाज को अपना लेते है तो हमे उन सब रीति रिवाजो को समाप्त करना होगा जिसका आधार जन्मजात या और कुछ है। सब सामाजिक, आर्थिक समस्याओ का समाधान समाजवाद है, इसलिये हमारा ध्येय समाजवाद होना चाहिये। लेकिन कुछ विचारको का यह मत है कि इस लक्ष्य को एक साथ प्राप्त नही किया जा सकता है। इसके लिये हमे इसके अनुरूप ही कार्यक्रम बनाना होगा। इस कार्यक्रम मे यह बात साफ तौर पर होनी चाहिये कि हम सामाजिक बुराइयों को, जैसे- अस्पृश्यता की समस्या को सहन नही कर सकते।(184) नेहरू जी ने भावी समाज की कल्पना करते हुये लिखा है कि - ''मै उस हिन्दुस्तान के लिये कार्य करूँगा जिसमे गरीब से गरीब यह अनुभव करेगा कि यह उसका देश है जिसके निर्माण मे उसकी कारगर आवाज है...ऐसे हिन्दुस्तान मे छुआछूत के लिये कोई स्थान नही होगा।(185)

अस्पृश्यता के उद्भव एवं विकास के ऊपर नेहरू जी ने अपना मत व्यक्त करते हुये लिखा है कि अछूत शब्द समाज के नीचे के तल की कुछ जातियों पर लागू होता है, इसका उद्गम एवं विकास कैसे हुआ यह कह सकना मुश्किल है। शायद वे लोग जो गंदे समझे जाने वाले देशों मे थे, हिन्दुओ मे आचार सम्बन्धी शुद्धता का बड़ा कड़ा विचार रहा है....इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ जाति वाले इसलिये अछूत समझे जाने लगे कि उन्हें ऐसे आवश्यक धन्धों मे लगना पड़ा जो गन्दे समझे जाते थे।(186) वर्तमान समय में अस्पृश्यता को

समाप्त करने के लिये तथा दलित वर्ग को समाज मे स्थान दिलाने के लिये, विशेष अवसर के सिद्धान्त के लिये, पदो (स्थानो) मे आरक्षण का उपबन्ध रखा जाता है जिसका विकास भारतीय सविधान के माध्यम से हुआ। इसके सम्बन्ध मे नेहरू जी का विचार है कि पिछड़े वर्गो के लिये जो स्थान आरक्षित किया जायेगा वह भी एक प्रकार से अनुचित ही है। उनको शैक्षिक और आर्थिक सहायता प्रदान करनी चाहिये, उन्हे उन्नति के समान अवसर प्रदान करने चाहिये जिससे वे अपने पैरो पर खड़े हो सके।[187]

स्थानो के आरक्षण के प्रश्न पर डॉ. अम्बेडकर ने इस समस्या के निराकरण के लिये निर्वाचन क्षेत्र का प्रस्ताव रखा जिसका उन्होने काफी विरोध किया। उनका तर्क था कि इससे विभक्तिकरण की भावना को प्रोत्साहन मिलेगा।[188] लेकिन विंरोध के बाद भी दोनो प्रस्तावो को स्वीकार किया गया। वास्तव मे नेहरू का विचार बहुत कुछ सीमा तक उचित है। समाज को, दलित वर्ग को, शैक्षिक एवं आर्थिक सुविधाएं प्रदान करके उन्हे सभी वर्गो के साथ समान सघर्ष करने देना चाहिये, क्योंकि 'आवश्यकता आविष्कार की जननी' होती है। इससे उन वर्गो मे संघर्ष एवं साहस की क्षमता पैदा होगी जो कि सामाजिक चेतना के लिये आवश्यक है।

साम्प्रदायिकता-निवारण हेतु नेहरू जी के विचार -

भारत का समाज बहुजातीय समाज है। जब तक इस कटु साम्प्रदायिकता का अन्त नही होता तब तक समाज मे समता, सम्पन्नता एवं स्थायी शान्ति की स्थापना नही हो सकती। इसलिये इस समस्या की समाप्ति के लिये प्रयास निरन्तर निष्ठा के साथ होना चाहिये। आचार्य नरेन्द्र देव समाजवाद को ही इस समस्या की समाप्ति का साधन मानते थे। उन्ही के शब्दो मे - "यह कहना कि हिन्दू-मुस्लिम मे समझौता हो सकता है, बिल्कुल गलत है। साम्प्रदायिकता के जहर को नष्ट करने के लिये समाजराद ही एक उपचार है।[189]

समाजवाद का धर्म इत्यादि से कोई सम्बन्ध नही, पण्डित नेहरू ने श्रीमती प्रेमा बहन को एक पत्र मे लिखा था- "मेरी राय में धर्म, विवाह अथवा नैतिकता की बातो को इससे सम्बद्ध करना बेहूदापन है।" कानून, सदाचार और धर्म सामान्य जनता के लिये पूँजीपतियों की रूढ़िगत भावनाएं है जिनके आधार पर उनके स्वार्थों की पूर्ति होती है। धर्म के वाह्य रूप के माध्यम से संकीर्णता में वृद्धि होती है। भूतकाल में जो संकीर्णता थी उसी का परिणाम साम्प्रदायिता है। परन्तु आज की साम्प्रदायिकता पूर्णतया

धार्मिक स्वरूप लिये हुये नही है बल्कि इसमे कई तत्व सक्रिय रहते है। नेहरू जी के शब्दो मे ''मेरा यह विचार है कि भारत मे जो साम्प्रदायिक आन्दोलन है वह पूर्णतया धार्मिक नही है। इसमे कोई शंका करने की आवश्यकता नही है। कुछ समय पहले यह धार्मिक शोषण था, आज वह पूर्णतया राजनैतिक स्वरूप लिये हुये है। इसे हम आर्थिक भी कह सकते है, क्योकि राजनीतिक समस्याओ का प्रादुर्भाव मध्यम वर्ग की बेरोजगारी से साम्प्रदायिक आन्दोलन मे सहयोग करने से होती है।[190] नेहरू जी के इस तर्क से यही अर्थ निकलता है कि यदि हिन्दू और मुसलमान दोनो सम्प्रदायो की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर दी जाय तो शायद यह समस्या सुलझ सकती है। नेहरू ने अल्पसंख्यको के सम्बन्ध मे लिखा है कि ''हिन्दुस्तान का समस्त इतिहास.....सहयोग का साक्षी रहा है।''[191] लेकिन आज इस समाज मे सहयोग के स्थान पर संघर्ष का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। नेहरू जी ने कांग्रेस के ऊपर सकेत करते हुये लिखा था कि ''कांग्रेस तथा दूसरी संस्थाओ ने विभिन्न वर्गो की स्वीकृति से इस समस्या को हल करने का बार-बार प्रयास किया। कुछ थोड़ी सी सफलता भी मिली। वास्तव मे साम्प्रदायिकता की समस्या मूलत: साम्प्रदायिकता की समस्या नही है, बल्कि निहित स्वार्थो का संघर्ष है, इस सम्बन्ध मे उनका कहना है कि मै व्यक्तिगत रूप से सोचता हूँ कि यह सम्प्रदायवादी, जो राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये बढ़ावा देते है....सच्ची साम्प्रदायिकता एक भय और झूठी साम्प्रदायिकता एक राजनैतिक प्रतिक्रिया है।''[192]

नेहरू संस्कारत: आधुनिक थे। धर्म से उन्हें विशेष लगाव नही था। ''मुझे धर्म के अलगाव और सैद्धान्तिक विचारधारा से कोई लगाव नही है और मुझे खुशी है कि यह आजकल कमजोर होता जा रहा है। मै साम्प्रदायिकता के किसी भी रूप को स्वीकार नहीं करता हूं।''[193] नेहरू जी ने इस समस्या के उन कारणो के ऊपर गंभीर आघात किया जिसके माध्यम से यह समस्या जटिल बनती जा रही है। ब्रिटिश सरकार ने भी आंशिक रूप मे इस समस्या को जन्म दिया। परन्तु हमें उन कारणो तथा उन व्यक्तियों को हतोत्साहित करना चाहिये जो इसके विकास में सहायक होते हैं।[194] हमे यह नही भूलना चाहिये कि साम्प्रदायिकता की समस्या केवल वर्तमान तक ही सीमित है। यह हमारे समक्ष पनप रही है। हमें इससे अनभिज्ञ नहीं रहना चाहिये। यह भाषी प्रगति में बाधक अवश्य बनेगी। यदि इसको समाप्त नहीं किया गया तो भविष्य में ऐसी विचारधारा को जन्म देगी जो राष्ट्र के लिये बहुत ही हानिकारक सिद्ध होगी।[195]

आधुनिक समय मे गाधी जी ने प्रथम बार इस समस्या को अपने हाथ मे लिया और अपनी नीति के अनुसार उसका समाधान प्रस्तुत किया। गांधी एव नेहरू के मध्य इस सम्बन्ध मे कुछ मतभेद है। दोनो ही साम्प्रदायिक एकता के प्रबल समर्थक है लेकिन समाधान के सम्बन्ध मे दोनो मे काफी भिन्नता है। गाधी जी जहा तक हो सके, एक दूसरे के धर्मो की जानकारी, सहिष्णुता एव एक दूसरे के लिये सच्चा आदर्श और आध्यात्मिकता की नीव पर हल करना चाहते थे। गाधी जी का दृष्टिकोण गुरुनानक एवं कबीर के समान था, जबकि नेहरू का धर्म को अलग रखकर आधुनिक युग के भौतिकवादी पाश्चात्य अर्थशास्त्री का दृष्टिकोण था। जिस बात ने गाधी जी को इस ओर झुकाया कि वह नेहरू को अपना उत्तराधिकारी घोषित करे वह यह भी था कि नेहरू जी अपनी घरेलू परिस्थिति, शिक्षा एव स्वभाव, तीनो से एक प्रकार की संकीर्मता से ऊपर थे, जैसे धार्मिक सकीर्णता, जातिगत संकीर्णता व साम्प्रदायिक सकीर्णता। यह बात अलग है कि गॉधी जी की तकनीक और उनकी तकनीक में गहरा अन्तर है।

नेहरू जी मूलत: यथार्थवादी नेता थे। प्रत्येक समस्या के समाधान के सम्बन्ध मे भी वह यथार्थवादी तर्क ही प्रस्तुत करते थे। नेहरू जी किसी भी वास्तविकता को कहने मे संकोच नही करते थे। जब वह एक समाजवादी के विचार व्यक्त करते हैं कि ''समाजवाद विश्व की तथा भारत की सभी समस्याओ का समाधान कर सकता है तो ऐसा विचार एक मानववादी चितक के रूप मे नही बल्कि वैज्ञानिक, आर्थिक चितक के रूप मे व्यक्त करते हैं।[(196)]

यह समस्या भी जातिप्रथा के समान एक जटिल समस्या है। यह राष्ट्रीय एकता के विकास मे बाधक बन जाती है। नेहरू जी ने स्पष्ट शब्दो मे कहा था कि ''शासन को सही रूप मे चलाने के लिये तथा राष्ट्रीय एकता के लिये साम्प्रदायिकता को समाप्त करना होगा। विधानमण्डलो मे किसी भी प्रकार के साम्प्रदायिक संगठनो को कोई स्थान नही दिया जायेगा तथा साम्प्रदायिकता के नाम पर किसी के साथ कोई भेदभाव नही किया जायेगा।''[(197)]

इसी विचार को संविधान मे रखा गया कि ''किसी के साथ धार्मिक आधार पर भेदभाव नहीं किया जायेगा। गांधी जी प्रत्येक वस्तु के पहलू को धार्मिक दृष्टिकोण से देखते थे। इसके सम्बन्ध में नेहरू का मत है कि- ''हम जो राजनीति और नैतिकता के सम्मिलन की चर्चा करते है, या इसके सम्बन्ध मे मुझे जो कुछ भी जानकारी है, गांधी जी ने धर्म के आधार पर राजनीति का स्तर खड़ा किया....राजनीति और आर्थिक योजनाओ मे कभी भी धर्म को स्थान नहीं देना चाहिये।''[(198)]

नेहरू जी का तर्क बहुत कुछ सीमा तक सही है, क्योकि धर्म और राजनीति का सम्मिश्रण जब भी हुआ एक नवीन प्रकार के सघर्ष का प्रादुर्भाव हुआ। इसके प्रमाण मध्य युग के इतिहास मे काफी मात्रा मे मिल जाते है। लेकिन गाधी जी की धर्म की अवधारणा एक उच्च प्रकार की थी, जो जन साधारण की समझ के बाहर की वस्तु है। नेहरू जी ने इस समस्या के सम्बन्ध मे जो कुछ भी तर्क तथा नीतिया प्रस्तुत की, वह संतोषजनक नही है। नेहरू जी एक कुशल राजनीतिज्ञ थे, वे ऐसा कोई कार्य नही करना चाहते थे जिससे जनता उनके विरुद्ध हो जाय, यह उनकी प्रकृति का सबसे बड़ा गुण था।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि नेहरू जी ने भारतीय समाज के समाजवादी दिशा मे बुनियादी रूपांतरण के लिये कार्य किया। यह तो साफ ही है कि वे समाजवादी समाज के निर्माण मे असफल रहे और उनकी घोषणाओ और उनके व्यवहार मे एक विशाल अतराल बना रहा। परन्तु साल दर साल वे इस समस्या पर चितन करते रहे कि कैसे एक अविकसित समाज मे जनवादी राजनीति के आधार पर समाजवाद का निर्माण किया जाना चाहिये। नेहरू ने ही समजावादी दृष्टिकोण को करोड़ो जनता तक पहुचाया और समाजवाद को उनकी चेतना का अंग बना दिया। इसके अलावा समाजवाद के प्रति उनके विचार तथा उसकी स्थापना और विकास के सबंध मे उनकी रणनीति एवं उनका राजनीतिक आचरण, आधुनिक भारत में समाजवादी रूपाँतरण की समस्या पर गहरी अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

नेहरू जी ने समाजवाद को निश्चित योजना अथवा कट्टर सिद्धातो के संदर्भ मे कभी परिभाषित नही किया। उनके लिये बहुत ही साधारण रूप से समाजवाद का अर्थ अवसर की अधिक से अधिक समानता, सामाजिक न्याय, आधुनिक विज्ञान एवं तकनीक के दोहन के माध्यम से उत्पन्न उच्च आमदनी का अधिक समान वितरण, पूंजीवाद और सामंतवाद द्वारा पैदा की गई गहरी आर्थिक और सामाजिक असमानता का अत तथा सामाजिक समस्याओ के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का पालन आदि था। वे समाजवाद का अर्थ, बटोरने की मानसिकता का अंत, मुनाफा की सर्वोच्चता और पूंजीवादी प्रतियोगिता को त्यागकर सहकारिता और सहयोग की भावना का विकास करना समझते थे। इसका मतलब वर्गीय अंतर और वर्गीय वर्चस्व का धीरे-धीरे क्रमिक रूप से अंत कर देना भी था। समाजवाद के तहत प्रमुख उत्पादन साधनों पर व्यापक सामाजिक स्वामित्व और नियंत्रण स्थापित करना भी शामिल था। पर नहेरू ने इस बात पर बल दिया कि सबसे पहले समाजवाद के अंतर्गत ज्यादा उत्पादन हासिल करना आता है, नही तो सिर्फ गरीबी ही आपस मे बांटी जा सकती है समृद्धि नहीं। दरअसल उनके लिये समाजवाद का अर्थ ज्यादा उत्पादन तथा समतापूर्ण वितरण था।

भारतीय परिस्थितियो मे नेहरू समाजवाद को एक घटना के बजाए रूपातरण की सतत प्रक्रिया के रूप मे देखते थे। इस प्रकार समाजवाद रूपांतरण की कोई पूर्व-परिभाषित या पूर्व निर्धारित योजना नही थी बल्कि कदम-दर-कदम आगे बढ़ने के साथ-साथ समाजवाद को परिभाषित होते जाना था। इसके अलावा समाजवादी रूपातरण को मुख्यत मौजूदा सामाजिक-आर्थिक ढ़ॉचे के अदर सुधारो की श्रृखला के सहारे पूरा होना था। अचानक किसी खास विस्फोट से नही, बल्कि सतत् परिवर्तन द्वारा लबे कालक्रम मे पूरा होना था जिसका प्रभाव एक क्रान्ति या आमूल सामाजिक रूपातरण जैसा ही होता। नेहरू ने इन सुधारो की तुलना शल्य चिकित्सा से की। इस तरह उनके लिये समाजवादी क्रान्ति मे ऐसे आपरेशनो की श्रृखला की जानी थी जिन्हे जनवादी विधानो के तहत स्थापित कानूनो की मदद से पूरा किया जाना था।

नेहरू का विश्वास था कि जनवाद और नागरिक अधिकार समाजवाद के बुनियादी तत्व है। वे उन्हे अविभाज्य मानते थे। नेहरू समाजवादी विकास की गति को धीमा भी करने के पक्ष मे थे ताकि अपने साथियो और आम जनता को समझा-बुझाकर, सहमत कर अपने साथ ले जाया जा सके बजाए इसके कि बिना लोगो के विचारो की परवाह किये राज्य की विभिन्न संस्थाओ की स्वायत्तता का उल्लंघन कर जबर्दस्ती इसे पूरा करने की कोशिश की जाए। इसके अतिरिक्त दीर्घजीवी और गहरी जड़े जमाने के लिये समाजवाद को आम स्वीकृति और जनवादी दृष्टिकोण की बहुत आवश्यकता थी।

दूसरी बात, 1930 के दशक मे फासीवाद के उदय से सबक सीखते हुए नेहरू ने यह तर्क दिया कि बिना व्यापक सामाजिक सहमति के समाजवाद की तरफ बढ़ाया गया कोई भी कदम फासीवादी खतरे को आमत्रित करना होगा। नेहरू शक्तिशाली भूस्वामी तबके तथा उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक शक्ति एव उनकी भारी सख्या से अच्छी तरह परिचित थे। उन्होने यह महसूस किया कि ग्रामीण और शहरी, दोनो ही क्षेत्रो के मध्यवर्ती तबके को बहुत सावधानी से संभालने की जरूरत है। क्योंकि यह तबका आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा है और यही वह तबका है जो जर्मनी मे फासीवाद का आधार बना था। सपत्तिशाली वर्गो पर सीधा-सीधा को भी प्रहार इन वर्गों के साथ-साथ मध्यवर्ग को भी फासीवादी खेमे मे पहुचा देगा। इसलिये अल्पमत वाली किसी क्रांति का प्रयास अथवा बड़े पैमाने पर जनता को अपने पक्ष मे तैयार किये बगैर किसी ऐसे प्रयास का फल सिर्फ प्रतिक्रांति और समाजवादी क्रांति के आगमन के बजाए जनवाद की पराजय भी होता। फासीवाद के अलावा ऐसा कोई भी प्रयास भारतीय जनता को अनिवार्यत: बांट देता जबकि उनकी एकता की आवश्यकता बनी हुई थी, जो अब भी दुर्बल ही थी।

तीसरी बात, समाजवाद की तरफ एक खुला दृष्टिकोण अपनाने का एक अन्य कारण यह भी था कि नेहरू जी यह मानते थे कि एक विशाल आबादी को समाजवाद की किसी कटी छटी निश्चित अवधारणा के इर्द-गिर्द आंदोलित करना सभव नही था। विशाल आबादी को सिर्फ विभिन्न हितो और अनेक दृष्टिकोणो एव विचारधाराओ वाले एक साझा समाजवादी दृष्टिकोण और व्यापक दायरे मे ही आदोलित किया जा सकता है।

समय के दौरान नेहरू ने महसूस किया कि एक समाजवादी समाज की स्थापना शांतिपूर्ण एवं अहिसक रास्ते से हो सकती है। वर्ग संघर्ष के अस्तित्व और महत्व को स्वीकार करते हुये भी उनका विश्वास था कि इसे अहिसक मार्ग और कानून के शासन के माध्यम से सुलझाया जा सकता है।

समय बीतने के साथ-साथ वे गॉधी जी के इस विचार के बहुत निकट हो गये कि समाजवादी भारत के निर्माण मे राह को भी उतना ही महत्व देना चाहिये जितना कि मंजिल को। उनके मुताबिक गलत रास्ता कभी भी मंजिल पर नही ले जा सकता है। साध्य और साधन की अविभाज्यता पर उनका अटूट विश्वास भी क अन्य कारण था जिससे वे समाजवाद जैसी बेहतरीन मंजिल के लिये भी हिसा का रास्ता अख्तियार करने को तैयार नही थे और लगातार इसकी ज्यादा से ज्यादा आलोचना करने लगे थे।

संदर्भ ग्रन्थ

1 नेहरू, जवाहरलाल, *''मेरी कहानी''* पृ 21
2 दिनकर, रामधारी सिह, *''लोकदेव नेहरू''* पृ 61
3 वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद, *''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चितन''* पृ 542
4 वही, पृ 543
5 नेहरू जी के मन मे बुद्ध तथा ईसा के लिये गहरा अनुराग था (आटोबायोग्राफी, पृ 271) किन्तु चिगिज खॉ ने भी उन्हे बहुत आकृष्ट किया था (ग्लिपसेज़ आफ द वर्ल्ड हिस्ट्री, पृ 220)
6 नेहरू, जवाहर लाल, *''ऐन आटोबायोग्राफी''* पृ 373
7 वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद, *''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चितन''* पृ 552
8 वही, (पुस्तक के पृष्ठ 552 से उद्धत पक्तियाँ)
9 नेहरू, जवाहर लाल, *''मेरी कहानी''* पृ. 128
10 1949 मे शिकागो विश्वविद्यालय मे दिया गया नेहरू जी का भाषण
11 नेहरू, जवाहर लाल, *''हिन्दुस्तान की कहानी''* पृ 63
12 वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद, *''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चितन''* पृ 547
13 डॉ राधाकृष्णन, *''नेहरू''* पृ 9
14 वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद की पुस्तक आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन के पृष्ठ 555 से उद्धत
15 नेहरू, जवाहर लाल, *''मेरी कहानी''* पृ. 38
16 वही, पृ 44
17 अग्रवाल, अमर नारायण, *''समाजवाद की रूपरेखा''* पृ 213
18 नेहरू, जवाहर लाल, *''सोवियत रसिया''* पृ 20
19 नेहरू, जवाहर लाल, *''एन आटोबायोग्राफी''* पृ 56-63
20 वही, पृ 362-64
21 नेहरू, जवाहर लाल, *''द डिस्कवरी आफ इण्डिया''* पृ 13-14
22 वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद, *''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन''* पृ 546
23 शर्मा, डॉ उर्मिला एव डॉ. एस.के , *''भारतीय राजनैतिक चितन''* पृ 359
24 नेहरू, जवाहर लाल, *''द डिस्कवरी आफ इण्डिया''* पृ 356
25 शर्मा, डॉ. उर्मिला एव डॉ. एस.के की पुस्तक, *''भारतीय राजनैतिक चिंतन''* के पृ 359 से उद्धत
26 एस गोपाल, (स.) *''जवाहरलाल नेहरू वाङ्मय''* भाग-4, पृ 194 (काग्रेस प्रेसिडेन्शियल एड्रेस, लाहौर, 1929)
26 दास, एम एन , *''द पोलिटिकल फिलॉसफी आफ जवाहर लाल नेहरू''* पृ. 129
27 चतुर्वेदी, बनारसीदास, *''नेहरू-व्यक्तित्व और विचार''* (स), पृ 392
28 एस गोपाल, *''जवाहरलाल नेहरू-ए बायोग्राफी''*, भाग-1, पृ 35
29 दास, एम एन., *''द पोलिटिकल फिलॉसफी आफ जवाहर लाल नेहरू''* पृ 129
30 पट्टाभिसीता रमैया, *''कांग्रेस का इतिहास''*, खण्ड-1, पृ. 455
31 एस. गोपाल, *''जवाहर लाल नेहरू-ए बायोग्राफी''*, भाग-1, पृ 52-55
32. बोस, सुभाष चन्द्र, *''द इण्डियन स्ट्रगल''* पृ 39
33. एस गोपाल, *''जवाहर लाल नेहरू वाङ्मय''*, भाग-7, पृ 176

34 वही, पृ 176
35 वही, पृ 176
36 नार्मन डोरोथी (स), *''नेहरू-द फर्स्ट सिक्सटी ईयर्स''* पृ 410
37 नेहरू, जवाहर लाल, *''विश्व इतिहास की झलक''*, खण्ड-2, पृ 1136-37
38 नेहरू, जवाहर लाल, *''कुछ पुरानी चिट्ठियाँ''* पृ 150-152
39 नेहरू जी का यह निबन्ध, *''द यूनिटी आफ इण्डिया''* नामक पुस्तक मे सकलित है
40 नेहरू, जवाहर लाल, *''द यूनिटी आफ इण्डिया''* पृ 95-98
41 नार्मन, डोरोथी (स), *''नेहरू-द फर्स्ट सिक्सटी ईयर्स''*, खण्ड-2, पृ 338
42 प्रथम पचवर्षीय योजना के प्राक्कथन के प्रथम सौ पृष्ठो मे एक वर्गहीन समाज की कल्पना की है
43 घोष, शकर, *''सोशलिज्म एण्ड कम्युनिज्म इन इण्डिया''* पृ 204
44 वही, पृ 205
45 ब्रेचर, माइकेल (स), *''नेहरू ए पोलिटिकल बायोग्राफी''* पृ 204
46 राव, अमीय, राव, बी जी , *''सिक्स थाउजेन्ड डेज़''* पृ 20
47 शकर, डॉ शोभा, *''आधुनिक भारतीय समाजवादी चिन्तन''* पृ 122
48 राव, अमीय, राव,बी जी , *''सिक्स थाउजेन्ड डेज़''* पृ 05
49 जकारिया, रफीक, *''ए स्टडी आफ नेहरू''* पृ 272
50 ब्रेचर, माइकेल (स), *''नेहरू ए पोलिटिकल बायोग्राफी''* पृ 597
51 मार्क्स, कार्ल, ऐंजेल्स, फ्रेडरिक, *''सकलित रचनाये''* भाग-2, पृ 9
52 वही, भाग-3, पृ 90
53 एस गोपाल, (स) *''जवाहर लाल नेहरू वाङ्मय''*, भाग-7, पृ 110
54 वही, भाग-7, पृ 110
55 वही, भाग-7, पृ 111
56 वही, भाग-7, पृ 111-112
57 वही, भाग-7, पृ 112
58 वही, भाग-7, पृ 112
59 वही, भाग-4, पृ 196
60 वही, भाग-4, पृ 196
61 वही, भाग-4, पृ 196
62 वही, भाग-7, पृ 258
63 वही, भाग-7, पृ 258
64 गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया, *''प्लानिंग कमीशन, 3rd फाइव ईयर प्लान, 1961''* पृ 9
65 नेहरूज़ स्पीचेज़, जिल्द-3, नई दिल्ली, 1970, पुनर्मुद्रित, पृ. 17-18
66 जालान विमल, *''इन्ट्रोडक्शन, द इंडियन इकोनोमी''*- प्राब्लेम्स एण्ड प्रॉसपेक्ट्स (स), विमल जालान, नई दिल्ली,1992, पृ 111
67. दत्त, रुद्र एवं सुन्दरम्, *''भारतीय अर्थ व्यवस्था''* पृ 185-1994
68 गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया, *''प्लानिंग कमीशन, फर्स्ट फाइव ईयर प्लान''* पृ 44
69 *'भारत'*, वार्षिक संदर्भ ग्रन्थ, 1999, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मत्रालय, भारत सरकार, पृ 561
70. चन्द्र, बिपिन (सं.), *''आजादी के बाद का भारत - 1947-2000''*, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2001, पृ 455
71 वही, पृ. 362
72. वही, पृ 456
73. राज, के एन , *''इण्डियन इकोनोमिक ग्रोथ· पर्फामेन्स एण्ड प्रॉस्पेक्ट्स''* नई दिल्ली, 1965, पृ 2
74. चन्द्र, विपिन (सं), *''आज़ादी के बाद का भारत''*, 1947-2000, पृ 457

75 वैद्यनाथन, ए , *''द इडियन इकोनॉमी सिस इडिपेन्डेन्स''*, (1947-70), धर्म कुमार द्वारा सम्पादित, *''द कैम्ब्रिज़ इकोनॉमी हिस्ट्री आफ इण्डिया''*, नई दिल्ली, 1983, पृ 961

76 *'इण्डिया'*, ए रिफरेन्स एनुअल, गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया, 1980, पृ 312

77 "I, we are to work for socialism, we have to remember that there can be not only real socialism in a backward and underdeveloped country Socialism and communism were the children of the Industrial civilization which led togather material resources Socialism, therefore, is based on the growth of material resources as well as social justice and co-operative mathod of working" जायसवाल, सीताराम, *''नेहरू ऑन सोसाइटी, एजुकेशन एण्ड कल्चर''* पृ 12

78 नेहरूज़ स्पीचेज, भाग-2, पृ 323

79 नई दिल्ली मे नेहरू जी का भाषण, 18 दिसम्बर 1948

80 एस गोपाल, *''जवाहर लाल नेहरू वाड्मय''* भाग-7, पृ 177

81 वही, पृ 177-178

82 वही, पृ 177

83 ` It can hardly be challenged that, in the contaxt in the modern world, no country can be politically and economically independant even within the frame work of international interdependence unless it in highly industrialized and has developed its power development. " नेहरू, जवाहर लाल, ''ए डिस्कवरी आफ इण्डिया'' पृ 385

84 मिबोलेन लियोनिद व फेदिन निकोलोई, *''नेहरू सोवियत दृष्टि मे''* पृ. 38

८५ नेहरूज़ स्पीचेज़, वाल्यूम-2, पृ 85

86 वही, पृ 325

87 नेहरूज़ स्पीच इन पार्लमिन्ट, 21 दिसम्बर 1951

88 मेहता, अशोक, *''डेमोक्रेटिक सोशलिज्म''* पृ 159-60

89 ``He also believed in repid industrialization of the country for relieving the pressure on land, and for defence, as well as for a variety of there purposes He was equally convinced that the most careful planning and adjustment were necessary in order to reap the fall benefit of industrializaion, and to avoid many of its dangers
(Das M N , *The political philosophy of Neheru*, P 160-61)

90 ``There can be no real well being or advance in National standared in India without the big Factory नेहरूज़ *स्पीचेज*, वाल्यूम-3, पृ 23

91 वही, पृ 79

92 नेहरू टू कृष्णा कृपलानी, 27 सितम्बर 1939

93. नेहरू, जवाहर लाल, *''ऐन आटोबायोग्राफी''* पृ 227

94. नेहरूज़ *स्पीचेज* इन पार्लमिण्ट, 15 सितम्बर 1952

95 खादी एव ग्रामोद्योग बोर्ड के उद्घाटन पर नेहरू जी का नई दिल्ली मे भाषण

96 नेहरूज़ स्पीचेज़, वाल्यूम-3, पृ. 62

97 मुखर्जी, आदित्य एव मुखर्जी मृदुला, *'इम्पीरियलिज्म एण्ड द ग्रोथ आफ इण्डियन कैपिटलिज्म, इन द ट्वेन्टीयथ सेन्चुरी''*, ई पी डब्ल्यू. मार्च, 1988

98. चन्द्र, विपिन, *''आजादी के बाद का भारत- 1947-2000''* पृ. 451-52

99. आई एन.सी. *''इकोनोमिक रेज़ोल्यूशन''* पृ. 29

100. योजना, 1-15 जनवरी 1991, पृ. 15

101. योजना, 1-15 दिसम्बर 1990, पृ 30

102 वही, पृ. 31

103 ` Nehru was told by some people that to attempt to nationalize private property,except with the consent of the owners, would be coercion, and as such opposed to non-violence But his concept of non-violence did not extend so far as to entertain such ideas " oeme, Sce Sve , *The political philosophy of Neheru,* पृ 155

104 पार्लमिण्ट मे नेहरू जी का भाषण, 21 दिसम्बर 1954

105 He had no doubt from the begining that coercion or pressure was necessary to bring about political and social change in India " (Das M N , *The Political Philosophy of Neheru",* P 154)

106 ``As the conception of property changes, the state interferes more the more, public opinion demands, and the law enforces, a limitation of the anarchic rights of property-owners " (J L Neheru, An Autobiography, P 521, coated from - Das M N , *The Political Philosophy of Neheru*) P 154

107 नेहरूज़ *स्पीचेज़,* वाल्यूम-3, पृ 80

108 ब्रीचर, माइकेल, *''ए पोलिटिकल बायोग्राफी आफ नेहरू''* पृ 274

109 नेहरू, जवाहर लाल, *''हिन्दुस्तान की कहानी''* पृ 201

110 वही, पृ 201

111 वही, पृ 201

112 चन्द्र, विपिन, *''आजादी के बाद का भारत, 1947-2000''*, पृ 495-96

113 वही, पृ 496

114 वही, पृ 499

115 प्लानिंग कमीशन, IInd फाइव ईयर प्लान, 1956, पृ 188

116 अप्पू, पी एस *'टेनेसी रिफार्म इन इण्डिया''*, ई पी. डब्ल्यू, स्पेशल नम्बर अगस्त 1975, पृ 1345

117 वही, पृ 1347

118 थार्नर, डेनियल, *''द शेपिंग आफ माडर्न इडियन''*, नई दिल्ली, 1980, पृ 245

119 चन्द्र, विपिन, *''आजादी के बाद का भारत-1947-2000''*, पृ 506

120 वही, पृ 506

121 नेहरू, जवाहर लाल, *स्पीचेज़*, जिल्द 2, पृ. 50

122. वही, जिल्द-2, पृ. 51

123 वही, जिल्द-2, पृ. 52

124 वही, जिल्द-2, पृ. 54

125 वही, जिल्द-2, पृ. 56

126 वही, जिल्द-3, पृ. 22

127 वही, जिल्द-3, पृ. 25

128 वही, जिल्द-5, पृ 101

129 वही, जिल्द-5, पृ. 83

130 सेलेक्टेड वर्क्स आफ नेहरू, वाल्यूम-3, पृ 110

131 "Co-operatives are the one and only way for agriculture in India Co-operative farming or joint farming is the right method for Indian Agriculture " जवाहर लाल नेहरू आन कम्युनिटी डेवलेपमेन्ट, पचायती राज एण्ड को-आपरेशन, पृ. 145

132. वही, पृ 145

133 वही, पृ. 146

134. लियोन्तीव, एल., *''समाजवाद · पूँजीवाद''*, पृ 19

135. वही, पृ. 20

136 None of them should have any property of his own beyond what,is absolutaly necessary , neither should they have a private house or store closed against anyone who has a mind to enter "
(`Plato's Republic' Translated by, Jovet Y R , P 127)

137 "All centralization is a slight encroachment on the freedom of the individual He wants to preserve the freedom of the individual, but at the same time understands the impossibility of escaping centralization in modern society " दास, एम एन , *''द पोलिटिकल फिलॉसफी आफ नेहरू''* पृ 169

138 चतुर्वेदी, बनारसी दास, *''नेहरू-व्यक्तित्व और विचार''* पृ 1440

139 नेहरू जवाहर लाल, *''रिसेन्ट एस्से एण्ड राइटिग्स''* पृ 123

140 वही, पृ 126

141 टाक्स विद नेहरू ए डिस्कशन विटविन नेहरू एण्ड नार्मन कज़िन, पृ 24

142 नेहरूज़ स्पीचेज़, वाल्यूम-3, पृ 17

143 नेहरू, जवाहर लाल, *''सामुदायिक विकास और पचायती राज''* पृ 137-38

144 वही, पृ 151

145 वही, पृ 161

146 वही, पृ 165

147 "But when a state goes of the rails completely and begains to indulge in disorderly violance then it is terrible thing and no private or individual effort can complete with it in horrow and brutality" नेहरूज़ एस्से, वाल्यूम-2, पृ 145

148 "Must the state always be based on force and violence or will the day come when this element of compulsion is reduced to a minimum and almost feds away" वही पृ 123

149 "Violence is the very life blood of the modern state and the social system Without the coercive apparatus of the state taxes would not be realized The national state itself exists because of effensive and defensive violence " नेहरू, जवाहर लाल, *''एन आटोबायोग्राफी''* पृ 540

150 "I belive that self government in good for my country but I am not prepared accept even self government if it is to justify itself must stand ultimately for better government for the masses " वही, पृ 486

151 नेहरू, जवाहर लाल, एस्से I, पृ 38

152 नेहरू स्पीचेज़, वाल्यूम-3, पृ 142

153 वही, वाल्यूम-2, पृ 197

154 वही, पृ 198

155 नेहरू, जवाहर लाल, *''कुछ पुरानी चिट्ठियाँ''* पृ 115

156 डॉ सम्पूर्णानन्द, *''गाँधीवाद · समाजवाद''* पृ 524

157 नेहरू, जवाहर लाल, *''मेरी कहानी''* पृ 524

158 वही, पृ 524

159 चतुर्वेदी, बनारसी दास, *''नेहरू व्यक्तित्व और विचार''* पृ 447

160 नेहरू, जवाहर लाल, *''मेरी कहानी''* पृ 529

161 वही, पृ 503

162 वही, पृ 531

163 **"Where as, it is essential for the proper functioning of democracy and the growth of national unity and solidarity that communalism should be eleminited from Indian life "** नेहरू स्पीचेज़, वाल्यूम-1, पृ 73

164 वही, पृ 530

165 वही, पृ 531

166 नेहरू, जवाहर लाल, *''मेरी कहानी''* पृ. 524

167 सेन, एन वी , *''विद एण्ड विसडम आफ नेहरू''* पृ (भाषण-हरिजन काफ्रेस, वर्धा, नवम्बर 52)
168 वही, पृ 108
169 नेहरूज़ स्पीचेज़, वाल्यूम-3, पृ 5
170 वही, पृ 109
171 नेहरू जी का भाषण, *''शेड्यूल ट्राइब एण्ड शैड्युल्ड एरिया के उद्घाटन पर''*
172 नेहरूज़ स्पीचेज, वाल्यूम-2, पृ 5
173 चतुर्वेदी, बनारसी दास, *''नेहरू व्यक्तित्व और विचार''*, भाग-2, पृ 492
174 वही, पृ 424
175 जकारिया रफीक, *''ए स्टडी आफ नेहरू''*, वाल्यूम-3, पृ 84-85
176 दास, एम एन , *''द पोलिटिकल फिलॉसफी आफ नेहरू''* पृ 143
177 नेहरूज़ स्पीचेज़, वाल्यूम-4, पृ 428-32
178 जायसवाल, सीताराम, *''नेहरू आन सोसायटी-एजुकेशन एण्ड कल्चर''* पृ 12
179 वही, पृ 15
180 नेहरूज़ *स्पीचेज़*, वाल्यूम-2, पृ 530
181 वही, पृ 530
182 वही, पृ 109
183 वही, पृ 453
184 चतुर्वेदी, बनारसी दास, *''नेहरू व्यक्तित्व और विचार''*, भाग-2, पृ 439
185 नेहरू, जवाहर लाल, *''मेरी कहानी''* पृ 234
186 वही, पृ 171-72
187 नेहरू स्पीचेज़ इन कान्स्टीट्युशन एसेम्बली, 18 अप्रैल 1948
188 *सेलेक्टेड वर्क्स आफ नेहरू*, वाल्यूम-3, पृ 53
189 आचार्य नरेन्द्र देव, *''राष्ट्रीयता और समाजवाद''* पृ 115
190 *सेलेक्टेड वर्क्स आफ नेहरू*, वाल्यूम-5, पृ 107-8
191 नेहरू, जवाहर लाल, *''हिन्दुस्तानी की कहानी''* पृ 287
192 *सेलेक्टेड वर्क्स आफ नेहरू*, वाल्यूम-6, पृ. 159
193 सेन, एन वी , *''विद एण्ड विज़डम आफ नेहरू''*, पृ 155
194 वही, पृ 131
195 लेटर टू द लार्ड लोथिन, 17 जनवरी 1936
196 मुखर्जी, हिरेन, *''ए स्टडी आफ नेहरू''* पृ 55
197 नेहरूज़ स्पीचेज़, वाल्यूम-1, पृ. 77
198 सविधान सभा मे नेहरू का भाषण, 3 अप्रैल सन् 1948

अध्याय - चतुर्थ

समाजवादी विचारधारा में नेहरू जी का योगदान

अध्याय - चतुर्थ

समाजवादी विचारधारा में नेहरू जी का योगदान

मानवीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे विचारक जन्म लेते है। परन्तु दृष्टा जीवन को सम्पूर्णता मे देखता है और ऐसा दृष्टा शताब्दियो मे कोई एक होता है। इतिहास के आधुनिक मोड़ पर विश्व मे मार्क्स और गांधी जैसे दो महान दृष्टाओ का प्रादुर्भाव हुआ। यूरोप मे उन्नीसवी सदी से विज्ञान और प्रौद्योगिकीकरण की जो प्रक्रिया शुरू है, उसने 20वी सदी मे मानव प्रतिभा के उज्ज्वल रूप को प्रकट किया है और मानवीय विकास की अनन्त संभावनाओ को प्रकाशमान कर दिया, परन्तु साथ ही इससे मानव समाज के यंत्रीकरण एवं व्यक्तित्व के विघटन की परिस्थितियाँ भी उत्पन्न हो गयी है। यूरोप मे विज्ञान की प्रगति के साथ मानवीय मूल्यों के आधार पर मानवतावाद का विकास भी हुआ। परन्तु इससे सामाजिक विकास तथा शासनतंत्र के स्वरूपो की जो दिशा ग्रहण की गयी है, वह मानव समाज के विकास मे कोई विशेष सहायक सिद्ध नहीं हो पायी है। आधुनिक विश्व अथवा भारतीय संस्कृति के विकास क्रम मे इन दृष्टाओ का जन्म संभवत: उसके विशाल रूप को नियंत्रित करने तथा उसके संभावित खतरो से मानव नियति को बचाने के लिये हुआ है।

दृष्टा सिद्धान्तो को उपस्थित करने वाला अथवा उसकी व्याख्या करने वाला ज्ञानी नही होता, उसमे अन्तर्दृष्टि होती है और वह मानवीय इतिहास के प्रवाह को बहुत दूर तक समझने में समर्थ होता है। मनुष्य समाज की व्यापक प्रक्रिया को ग्रहण कर सकता है। इतिहास और समाज के साक्षात्कार से व्यापक मानवीय संवेदना से प्रेरित होकर वह व्यक्ति, समाज और इतिहास के व्यापक सम्बन्धों से नये मानव भविष्य की कल्पना कर सकता है। मार्क्स और गांधी ने अपनी-अपनी परम्पराओं के आधार पर ऐसा ही किया है। अपनी-अपनी अन्तर्दृष्टि से उन्होने न केवल हमको यह भव्य कल्पना दी है वरन् उसको प्रत्यक्ष करने की प्रक्रिया भी स्पष्ट की है।

इस कल्पना के आदर्श को प्रत्यक्ष करने का कार्य उन विचारको, नेताओ व सामाजिक कार्यकर्त्ताओ का होता है जो अन्तर्निहित दृष्टि को ग्रहण करते है, पर साथ ही उनकी प्रक्रियाओ को सही तथा सन्दर्भगत व्याख्या करने मे समर्थ होते है। दृष्टा की मूलदृष्टि से तिरोहित हो जाने पर प्रक्रिया के सहारे चलने का अर्थ केवल मानवीय भविष्य को अन्धकार की ओर ले जाना होता है। इस प्रक्रिया जैसे व्याख्या के लिये प्रक्रिया की सही समझ आवश्यक है, उसी प्रकार संदर्भ से अलग हट कर भी किसी प्रकार की उचित व्याख्या करना सभव नही है। इस दृष्टि से रूस तथा चीन जैसे विशाल देशो मे मार्क्स के भव्य आदर्श को प्रत्यक्ष करने के लिये प्रयोग हुये थे। जो विचारक यह समझते है कि मार्क्स की यह कल्पना की भविष्य मे ऐसा मानव समाज विकसित होगा जो शोषणहीन, समता का समाज तो होगा ही, साथ ही उसमे शासनतत्र भी समाप्त हो जायेगा, बहुत बड़े भ्रम मे है कि विज्ञान के नियमो के समान स्वत: घटित हो जायेगा। इतिहास की प्रक्रिया, समाज-रचना और आर्थिक कारणो के सम्बन्ध मे मार्क्स की दृष्टि वैज्ञानिक मानी जा सकती है, परन्तु इतिहास की गति से ऐसा समाज स्वत. विकसित हो सकेगा, ऐसा कहना संभव नही है। इन दोनो देशो के प्रयोगो से भी ऐसा प्रमाणित नहीं हुआ कि आर्थिक प्रणाली को परिवर्तित कर देने से समाज उस दिशा की ओर अग्रसर हो रहा है, जिसकी ओर मार्क्स ने संकेत किया था।

वस्तुत: इस भ्रम का कारण यह था कि इन देशों के विचारको और नेताओ ने मार्क्स की मूल दृष्टि को ओझल कर दिया है। उन्होने प्रक्रिया पर अधिक बल दिया और एक सीमा तक प्रक्रिया को उचित ढ़ग से संचालित करने के बाद उसे संदर्भ से अलग कर दिया। परिणाम स्पष्ट है कि ये देश शोषण और वर्गहीन, स्वत: चालित समाज की ओर अग्रसर होने के बजाय एक नियंत्रित और आर्थिक व्यवस्था मे संयोजित समाज की स्थिरता को बहुत अधिक महत्व देने लगे है। परन्तु हमारे देश के समाजवादी विचारकों ने मार्क्स की मूल दृष्टि को ओझल नही होने दिया बल्कि इन विचारको ने पश्चिम की विचारधारा और पूर्व की आध्यात्मिक विचारधारा को संयुक्त करके एक ऐसी नवीन वर्ग-व्यावहारिक विचारधारा का प्रतिपादन किया जो बहुत कुछ सीमा तक समाजवादी आदर्शो के समीप है।

भारतीय समाजवादी विचारकों ने मार्क्स की मूल दृष्टि 'मानवतावाद' और 'शोषण की समाप्ति' को हमेशा अंगीकार किया लेकिन इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये प्राचीन भारतीय धारणा और आदर्श 'अहिसा' को अपनी दृष्टि से कभी भी ओझल नही होने दिया। शांतिपूर्ण मार्गो का अनुसरण करके समाजवाद लाने और उसको स्थापित करने का उनका तरीका उन्हे

कभी मार्क्स के करीब लाता तो कभी दूर भी ले जाता। प्रत्येक भारतीय समाजवादी विचारको ने यह स्वीकार किया कि भारत मे वर्ग-व्यवस्था अति प्राचीन है लेकिन इसका कारण उन्होने भारत मे व्याप्त वर्ण व्यवस्था को बताया न कि मार्क्स की तरह यह कि शोषक वर्ग ने हमेशा शोषितो का शोषण किया। अत वर्ग भेद या सामाजिक भेदभाव तभी समाप्त किया जा सकता है जब दलित या शोषित वर्ग सामाजिक स्तर पर उच्च वर्गो के बराबर नही आ जाते। यह स्थिति लाने के लिये भारतीय विचारको ने कभी किसी क्रान्ति की आवश्यकता महसूस नहं की। क्योकि क्रान्ति पूर्व की आध्यात्मिकता के विरुद्ध है। जय प्रकाश नारायण जी ने यद्यपि 'समग्र क्रान्ति' या 'सम्पूर्ण क्रान्ति' की बात कही थी, लेकिन उनकी इस धारणा मे सशस्त्र क्रान्ति का समावेश नही था। वे गांधीवादी नीतियो के आधार पर ही समाजवाद लाना चाहते थे।

मार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद को भारतीय विचारको ने 'आध्यात्मिक समाजवाद' मे परिवर्तित करने का प्रयास किया। वे चाहते थे कि शोषण का अन्त हो, जमीदारी प्रथा को समाप्त किया जाये, 'भूमि जोतदार' की प्रथा लागू की जाय, मजदूरो के जीवन यापन लायक मजदूरी का अधिकार और काम के कम घंटे निर्धारित किये जाय, पूँजी का केन्द्रीयकरण रोका जाय, लेकिन यह सब एक लोकतांत्रिक व्यवस्था के माध्यम से ही किया जाय, न कि सर्वहारा के अधिनायकतंत्र से या साम्यवाद को स्थापित करके। जिस प्रकार से लेनिन ने रूस की परिस्थितियो के अनुरूप मार्क्स के सिद्धान्तो मे परिवर्तन किया था लेकिन मार्क्स की मूल भावना को समाप्त नहीं किया। उसी प्रकार भारतीय विचारको ने मार्क्स की मूल दृष्टि को अपनाया तो जरूर लेकिन उसको भारतीय आध्यात्मिक दृष्टिकोण से अपनाया और उसके मुताबिक नयी सोच एवं विचारो का प्रतिपादन किया।

जवाहरलाल नेहरू की समाजवाद के सम्बन्ध में देन इसी दृष्टिकोण को लेकर किया जाना समीचीन होगा। इस दृष्टिकोण से इनके विचारो के विश्लेषण का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है कि जिन समाजवादी आदर्शो की वकालत नेहरू जी एक लम्बे अरसे से करते चले आ रहे थे, क्या सत्ता ग्रहण करने के बाद उन समाजवादी आदर्शो को कार्यरूप देने का नेहरू जी ने प्रयत्न किया अथवा नहीं।

नेहरू के संस्कारों पर ही कुलीनता का प्रभाव था और यह प्रभाव उनकी विचारधारा मे भी जीवन पर्यन्त तक बना रहा। नेहरू जी ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार करते हुये लिखा है कि - "मैं आदर्श बर्जुआ हूँ तथा वह सभी पूर्वाग्रह जो बर्जुआ वातावरण मे बड़े होने से सीख रूप में मिलते हैं, मुझमें हैं।"[1]

उस समय के (सन् 1930-40 ई.) सभी राजनीतिज्ञो मे सबसे अधिक समाजवाद की वकालत करने वाले नेहरू जी ही थे। छात्र-जीवन मे नेहरू जी के विचारो पर फेबियन समाजवाद का काफी प्रभाव पड़ा। नेहरू जी ने 'आत्मकथा' मे अपनी वास्तविक स्थिति के सम्बन्ध मे लिखा है कि- ''मै विशुद्ध राष्ट्रवादी था, मेरे कालेज दिनो के अनिश्चित धुधले से समाजवादी विचार पृष्ठभूमि मे डूब गये थे।''[2]

नेहरू जी को सन् 1926 ई. मे यूरोप प्रवास का अवसर मिला और वह प्रवास उनका कुछ अधिक समय तक रहा। उन्हे वहा पर बहुत से समाजवादी और साम्यवादियो से सम्पर्क स्थापित करने का अवसर प्राप्त हुआ, जो कि सन् 1927 ई. मे ब्रुसेल्स मे होने वाले ''काग्रेस आफ द लीग आफ ओप्रेस्ड पीपुल'' के अधिवेशन मे भाग लेने के लिये आये हुये थे। नेहरू जी को योरोपीय प्रवास के बाद इस बात का अनुभव हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षो का आधार पूँजीवादी साम्राज्यवाद बनाम समाजवादी आदर्शो के मध्य है।

बुसेल्स कांग्रेस के बाद नेहरू जी का सम्बन्ध दूसरे समाजवादियों एव साम्यवादियो से भी हुआ। सन् 1927 ई. मे नेहरू जी ने रूसी क्रान्ति (1917) की दसवी वर्षगॉठ में हिस्सा लिया। इस यात्रा से नेहरू जी रूस की प्रगति को देखकर काफी प्रभावित हुए तथा अपने अनुभवों के आधार पर उन्होने सन् 1928 ई. मे ''सोवियत रसा'' नामक पुस्तक की रचना की। उन्होंने इस पुस्तक मे संकेत किया कि रूस के अनुभवों से भारत को एक प्रेरणा मिल सकती है तथा दोनों देशो की स्थिति भी भिन्न नही है। दोनो कृषि-प्रधान देश है, दोनो देशों मे गरीबी तथा निरक्षरता है। यद्यपि रूस ने इन समस्याओं का कुछ सीमा तक समाधान कर लिया है तो यह भारत की सहायता कर सकता है।''[3] इस यात्रा का परिणाम यह हुआ कि उन्हे यह दृढ़ विश्वास हो गया कि रूस ही विश्व में एक साम्राज्यवाद-विरोधी राज्य है तथा रूस व भारत संयुक्त रूप से मिलकर साम्राज्यवाद विरोधी नीतियों का अनुकरण कर सकते हैं।

नेहरू जी ब्रुसेल्स कांग्रेस के विचारो तथा साम्यवादियो के सम्पर्क से एवं रूस की यात्रा करने के बाद, जब भारत वापस आये, तब उनके विचारों पर एक नवीन विचारधारा की छाप पड़ चुकी थी। सन् 1929 ई. में श्रमिकों के राष्ट्रीय सम्मेलन को सम्बोधित करते हुये उन्होने कहा कि ''मुझे स्पष्ट रूप से यह मान लेना चाहिये कि मैं एक समाजवादी और एक गणतंत्रवादी हूँ और राजाओं अथवा राजकुमारो अथवा उस व्यवस्था मे विश्वास नही करता जो कि आधुनिक उद्योग के राजा उत्पन्न करते हैं, जिनके पास मनुष्यो की जिन्दगियों और किस्मतो पर उससे कहीं अधिक ताकत है जितनी कि पुराने कुलीनवादी राजाओ के पास थी।''[4] नेहरू

जी ने ट्रेड यूनियन कांग्रेस की अध्यक्षता करते हुये सन् 1929 ई. मे नागपुर में कहा कि ''मुझे आशा और विश्वास है कि श्रमिक वर्ग कांग्रेस से अन्त: सम्बन्ध स्थापित करेगा जिससे कांग्रेस को समाजवादी बनने का बल मिलेगा।''[5]

सन् 1933 ई. मे नेहरू ने भारत के सम्बन्ध मे आशा और विश्वास प्रकट करते हुये यह महसूस किया कि भारतीय संघर्ष एक विश्व सघर्ष का रूप धारण कर सकता है। पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध नेहरू की अवधारणा यह थी कि राष्ट्रवाद ही सब कुछ नही है बल्कि एक सामाजिक क्रान्ति की भी बहुत बड़ी आवश्यकता है। नेहरू जी ने यह भी महसूस किया कि शुद्ध राष्ट्रीयतावाद की विचारधारा मे आर्थिक और सामाजिक तत्व नहीं हो सकते। यह आधुनिक विश्व की आवश्यकताओ के लिये पूर्ण रूप से उचित नही हो सकती। भारतीय राष्ट्रवादियो को एक सामाजिक क्रान्ति की प्रगतिशील विचारधारा का अनुकरण करना चाहिये तभी राष्ट्रीय संघर्ष प्रभावशाली हो सकता है और सामाजिक स्वतंत्रता की स्थापना हो सकेगी और तभी भारत विश्व में अपना स्थान प्राप्त कर सकेगा।

सन् 1930 ई. में नेहरू जी का समाजवाद के प्रति झुकाव शुद्ध रूप से मानववादी अर्थो मे ही नही, बल्कि आर्थिक अर्थो मे भी था जिसे 'वैज्ञानिक समाजवाद' की संज्ञा दी जाती थी। उस समय गांधी जी तथा दूसरे नेता जो विश्व समाजवाद की चर्चा करते थे पूर्णरूपेण मानवतावादी अर्थ लिये हुये थे।

इसीलिये नेहरू जी ने समाजवाद के भारतीय संस्करण को अपनाया वे समाजवाद को निश्चित योजना अथवा कट्टर सिद्धान्तों के संदर्भ मे कभी परिभाषित नही करते थे। उनके लिये बहुत ही साधारण रूप से समाजवाद का अर्थ अवसर की अधिक से अधिक समानता, सामाजिक न्याय, आधुनिक विज्ञान एवं तकनीक के दोहन के माध्यम से उत्पन्न उच्च आमदनी का अधिक समान वितरण, पूँजीवाद और सामंतवाद द्वारा पैदा की गई आर्थिक और सामाजिक असमानता का अंत तथा सामाजिक समस्याओ के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का पालन आदि था। वे समाजवाद का अर्थ, बटोरने की मानसिकता का अंत, मुनाफा की सर्वोच्चता और पूँजीवादी प्रतियोगिता को त्यागकर सहकारिता और सहयोग की भावना का विकास करना समझने थे। इसका मतलब वर्गीय अंतर और वर्गीय वर्चस्व का धीरे-धीरे क्रमिक रूप से अंत कर देना भी था। समाजवाद के तहत प्रमुख उत्पादन साधनो पर व्यापक सामाजिक स्वामित्व और नियंत्रण स्थापित करना भी शामिल था। पर नेहरू ने इस बात पर बल दिया कि सबसे पहले समाजवाद के अन्तर्गत ज्यादा उत्पादन हांसिल करना आता है, नही तो सिर्फ गरीबी ही आपस मे बॉटी जा सकती है, समृद्धि नहीं। दरअसल नेहरू जी के लिये समाजवाद का अर्थ ज्यादा उत्पादन तथा समतापूर्ण वितरण था।[6]

नेहरू जी ने सन् 1936 ई. मे कांग्रेस की अध्यक्षता करते हुये कहा था कि ''समाजवाद मे विश्व दो भागो मे विभाजित हो गया है। एक तरफ साम्राज्यवादी तथा फासिस्टवादी वर्ग है तथा दूसरी तरफ समाजवादी और राष्ट्रवादी है, और भारतीय राष्ट्रवादी फासिज्म और साम्राज्यवादी शक्ति के विरोधी पक्ष का समर्थन करेगे।''(7) नेहरू जी ने इस तथ्य की वास्तविकता को स्वीकार किया कि मेरे मे और राष्ट्रीय संगठन के दूसरे समाजवादी नेताओ के मध्य कुछ विरोधाभास हो सकता है। उन्होने काग्रेस के अध्यक्ष पद से (सन् 1936 ई. मे) सम्बोधित करते हुये कहा कि 'मै समाजवाद के सिद्धान्तो का समर्थन करूँगा। यह मेरी विचारधारा की आवश्यकता नही बल्कि वास्तविकता है।''(8) नेहरू जी ने आशा प्रकट की कि विश्व की समस्याओ तथा भारत की समस्याओ का समाधान समाजवाद की स्थापना से ही हो सकता है। उन्होन कहा कि ''जब मै इस शब्द का प्रयोग करता हूँ तो अस्पष्ट मानवतावादी रूप से नही, बल्कि वैज्ञानिक और आर्थिक रूप से करता हूँ। जो भी हो, समाजवाद आर्थिक सिद्धान्त से भी कुछ बड़ी बात है, यह एक जीवन दर्शन है और इस रूप मे मुझे प्रभावित करता है। समाजवाद के सिवा गरीबी, व्यापक बेकारी, अध·पतन और भारतीय जनता की गुलामी को खत्म करने का दूसरा कोई रास्ता मुझे नजर नही आता। इसके लिये हमारे राजनीतिक और सामाजिक ढॉचे मे बहुत बड़े और क्रान्तिकारी परिवर्तन की, जमीन और उद्योग धंधो मे निहित स्वार्थो और भारतीय रजवाड़ो की सामंती और स्वेच्छाचारी व्यवस्था को खत्म करना जरूरी है। इसका मतलब है सीमित अर्थ मे व्यक्तिगत सम्पत्ति का खात्मा और वर्तमान लाभ प्रणाली को सहयोग सेवा के ऊँचे आदर्श में बदलना। इसका आखिरी मतलब होगा एक नई सभ्यता, जो मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था से बुनियादी तौर पर अलग होगी।''(9)

यद्यपि सन् 1936 ई. मे अपने अध्यक्षीय भाषण मे उन्होने जमींदारी और औद्योगिक प्रणाली के स्वरूप को परिवर्तित करने की चर्चा की थी तथा 1946 ई. मे नेहरू जी भारत के प्रथम प्रधानमंत्री हुये उस समय जब सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने का समय आया तब उन्होंने अपनी इस विचारधारा को त्याग नही दिया बल्कि उन्होंने एक विकासात्मक नीति का अनुसरण किया तथा आर्थिक क्षेत्र में एक मिश्रित अर्थ व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की जिसमें सार्वजनिक और वैयक्तिक क्षेत्र संयुक्त रूप से कार्य करेंगे। वस्तुतः आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया, जिसे नेहरू जी क्रान्तिकारी स्वरूप प्रदान कर कार्यान्वित करना चाहते थे, ने अब शांतिपूर्ण साधनों ने ले लिया था।

नेहरू जी ने स्वतंत्रता के लिये भारतीय सघ गठित करने के लिये सुभाषचन्द्र बोस के साथ सहयोग का हाथ बढ़ाया ताकि पूर्ण स्वराज्य के लिये ''समाज के आर्थिक ढॉचे को समाजवादी रूप देने के लिये'' संघर्ष किया जा सके। सन् 1936 ई. मे नेहरू जी ने 'समाजवाद' की स्पष्ट व्याख्या करने का प्रयास किया। इसी तथ्य को लेकर सन् 1939 मे सुभाष चन्द्र बोस ने नेहरू जी की आलोचना की। उन्होने कहा - ''मै समझ नही पाता हूँ कि कैसे एक समाजवादी, व्यक्तिवादी हो सकता है। जैसा कि आप अपने को मानते है। यह एक दूसरे के विपरीत है। मेरे लिये यह भी पहेली है कि क्या कभी भी समाजवाद आपके तरह के व्यक्तिवाद के द्वारा अस्तित्व मे आ सकता है।''[10] नेहरू जी ने सुभाष चन्द्र बोस के पत्र का उत्तर देते हुये स्पष्ट किया कि 'मै समझता हूँ कि स्वभाव और प्रशिक्षण से मै एक व्यक्तिवादी और बौद्धिक रूप से एक समाजवादी हूँ - मै आशा करता हूँ कि समाजवाद मानव व्यक्तित्व को कुचलता या नष्ट नही करता, मै तो दरअसल उसकी ओर इसलिये आकर्षित हुआ हूँ कि वह अगणित मनुष्यो को आर्थिक और सांस्कृतिक दासता के बंधनो से मुक्त करेगा।''[11]

नेहरू जी की विचारधाराओं मे व्यक्तिवाद और समाजवाद का सम्मिश्रण रहा है। प्रजातत्र में आस्था ने ही सामाजिक और आर्थिक न्याय की ओर उन्हे अग्रसर किया। इन्ही कारणों से उन्होने सत्ता ग्रहण करने के बाद समाजवाद के सम्बन्ध मे अपना सैद्धान्तिक दृष्टिकोण अपनाया तथा जब साधनों के (उत्पादन) सामाजीकरण का समय आया तब उन्होने किसी एक सिद्धान्त का अनुकरण नही किया।[12]

नेहरू जी के समाजवादी सिद्धान्तो के सम्बन्ध मे एक नवीन अध्याय सन् 1952 ई. के आम चुनाव के साथ प्रारंभ होता है। यह सच है कि सत्ताधारी व्यक्ति की स्थिति का प्रत्येक चरण कुछ नवीन समस्यायें लेकर आता है और उस समस्या का समाधान उन्हें करना पड़ता है। यह अध्याय उनके मृत्यु पर्यन्त चलता रहा। उन्होने अपनी सत्ता और स्थिति को सुरक्षित रखने के लिये प्रत्येक सिद्धान्त के साथ समझौता किया था।

सन् 1947 ई. में, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामान्यत: यह प्रश्न पैदा हुआ कि नेहरू, जो सत्ता ग्रहण करेंगे, क्या, वे उन समाजवादी नीतियों की स्थापना कर सकेंगे जिनकी चर्चा वह पूर्व काल से करते हुये आ रहे थे? सन् 1948 ई. मे उनकी और समाजवादी नेताओं के मध्य एक विरोध उत्पन्न हुआ, जब उन्होंने सरकार की औद्योगिक नीति की घोषणा की। इस नीति में उद्योगों को सार्वजनिक और वैयक्तिक आधार पर विभाजित कर दिया गया था तथा

औद्योगिक क्षेत्र को स्वतत्र उद्यमो के लिये खुला हुआ छोड़ दिया गया था। यह औद्योगिक नीति कोई क्रान्तिकारी कार्यक्रम लिये हुये नही थी तथा इसका व्यापारिक वर्ग ने काफी स्वागत किया। इस नीति के सम्बन्ध मे सामान्यत: व्यक्तियो की धारणा थी कि यह नेहरू और पटेल के समझौते का परिणाम था क्योकि सरदार पटेल पूर्णरूपेण समाजवादी सिद्धान्तो को अपनाने के विरुद्ध थे। नेहरू जी भी इस तथ्य की वास्तविकता को ग्रहण कर चुके थे कि जिस दल का वह नेतृत्व कर रहे है वह दल समाजवाद के क्रान्तिकारी सिद्धान्तो को ग्रहण नही कर सकता। सन् 1948 ई. की औद्योगिक नीति को ''सोशलाजेशन आफ वैकुअम'' की सज्ञा दी गयी, क्योकि इस औद्योगिक नीति के सम्बन्ध मे नेहरू जी ने कहा था कि भारत जैसे विकासशील देश मे सार्वजनिक और वैयक्तिक क्षेत्र एक अच्छी भूमिका सयुक्त रूप से निभा सकते है। राज्य वैयक्तिक क्षेत्र मे किसी प्रकार की बाधा अथवा हस्तक्षेप नही करेगा परन्तु यदि राज्य को सार्वजनिक हित की दृष्टि से आवश्यक हुआ तो वह किसी भी उद्योग को राज्य के अन्तर्गत ले सकती है।

यह औद्योगिक नीति वस्तुत: समाजवादी सिद्धान्तो के अनुरूप नही थी बल्कि इसे एक आर्थिक योजना की नीति के रूप में प्रस्तुत किया गया था। नेहरू जी ने अपनी विचारधारात्मक स्थितियो पर बहुत जोर देने या उन्हे थोपने से इन्कार कर दिया। इससे स्तालिनवादी मार्क्सवाद पर चलने वाले वामपंथियों को बड़ी निराशा हुयी। तीस के दशक के अंत से विकसित होते नेहरू के समाजवादी विचार जनतंत्र से अविभाज्य थे। इसीलिये, उन्होने योजना तथा सार्वजनिक क्षेत्र सम्बन्धी कदम समाज की सहमति से जनतांत्रिक तरीकों से ही लागू किये। 'नेहरू की दृष्टि मे योजना पर अमल सहमति से, न कि आदेश से, होना चाहिये था।''[13]

योजना आयोग[14] द्वारा प्रथम योजना (1951-56) बनायी गयी जिसमें मुख्यत: अधूरे काम पूरे करने का प्रयत्न किया गया। साथ ही, युद्ध के बाद की स्थिति से जनित सकट का सामना करने का भी प्रयत्न किया गया। आजादी देश-विभाजन के साथ मिली, और इसलिये सारे देश में भारी अफरा-तफरी मच गई। इतिहास का सबसे बड़ा जनसंख्या-हस्तांतरण हुआ और बड़े पैमाने पर शरणार्थियों के आने से समस्या और गंभीर हो गयी। इन्हीं समस्याओ के मद्देनजर नेहरू अपनी नीतियों से समझौता करते गये। कांग्रेस दल के समाजवादी भी इन्हीं सब कारणों से नाराज हुये उन्हें लगा कि 'समाजवाद' के आदर्शों को जानबूझ कर नाकारा जा रहा है। दूसरे, यह भी कि मंत्रिमंडल में वल्लभ भाई पटेल के होने के कारण नेहरू अपने चरम लक्ष्य को कार्यरूप में प्रदान करने में अपने को असमर्थ पा रहे थे। पटेल जी के निधन के

उपरान्त समाजवादी दल ने अपने 14 सूत्रीय कार्यक्रम के आधार पर कांग्रेस से सहयोग करने का निश्चय किया, परन्तु नेहरू ने इस सम्बन्ध मे अपनी असमर्थता प्रकट की। यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि पटेल की मृत्यु के बाद नेहरू जी चार वर्ष तक स्वय कांग्रेस के अध्यक्ष रहे परन्तु काग्रेस के किसी भी प्रस्ताव मे उन समाजवादी आदर्शो का को संकेत मात्र नही था जिसके सम्बन्ध मे नेहरू जी सन् 1927 से चर्चा करते आ रहे थे।

दूसरी योजना (1956-61) मे प्रसिद्ध नेहरू - महालनोबिस विकास रणनीति लागू की गई, जो तीसरी योजना (1961-66) मे भी जारी रही। प्रो. पी.सी. महालनोबिस ने द्वितीय योजना तैयार करने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस रणनीति का एक मूल तत्व भारी तथा मूल वस्तुओ के उद्योगो का विकास था, जो मुख्यत सार्वजनिक क्षेत्र मे होना था।[15] भारी उद्योगो के विकास के साथ-साथ श्रम-गहन छोटे और गृह उद्योगो का विकास भी तय पाया गया ताकि उपभोक्ता वस्तुओ का उत्पादन किया जा सके। यह समझा गया कि सामुदायिक विकास योजनाओ के तहत कृषि मे सामुदायिक कार्यक्रम के जरिये श्रम का अधिकाधिक उपयोग करेगे और पूँजी का उत्पादन करेगे। इनमे कृषि सहकारिताओ की अपनी भूमिका होगी।[16] लेकिन बेकारी की समस्या के समाधान हेतु कोई समुचित उपाय नही ढूँढ़ा गया।

नेहरू-महालनोबिस रणनीति का एक और महत्वपूर्ण अंग विकास और समानता पर जोर था। इसलिये उद्योग और खेती मे सकेन्द्रण और वितरण के प्रश्न पर काफी ध्यान दिया गया, हालांकि इसमें अपेक्षित सफलता नही मिली। रणनीति मे विकास तथा समानता को एक दूसरे का विरोधी नही समझा गया, यह माना गया कि उच्चतर विकास से समानता के उच्चतर स्तरो तक पहुँचा जा सकता है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना मे भी वही नीति अपनायी गयी जो पहली योजना मे थी। इसमे कृषि के स्थान पर उद्योगो को प्राथमिकता प्रदान की गयी परन्तु सामाजीकरण और राष्ट्रीयकरण की नीति के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट नीति नहीं थी, बल्कि जिस विचार को उन्होने पहली योजना में रखा था, उसी को फिर दोहराया गया।

सन् 1955 ई. में अवाड़ी में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसमे यू.एन. ढ़ेबर की अध्यक्षता में नेहरू सहित कांग्रेस ने, समाजवादी समाज की रचना का लक्ष्य स्वीकार किया। परन्तु इसके विपक्ष में कुछ समाजवादी और साम्यवादियों ने कांग्रेस पर यह आक्षेप लगाया कि यह मात्र मत प्राप्त करने का तरीका है। इस सिद्धान्त मे इस लक्ष्य को स्वीकार किया गया कि- उत्पादन, सामाजिक स्वामित्व अथवा नियंत्रण मे होगा तथा उत्पादन में तीव्रता से वृद्धि और राष्ट्रीय आय का समता के आधार पर वितरण किया जायेगा।

लेकिन समाजवाद और समाजवादी आधार पर समाज की रचना मे काफी अन्तर है? इस सम्बन्ध मे नेहरू जी का प्रश्न नकारात्मक है। अप्रैल 1955 ई. मे नेहरू जी ने कहा था कि जनता को समाजवाद के सिद्धान्तो और समाजवादी आधार पर समाज की स्थापना मे कुछ विशेषता ही मिलेगी, न कि अन्तर। दोनो वस्तुये एक ही है इसमे किसी भी प्रकार का सूक्ष्म अन्तर नही है, लेकिन इन दोनो की व्याख्या करना कोई आसान कार्य नही है. . । किसी भी सिद्धान्त की व्याख्या करना एक कठिन कार्य होता है और उस व्याख्या की चरम स्थिति एक ऐसे स्थान पर पहुॅच जाती है जहॉ वह सिद्धान्त ही शुष्क और धूमिल पड़ने लगता है। लेकिन इसका यह अभिप्राय नही होता है कि हम समाजवादी समाज के सिद्धान्तो का विश्लेषण ही नही करेगे। यह सत्य है कि यदि इस सिद्धान्त को वास्तविक क्रियात्मक रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया जाता तो अवश्य ही एक अच्छे मार्ग का निर्माण हो सकता था।

अपनी चीन यात्रा (सन् 1954) के दौरान नेहरू ने वहॉ की आर्थिक प्रगति को देखा तथा उसी प्रकार की तीव्र प्रगति की कल्पना भारत के संदर्भ मे भी करने लगे। लेकिन नेहरू को चीन की शासन व्यवस्था और भारतीय शासन व्यवस्था मे स्पष्टतं· भिन्नता दिखाई पड़ी। फिर भी वे इस बात को सोचने पर मजबूर हो गये कि संसदीय प्रणाली (प्रजातात्रिक) से अधिक आर्थिक उन्नति की जा सकती है या साम्यवादी व्यवस्था के अन्तर्गत। नेहरू अपने समाजवादी समाज की स्थापना जनतांत्रिक आधारो पर करना चाहते थे। इस समय तक नेहरू जी के विचारों में काफी भिन्नता आ गयी थी। अब नेहरू किसी आर्थिक सिद्धान्त की घोषणा न करके मध्यम मार्ग का अनुकरण करने लगे थे। सन् 1958 ई. मे उन्होने कहा था कि ''मै किसी प्रकार के राज्य समाजवाद को पसन्द नही करता हूँ जिसमें राज्य ही सर्वेसर्वा हो तथा व्यवहार मे प्रत्येक क्रिया पर शासन करे। राज्य राजनीतिक दृष्टि से शक्तिशाली होता ही है...। मेरा समाजवाद के सम्बन्ध मे विचार है कि प्रत्येक व्यक्ति को विकास के पूर्ण अवसर प्राप्त होने चाहिये।''[17]

नेहरू ने सन् 1955 ई. में कांग्रेस के अवाड़ी अधिवेशन मे कार्यकारी रूप मे समाजवादी आधार पर समाज रचना को स्वीकार किया तथा कांग्रेस की नीति में भी इसे शामिल किया। लगभग एक दशाब्दी बाद जनवरी 1964 ई. मे कांग्रेस के भुवनेश्वर अधिवेशन में भी नेहरू जी ने अपने पूर्व तथ्यों की विवेचना की। फिर भी नेहरू के विचार और समाजवादी सिद्धान्त तथा नीतियाँ वर्षों तक व्यवहार में नही लायी जा सकी तथा समय की गति के साथ अधिक से अधिक सैद्धांतिक रूप में ही रहे। सत्ता मे आने पर नेहरू ही नही, किसी भी व्यक्ति के

लिये क्रान्तिकारी परिवर्तन करना बहुत ही कठिन कार्य होता है, लेकिन स्वतत्रता के बाद उन विचारो को व्यवहार रूप मे लाने के लिये कठिनाइयो का सामना करना स्वाभाविक था। उन समाजवादी सिद्धान्त को जिनका पक्ष नेहरू पहले से ही लेते हुये आ रहे थे, एक सस्थागत ढ़ॉचे मे व्यवहार मे लाया जा सकता था। नेहरू जी ने इसके सम्बन्ध मे प्रयत्न तो किया परन्तु असफल ही रहे। यही कारण था कि कुछ व्यक्तियो ने नेहरू को 'हिचकने वाला समाजवादी' की संज्ञा दी जबकि नेहरू जी अपने को लोकतंत्रवादी समाजवादी कहते थे। नेहरू जी हिसा और अधिनायकवाद के बिना ही समाजवाद को प्रस्तुत करना चाहते थे। उन्होने कहा था कि - ''मै समाजवाद मे अधिक से अधिक विश्वास रखता हूॅ, यहॉ तक कि साम्यवाद के कुछ भागो को भी कार्यरूप मे नही वरन् सैद्धान्तिक रूप मे मानता हूॅ, भविष्य मे साम्यवादी समाजवाद की कल्पना को। लेकिन तरीका शांतिपूर्ण होना चाहिये और विस्तृत अर्थो मे वह शांतिपूर्ण तरीका जो गलत न हो। यह कहना कठिन है कि दोनो मे सामजस्य होगा कि नही। लेकिन मेरा पूर्ण विश्वास है कि कुछ साम्यवादी समाज के सिद्धान्त और नीतियॉ जो कि अधिक प्रतिक्रियावादी नही है ग्रहण की जा सकेगी।''[18]

सन् 1950-60 ई. मे मार्क्सवाद और समाजवाद के सम्बन्ध मे नेहरू की स्थिति पहले के कथन से काफी भिन्न थी। वह विश्वास करने लगे थे कि मार्क्स ने जो कुछ भी लिखा था वह अपने अर्थ मे 19वी शताब्दी मे पुराना हो चुका था। आचार्य नरेन्द्र देव ने नेहरू के सम्बन्ध मे कहा- 'नेहरू किसी भी विशेष वाद मे विश्वास नही रखते। वह वैज्ञानिक समाजवाद के कुछ मूल सिद्धान्तों को मानते हैं, इसके बावजूद वह मार्क्सवाद, लेनिनवाद के सभी सिद्धान्तो को मानने के लिये तैयार नहीं है। वह किसी भी कठोर सिद्धान्त को नहीं मानते, वह अपने को प्रत्येक व्यवस्था के विचारो की परीक्षा करने के लिये स्वतंत्र समझते थे और अपने विचारो को भी अनुभवो के आधार पर परिवर्तन करते रहते थे।[19]

यदि अवाड़ी कांग्रेस से लेकर भुवनेश्वर कांग्रेस के बीच के अन्तराल में कांग्रेस सरकार के कार्यो का विश्लेषण किया जाये तो एक ही तथ्य दृष्टिपटल पर उभर कर सामने आयेगा कि नेहरू के जीवन काल में ''समाजवादी समाज'' रचना की दिशा में कोई उपलब्धि नहीं हुई। बार-बार कांग्रेस द्वारा समाजवाद के सम्बन्ध मे से प्रस्ताव पारित करने से समाजवादी विचारधारा का अनुकरण करने वाले दलों पर इसका विपरीत ही प्रभाव पड़ा। नेहरू एक कुशल राजनेता थे, उनको इस बात का आभास हो चुका था कि देश उन परिस्थितियों से गुजर रहा है कि देश में समाजवादी आन्दोलन को बढ़ावा मिल सकता है, और इसका प्रभाव

काग्रेस पर बुरा ही पड़ेगा, जिससे काग्रेस की सत्ता बिखर सकती है। इसी कारण से नेहरू जी ने समाजवाद के सम्बन्ध मे प्रचार कार्य अधिक किया, समाजवादी विचारक और नेता इस तथ्य को समझने मे असमर्थ रहे। जब नेहरू जी की इस नीति को समाजवादियो ने समझा तब तक समय काफी आगे निकल चुका था। यही कारण है कि प्रारम्भ से लेकर आज तक समाजवादी दलो पर इसका विपरीत प्रभाव ही पड़ा और उन्हे कोई विशेष सफलता प्राप्त नही हुई।

वामपथी दलों पर आधिपत्य का लक्ष्य प्राप्त करने के बाद नेहरू जी ने दक्षिणपंथियो को आश्वस्त करने की आवश्यकता अनुभव किया। ससद के समक्ष दूसरी पचवर्षीय योजना पेश करते हुये उन्होने कहा था कि "मै समाजवाद की यह परिभाषा प्रस्तुत करना नही चाहता कि इस शब्द का ठीक-ठीक अर्थ क्या है, क्योकि हम सैद्धातिक और सकीर्ण विचारधारा के पक्षपाती नही है।[20] उन्होंने आगे कहा कि- लेकिन मोटे तौर पर कहूँ तो हमारा अभिप्राय एक ऐसे समाजसे है, जहॉ अवसरों की समानता हो और जहां प्रत्येक के लिये अच्छा जीवन जीने की सम्भावनायें मौजूद हो, इसलिये हमे समानताएं लाने पर और असमानताएँ दूर करने पर बल देना चाहिये।"[21]

इस तथ्य की ओर संकेत करने की आवश्यकता नही है कि 'नेहरू के समाजवाद मे व्यक्तिवाद का एक तत्व-उत्पादन वृद्धि की इच्छा, हमेशा विद्यमान रही है, और न केवल वितरण की समान प्रणाली वरन् भारतीय परिस्थितियो के अंनुकूल समाजवाद की इच्छा एव भारत की विशिष्ट कृषि समस्या और प्रजातंत्र के साथ समाजवाद का उचित सामंजस्य भी विद्यमान रहा है। वास्तव में नेहरू समाजवाद के उतने ही समर्थक थे जितना कि पश्चिमी उदारवाद के।"[22]

लेकिन सन् 1955-60 ई. मे सन् 1934 की परिस्थतियो से काफी अन्तर आ चुका था। सन् 1956 ई. तक समय तक उन्होने जो कुछ प्राप्त किया था उसी को बनाये रखने की आवश्यकता ने उन्हें समाजवाद की निश्चित व्याख्या देने से रोक दिया था। वास्तविकता यह थी कि सत्ता ग्रहण करने के बाद नेहरू मार्क्सवादी नही रह गये, जबकि सन् 1936 में उन्होंने कहा था कि "वैज्ञानिक समाजवाद अथवा मार्क्सवाद ही विश्व की समस्याओं का अकेला हल है।"[23] जबकि 1956 मे उन्होंने यह स्वीकार किया कि मार्क्स जो कि 19 वी शताब्दी के थे 20 वीं शताब्दी के बारे में बताने में असमर्थ थे।

इसलिये काग्रेस को समाजवाद से प्रतिबद्ध दल का रूप देने के बजाय नेहरू उसको एक ऐसा राजीतिक सगठन बनाये रहे जहॉ हिसक क्रान्ति के लिये कार्यरत मार्क्सवादी तत्व सामन्तवादियो के साथ मिलकर खड़े होते थे। इस कारण दक्षिणपथी और वामपथी दोनो विचारधाराओ वाले दलो के लिये नेहरू और काग्रेस के साथ (सिद्धान्तो और नीतियो के नाम पर) सहमत रहना असभव हो गया था।

समाजवाद का मूल सिद्धान्त समता के आधार पर आर्थिक सम्पन्नता होता है। नेहरू भारत को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न तो करना चाहते थे, परन्तु समाजवाद के आधार पर नही, बल्कि यूरोपीय सम्पन्नता और सभ्यता के आधार पर। राष्ट्रीय स्वतत्रता उनकी दृष्टि मे इसलिये आवश्यक थी कि भारत यूरोप के समान अपना विकास कर सके। इसलिये राज्य से भिन्न राष्ट्र का उनके लिये कोई अर्थ नही था। इसके अतिरिक्त विश्व के उस भविष्य के लिये जिसमे भारत का भविष्य भी शामिल था, यूरोपीय सभ्यता की उस विरासत की रक्षा नेहरू को आवश्यक प्रतीत होती थी, जिसका प्रतीक ब्रिटेन का उदारवाद है। नेहरू की उग्र राष्ट्रीयता और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया समय बीतने के साथ-साथ, यूरोपीय सभ्यता के उनके लगाव के समक्ष गौण पड़ती गयी। जब नेहरू सत्ता मे आये तब यूरोपीय आधार पर भारत की सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक प्रणाली को विकसित करने की इच्छा ही असली बात रह गयी थी। राष्ट्रीय और सामाजिक परिवर्तन की इच्छा का स्थान अपने देश की परिस्थितियो के आधार पर दिखावा मात्र रह गया था।

यद्यपि नेहरू ने देश की परिस्थितियों के अनुसार आर्थिक एवं सामाजिक विषमता के दूर करने के लिये कल्याणकारी योजनाओ को लागू करने का अथक प्रयास किया लेकिन ये योजनाये उनके ही समय मे कारगर सिद्ध न हो सकी। इसका मुख्य कारण इनके दोषो को समुचित ढ़ंग से नही समझा गया और न ही उसे दूर करने का उचित प्रयास ही किया गया।

नेहरू जी की समाजवादी एवं कल्याणकारी योजनाएं -

आज़ादी के बाद नेहरू जी ने भूमि सुधारों की प्रक्रिया पर बल दिया। जिसके लिये जमींदारी व्यवस्था की समाप्ति और काश्तकारी सुधार अति आवश्यक था। "इस सुधार की मुख्य विशेषता थी-

1. बिचौरियों की समाप्ति, जैसे जमींदार, जागीरदार इत्यादि।
2. काश्तकारी सुधार, जिनमें काश्तकारो को जोत की सुरक्षा प्रदान की गई। भूमि कर कम किया गया, और काश्तकारो को स्वामित्व के अधिकार प्रदान किये गये।

3 भूमि पर हदबन्दी

4 सरकारी और सामुदायिक विकास कार्यक्रम। इस दौर को सस्थागत सुधारो का दौर भी कहा गया है।''[24]

सन् 1949 ई. आते-आते जमीदारी उन्मूलन बिल या भूमि काश्तकारी कानून कई प्रदेशो मे बनाए गये। जैसे उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, मद्रास, आसाम और बम्बई। जी.बी. पंत की अध्यक्षता मे बनी यू.पी. जमीदारी उन्मूलन समिति की रिपोर्ट कइयो के लिये नमूना बनी यद्यपि देश के विभिन्न हिस्सो के जमीदारो ने जमीदारी उन्मूलन कानूनो की वैधता का विरोध किया लेकिन प्रथम संशोधन 1951 मे और चौथा सशोधन 1955 मे कर इस समस्या से छुटकारा पाने का प्रयास किया गया। इन संशोधनो का उद्देश्य जमीदारी उन्मूलन लागू करने के लिये राज्य विधायिको के हाथ मजबूत करना और मूलभूत अधिकारो एव मुआवजे के प्रश्नो को अदालतो की परिधि से बाहर रखना था।

''जमीदारी उन्मूलन एक्ट अधिकतर राज्यो मे 1956 तक पास किया जा चुका था। यह कहा जा सकता है कि 1956 के अन्त तक और अवश्य ही पचास के दशक के अंत तक, ब्रिटिश भारत के जमींदारो, और तब तक भारत मे शामिल हो चुके रजवाड़ो के जागीरदारो जैसे बिचौलियों के उन्मूलन का ख़ात्मा किया जा चुका था।''[25] इस बात को देखते हुये कि समूची प्रक्रिया जनतांत्रिक ढ़ाँचे के तहत पूरी की गई, जिसमें लगभग हिसा का प्रयोग नहीं हुआ, कहा जा सकता है कि सारा काम काफी कम समय में पूरा किया गया।

लेकिन नेहरू जी की इस योजना में कई कमियॉ रह गयी जिसे उनके कार्यकाल में दूर करने का प्रयास नही किया गया। पहली कमी तो यह थी कि जमीदारो को अदा किया गया मुआवजा वास्तव मे आम तौर पर कम था। तथा इसमे एक राज्य से दूसरे राज्य मे अन्तर भी था। जैसे- कश्मीर मे कोई मआवजा नही दिया गया। पटियाला के दखल करने वाले काश्तकारों को कुछ भी नही मिला। दूसरे, मुआवजे की राशि देने मे काफी विलम्ब किया गया। 6 अरब 70 करोड़ के कुल बकाया में से सन् 1961 ई. तक मात्र 1 अरब 64 करोड़ बीस लाख रुपये ही दिये गये।[26] तीसरे, यू.पी. के जमींदारो को वे जमीने अपने अपने पास रखने की इज़ाजत दे दी गई, जिन्हें उन्होंने अपनी 'व्यक्तिगत खेती' घोषित की थी। यह बड़ा ढ़ीला-ढ़ाला अस्पष्ट शब्द था। इससे उन सभी को खेतिहर बनाया जा सकता था जो न सिर्फ जमीन जोत रहे थे बल्कि व्यक्तिगत रूप से या अपने किसी सम्बन्धी के जरिये जमीन की देखभाल कर रहे थे या जमीन पूँजी और कर्जा मुहैया कर रहे थे।[27] इसका नतीजा यह हुआ

कि वास्तव मे वे जमीदार भी जो अनुपस्थित भू स्वामी थे, अब बड़ी जमीनो के मालिक बन सकते थे। कई इलाको मे, जमीदार अपनी 'व्यक्तिगत जोत' को अधिक से अधिक बड़ा दिखाने के लिये काश्तकारो, खासकर छोटे काश्तकारो को ब्रड़े पैमाने पर बेदखल करने लगे। इसके बाद हदबन्दी और काश्तकारी कानूनो के लागू होने पर बेदखली के और भी दौर चले। इससे कुल मिलाकर भारत मे भूमि सुधारो पर काला धब्बा लग गया।

भूमि सुधारो के क्षेत्र मे नेहरू जी ने दूसरा महत्वपूर्ण कार्य काश्तकारी से सम्बन्धित कानून बना कर किया। काश्तकारी सुधार के मुख्य उद्देश्य तीन थे।[28] पहला, उन काश्तकारों के लिये काश्तकारी की गारटी करना, जिन्होने विशेष अवधि तक उस जमीन पर खेती की हो, जैसे- ६ वर्ष, यह अवधि एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे भिन्न थी। दूसरा, काश्तकारो द्वारा दी गई लगान को एक (उचित) स्तर पर लाना। यह आम तौर पर लगान पर दी गयी जमीन के कुल उत्पादन का एक चौथाई से एक-छठा हिस्सा था। तीसरा उद्देश्य था, काश्तकार को उसके द्वारा जोती जा रही जमीन के स्वामित्व का अधिकार मिलना, लेकिन कुछ सीमाओ के साथ। काश्तकार को बाजार के भाव से काफी कम, कुछ विशेष वर्षों का वार्षिक लगान, जैसे आठ या दस वर्षो का, अदा करना होता था। उदाहरण के लिये आन्ध्र प्रदेश मे आठ वर्षो का लगान दाम के रूप मे अदा करना होता था। यह बाजार-भाव का करीब 40 प्रतिशत पड़ता था। नेहरू जी के इस उद्देश्य को बहुत ही कम सफलता मिली।[29] पहला उद्देश्य कि सभी काश्तकारों को काश्तकारी की सुरक्षा प्रदान करना, सीमित सफलता ही प्राप्त कर सका, जहाँ एक ओर काफी संख्या मे काश्तकारो को सुरक्षा जरूर मिली (कई तो भू-स्वामी भी बन गये) वहीं दूसरी ओर अभी भी बड़ी संख्या में असुरक्षित बने रहे। केरल और बंगाल मे सफलता के बावजूद, बिना सुरक्षा के काश्तकारी, जो अधिकतर मौखिक थी, जो बटाईदारी या अनाज या पैसो के रूप मे किराये पर दी जाती थी, भारत मे बड़े पैमाने पर जारी रही। बड़ी संख्या मे असुरक्षित काश्तकारो के बने रहने से काश्तकारी कानून का दूसरा उद्देश्य, अर्थात् भू-कर को 'उचित' स्तर पर लाना, पूरा करना लगभग असंभव हो गया। बाजार की स्थिति अर्थात् प्रतिकूल भूमि व्यक्ति अनुपात के कारण, जो औपनिवेशिक भारत मे पैदा हुआ, भू-कर बढ़ने लगे। ऐसी स्थिति में कानूनी 'उचित' भू-कर केवल उन्हीं काश्तकारों पर लागू हो सकता था, जो सुरक्षित थे और जिन्हें जोत का अधिकार मिला हुआ था, अर्थात् उन्हें हटाया या बदला नहीं जा सकता था। तीसरा उद्देश्य काश्तकारों को स्वामित्व का अधिकार दिलवाना था। यह भी आंशिक रूप में ही लागू हो पाया। भू-स्वामियो द्वारा फिर से जोत आरंभ करने की कोशिश, कानूनी और गैर कानूनी बेदखली, 'स्वयं' अधिकार त्याग, मौखिक या छिपे तौर पर बटाईदारी की कोशिश ने इस उद्देश्य की पूर्ति में बाधाएँ पहुँचायी।

ग्रामीण क्षेत्रो के विकास के लिये दो बड़े कार्यक्रम सामुदायिक विकास कार्यक्रम और पंचायती राज, 1952 और 1959 मे शुरू किय गये। ये कार्यक्रम गांवो मे कल्याणकारी राज्य की नीव डालने वाले थे। हालाकि ये कृषि के विकास के लिये भी बनाये गये थे, पर इनमे मुख्यत कल्याण का उद्देश्य ग्रामीण भारत का चेहरा बदलना था ताकि लोगो का जीवन स्तर सुधारा जा सके।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम सीमित स्तर पर 1952 मे शुरू किया गया, जिसमे 55 विकास प्रखड चुने गए। प्रत्येक प्रखड मे 100 गाव और करीब 60 से 70 हजार की आबादी थी। 1960 के दशक के मध्य मे आकर देश का अधिकाधिक सामुदायिक प्रखडो के जाल मे ढक गया, जिसमे 6000 प्रखंड विकास पदाधिकारी और करीब 600000 भी एल.डब्ल्यू. या ग्राम सेवक नियुक्त किये गये जो इस कार्यक्रम को लागू कर सके। इस कार्यक्रम मे ग्रामीण जीवन के हर पक्ष को लिया गया था, खेती बेहतर बनाने की विधियो से लेकर संचार, स्वास्थ्य और शिक्षा मे सुधार आदि सभी पहलुओ को लिया गया था।[30]

इस कार्यक्रम मे लोगो द्वारा आत्मनिर्भरता तथा आत्म-सहायता और उत्तरदायित्व पर मुख्य रूप से जोर दिया जाना था। यह एक प्रकार से मूलत. जनता के अपने कल्याण के लिये, जनता के एक आंदोलन के रूप मे संगठित किया जाने वाला कार्यक्रम था। जैसा कि नेहरू ने इस कार्यक्रम के शुभारंभ के अवसर पर 1952 मे कहा था कि इसका मूल लक्ष्य ''जनता के बीच नीचे से शक्ति संचार करने''[31] का था। एक तरफ यह ''आवश्यक था कि योजना बनाई जाए, उसका निर्देशन, संगठन और संयोजन किया जाये, परन्तु दूसरी तरफ, उससे भी ज्यादा जरूरी, निचले स्तर से स्वत: विकास की आवश्यक परिस्थिति तैयार करना था।''[32] इसके अलावा कार्यक्रम में भौतिक उपलब्धि का लक्ष्य तो रखा गया था, परन्तु इसका मूल उद्देश्य ''समुदाय और व्यक्ति को विकसित करना तथा व्यक्ति को अपने गांव और व्यापक अर्थो में भारत का निर्माता बना देना था।''[33] उन्होंने कहा, ''प्राथमिक वस्तु है इसमे लगा मानव।[34] इसका एक दूसरा बड़ा उद्देश्य पिछड़े तबके को उठाना था : ''हमारा लक्ष्य अवसर की समानता और अन्य पक्षो को अधिक से अधिक ऊंचे स्तर पर ले जाना होना चाहिये।''[35] 1952 और उसके बाद के वर्षों में, नेहरू बार-बार सामुदायिक विकास कार्यक्रम और उसके साथ जुड़ी राष्ट्रीय विस्तार सेवा की चर्चा ''नई सरकार''[36] और एक ''महान क्रांति''[37] तथा ''भारत के पुनरुत्थानशील भावना का प्रतीक''[38] के रूप मे किया करते थे।

इस कार्यक्रम को विस्तार कार्यो मे अच्छी सफलता प्राप्त हुई। जैसे-बेहतर बीज, खाद आदि होने के परिणामस्वरूप आमतौर पर खेती का विकास तेज हुआ और खाद्य उत्पादन बढ़ा। इसके अलावा सड़क, तालाब, कुआ, स्कूल तथा प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र आदि का निर्माण और शिक्षा एव चिकित्सा सुविधाओ का विस्तार हुआ। परन्तु जल्दी ही यह स्पष्टहो गया कि कार्यक्रम अपने एक प्रमुख उद्देश्य मे असफल हो गया- वह था अपनी विकास गतिविधियो मे लोगो की पूरी भागीदारी। न केवल इससे अपनी मदद स्वयं करने की भावना का विकास नही हो सका, बल्कि इसने सरकार मे उम्मीदो और सरकार पर निर्भरता को और बढ़ा दिया। धीरे-धीरे इसका झुकाव सरकारी काम जैसा हो गया और अफसरशाही ढांचे का हिस्सा बनकर ऊपर से शासित होने लगा। पूरा कार्यक्रम रोजमर्रा की तरह बन गया। प्रखंड विकास पदाधिकारी पारपरिक सब-डिविजनल पदाधिकारी के प्रतिरूप बन गए और ग्रामसेवक उनके कर्मचारी। जैसा कि नेहरू ने बाद मे 1963 के दौरान कहा कि जहां यह पूरा कार्यक्रम इस प्रकार बनाया गया था कि किसान को ''लीक पर से हटाया जा सके, जो पिछले कई युगो से उसी पर जीता चला आ रहा है'' वहा यह कार्यक्रम खुद ही ''उसी लीक मे धंस गया है।''[39]

इस कार्यक्रम की कमजोरी 1957 मे ही स्पष्ट हो चुकी थी, जब बलवंत्री मेहता समिति को इसका मूल्यांकन करने का काम दिया गया। इस समिति ने इस कार्यक्रम के नौकरशाही के चगुल मे फंसने और लोगों की भागीदारी के अभाव की जमकर आलोचना की। इसके इलाज के लिये समिति ने यह सिफारिश की कि ग्रामीण और जिला स्तरीय विकास प्रशासन का जनवादी विकेन्द्रीकरण किया जाये। इस सिफारिश के आधार पर यह तय किया गया कि पूरे देश मे ग्राम पंचायत को आधार बना कर एक जनवादी स्वशासन की समाकलित व्यवस्था शुरू की जाए। यह नई व्यवस्था पचायती राज के नाम से जानी गई और विभिन्न राज्यो मे 1959 से लागू की जाने लगी।[40] इसमे प्रत्यक्ष रूप से चुने गये ग्राम पंचायत और अप्रत्यक्ष रूप से चुने गये प्रखंड स्तरीय जिला परिषद के तीन स्तर बनाए गये। सामुदायिक विकास कार्यक्रम को पंचायती राज के साथ जोड़ दिया गया और बड़ी मात्रा में कार्य, वित्तीय संसाधन और अधिकार तीन स्तरीय समितियों को विकास कार्यक्रमों को चलाने के लिये सौंप दिये गये। इस प्रकार पंचायती राज्य के द्वारा सामुदायिक विकास कार्यक्रम की एक बहुत बड़ी कमजोरी को जनता की भागीदारी तथा कार्यक्रमो को लागू करने एवं निर्णय लेने का अधिकार सौंप कर दूर करने की कोशिश की गई। इसके तहत अधिकारियो की भूमिका सिर्फ सहायता और निर्देश देने की रह गई। इसके साथ ही, गांवों में हजारो सहकारी सस्थाओ की जाल बुन दिया

गया, जिनमे सहकारी बैक, भूमि गिरवी बैक, सेवा एव बाजार सहकारी समिति आदि संस्थाए बनाई गई। ये सभी सस्थाएँ स्वायत्व थी क्योकि इनका संचालन चुनाव के आधार पर बनी सस्थाओ द्वारा किया जाता था।

नेहरू का उत्साह फिर बढ़ गया क्योकि पंचायती राज एवं सहकारी सस्थाए समाज मे अन्य क्रातिकारी परिवर्तन की प्रतिनिधि थी। इससे विकास और ग्रामीण प्रशासन का उत्तरदायित्व लोगो को प्राप्त हो रहा था, जिससे ग्रामीण विकास की गति तीव्र हो सकती थी। अत. वे जनता के हाथो मे शक्ति प्रदान करने का उपकरण ही नही, बल्कि और ज्यादा आत्म-निर्भरता और लोगो के दृष्टिकोण मे परिवर्तन लाने वाली एक प्रशिक्षण प्रक्रिया बन सकती थी। इससे भी अधिक यह बेहतर मानव के निर्माण की प्रक्रिया का शुभारंभ हो सकता था।

लेकिन एक या दूसरे रूप मे पंचायती राज को स्वीकार कर लेने के बावजूद राज्य सरकारो ने इसके विषय मे बहुत कम उत्साह दिखाया। उन्होने पचायती राज को कोई वास्तविक अधिकार प्रदान नही किया, बल्कि उनके कामो और शक्ति पर अकुश लगाया और पैसे का अभाव पैदा कर मर जाने के लिये मजबूर कर दिया। नौकरशाही ने भी ग्रामीण प्रशासन पर अपनी पकड़ बिलकुल ढीली नही होने दी। पचायतो का राजनीतिकरण हो गया और राजीनतिज्ञो द्वारा गांव के अदर गुटो का समर्तन हांसिल करने के लिये इसका इस्तेमाल किया जाने लगा। परिणामस्वरूप, ग्रामीण स्वशासन की नीव तो डाल दी गई, परन्तु इसका जनवादी विकेन्द्रीकरण मोटेतौर पर अवरुद्ध हो गया और बलवंत्री मेहता समिति एवं जवाहरलाल नेहरू द्वारा जो भूमिका इसे सौपी गई, वह कभी पूरी नही हो पाई।[41]

इतना ही नहीं, सामुदायिक विकास के लाभ, नई कृषि सुविधाएं और विस्तार सेवाए मूलरूप से धनी और पूंजीवादी किसानो द्वारा हथिया ली गई। इन्हीं लोगों ने पंचायती राज संस्था पर भी प्रभुत्व जमा लिया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम, पंचायती राज और सहकारी आंदोलन की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि इसने ग्रामीण समाज के अंदर वर्ग विबाजन को नजरअंदाज किया, जहां आधे से ज्यादा लोग भूमिहीन और इसलिये बिलकुल शक्तिहीन थे। गांव पर समृद्ध, मध्यम और पूँजीवादी किसानो का सामाजिक और आर्थिक वर्चस्व था और न तो नौकरशाह और न ही समृद्ध ग्रामीण वर्ग जनता की भागीदारी और सामाजिक रूपांतरण के अग्रदूत बन सकते थे। यह एक और ऐसा क्षेत्र था जिसमें नेहरू युग की भूमि सुधार की कमजोरियां उजागर हो गई।[42]

नेहरू जिन पर राजनीति को संस्थावादी बनाने का उत्तरदायित्व था, एक सीमा तक स्वयं संस्थाओं के अकर्मण्य हो जाने के लिये उत्तरदायी थे, नेहरू जी के अधीन भारत के जनतांत्रिक ढाँचे मे विकेन्द्रीकरण की अपेक्षा केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा ही मिला। नेहरू

जी ने सामाजिक समस्याओ के सम्बन्ध मे वास्तव मे एक समाजवादी के समान ही दृष्टिकोण अपनाया। उन्होने इसके सम्बन्ध मे निरपेक्ष नीति तो अपनायी परन्तु अवसर आने पर उनका कुछ सीमा तक ही प्रयोग किया। नेहरू जी ने धर्म के सम्बन्ध मे एक तटस्थ दृष्टिकोण अपनाया। इस सम्बन्ध मे उन पर मार्क्स का प्रभाव स्पष्टत: दृष्टिगोचर होता है। नेहरू जी ने साम्प्रदायिक तत्वो की काफी आलोचना की, परन्तु यहॉ भी स्वहित की भावना प्रमुख थी। जुलाई सन् 1951 ई. में जब अखिल भारतीय काग्रेस समिति के बगलौर अधिवेशन मे चुनाव घोषणा पर विचार विमर्श हो रहा था तब कुछ काग्रेस सदस्यो ने इस बात पर दबाव दिया कि केवल हिन्दुओ के लिये ही नही, बल्कि सभी भारतीयो के लिये एक समान कोड (सिविल कोड) होना चाहिये तथा अन्य कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्यो ने संकेत किया कि सन् 1857 ई. के विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार इतना डर गयी थी कि राजनैतिक कारणो से उसने आगे और सामाजिक सुधार लाने का कार्य पूर्णरूप से छोड़ ही दिया था, लेकिन उन्ही कारणो से हम भी भारतीय मुसलमानो को पिछड़ा हुआ रखेगें तो वह उनके प्रति बहुत बड़ा अन्याय होगा। लेकिन नेहरू ने इस सुझाव को अमान्य कर दिया। उन्होने केरल मे काग्रेस दल को मुस्लिम लीग के साथ सरकार बनाने की अनुमति देकर, यह बात सिद्ध कर दी कि साम्प्रदायिकता के विरुद्ध उनके भाषणों एवं विचारो के बावजूद नेहरू उसका राजनीतिक दृष्टि से प्रयोग करने के विरोधी नहीं थे।

नेहरू जी के धर्म निरपेक्षवाद मे भी अवसरवाद शामिल था। यह तथ्य काश्मीर के झगड़े में उनके व्यवहार से सिद्ध हो गया। काश्मीर से सम्बन्धित अपने जनमत-संग्रह के प्रस्ताव को उचित ठहराने के लिये लियाकत अली को तार भेजा था दूसरे शब्दो मे यह जिन्ना के द्वि-राष्ट्र के सिद्धान्त को स्वीकार करना ही था, लेकिन जब हैदराबाद का प्रश्न आया तब नेहरू इस सिद्धान्त को भूल गये तब सरदार पटेल ने व्यंगात्मक शब्दो मे नेहरू को कहा कि भारत में नेहरू ही राष्ट्रवादी मुसलमान है। उनकी यह बात इस सीमा तक गलत थी कि भारत मे रफी अहमद किदवई जैसे दूसरे राष्ट्रवादी मुसलमान भी थे। लेकिन उनका कथन इस मामले में अंशत: सही भी था कि नेहरू को मुस्लिम सम्प्रदाय से उतना अलगाव नही था जितना कि उसके हिन्दू स्वरूप से।

नेहरू जी की प्रकृति में एक तत्व हमेशा मौजूद रहा है कि नेहरू व्यक्तिवादी भावना को कभी नहीं छोड़ पाये तथा नेहरू ने हमेशा धारा के साथ बहना स्वीकार किया है। जब भी उन्हे कोई चीज अपनी शक्ति से बड़ी लगी, वे उससे कभी भी टकराये नहीं, या तो उसके साथ

हो लिये या उससे अपने को बचा गये और परिणाम यह हुआ कि प्रकट सफलताओ का लेखा-जोखा यदि किया जाय तो आखिर मे घाटा ही दिखाई देगा। नेहरू जी सदैव शक्ति के स्त्रोत के साथ सान्निद्ध रहे तथा स्वतत्रता के बाद उनके हाथ मे भी एक बड़ी शक्ति रही, लेकिन उन्होने उस शक्ति का उपयोग किसी बड़े लक्ष्य की पूर्ति के लिये नही किया।

यदि निष्पक्ष रूप से नेहरू जी के विचारो का विश्लेषण किया जाय तो चाहे समाजवाद के क्षेत्र में उनकी कोई विशेष देन न रही हो परन्तु भारतीय राजनीति और विश्व राजनीति मे नेहरू जी का अपूर्व स्थान रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 `I am a typical bourgeois, brought up in bourgeois surroundings with all the early prejudice that this training has given us ' (J L Nehru An Autobiography, P 526

2 `I was a pure nationalist, my vague socialist ideas of college days having sunk into the background ', वही पृ 35

3 वही, पृ 56-63

4 `I must frankly confess that I am a socialist and a republican, and am no believer in king and princes, or in the order which produces the modern kings of industry, who have greater power over the lives and whose methods are as those of the old feudal aristocracy' (Essays II, P27 `Presidential Address', Dec 1929

5 `I had hoped that I might be a link between the two and bring them closer to each other - the National Congress to become more socialistic, more proletarian, and arganized labour to join the national struggle' (J L Nehru An Autobiography, XXVII, London 1958, P 197)

6 चन्द्र,बिपिन, (स), *''आजादी के बाद का भारत''* (1947-2000), हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि वि , नई दिल्ली, 2002, पृ 239-40

7 इम्पार्टेन्ट स्पीचेज आफ जवाहरलाल नेहरू, पृ 4-14

8 एस गोपाल (स), *''जवाहरलाल नेहरू वाड्मय''*, पृ 177 (लखनऊ 12 अप्रैल 1936 मे अध्यक्षीय भाषण)

9 बही, पृ 176

10 `How a socialist can be an individualist as you regard yourself, beats me The one is the antithisis of the other How socialism can ever come into existence through individualism of your type is also an enigma to me (J L Nehru "A bunch of old letters" P 328, Subhas Chandra Bose to Nehru, March, 1939

11 I suppose I am temperamentally and by training an individualist, and intellectually a socialist, what ever all this might mean I hope that socialism does not kill or suppress individuality, indeed I am attracted to it because it will release innumerable individuals from economic and cultural bondage "
(Ibid, P353, Nehru to Subhas Chandra Bose, April 3,1939

12 घोष, शकर, *''सोशलिज्म एण्ड कम्युनिज्म इन इण्डिया''* पृ 185

13 चन्द्र, बिपिन (स), *''आजादी के बाद का भारत''* (1947-2000) पृ 454

14 योजना आयोग की स्थापना 15 मार्च 1950 मे की गयी जिसके पहले अध्यक्ष प नेहरू थे।

15 चन्द्र, बिपिन (स), *''आजादी के बाद का भारत''* (1947-2000) पृ 455

16 बही, पृ 455-56

17 ब्रीचर, माइकेल, *''ए पोलिटिकल बायोग्राफी आफ जवाहर लाल नेहरू''* पृ 204

18 गौतम, आर एस , *'नेहरू - सोशलिज्म एण्ड सोसायटी''*, पृ 185

19 नरेन्द्र देव, *''सोशलिज्म एण्ड नेशनल रिवोल्युशन''* पृ 206

20 प्लानिंग कमीशन, IInd पचवर्षीय योजना, पृ 33

21 वही, पृ. 34

22 घोष, शंकर, *''सोशलिज्म एण्ड कम्युनिज्म इन इण्डिया''* पृ 212

23. एस. गोपाल (सं.), *''जवाहरलाल नेहरू वाड्मय''* पृ. 176

24 चन्द्र, बिपिन (स), *''आजादी के बाद का भारत''* (1947-2000) पृ 494

25 वही, पृ 496

26 वही, पृ 497

27 खुसरो, ए एम , वी बी सिह द्वारा सम्पादित, *''इकोनोमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया 1857-1956''*, नई दिल्ली, पृ 189

28 चन्द्र, बिपिन (स), *''आजादी के बाद का भारत''* (1947-2000) पृ 499

29 वही, पृ 404 - 405

30 वही, पृ 202

31 नेहरू, जवाहरलाल, *स्पीचेज़*, ज़िल्द-II , पृ 50

32 वही, पृ 51

33 वही, पृ 52

34 वही, पृ 54

35 वही, पृ 56

36 वही, ज़िल्द-III , पृ 22

37 वही, पृ 25

38 वही, पृ 101

39 वही, ज़िल्द-V , पृ 83

40 चन्द्र, बिपिन (स), *''आजादी के बाद का भारत''* (1947-2000) पृ 203

41 वही, पृ 204

42 वही, पृ 204

अध्याय - पंचम्

उपसंहार

अध्याय - पंचम्

उपसंहार

परिवर्तन विश्व का शाश्वत नियम है। यह परिवर्तन मानव जीवन तथा मानव-समाज के अन्ध विश्वासपूर्ण प्रयासो तथा रूढ़ियो का विनाश करता हुआ समाज को चरम् विकास की ओर अग्रसर करता जा रहा है। जिन प्रयासो तथा संस्थाओ का प्राचीनकाल मे महत्वपूर्ण स्थान था, वह अब इतिहास की वस्तु बन कर रह गयी है, उनके स्थान पर नवीन विचारो पर आधारित नवीन सस्थाओ का विकास एवं स्थापना हुआ है। इस प्रगतिशील विश्व के साथ जो शक्तियॉ, प्रथाऍ एवं संस्थाऍ उन्नतिशील होकर समयके अनुसार नही चल सकी वह निश्चितरूप से पीछे रह गयी है। कालान्तर में उनके अन्दर अनेक दोष उत्पन्न हो जाते है। जिससे उनके प्रति सार्वजनिक विरोध प्रारम्भ हो जाता है। कुछ समय में ही उनके विरोधी वर्गो की संख्या मे वृद्धि होने लगती है और उन संस्थाओ को विनाश की ओर अग्रसर होना पड़ता है। उनके स्थान पर मनुष्य ऐसी संस्थाओ को जन्म देते है जो समाज की आवश्यकताओ की पूर्ति कर सके और साथ ही साथ, प्राचीन संस्थाओ के दोषो से भी मुक्त हो सके।

विश्व के परिवर्तन सम्बन्धी नियमो को लगभग सभी चिन्तक, समाज-सुधारक, दार्शनिक इत्यादि सभी विचारक स्वीकार करते है। वे अच्छी प्रकार जानते है कि भूतकाल मे बहुत से परिवर्तन हुए है और मनुष्य की दशा समय की प्रगति के साथ-साथ परिवर्तित होती रही है। परन्तु राजनीतिक एवं सामाजिक विषयो पर विचार करते समय वह इस महत्वपूर्ण तथ्य एव सिद्धान्त को भूल जाते हैं। विशेषत: वे इस तथ्य को सुगमतापूर्वक नही स्वीकार करते है कि वर्तमान सामाजिक अवस्था से भिन्न एक दूसरी सामाजिक दशा भी हो सकती है। इसलिए वे एक नवीन सामाजिक आदर्श के वास्तविक मूल्य का उचित ढंग से अनुमान नही लगा पाते हैं।

मानव इतिहास एक निरन्तर प्रगति का लेखा है जिसके विभिन्न युग अपनी आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओ के वैषम्य के कारण एक दूसरे से पृथक है। विकास कृत्रिम अथवा आकस्मिक नही हुआ करता, वरन् यह स्वाभाविक तथा वास्तविक क्रियाओ और प्रतिक्रियाओ का परिणाम है। वर्तमान सामाजिक प्रणाली ही विकास की अतिम सीमा नही है। इसके पश्चात् एक नवीन प्रणाली का स्थानापन्न होना स्वाभाविक है। साथ ही साथ उन भावी प्रणालियो को क्रियात्मक रूप देने वाली शक्तियॉ पूॅजीवाद की नीव को खोखला करने मे कार्य अवश्य करती रही है।

यह परिवर्तन की प्रक्रिया स्वाभाविक होती है, परन्तु इस परिवर्तन को एक निश्चित दिशा की ओर अग्रसर करने का कार्य चिन्तको का होता है, इसकी उपेक्षा नही की जा सकती है। एक पुरानी व्यवस्था को नवीन आधार प्रदान करने के लिए आदर्श सिद्धान्तो की आवश्यकता होती है, जिनके आधार पर नयी व्यवस्था, नयी संस्थाओ का निर्माण किया जाता है। इसके संदर्भ मे समकालीन चिन्तको का महत्वपूर्ण योगदान होता है, जिनके सिद्धान्तो को भविष्य मे क्रियात्मक रूप दिया जाता है। सम्पूर्ण आदर्श को व्यवहार रूप मे पूर्ण रूपेण क्रियान्वित नही किया जा सकता लेकिन एक आदर्श व्यवस्था का निर्माण किया ही जा सकता है।

भारतवर्ष मे समाजवादी व्यवस्था कायम करने के प्रश्न पर साधारणत: कहा जाता है कि समाजवाद भारतीय सस्कृति के विरुद्ध है क्योकि इसका प्रादुर्भाव पश्चिमी देशो मे हुआ। जैसे-

फेबियनवाद (Fabianism) सरकार से आग्रह और अनुनय विनय कर समाजवाद लाना चाहते थे। इन्होंने अपने समाजवादी कार्यों मे भूमि का राष्ट्रीयकरण और प्रतिस्पर्धा की समाप्ति चाही। इसके लिये वे धैर्य से अवसर की प्रतीक्षा करने मे विश्वास करते थे। श्रमसंघवादी (Syndicatists) श्रम संघो को समाज का आधार मानते थे। ये उत्पादन के साधनो पर श्रमिक संघो का आधिपत्य चाहते है, उत्पादन के साधनो का राष्ट्रीयकरण चाहते है और आवश्यकता पड़ने पर हिसात्मक कार्यवाही करने मे विश्वास करते है। अराजकतावादी (Anarchists) राज्य, चर्च और निजी व्यक्तिगत सम्पत्ति के विरोधी थे और किसी भी प्रकार की सर्वोच्च शक्ति और अधिकार को अनुचित और अनावश्यक मानते थे। वे राज्य और उसके सभी नियंत्रणो से स्वतंत्र होना चाहते थे। अपने उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये हिंसात्मक और क्रान्तिकारी साधनों को अपनाने में नहीं हिचकते थे। श्रेणी समाजवादी (Guild Socialists) यह चाहते थे कि उत्पादन के समस्त साधनों पर राज्य और समाज का अधिकार होना चाहिये। इसलिये उनका राष्ट्रीयकरण कर देना चाहिये। कल कारखानो का प्रबन्ध श्रमिको के निर्वाचित प्रतिनिधियो की

समिति द्वारा होना चाहिये। साम्यवाद (Communism) उन सिद्धान्तो को प्रतिपादित करता है जिनके अनुकरण से समाज मे पूँजीवाद का नाश करके समाजवाद स्थापित किया जा सकता है। यह वर्ग संघर्ष का अनुकरण करता है जो कि पूँजीपतियो और श्रमिको या कृषको के मध्य संघर्ष का होना निश्चित मानता है जिसमे सर्वहारा वर्ग की विजय होती है। इसमे क्रान्ति एव हिसा भी होती है। अपने उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये साम्यंवादी कड़े सघर्ष और क्रान्तिकारी आन्दोलन के समर्थक रहे है। राज्य एक अस्थायी संस्था है। इसकी आवश्यकता साम्यवाद और क्रान्ति के विरोधियो के दमन के लिये है। सर्वहारा वर्ग की विजय के बाद उसका अधिनायक तत्र स्थापित हो जायेगा और तत्पश्चात् राज्य की कोई आवश्यकता नही रहेगी, वह स्वतः विलुप्त हो जायेगा। बोल्शेविकवादी (Bolshevists) उग्रवादी थे और वे बुर्जुआ वर्ग के साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही रखना चाहते थे। वे सर्वहारा वर्ग की शक्ति और अधिनायकतंत्र को स्थापित करने के लिये भीषण हिसक क्रान्ति करने के समर्थक थे। अतएव यह हमारे देश की परिस्थितियों के अनुकूल नही है।

परन्तु कुछ विचारको का मत है कि समाजवाद का प्राचीन भारत मे अस्तित्व था। वेदो तक मे समाजवाद की व्याख्या पायी जाती है। - प्राचीन भारतीय चिन्तको मे हमे कल्याणकारी, समाजवादी अवधारणा के लक्षण मिलते हैं। मनु के विचारों का आधार ही मानवतावाद था। कौटिल्य का राज्य प्रजा की रक्षा और पालन ही नही करता, बल्कि उसका मुख्य उद्देश्य है 'योगक्षेम' की स्थापना करना है। जहॉ योग का अर्थ यदि किसी वस्तु की सफलतापूर्वक उपलब्धि है, तो क्षेम का अर्थ शांतिपूर्वक उस वस्तु का उपयोग करना है। इस प्रकार योगक्षेम में लोक कल्याणकारी राज्य के भाव निहित है। कौटिल्य प्रजा के सुख मे राजा का सुख और प्रजा के हित में राजा का हित मानता है। भारतीय समाजवाद का दृष्टिकोण अपने आधार मे ही शांति की नीति लिये हुये है जिसमे मानवतावाद के प्रत्येक पहलू को स्थान दिया जाता है। वास्तव मे यह आध्यात्म और सत्य पर प्रतिष्ठित है। इस मौलिक समाजवाद में वास्तविक आध्यात्मिक चेतना प्राप्त करने के लिये निर्गुण व सगुण की पूजा, निष्काम कर्म, ज्ञान आदि साधन माने गये, जिनके सम्यक अनुष्ठान मे समत्व बुद्धि प्राप्त होती है।

आधुनिक भारत में, पुर्नजागरण काल में दयानन्द सरस्वती यद्यपि एक महान समाज सुधारक के रूप में प्रतिष्ठा पाते हैं, लेकिन उनके विचारो में समाजवादी धारणा और दर्शन के प्रमुख बिन्दु मिलते हैं। जहाँ एक ओर उन्होने मानव समानता पर बल दिया वही दूसरी ओर भारतीय समाज में दलित तथा गिरे हुये वर्गों के उद्धार करने का हर संभव प्रयास भी किया।

स्वामी विवेकानन्द यूरोप मे विकसित हो रहे दुष्प्रभाव से अत्यधिक निराश हुये। इस कारण चूँकि अमानवीय एव शोषणात्मक प्रवृत्तियो का विकास होने लगा था, वे समाजवादी बन गये। उन्होने स्वयं को समाजवादी कहना प्रारभ कर दिया। उनके ह्रदय मे गरीबो एवं पद दलितो के प्रति असीम सवेदना थी। लेकिन स्वामी विवेकानन्द उस अर्थ मे समाजवादी नही थे जिस अर्थ मे हम आधुनिक किसी राजनीतिक दार्शनिक को समाजवादी कहते है। उन्हे दो अर्थो मे समाजवादी कहा जा सकता है। पहला यह कि उनकी रचनाओ मे सामाजिक समानता का जो समर्थन देखने को मिलता है वह प्रबल पुरातनवाद तथा ब्राह्मणो की स्मृतियो मे व्याप्त सामाजिक समानता का सिद्धान्त तत्वत समाजवादी है। दूसरे, उन्होने देश के सब निवासियो के लिये समान अवसर के सिद्धान्त का समर्थन किया। भारतीय समाजवाद की यह मौलिक धारणा रही है कि उन्होने अपने ढग के समाजवाद की बात कही है जिसमे मार्क्स के इतिहास की आर्थिक व्याख्या, द्वन्द्ववाद या वर्ग संघर्ष का कोई स्थान नही है।

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ से भारतीय समाजवादी विचारधारा पर मार्क्स और पश्चिमी समाजवाद का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगता है। इसका प्रारम्भ महात्मा गांधी जी से होता है। वे स्वयं अपने आपको समाजवादी मानते थे। उनकी विचारधारा मे व्यक्तिगत स्वतत्रता, समानता, सामाजिक न्याय आदि को अत्यन्त ऊँचा स्थान प्रदान किया गया। वे अपरिग्रह एवं न्यासवादी सिद्धान्त के द्वारा आर्थिक विषमता का उन्मूलन करके आर्थिक समानता लाना चाहते थे। वे राज्यविहीन समाज की कल्पना करते थे क्योंकि मानव को उन्होने सर्वोच्च्व आदर्शों वाला माना जिसके लिये राज्य की कोई आवश्यकता नही होगी। लेकिन गांधी जी ने समाजवाद स्थापित करने के लिये अहिसक मार्ग को अपनाया और न्यासपद्धति द्वारा धन का केन्द्रीकरण रोकना चाहते थे। वे कदापि नहीं चाहते थे कि पूँजीपतियो की सम्पत्ति को जोर जबरदस्ती से छीन ली जाय। विनोबा भावे जी की सर्वोदयी अवधारणा समस्त पाश्चात्य समाजवादी अवधारणा से व्यापक है। सर्वोदय मार्क्सवाद, श्रम संघवाद, श्रेणी समाजवाद जैसी विचारधाराओ से भिन्न है क्योकि ये विचारधारायें केवल श्रमजीवी वर्ग के हितो पर जोर देती है और पूँजीपति वर्ग का समूल विनाश चाहती है। सर्वोदय तो यह मानकर चलता है कि इस प्रकार का कोई भी वर्ग-भेद समाज तथा सामाजिक जीवन मे अस्वाभाविक है। जहां मार्क्सवाद मनुष्य को भौतिकवादी प्राणी मानते हुये उसके आध्यात्मिक मूल्यो को अस्वीकार करता है, वहॉ सर्वोदय मनुष्य के नैतिक मूल्य में विश्वास करता है। फेबियनवाद व्यक्ति के सबके कल्याण के लिये अपना बलिदान कर देने का अनुरोध नहीं करता। इसके विपरीत, सर्वोदय का लक्ष्य कुछ या बहुत से व्यक्तियों का उत्थान नहीं है, अधिकतम संख्या का उत्थान भी नही है वरन् सबका उत्थान है। जहॉ पाश्चात्य समाजवादी हित का अभिप्राय भौतिक अथवा आर्थिक हित से लेते है, वहॉ सर्वोदय आध्यात्मिक विकास को प्रधानता देता है, सर्वांगीण हित की कामना करता है।

भारत के समाजवादी चिन्तको मे आचार्य नरेन्द्र देव का विशेष स्थान रहा है। उनकी गणना भारत के प्रमुख समाजवादी बुद्धिजीवियो तथा प्रचारको मे की जाती है। गांधी जी के घनिष्ठ समर्थक होते हुये भी विचारो से वे मार्क्सवादी थे। वे मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मे द्वन्द्ववाद का समर्थन करते थे किन्तु भौतिकवाद मे उनकी आस्था नही थी। वे वैज्ञानिक समाजवाद के समर्थक थे। नरेन्द्र देव एक ओर लोकतात्रिक समाजवाद के समर्थक थे तो दूसरी ओर वे वर्ग सघर्ष के सिद्धान्त के भी। वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त के माध्यम से उन्होने भारत की आर्थिक व सामाजिक समस्याओ का अध्ययन किया। सामान्य जनता मे वर्ग-चेतना का संचार करने के लिये उनकी दृष्टि मे निम्न मध्यम वर्ग तथा साधारण वर्ग मे मधुर सम्बन्धो की स्थापना आवश्यक थी। वे कृषको, बुद्धिजीवियो के सहयोग से श्रमिक वर्ग को साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष का अग्रगामी मानते थे। वे भारतीय स्वतत्रता सग्राम को आर्थिक आधार प्रदान कर उसका समाजीकरण चाहते थे। वे किसानो को समाजवादी विचारधारा से अनुप्राणित करना चाहते थे। उनका कृषक-पुनर्निर्माण का कार्यक्रम सहकारी समितियो के सगठन पर आधारित था। वे कृषि को भी सहकारिता के आधार पर उन्नत करना चाहते थे तथा कृषको व ग्राम विकास के लिये सस्ते ऋण की व्यवस्था के पक्षपाती थे। वे गांवो मे लोकतांत्रिक सरकार के पक्ष मे थे।

डॉ. राम मनोहर लोहिया भारत मे समाजवादी आन्दोलन के अग्रणी नेता थे।वे समाजवादी विचारकों के 'उग्र-प्रचारक' माने जाते थे। मास्को का पिछलग्गू बनने की बजाय वे गॉधीवादी समाजवाद के समर्थक थे। गाँधीवाद और मार्क्सवाद के सिद्धान्तो को मिलाकर डॉ. लोहिया ने भारतीय समाजवाद का निर्माण किया। उन्हे पाश्चात्य ढ़ंग से समाजवाद का अनुकरण रुचिकर नहीं था। परम्परागत कार्यक्रमो और योजनाओ के स्थान पर उन्होने मौलिक चिन्तन तथा एशियायी समाजवादियो की पहल पर विशेष जोर दिया। प्राचीन साजवाद को उन्होने एक मृत सिद्धान्त और 'कल की बात' कहा तथा उसके स्थान पर एक नवीन समाजवाद की वकालत की। उनके अनुसार इस समाजवाद के तीन मुख्य तत्व थे (1) सभी उद्योगो व बैको तथा बीमा कम्पनियो का राष्ट्रीयकरण (2) समूचे संसार में जीवन स्तर का सुधार तथा (3) एक विश्व ससद की स्थापना। नया समाजवाद आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों के विकेन्द्रीकरण के पक्ष मे था। डॉ. लोहिया का विश्वास था कि यह समाजवाद सहकारी श्रम और ग्राम सरकार के माध्यम से व्यावहारिक रूप ग्रहण कर सकता है।[1] सन् 1952 ई. मे कांग्रेस समाजवादी दल के अध्यक्ष के रूप में लोहिया ने गाँधी जी के विचारों को समाजवादी चिन्तन में अधिक मात्रा मे स्थान देने की बात कही। उन्होंने विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। डॉ. लोहिया समाजवादी धारा के गरम प्रवक्ता थे। "उन्होंने समाजवादी चितन की समस्याओं को

एशियायी दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया। वे कोरे पथवादी नही थे। उन्होने कर्म तथा चितन के द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास की समस्या को सदैव ध्यान मे रखा। वे चाहते थे कि मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन और स्वभाव की अभिव्यक्ति हो। वे इस पक्ष मे नही थे कि व्यक्तित्व के किसी एक विशिष्ट पहलू की एकांगी और सीमित वृद्धि हो।''(2)

जय प्रकाश नारायण समाजवाद को एक व्यक्तिगत आंचार संहिता न मानकर सामाजिक सगठन की एक प्रणाली मानते थे। ''समाजवाद आर्थिक और सामाजिक पुनर्निमाण का सिद्धान्त (Theory of Socio-econocic Reconstruction) है। समाजवाद का उद्देश्य समाज का समन्वित विकास करना है। समाज मे जो घोर असमानता विद्यमान है, उसका मुख्य कारण यही है कि उत्पादन के साधनो आदि पर मुट्ठी भर व्यक्तियो का एकाधिकार है। यदि ये साधन प्रत्येक व्यक्ति को उपलब्ध करा दिये जाय तो वर्तमान दरिद्रता और आर्थिक विषमताएँ बड़ी सीमा तक समाप्त हो जायेगी बशर्ते कि जनसंख्या को एक निश्चित सीमा से आगे न बढ़ने दिया जाय।''(3) समाजवाद का मुख्य आधार उत्पादनो के साधनो का समाजीकरण है जिसके द्वारा धन के विषम वितरण और शोषित-जनित बुराइयो को दूर किया जा सकता है। जे.पी. की यह मान्यता थी कि समाजवाद भारतीय संस्कृति का विरोधी नही है। भारतीय सस्कृति के मूल्यो को पूरी तरह सुरक्षित रखते हुये भी हम देश में समाजवाद ला सकते हैं। भारत में बन्धुत्व और सहयोग को सदैव सर्वोपरि सम्मान दिया गया है। प्राचीन भारत का ग्राम्य चरित्र बहुत कुछ समाजवादी ही था। ''जय प्रकाश जी के भाषणों मे एक सम्पूर्ण क्रान्ति की बहुत व्यापक व्याख्या हुई है। उनके मतानुसार यह संघर्ष केवल सीमित उद्देश्यों के लिये नही हो रहा है। उनके उद्देश्य तो बहुत दूरगामी है। भारतीय लोकतंत्र को वास्तविक तथा सुदृढ़ बनाना, जनता का सच्चा राज कायम करना, समाज से अन्याय तथा शोषण आदि का अन्त करना, एक नैतिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक क्रान्ति करना, नया बिहार बनाना और अन्ततोगत्वा नया भारत बनाना।''(4)

यदि हम भारतीय समाजवाद की विशेषताओं की ओर दृष्टिपात करे तो यह निश्चित रूप से पाश्चात्य अवधारणा से भिन्न दिखाई पड़ेगी। भारतीय समाजवाद का इतिहास दर्शन वस्तुत वेदान्त के दर्शन से प्रभावित है और इस प्रकार वह कार्ल मार्क्स की इतिहास की आर्थिक व्याख्या के विरुद्ध है। वेदान्त के इतिहास दर्शन के अनुसार मानव इतिहास की प्रक्रिया मूल रूप से विश्व प्रक्रिया का एक अंग है और इसलिये जैसे विश्व वैसे ही वह भी परम ब्रह्म अथवा परमेश्वर की इच्छा से परिचालित होती है। प्रारम्भिक समाजवादी चिन्तको ने वर्ण व्यवस्था का

समर्थन किया जिसकी झलक हमे मनु, कौटिल्य, गॉधी जी के विचारो मे मिलती है किन्तु गांधी जी, विवेकानन्द, डॉ. लोहिया, जे.पी. ने जातिवाद और अस्पृश्यता की तीव्र आलोचना करते है तथा प्रत्येक मानव को समान मानते है। वस्तुत मानवतावाद सम्पूर्ण भारतीय समाजवादियो का मुख्य केन्द्र रहा है। यह न केवल श्रमिक एव मजदूरो का ही ही, बल्कि दलित, गरीब, शूद्रो के साथ-साथ समस्त मानव के उत्थान की विचारधारा है।

भारत मे समाजवाद का विकास सामाजिक तथा आर्थिक पुनर्निमाण की एक योजना के रूप मे ही नही हुआ, बल्कि वह क्रूर विदेशी साम्राज्यवाद के बन्धनो से राजीनीतिक मुक्ति की एक विचारधारा के रूप मे भी विकसित हुआ। 1900 से 1947 के काल मे भारत की मूल समस्या देश की राजनीतिक स्वतंत्रता थी। यह नही की देश के पूँजीपतियो ने श्रमिको का शोषण किया और आर्थिक समानता हेतु समाजवाद की मॉग की गयी। भारतीय समाजवादी चिन्तन के लिये यह भी आवश्यक था कि वह खेतिहर मजदूरो के उद्धार का भी कोई सिद्धान्त या योजना प्रस्तुत करे। पश्चिमी यूरोप मे सामन्तवाद का अठारहवी शताब्दी तक प्राय: उन्मूलन हो चुका था। किन्तु भारत मे सामन्तवाद बीसवी शताब्दी के मध्य तक फलता-फूलता रहा। अत: सामंती अभिजात्य वर्गीय विशेषाधिकारो पर प्रहार करने का जो काम पश्चिम मे पूँजीवादी लोकतंत्र और पूँजीवादी उदारवाद के प्रवर्तको ने किया था वह भारत मे समाजवादी विचारकों को करना पड़ा। उन्हें पूँजीपतियो के भारी लाभ और ब्याज की बुनियाद को ही चुनौती नही देनी थी, बल्कि भूमिपतियो के लगान तथा भूमि से बिना परिश्रम के होने वाली कमाई का विरोध करना था। यह मुख्य विशेषता भारतीय समाजवाद की है जो उसे पश्चिमी साजवाद से अलग भी करती है। अतएव यह आलोचना मूलत: गलत है कि समाजवाद भारतीय सस्कृति के विरुद्ध है और इसका प्रादुर्भाव पश्चिमी देशो मे हुआ।

यदि यह मान भी लिया जाय कि समाजवाद का यूरोप मे जन्म हुआ तो भी इस आलोचना का कोई मूल्य नहीं। किसी भी सिद्धान्त की उत्पत्ति-स्थान का प्रश्न उठाना पूर्णत· अज्ञानता है, केवल गुण-दोष पर विचार करना चाहिये। समाजवाद तात्कालिक समाज की समस्याओं के निराकरण का साधन है। मानवीय स्वभाव प्रत्येक स्थानों पर एक जैसा ही पाया जाता है तथा उससे सम्बन्धित समस्याये भी सब स्थानो पर समान रूप से ही पायी जाती है। समाजवाद अन्य देशो की भाँति भारत मे भी उतना ही लागू होता है जितना दूसरे देशो मे।

समाजवाद और उसके स्वरूप की स्थापना राष्ट्रो की विभिन्न परिस्थितियो पर आधारित है। सभी राष्ट्रों में समाजवाद के एक ही स्वरूप को स्थापित नही किया जा सकता। समाजवाद मे

राष्ट्र का लोकतत्रीय स्वरूप होना चाहिये। समाजवाद मे समाज के सब सदस्यो के हित की बातो मे सभी को एकमत होना चाहिये। बिना लोकतत्रवाद के समाजवादी राष्ट्र का होना असभव है। फिर वर्तमान काल मे लोकतत्र की ओर प्रत्येक व्यक्ति एवं राष्ट्र का विशेष झुकाव है, इस झुकाव को व्यक्तिगत सम्पत्ति रोकती है, जब व्यक्तिगत सम्पत्ति नष्ट हो जायेगी तब इसके मार्ग से बाधा हट जायेगी और लोकतत्रीय समाजवाद की स्थापना होने मे कोई विलम्ब नही होगा। लोकतंत्र के अभाव मे समाजवाद की स्थापना करना असभव है, बल्कि एक नये अधिनायक वाद का जन्म होता है जिसे ''समाजवादी अधिनायकवाद' (सोशलिस्टिक डिक्टेटरशिप) की सज्ञा दी जानी चाहिये जो कि रूस मे मौजूद था और चीन मे आज भी मौजूद है।

भारतीय परम्पराएँ जीवन और उनके अधिकारो मे हिस्सेदारी का विरोध नही करती। ऐसा विद्वानो का विचार है कि व्यक्तिवाद भारतीय सभ्यता मे सदैव से प्रधान अंग रहा है, फलत: वह समाजवाद का विरोधी है। लेकिन जो विचारक इस प्रकार के विचार समाजवाद के सम्बन्ध मे रखते है वे इन दोनो आदर्शो को पूर्णरूप से समझने मे असमर्थ है। हमारी संस्कृति व्यक्तित्व-प्रधान अवश्य रही है परन्तु केवल इन अर्थो मे किं पूर्णता इसका आदर्श है। वास्तव मे भारतीय परम्परा और संस्कृति ने व्यक्ति की अपेक्षा समुदाय को ज्यादा महत्व देती है। उसने समाज के सम्पूर्ण समुदाय के विकास और उत्थान की बात कही है, कुछ व्यक्ति, अधिकतम संख्या के अधिकतम हित के स्थान पर सम्पूर्ण व्यक्तियो के हित की वकालत भारतीय सस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता रही है। संकुचित व्यक्तित्व के रूप मे कभी नही, जो कि पूँजीवादी समाज का प्रधान विषय है। जबकि व्यक्तित्व की पूर्णता समाजवाद का लक्ष्य है, तब एक समाजवादी को यह प्रकट करने में किंचित भी कठिनाई नही है कि ऐसी पूर्णता केवल सर्वाधिक सार्वजनिक हित के उद्देश्य द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। फलत: समाजवाद जो इस प्रणाली की एक (वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था) अनिवार्य प्रतिक्रिया है, जो राष्ट्रीय सीमाओं के बन्धन मे नही बंधी हुई है, इसका स्थान जितना पाश्चात्य देशो मे है उतना ही भारत मे भी है। जहां कहीं भी शोषण आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक इत्यादि असमानताएँ होगी, वही पर समाजवाद का प्रादुर्भाव एवं प्रसार अवश्य होगा। भारत वर्ष इसका अपवाद कदापि नही हो सकता है।

आधुनिक काल में भारत मे, समाजवादी विचारों का प्रादुर्भाव, जो कि अपने आप मे मौलिक है, गाँधी जी की विचारधारा से शुरू होते हैं। गाँधी जी का 'हिन्दी स्वराज्य' (1908

ई.) आधुनिक परिवेश मे भारतीय समाजवाद की पहली और सभवतया सर्वप्रमुख रचना है।[5] लेकिन लक्ष्य की साम्यता होते हुये भी उनकी विचारधारा नैतिकता के चरम सीमा पर आधारित है। उनके बाद के विचारको यथा-विनोवा भावे, डॉ. राम मनोहर लोहिया, जय प्रकाश नारायण, प. जवाहरलाल नेहरू, मुलायम सिह यादव ने गॉधीवाद और पश्चिमी समाजवाद मे सामजस्य रखने का प्रयत्न किया, जो कि अपने आप मे मौलिक है। इन सभी विचारको के ऊपर मार्क्स एवं मार्क्सवाद का प्रभाव निश्चित रूप से था। डॉ. लोहिया और जय प्रकाश जी के ऊपर तो था ही नेहरू भी उससे प्रभावित थे, लेकिन इन्होने गाधीवाद का परित्याग कभी नही किया। क्योकि गांधी जी का समाजवाद नव्य वेदान्ती समाजवाद था जो उपनिषदो के आधार पर समाजवादी राजनैतिक विचारधारा का विकास करते है। वस्तुत यही भारतीय समाजवाद की मूल अवधारणा है जिसको तिरोहित करना कोई चितक नही चाहता। यद्यपि गॉधी जी ने साम्यवाद के अनेक सिद्धान्तो का स्वागत किया था। साम्यवादियो के ही समान वे भी पूॅजीवाद का उन्मूलन करके एक वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहते थे। किन्तु इसका उनका साधन अहिसा था, क्योंकि वे कार्ल मार्क्स के वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त के विरुद्ध थे। वे वर्ग संघर्ष के बिना ही सामाजिक क्रान्ति करना चाहते थे।

आधुनिक भारतीय राजनीति मे नेहरू का महत्वपूर्ण स्थान है। वे एक समाजवादी विचारक थे। परन्तु उनका समाजवाद परम्परागत समाजवाद नही था बल्कि एक वैज्ञानिक समाजवाद था। नेहरू के स्तर के राजनीतिज्ञ और चितक के लिये समाजवाद के सिद्धान्तो एवं आदर्शो मे रुचि लेना स्वाभाविक था, क्योंकि वे समस्त समस्याएं भारत की राष्ट्रीय प्रगतिशील विचारधारा की परम्परा मे से पैदा हुई थी,साथ ही नेहरू के काल से भी सम्बद्ध थी। वे नये भारत की सामाजिक तथा राजनीतिक पुनर्निमाण के उपायो के लिये चल रही सतत् खोज की स्थिति मे भारत के जनमानस के सक्रिय सहयोग का स्वाभाविक प्रस्फुटन थी। अपनी रचनाओ मे उन्होने प्राय: एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व के महत्व का विश्लेषण किया।

हमारे स्वाधीनता संग्राम के दौरान भावी समाज रचना की दिशा मे दो समान्तर धाराएॅ चल रही थी। पहली धारा के प्रतिपादको का मानना था कि देश का विकास पश्चिमी नमूने के औद्योगीकरण से नही किया जा सकता, बल्कि नयी समाज रचना का मूलमंत्र स्वदेशी, विकेन्द्रीकरण एवं ग्राम गणतंत्र होगा। इस धारा का नेतृत्व गॉधी जी कर रहे थे। दूसरी धारा यह मानकर चल रही थी कि भारी औद्योगीकरण ही हमारे विकास का आधार होगा, जिसके लिये प्रभूत मात्रा में प्रौद्योगिकी, पूॅजी, वित्तीय संसाधन एवं अन्य सहायक साज सरंजाम नितान्त आवश्यक हैं। इसे जुटाने के लिये हम पश्चिम के धनी औद्योगिक देशो पर निर्भर होंगे। इस धारा के प्रबल पैरोकार थे- नेहरू जी।

गॉधी जी की दृष्टि मे औद्योगिक सभ्यता अभिशाप है, क्योकि वही हमारी गुलामी का मूल कारण बनी थी। उनके अनुसार "भारत गरीब और कगाल तब बना, जब हमारे शहर विदेशी बाजार बन गये और विदेशो के सस्ते माल को ला-ला कर भरने लगे और गॉवो की दौलत खीचकर ले जाने लगे।"[6] इसके विपरीत नेहरू देश की खुशहाली के लिये पश्चिमी ढर्रे के औद्योगीकरण को अपरिहार्य मानते थे। वे औद्योगिक क्रान्ति के सकारात्मक प्रभावों से अभिभूत से दीखते थे। उनका विश्वास था कि "पिछले दो हजार वर्षो के विश्व इतिहास मे मानव जीवन को परिवर्तित करने वाला कोई भी तत्व इतना शक्तिशाली नही रहा, जितना कि औद्योगिक क्रान्ति और उसकी अनुगामी क्रियाये।[7]

नेहरू जी स्वाधीनता संग्राम मे भारत के नव शिक्षित अगेजीदा वर्ग के अगुवा थे। वे उस बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, जो यूरोपीय शिक्षा-दीक्षा और संस्कार के परिणाम स्वरूप अस्तित्व मे आया था। यही कारण है कि उन्होने गॉधी के खादी ग्रामोद्योग, रचनात्मक कार्यक्रम, विकेन्द्रीकरण और स्वदेशी को हमेशा संदेह की दृष्टि से देखा। स्वाधीनता सग्राम मे उन्होने भारत के नव-शिक्षित युवा वर्ग और भारतीय विचारधारा व व्यवस्था-परम्परा से कट चुके बुद्धिजीवी वर्ग को गहरे स्तर तक प्रभावित किया था।

तीस के दशक मे मानवता के सामने साम्यवाद और फासीवाद के बीच चुनाव का प्रश्न था, नेहरू का मत निश्चित रूप से साम्यवाद के पक्ष मे था। यद्यपि उन्होने साम्यवाद को एक आदर्श समाज के रूप में स्वीकार कर लिया था, फिर भी वे कभी भी एक समर्पित मार्क्सवादी नही बन सके। उनके लिये मार्क्सवाद एक एकात्मक तार्किक निर्मित नही था, बल्कि प्राथमिक रूप से एक बौद्धिक आवेग था, जो काफी हद तक सहानुभूति पर आधारित था। जबकि वह अतीत के मार्क्सवादी विश्लेषण को स्वीकार करते थे, वे भविष्य के मार्क्सवादी निदान को स्वीकार नही करते थे बलप्रयोग की पद्धति और क्रान्तिकारी अधिनयाकवाद उनके लिये न तो अनिवार्य था, न आवश्यक और न सार्थक। उन्होने आधा उदारवाद और आधा मार्क्सवादी रूख अपनाया और जीवन भर उसे अपनाये रखा। वह एक उदार मार्क्सवादी थे, जिनकी समाजवाद की धारणा हर स्तर पर नागरिक स्वाधीनता का एक बड़ा तथा अपरिवर्तनीय मात्रा लिये होती थी। वह मानव स्वभाव की किसी भी यांत्रिक दृष्टि को अस्वीकार करते थे और एक समाजवादी समाज की ओर नजर लगाये रहते थे, जो आर्थिक और सामाजिक बाधाओ तथा निषेधों को हटाकर व्यक्तिगत स्वतंत्रता के वृहत्तर अवसर प्रदान करेगा।

एक तरह से नेहरू का मस्तिष्क विचारधारात्मक के स्थान पर उग्रपरिवर्तनवादी था और उनके लिये समाजवाद एक व्यापक प्रवृत्ति थी, न कि कट्टर विश्वास की विशिष्ट सस्था।

परिभाषा नही, बल्कि उद्देश्य उनके बौद्धिक पक्षधरता को प्रभावित करता था। वह अपने को वैज्ञानिक समाजवादी मानते थे, पर इससे भारतीय परिस्थितियो के प्रति समाजवादी दृष्टिकोण को ग्रहण करने मे उन्हे कोई परेशानी नही नजर आती थी। भारतीय जन की गरीबी और अधोपतन को देखते हुये, उन्हे समाजवादी समाधान के अलावा और कोई रास्ता नही दिखता था, पर यह उन्हे अनिवार्य नही लगता था। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी समाजवाद को देश पर लादा नही जा सकता था। अतएव फौरी काम था लोगो को प्रशिक्षित करना, जिससे कि समय आने पर वे सही फैसला ले सके। तब सभवत बिना किसी को कोई क्षति पहुँचाए, बहुमत के समर्थन से समाजवादी आदर्श राज्य की स्थापना की जा सकती है।''[8]

नेहरू को सैद्धान्तिक समाजवाद के लिये काग्रेस को कमजोर करने के बजाय आर्थिक मुद्दो के प्रति कांग्रेस का ध्यान आकर्षित करना और आर्थिक आयाम देकर उसकी प्रगतिशील गति को दृढ़ करना ज्यादा सही लगा। नेहरू ने जो कदम सुझाये, वह कभी भी चौकाने वाले नही लगे। हालांकि उनके पास समाजवाद का एक भव्य खाका था, पर उसकी शुरुआत वह बहुत मर्यादित ढ़ंग से करना चाहते थे, जिससे किसी को ज्यादा आशंका न हो। भारत के लिये नेहरू शुद्ध समाजवादी दृष्टिकोण से तैयार कोई ऐसा कार्यक्रम नही प्रस्तुत करना चाहते थे, जो विशुद्ध कागजी अभ्यास होता, बल्कि समाजवादी झुकाव वाला कांग्रेसी दृष्टिकोण से तैयार कार्यक्रम प्रस्तुत करना चाहते थे। सन् 1924 मे उन्होने सुझाव दिया था कि राज्य धीरे-धीरे प्रमुख उद्योगो का अधिग्रहण करे, न्यूनतम मजदूरी की गारंटी दे और कर बढ़ाए, पर जमीदारी प्रथा का उन्मूलन आंशिक क्षतिपूर्ति का भुगतान करके किया जाये और उसके स्थान पर व्यक्तिगत किसान मालिकों द्वारा अधिकृत छोटी जोतो की स्थापना की जाए, जिसे हस्तांतरित करने का अधिकार मालिको को न दिया जाये। कृषि ऋणो को माफ कर दिया जाय, पर आंशिक अदायगी के बाद।

मई 1929 मे नेहरू ने यह स्वीकार किया कि वास्तव मे भारतीय जनो की गरीबी का कारण समाज का आर्थिक ढ़ाँचा भी है जिसमे क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है और इस क्रान्तिकारी परिवर्तन हेतु कांग्रेस को राजी भी करा लिया। इसी आधार पर उन्होने 1930 में उत्तर प्रदेश के लिये थोड़ा उग्र परिवर्तनवादी मसौदा तैयार किया। इस मसौदे में बड़ी जमींदारियो के स्थान पर किसान स्वामित्व की स्थापना, बड़े राजकीय कृषि फार्मो की स्थापना, लगान की उच्चतम सीमा का निर्धारण विस्तृत काश्तकारी अधिकार, तेजी से बढ़ते हुए कराधान का प्रस्ताव था।

जब 1931 मे मौलिक अधिकारो की बात आयी तो नेहरू ने अपना समाजवादी दृष्टिकोण परिवर्तित किया। लेकिन इसमे कुछ नया न था। उद्योग मे आर्थिक स्वतंत्रता का अर्थ था सिर्फ एक निर्वाह योग्य मजदूरी और काम करने की समुचित परिस्थितियॉ, ट्रेड यूनियने बनाने का हक, पंचाट (मध्यस्थता) मशीनरी की स्थापना, और खनिज ससाधनो और प्रमुख उद्योगो पर सरकारी नियत्रण। कृषि मे उक्त प्रस्ताव मे केवल कर और लगान मे पर्याप्त कमी और उत्तरोत्तर वर्धमान कराधान का विधान था। जमीदारी प्रथा के उन्मूलन और भूमि के समाजीकरण के बारे मे इस प्रस्ताव मे कुछ भी नही कहा गया था और इस बात का भी कोई सुझाव नही था कि कम-से-कम ग्रामीण ऋण का एक अश माफ कर दिया जायेगा। पर यह प्रस्ताव काग्रेस द्वारा उठाया गया एक और कदम था, चाहे वह जितना भी हिचकिचाहट भरा क्यो न हो। वह कदम समाजवाद के रास्ते पर नही उठा था, बल्कि एक आर्थिक नीति की पहचान की दिशा मे उठा था, क्योकि यह प्रस्ताव उस पृष्ठभूमि का निर्धारण कर सकता था, जिसमे एक समाजवादी विचारधारा को आगे बढ़ाया जा सकता था।

इन थोड़े से प्रस्तावो के अतिरिक्त कांग्रेस का रूख समाजवाद की दिशा मे मोड़ने के लिये नेहरू की दूसरी अप्रत्यक्ष दृष्टि थी योजना की चेतना का निर्माण। क्योकि योजना समाजवाद का एक अंग है, एक प्रजातांत्रिक समाज मे समाजवादी अर्थव्यवस्था के निर्माण का एक अनिवार्य तरीका[9] बाद में उन्होने और भी स्पष्ट बातें कहीं।

उन्होंने कहा कि "मै सम्पूर्ण जनतत्र का विश्वासी हूँ - राजनैतिक और आर्थिक। फिलहाल मै राजनैतिक जनतंत्र के लिये काम कर रहा हूँ, लेकिन मेरी आशा है कि यह सामाजिक जनतंत्र तक भी अपना विस्तार कर लेगा। कांग्रेस ने हमारे मसलो को सुलझान के लिये एक ही मुमकिन जनतांत्रिक कार्य-प्रणाली तय की है और वह है संविधान सभा। मै नही समझ सकता कि अपने को जनतंत्रवादी कहने वाला भी इसमे आपत्ति कर सकता है या कोई दूसरा रास्ता देख सकता है।"[10] उन्होने राष्ट्रीय जीवन के सामाजीकरण के महत्व को रेखांकित किया क्योंकि गरीबी, तकलीफ और बेकारी सारे मुल्क मे फैली हुयी थी और बढ़ती ही जा रही थी। इससे छुटकारा पाने का उनके सामने एक ही रास्ता था "वह रास्ता समाजवाद का है। हमें इस मुल्क में समाजवाद कायम करना चाहिये। इसके अलावा मुझे दूसरा कोई रास्ता नहीं सूझता। अगर दुनिया में ऐसा कोई मुल्क है, जिसे आजादी और समाजवाद की सबसे ज्यादा जरूरत है तो वह गरीबी का मारा हमारा मुल्क है, जहाँ बेकारी फैली हुयी है। इसी

वज़ह से मुझे उम्मीद है कि हमारे मुल्क के लोग अपने मुल्क को आजाद करने की पूरी कोशिश करेगे और समाज के पुर्नगठन के लिये एक आन्दोलन खड़ा करेगे जिससे समाजवाद के सिद्धान्तो के जरिये मुल्क का मार्गदर्शन हो सके साथ ही साथ यह मानवता की स्वतत्रता के लिये किये जा रहे प्रयत्नों मे भी सहायक हो सके।''[11] नेहरू जी वास्तव मे समाज से मुनाफे का इरादा ख़त्म करना चाहते थे तथा उसके स्थान पर समाज-सेवा देना चाहते थे। वे चाहते थे कि होड़ की जगह सहयोग और उत्पादन मुनाफ़े के बदले उपभोग के लिये हो। लेकिन इसके लिये वे अहिसात्मक प्रणाली ही अपनाना चाहते थे। सहनशील और शांतिपूर्ण प्रणाली लाना चाहते थे और इसी को वे समाजवाद मानते थे।

सन् 1936 ई. नेहरू जी ने स्पष्ट किया कि ''समाजवाद एक आर्थिक सिद्धान्त है, जो उन मसलो को समझने और उन्हे हल करने की कोशिश करता है, तो आज दुनिया को तकलीफ दे रहे हैं।''[12] लेकिन उनके लिये ''सबसे बड़ा मसला सियासी है और आज़ादी के बिना समाजवाद या दूसरे आर्थिक परिवर्तनो की बात करना हवाई महल बनाना है। यहॉ तक कि समाजवाद के बारे मे बातचीत करने से भी गड़बड़ी पैदा हो जाती है और हमारे बीच अलगाव पैदा हो जाता है। हमे सिर्फ सियासी आजादी पर ही नजर रखनी चाहिये। बाकी सारी बाते जरूरी तौर से उसके बाद होगी।''[13] स्पष्टत: नेहरू यह चाहते थे कि इस समय समाजवाद पर ज्यादा जोर नदिया जाय। सर्वप्रथम आज़ादी की बात कही जाय इसे उन्होने स्वीकार भी किया और कहा कि ''मेरी समझ मे इसकी वजह यह नही है कि कोई समाज़वादी यह समझता है कि हिन्दुस्तान मे सियासी आज़ादी कायम होने के पहले समाजवाद की कोई जगह हो सकती है। समाजवाद आजादी के बाद ही आ सकता है, बशर्ते कि हिन्दुस्तान उसके लिये तैयार हो और लोगो की बहुत बड़ी तादात उसे चाहती हो।''[14] लेकिन यह सब कहने के पीछे उनका इरादा पूँजीपतियों और कांग्रेस को भयभीत करना न था।

आजादी के उपरान्त नेहरू जी जहॉ एक ओर विकास की गति बढ़ाने के लिये त्वरित औद्योगीकरण पर बल देते थे, वही दूसरी दूसरी ओर समाजवादी 'पैटर्न' के ढ़ाँचे (Socialistic Pattern of Society) की भी वकालत करते थे। 9 नवम्बर, 1954 को राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक में बोलते हुये उन्होंने कहा था कि - ''मैं सोचता हूँ कि हमे उस नक्शे के बारे में स्पष्ट होना चाहिये, जिसके अनुरूप हम अपना समाज बनाना चाहते थे। भावी समाज का जो चित्र मेरे दिमाग में है, वह निश्चित ही सर्वथा समाजवादी 'पैटर्न' का ढ़ाँचा है। मैं इस शब्द का प्रयोग कोरे मतवाद के रूप में नहीं कर रहा हूँ, बल्कि इस व्यापक अर्थ में कर रहा हूँ

कि उत्पादन के साधनो का सामाजिक स्वामित्व व नियत्रण होना चाहिए, ताकि इनका लाभ समूचे समाज को मिल सके। अवाड़ी मे सम्पन्न काग्रेस के वार्षिक अधिवेशन (जनवरी, 1955) मे उन्होने अपने लक्ष्य को स्पष्ट करते हुये कहा था- ''समाजवादी 'पैटर्न' के ढ़ॉचे को स्थापित करने की दृष्टि से ही सारा नियोजन सचालित किया जाना चाहिये।''(15) काग्रेस के भुवनेश्वर अधिवेशन (जनवरी, 1964) मे लोकतांत्रिक समाजवाद की स्थापना का लक्ष्य स्वीकृत किया गया। नेहरू की दृष्टि मे समाजवाद, समाजवादी पैटर्न का ढ़ॉचा, लोकतात्रिक समाजवाद -इन सबसे मूलत: एक ही अर्थ निकलता है। स्वय उन्ही के शब्दो मे - ''समाजवादी ढ़ग के ढ़ॉचे और समाजवाद मे कोई अन्तर नही है। कुछ लोग समाजवादी ढ़ग के ढॉचे, समाजवादी ढॉचे और लोकतात्रिक समाजवाद मे भेद करते है। लेकिन, ये सब तो एक ही अर्थ के द्योतक है।''(16)

नेहरू के प्रधानमंत्रित्वकाल मे नियोजित विकास की शुरुआत हुई। उनके द्वारा परिकल्पित विकास के मॉडल में भारी उद्योगो को अर्थव्यवस्था का आधार माना गया। द्रुत आर्थिक विकास के लिये त्वरित औद्योगीकरण की रणनीति अपनायी गयी यही कारण है कि देश के दुर्लभ संसाधनों का इस्तेमाल कृषि के बजाय उद्योगो के विकास के लिये अधिकाधिक किया गया। भारी उद्योगो मे विनियोग स्वयं-स्फूर्त अर्थतत्र (Self generating economy) के विकास के लिये अपरिहार्य माना गया।

विकास की जो रणनीति अपनायी गयी, उसके चलते विदेशी संसाधनो (पूँजीगत साज सरंजाम, वित्त, प्रौद्योगिकी, प्रबंधन और तकनीकी कर्म कौशल) की जरूरत तेजी से महसूस की गयी। चूँकि अपने यहाँ आत्मनिर्भरता को एक महत्वपूर्ण लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया, इसलिये विदेशी संसाधनो की सहायता की जरूरत तो और भी ज्यादा समझी गयी। (विदेशी सहायता को एक अल्पकालिक अर्थात् थोड़े अरसे तक चलने वाली अपरिहार्यता के रूप मे स्वीकार किया गया), जिसके जरिये आत्मा निर्भरता के पायो को मजबूत किया जाना था। चूँकि पूँजी के निर्माण एवं निवेश के बिना आर्थिक विकास का चक्र प्रवर्त्तन संभव नही है, इसलिये यह खुले तौर पर स्वीकार किया गया कि यदि हम विदेशी सहायता लेकर पूँजी का निर्माण और निवेश करेंगे, तो आर्थिक विकास को बल मिलेगा। कहने का मतलब यह है कि जहाँ एक ओर आत्मनिर्भरता को एक महत्वपूर्ण लक्ष्य के रूप मे परिभाषित किया गया, वही दूसरी ओर आत्मनिर्भरता की दिशा में निर्बाध गति से आगे बढ़ने के लिये विदेशी कर्जो और निवेशों को बेहिचक बढ़ावा दिया गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के वक्तव्य मे यह बात साफ

शब्दो मे कही गयी है- 'दीर्घकाल मे, औद्योगीकरण और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास की दर सामान्यत बाकी उद्योगो के उत्पादन मे वृद्धि-खास तौर पर कोयले, बिजली, लौह एव इस्पात और भारी मशीनो के उत्पादन मे बढ़ोत्तरी पर निर्भर करेगी। इससे पूँजी निर्माण की क्षमता बढ़ेगी। हमारा एक महत्वपूर्ण लक्ष्य यह भी है कि भारत को विदेशी उत्पादक वस्तुओ के आयात से जल्दी-से-जल्दी मुक्ति दिलायी जाय, ताकि पूँजी सचयन मे अन्य देशो से प्राप्त की जाने वाली अनिवार्य उत्पादक वस्तुओ से सम्बन्धित कठिनाइयो के कारण बाधा न उत्पन्न हो। अत: भारी उद्योगो को अधिकतम संभव रफ्तार से आगे बढ़ाना होगा।''[17]

स्वतंत्र भारत मे नेहरू द्वारा ऊपर से केन्द्रित नियोजन की प्रणाली लागू की गयी। 1 अप्रैल 1951 से प्रथम पंचवर्षीय योजना का श्रीगणेश हुआ। योजना की शुरुआत भारी औद्योगीकरण से हुई। भारी औद्योगीकरण के नाम पर वृहदाकार उद्योगो के बड़े-बड़े तीर्थ अस्तित्व मे आये। फिर, दूसरा नारा खेती मे अधिक उत्पादन का आया। हरित क्रान्ति हुई। भरपूर उत्पादन हुआ। लेकिन, समाज मे हर स्तर पर भीषण गैर बराबरी बढ़ती गयी। योजनाबद्ध विकास से गॉव वालोंको भोजन, वस्त्र, शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास की बात तो दूर रही, अधिसंख्य गॉव मे पीने का पानी ही सुलभ नही हो सका। परम्परागत ग्रामोद्योग और घरेलू उद्योग, धंधों के समूल नष्ट हो जाने से गाँवो की भारी जनसख्या रोजगार की तलाश मे शहरों की ओर भाग रही है। मिश्रित अर्थव्यवस्था के कारण आजादी के बाद पूँजीपतियो के हाथों मे अर्थसत्ता का केन्द्रीकरण जिस द्रुतगति से बढ़ा है, उतना दुनिया के किसी भी विकासशील या नवस्वाधीन देश मे नही बढ़ा।

यद्यपि नेहरू जी ने अपनी समाजवादी नीतियो के तहत जमीदारी उन्मूलन का प्रयास किया और इसी उद्देश्य को प्राप्त करने की दृष्टि अधिकतर राज्यों मे 1956 मे जमीदारी उन्मूलन एक्ट लागू करवाया। लेकिन इस अभियान मे कई कमियाँ रह गयी। जैसे- जमीदारो को अदा किया गया मुआवजा वास्तव में कम था। इसमे एक राज्य से दूसरे राज्य मे अन्तर भी था। कश्मीर मे कोई मुआवजा नही दिया गया। पटियाला के दखल करने वाले काश्तकारो को कुछ भी नही मिला। जो भी मुआवजा दिया गया वह समय पर काश्तकारो को प्रदान नही की जा सकी।6 अरब 70 करोड़ रुपये के कुल बकाया में से सन् 1961 तक मात्र 1 अरब 64 करोड़ 20 लाख रुपये ही दिये गये।''[18] यू.पी. मे जमीदारो को वे जमीनें अपने पास रखने की इज़ाजत दे दी गई, जिन्हें उन्होंने अपनी व्यक्तिगत खेती घोषित की थी। यह बड़ा ढ़ीला-ढ़ाला अस्पष्ट शब्द था। इससे उन सभी को 'खेतिहर' बनाया जा सकता था जो न सिर्फ जमीन जोत रहे थे बल्कि व्यक्तिगत रूप से या अपने किसी सम्बन्धी के जरिये जमीन की

देखभाल कर रहे थे, या जमीन पूँजी और कर्जा मुहैया करा रहे थे।[19] इसके अलावा यू.पी., बिहार और मद्रास जैसे राज्यो मे 'व्यक्तिगत खेती' की कोई सीमा नही थी। यह सीमा तभी स्पष्ट हुयी जब हदबन्दी कानून पास किये गये। दूसरी ओर कांग्रेस की कृषि सुधार समिति (कुमारप्पा समिति) की 1949 की रिपोर्ट मे स्पष्ट कहा गया था कि सिर्फ वे ही 'व्यक्तिगत खेती' करने वाले कहलायेगे। जो कम से कम कुछ शारीरिक काम करते है और वास्तविक कृषि प्रक्रियाओ मे भाग लेते है। साथ ही, समिति ने 'व्यक्तिगत प्रयोग' मे शामिल की जाने वाली भूमि की सीमा बॉध दी थी। वह सीमा किसी भी हालत मे काश्तकार के लिये न्यूनतम आर्थिक सीमा से नीचे नही होनी चाहिये।[20]

इसका नतीज़ा यह हुआ कि वास्तव मे वे जमीदार भी जो अनुपस्थित भूस्वामी थे, अब बड़ी जमीनो के मालिक बन सकते थे। कई इलाको मे, जमीदार अपनी 'व्यक्तिगत जोत' को अधिक से अधिक बड़ा दिखाने के लिये काश्तकारो, खासकर छोटे काश्तकारो को बड़े पैमाने पर बेदखल करने लगे। इसके बाद हदबंदी और काश्तकारी कानूनो के लागू होने पर बेदखली के और भी दौर चले। इससे कुल मिलाकर भारत मे भूमि सुधारो पर काला धब्बा लग गया।

नेहरू जी का ग्रामीण गरीबी, असमानता और भूमि-हीनता दूरकरने का सहकारी खेती का रास्ता विफल रहा। साधनहीन लोगो के लिये की गयी अन्य कोशिशों का फायदा अधिकतर खाते-पीते किसानो ने उठाया। नेहरू की कोशिशों के बावजूद 1955 के अवाड़ी अधिवेशन द्वारा काग्रेस के उद्देश्य केरूप मे 'समाज का समाजवादी ढ़ॉचा अपनाने के बावजूद, और नागपुर कांग्रेस के सुझावों के बावजूद भारतीय कृषि समाजवाद की दिशा की ओर नही चल पायी। जैसा कि डेनियल थॉर्नर ने बड़े सुस्पष्ट शब्दों मे पेश किया है "जहॉ तक भारत सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में समाजवाद लागू करने का सवाल है, वह उतनी ही विफल रही है जितनी कि ब्रिटिश सत्ता पूँजीवाद लागू करने में।"[21]

नेहरू जी "सामुदायिक विकास योजनाओ को भारत की जगमगाती, जीवन से परिपूर्ण एवं प्रावैगिक चिनगारियां कहा करते थे।"[22] जिसमे शक्ति, आशा व उत्साह की किरण फूटती है। वे कहते थे "सामुदायिक विकास योजनाओ का मकसद हमारे देश के आम लोगों को आशा का संदेश देना है, उनमें आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास की भावना पैदा करना है और अपने मकसदों को कड़ी और मिली जुली कोशिश से हांसिल करने का तरीका सिखाता है।"[23] इस सारगर्भित लक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुये उन्होंने गांवो के सर्वांगीण विकास के लिये 2 अक्टूबर 1952 से 1955 तक चुनी हुई परियोजनाओं मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम लागू

किया था, जिसका मुख्य उद्देश्य ''जाति उन्मुख परम्परागत समाज को समाज उन्मुख समाज'' मे परिवर्तित करना था ताकि जाति की जगह समाज को ऊँचा स्थान मिले।

आरम्भ में 'राष्ट्रीय विस्तार सेवा' सामुदायिक विकास कार्यक्रम की प्रारम्भिक अवस्था थी। एक से दो वर्ष की अवधि के बाद राष्ट्रीय विस्तार कार्यक्रमो मे कुछ को सामुदायिक विकास के अन्तर्गत ले लिया गया था और अप्रैल 1958 से सामुदायिक विकास एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा का अन्तर नही रहा। नेहरू जी के प्रयासो से सामुदायिक विकास कार्यक्रम दो अवस्था मे (प्रत्येक की अवधि 5 वर्ष) रखा गया। प्रथम अवस्था से पूर्व एक वर्ष की विस्तार पूर्व सेवा भी रखी गयी थी जिसमे कृषि की पैदावार बढ़ाने पर जोर दिया गया था। इस उदान्त कार्यक्रम के चार प्रमुख उद्दश्य थे -

(1) ग्रामीण जनता मे प्रगतिशील दृष्टिकोण का विकास करना,

(2) सहकारी ढ़ग से काम करने की आदत डालना,

(3) उत्पादन मे वृद्धि एव

(4) रोजगार मे वृद्धि।[24]

नेहरू जी इस कार्यक्रम के माध्यम से स्वावलम्बी लोकतत्र को गहराई से रोपित करना चाहते थे, अत: उपरोक्त उद्देश्यो की पूर्ति के लिये गॉवो मे अनेक प्रकार का विस्तार, शिक्षा प्रसार, स्वास्थ्य की सुविधाओ मे वृद्धि, सस्ते आवासीय मकानों का निर्माण, वृक्षारोपण, भूमि सुधार, सड़क निर्माण, समाज कल्याण आदि कार्यक्रमो मे उत्पादन एवं सामाजिक कल्याण मे जुड़वा उद्देश्यों पर बल दिया गया।

नेहरू जी पंचायती राज के हिमायती थे। जब स्वतंत्रता पश्चात् भारत के चतुर्मुखी विकास के लिये प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951-56 क्रियान्वित की गयी तब उसमे ग्रामीण विकास कार्यक्रम को प्रमुखता प्रदान की गयी थी। क्योंकि नेहरू जी यह मानते थे कि ''स्थानीय स्वशासन या पंचायत सरकारी इमारत की नींव है। अगर यह नीव मजबूत न हो तो उस पर खड़ी हुयी इमारत कमजोर होगी।''[25] उन्होंने यह भी कहा कि ''कुछ हद तक केन्द्रीकरण जरूरी है, लेकिन विकेन्द्रीकरण बहुत जरूरी है। जब हम प्रशासन मे विकेन्द्रीकरण शुरू करते है तो हम पंचायत तक पहुँचते है, जो सबसे छोटी इकाई है।''[26] नेहरू जी की इच्छानुसार पंचायती राज की स्थापना से कृषिगत उत्पादन को कुछ सीमा तक बढ़ावा मिला है व देश के कुछ भागो में पूँजीगत साधनो के निर्माण मे ग्राम की श्रमशक्ति का अधिक प्रयोग किया गया है।

ग्रामीण विकास के सदर्भ मे नेहरू जी के 'सहकारी आन्दोलन' को बढ़ावा देने के कारण कभी नही भुलाया जा सकता। वे सहकारिता को जीवन का एक तरीका मानते थे और इसी के माध्यम से भूमि अपखण्डन की समस्या को हल करना चाहते थे। नेहरू जी इस आन्दोलन के मूल दर्शन से अत्यधिक प्रभावित हुये और उन्होने इसको भारतीय जन जीवन की काया पलटने वाला मूल मत्र मान लिया। अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण (1954) की रिपोर्ट के बाद नेहरू जी के नेतृत्व मे 1955 मे सहकारी आन्दोलन को पुन सगठित करने का प्रयास किया गया। ग्रामीण क्षेत्रो मे इस आन्दोलन को पूरा समर्थन मिला।[27]

नेहरू जी की उपर्युक्त नीतियो मे अनेक खामियॉ रही है। योजनाओ के क्रियान्वयन मे, विशेषकर सामुदायिक विकास कार्यक्रम मे, राजनैतिक नेतृत्व तथा प्रशासको ने यह विचार नही किया कि आम ग्रामीण की जीवन शैली मे तथा उनकी जीवनधारा मे कहा क्या साम्य है तथा क्या विसंगतियॉ है। वास्तव मे आवश्यकता इस बात की थी कि देश ग्रामीण भारत के किसानो, मजदूरो तथा दस्तकारो की समस्याओ को सही परिप्रेक्ष्य मे समझे। विकास की वे योजनाएँ जो एक किस्म के मध्यस्थ वर्ग की समाप्ति का वादा करे किन्तु दूसरी किस्म के नव-सामन्त मध्यस्थ वर्ग के जन्म का बीजारोपण कर दे, कदापि सामाजिक न्याय पर आधारित आर्थिक ढ़ांचे की सृजनकर्ता साबित नही हो सकती। नेहरू जी ने आज़ादी के पश्चात् सन् 1948 से 1955 के बीच विभिन्न भूधारण तथा काश्तकारी अधिकार कानूनो को पारित करवा कर देश के 30.4 लाख कृषको को भूस्वामित्व के अधिकार दिलवाये। 1965 के पश्चात् भूमि सुधारो से सम्बन्धित कई कदम उठाये गये लेकिन निहित स्वार्थो के कारण इन्हे प्रभावशाली ढ़ंग से लागू नही किया जा सका है।

अपने पंचायत सम्बन्धी अवधारणा मे नेहरू जी ने स्वयं यह स्वीकार किया था कि "यह मानी हुयी बात है कि जो लोग पंचायतो को चलाते है, उनमे कुछ अच्छाईयॉ है और कुछ कमियॉ भी हैं। हम यह जानते है और हमसे यह कहा जाता है कि हमें उनका भरोसा नही करना चाहिये। यह एक ऐसा तर्क है कि यदि उसे एक बार मान लिया जाय तो उसके गंभीर नतीजे होगे।"[28] परन्तु फिर भी नेहरू जी ने पंचायती राज में विश्वास किया। लेकिन नेहरू से लेकर आज तक विकेन्द्रीकरण का वह स्वरूप लागू नही हो पाया जिसकी कल्पना गाँधी जी ने की थी। नेहरू जी के काल में पंचायती राज की भूमिका अप्रभावी रही है इसका मुख्य कारण पंचायती राज संस्थाओं मे एकरूपता का प्रभाव था। भारतीय सघ के विभिन्न राज्यो मे पंचायती राज व्यवस्था के विभिन्न रूप, विभिन्न अधिकार

और कर्त्तव्य दृष्टिगोचर होते रहे। यद्यपि भारतीय सविधान मे 73वे सशोधन (1992 ई.) द्वारा ''पचायती राज अधिनियम 1993'' पारित कर पूरे देश मे पचायती व्यवस्था मे एकरूपता लाने का प्रयास किया गया लेकिन आज भी इसके समक्ष मुख्य समस्याये है - **(1)** वित्त सम्बन्धी शक्तियो एव निधियो का दुरुपयोग और ऋण वितरण सम्बन्धी अनियमितताओ से युक्त समस्याएँ **(2)** राजनीतिक, साम्प्रदायिक तथा क्षेत्रवाद सम्बन्धी समस्याएँ **(3)** शासकीय और अशासकीय अधिकारियो के मध्य मधुर सम्बन्धो की समस्या।[29]

अगर नेहरू काल का विश्लेषण किया जाय तो अवाड़ी कांग्रेस (सन् 1954 ई.) से लेकर भुवनेश्वर कांग्रेस (1964) तक जबकि नेहरू जी गभीर रूप से बीमार हो गये थे, के बीच काग्रेस सरकार के क्रिया कलापो पर दृष्टिपात करे तो मालूम होगा कि नेहरू जी के जीवनकाल मे समाजवादी समाज-रचना की दिशा मे कोई उपलब्धि नही हुई है, बल्कि बार-बार समाजवाद के सम्बन्ध मे ऐसे प्रस्ताव पारित करते जाने से समाजवादी एवं साम्यवादी दलो पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

समय व्यतीत हुआ। नेहरू जी के विचारो मे भी परवर्तन हुआ। सन् 1956 ई. से 1964 ई. मे बहुत अधिक फर्क आ गया था। सत्ता मे आने के बाद वह मार्क्सवादी नही रह गये थे। जबकि सन् 1936 मे उन्होने कहा था कि वैज्ञानिक समाजवाद अथवा मार्क्सवाद ही विश्व की समस्याओ का अकेला हल है। सन् 1956 ई. मे उन्होंने .विचार व्यक्त किया था कि यह अत्यन्त गलत बात है कि मार्क्स से, जो कि 19वी सदी के मध्यकाल मे हुए थे, यह बताने को कहा जाय कि 20वीं सदी के मध्यकाल मे क्या कुछ करना चाहिये। लेकिन नेहरू जी के समाजवाद मे व्यक्तिवाद का एक तत्व अधिक उत्पादन वृद्धि की प्रबल इच्छा हमेशा ही विद्यमान रही है। उन्होने न केवल समान वितरण की भावना वरन् भारतीय परिस्थितियो के अनुकूल समाजवाद की इच्छा और प्रजातत्र के साथ उचित सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। लेकिन नेहरू जी के व्यक्तिवादी तत्व ने समाजवाद की प्रक्रिया में अवरोधक तत्व का कार्य किया। यही कारण है कि जिसे नेहरू जी समाजवाद कहते थे, वह समाजवाद नही वरन् सीधा-सादा पश्चिमी उदारवाद था।

नेहरू जी मार्क्स और गाँधी की नीतियो से भिन्न ब्रिटिश उदारवाद के आधार पर सभी प्रकार की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय असमानताओ को दूर करना चाहते थे। मानवता के दृष्टिकोण से वे पूर्व-पश्चिम, काले-गोरे अमीर-गरीब, छोटे-बड़े राष्ट्रों और स्त्री-पुरुष के बीच की दूरी मिटाना चाहते थे। लोकतंत्र के विकास और शस्त्रो की होड़ को समाप्त करने के लिये उन्होने

अद्वितीय प्रयास किये। विश्व मे शांति-स्थापना के लिये गुट-निरपेक्षता की नीति अपनाई जिसे की सकारात्मक तटस्थता की नीति भी कहा जा सकता है जो कि पंचशील के सिद्धान्तो पर खड़ी की गयी थी, असंदिग्ध रूप से नेहरू जी के नाम से जुड़ी हुई है, वह इस नीति के निर्माता थे। कुछ देशो ने इसका विरोध भी किया था। वास्तव मे नेहरू जी की गुटनिरपेक्षता की नीति, जिसका कि तटस्थ देशो मे से अधिकाशत अनुकरण कर रहे है, निष्क्रियता से कोई सम्बन्ध नही है। नेहरू जी की यह नीति विकसित देशो की राष्ट्रीय स्वतत्रताओ को खतरे मे डालने वाली प्रतिक्रियावादी आक्रामक शक्तियो के प्रतिरोध का एक महत्वपूर्ण साधन है। वास्तव मे नेहरू जी का योगदान इतना राष्ट्रीय स्तर पर नही है जितना की अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे है। नेहरू जी की गुट निरपेक्षता की नीति को आज विश्व मे शाति का साधन मान कर इसका अनुकरण करने के लिये प्रयासरत है।

भारतीय राष्ट्र के सुदृढ़ीकरण, आर्थिक विकास एव सामाजिक रूपातरण की नेहरू जी की रणनीति की एक सबसे बड़ी कमजोरी, गाधी के अहिसक संघर्ष की रणनीति के एक सबसे अहम सिद्धान्त का पालन नही करने के कारण पैदा हुई थी और वह सिद्धान्त था जनता को आन्दोलित करने पर बल देना। यद्यपि नेहरू जी बड़े पैमाने पर जनता को राष्ट्र निर्माण के कार्यो मे सम्मिलित करने की आवश्यकता को समझते थे। परन्तु उनका स्वत: स्फूर्तता मे अतिशय विश्वास था और वे मानते थे कि गरीब जनता अपने हितो के लिये इस संदर्भ मे खुद ही अपने आप को आन्दोलित कर लेगी। वे इस अतिसरलवादी धारणा मे विश्वास करते थे कि वोट डालने के क्रम में जनता धीरे-धीरे स्वयं इतनी शिक्षित हो जायेगी कि सिर्फ अपने हितो के पक्ष मे ही वोट डालेगी। परन्तु राजनीति में जनता की सक्रिय भागीदारी और उसकी सामाजिक मुक्ति के लिए संगठन और आन्दोलन के लिये एक पार्टी, जनवादी रूप से संगठित ही सही कुछ कार्यकर्ता; और एक न्यूनतम विचारधारा की आवश्यकता तो होती ही है। परन्तु नेहरू जी किसी ऐसी संस्था, ढ़ॉचा, माध्यम या विचारधारा का निर्माण करने मे असफल रहे जिससे जनता का कम से कम उनकी अपनी ही पार्टी के निम्न स्तरीय कार्यकर्ता राजनीतिक रूप से प्रशिक्षित, सक्रिय और आंदोलित किये जा सकें। बुनियादी रूप से लोगों को गोलबंद करने का उनका एकमात्र तरीका देश भर की विस्तृत यात्रा करना था जिसके माध्यम से वे आम लोगों से संवाद करते थे और अपनी नीतियों के लिये व्यापक जनाधार तैयार किया करते थे। 1947 ई. के बाद किसी लोकप्रिय जनसंगठन के अभाव में कोई भी इन यात्राओ के परिणामो को आगे बढ़ाने वाला नहीं रह गया था। परिणामत: 1947 के बाद नेहरूवादी काल में चुनावो मे हिस्सेदारी को छोड़कर बाकी कभी आम जनता के बीच व्यापक राजनीतिक भागीदारी सामने नही आई।

नेहरू अपने स्वप्नो और नीतियो को धरातल पर उतारने के लिये संस्थाओ और संगठनो के निर्माण मे भी असफल रहे। वे आम जनता को अपने पीछे गोलबंद करने के लिये किसी भी तरह के सामाजिक उपकरण की रचना नही कर सके। इसका सामान्य तौर पर परिणाम यह निकला कि उसकी नीतियो, कार्यक्रमो और विचारो को काफी कमजोरी से लागू किया गया। भूमि सुधार को लागू करने, सामुदायिक विकास परियोजनाओ के कार्यान्वयन तथा सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबंधन मे होने वाली खामियो की जड़े दरअसल इसी कारण मे छुपी हुयी थी।

नेहरू अपनी नीतियो को लागू करने के लिये ज्यादा से ज्यादा सरकारी प्रशासन और नौकरशाही पर निर्भर रहने लगे। यहाँ तक कि समुदाय विकास कार्यक्रम और पचायती राज जो लोगो को उनके अपने विकास मे शामिल करने के दो सबसे महान प्रयास थे, अन्ततः नौकरशाही के नियंत्रण मे चले गये। ग्रामीण स्तर का सामाजिक कार्यकर्ता, जो ग्रामीण पुनर्निमाण का सबसे महत्वपूर्ण धुरी था, अब अफसरशाही की विशाल मशीन का मात्र एक पुर्जा बनकर रह गया और वह गाव मे कम से कम समय बिताने की कोशिश करता था।

नेहरू ने जन आन्दोलनों, जन जागरणो और शैक्षणिक अभियानो द्वारा सामाजिक ढॉचे की बुराइयो, जैसे- जाति प्रथा, पुरुष प्रधानता, परिवारवादी तंत्र, गांवो के गरीबो का गांव के अमीरो पर आश्रित होना, बढ़ते हुये भ्रष्टाचार आदि के विरुद्ध भी पूरे दम-खम से जेहाद छेड़ने की कोशिश नही की। उन्होने समाज के प्रभुत्वशाली वर्गों को सहमति और ह्रदय परिवर्तन पर भी बहुत ज्यादा जोर दे डाला।

यद्यपि नेहरू जी ने भारत को आत्मनिर्भर स्वतंत्र अर्थव्यवस्था के रास्ते पर खड़ा किया और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को आगे बढ़ाया। उन्होने जनता को एक समाजवादी आदर्श प्रदान किया तथा समता, समानता और समान अवसर पर आधारित एक व्यापक समाजवादी समाज के लक्ष्य को लोकप्रिय बनाया फिर भी इसमें कोई शक नही कि असफलताएँ भी अनेक थी, अपर्याप्त भूमि सुधार, सरासर दोषपूर्ण और अपर्याप्त शिक्षा व्यवस्था, व्यापक गरीबी और विशाल आर्थिक असमानता, लिंग और जाति आधारित शोषण, पारम्परिक मूल्यो का व्यापक ह्रास और उसकी जगह बटोरने की पूंजीवादी मानसिकता का विकास, खेतिहर मज़दूर और शहरी गरीब हालाकि जाग्रत किये गये, परन्तु ये तब भी दिन प्रतिदिन की प्रभावशाली सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सत्ता से वंचित रहे और उनका आत्मनिर्भर क्रिया-कलाप दूर की चीज बना रहा।

नेहरू जी की विचारधारा पर पश्चिम की विशेष रूप से इंग्लैण्ड की लोकतंत्रीय संसदीय एवं उदारवादी विचारधाराओं का प्रभाव पड़ा, जिसकी वजह से उनके चिन्तन पर भी प्रभाव

पड़ना स्वाभाविक था। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक इत्यादि समस्याओ के समाधान एवं विकास के सम्बन्ध मे भी उनका दृष्टिकोण पश्चिमी प्रभाव को छोड़ने मे असमर्थ रहा है। उस पश्चिमी प्रभाव को भारतीय स्थिति के साथ सामजस्य स्थापित करने मे वे असमर्थ रहे है। यही कारण है कि नेहरू जी स्वय एव उनके सिद्धान्त आलोचना के कारण बने। फिर भी राष्ट्रीय राजनीति मे ही नही, वरन् अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे भी नेहरू जी का विशेष स्थान रहा। उनके व्यक्तित्व मे वह विशेष आकर्षण था जो उनसे एक बार मिला वह स्वयं झुक गया।

अन्त मे इतना कहना पर्याप्त होगा कि 'नेहरू जी एक महत्वपूर्ण और प्रतिनिधिक व्यक्ति थे। उन्होने भारत मे अपनी पीढ़ी के तमाम और लोगो की अपेक्षा कही शक्तिशाली भूमिका अदा की थी, चाहे वे उस भूमिका के उपयुक्त रहे हो या नही, और यद्यपि उनका मस्तिष्क अधिकाश लोगो से ज्यादा पेचदार और परिष्कृत था, फिर भी वे अपने देश के बहुसख्यक शिक्षितो के विचारो के प्रतीक थे। अगर उनमे इतनी तरह की अतर्धाराएँ और अतर्विरोध दिखाई देते है तो कमोवेश वे सब उन लोगो मे भी विद्यमान थे, जो नेहरू को अपना प्रवक्ता मानते थे।''[30]

संदर्भ ग्रन्थ

1 लोकतत्र समीक्षा (जनवरी-मार्च, 1972) रामचन्द्र गुप्त का लेख, *''भारतीय समाजवादी दल के बदलते आयाम''* पृ 126
2 वर्मा, डॉ वी पी , *''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चितन''* आगरा, 1996, पृ 541
3 शर्मा, डॉ उर्मिला एव शर्मा, डॉ एस के , *''भारतीय राजनीतिक चितन''*, नई दिल्ली, 2001, पृ 445
4 वही, पृ 446
5 वही, पृ 304
6 महात्मा गाधी, *''हरिजन''*, 27 फरवरी 1937, पृ 18
7 नेहरू , जवाहर लाल, स्पीचेज, Vol III, 1958, पृ 56-60
8 सर्वपल्ली गोपाल, *''आधुनिक भारत''* (स), नई दिल्ली, 2001, पृ 152
9 वही, पृ 155
10 सर्वपल्ली गोपाल, *''जवाहरलाल नेहरू वाड्मय''* (स), भाग-7, नई दिल्ली, 1979, पृ 270
11 वही, पृ 239
12 वही, पृ 300
13 वही, पृ 301
14 वही, पृ 305
15 नेहरू, जवाहर लाल, स्पीचेज, Vol III, पब्लिकेशन्स डिवीजन, 1970, पृ 19
16 दत्त, रुद्र एव सुन्दरम्, *''भारतीय अर्थव्यवस्था''*, 1990, नई दिल्ली, पृ 137
17 प्लानिंग कमीशन, द सेकेण्ड फाइब इयर प्लान, पृ 63
18 चन्द्र, विपिन, *''आज़ादी के बाद का भारत''* (1947-200) (स), हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दि वि वि , नई दिल्ली, 2002, पृ 497
19 खुसरो, ए.एम , सिंह, वी बी , *''इकोनोमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया''* (स) 1857-1956, नई दिल्ली, 1965, पृ 189
20 आई एन सी इकोनोमिक रेज़ोल्यूशन, पृ 38
21 ऑर्थर, डेनियल, *''द शेपिंग आफ मॉर्डन इण्डिया''*, एलायड, नई दिल्ली-1980, पृ 253
22 नेहरू, जवाहर लाल, *''सामुदायिक विकास और पचायती राज''*, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली (1990), पृ 69
23 वही, पृ 69
24 'कुरुक्षेत्र, अक्टूबर 1989, कृषि मत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, कृषि भवन, नई दिल्ली, पृ. 36
25 नेहरू, जवाहर लाल, *''सामुदायिक विकास और पंचायती राज''*, नई दिल्ली, 1990, पृ 104
26 वही, पृ 107
27 वही, पृ 104
28 श्रीवास्तव, डॉ अरुण कुमार, *''भारत मे पचायती राज''*, जयपुर, 1994, पृ 50
29 वही, पृ 51
30 सर्वपल्ली गोपाल, *''आधुनिक भारत''* (सं), नई दिल्ली, 2001, पृ 145

परिशिष्ट

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

हिन्दी की पुस्तकें

१. आचार्य नरेन्द्र देव, *''राष्ट्रीयता और समाजवाद''*, प्रथम सस्करण, सवत २००६, तृतीय सस्करण, संवत २०३०, ज्ञान मण्डल लि., बनारस

२. आचार्य नरेन्द्र देव, *''समाजवाद और क्रान्ति''*, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, प्रथम संस्करण, १९४६

३. आचार्य नरेन्द्र देव, *''समाजवाद-लक्ष्य और साधन''*, ज्ञान मडल लि. बनारस, प्रथम संस्करण, संवत २००८

४. *'इंग्लैण्ड का राजदर्शन'*, डेविडसन व बार्कर के ग्रन्थो का हिन्दी अनुवाद, इलाहाबाद

५. इन्दुदीप, *''सम्पूर्ण क्रान्ति''*, कम्युनिस्ट प्रकाशन, कानपुर, १९७४

६. ओकार शरद, *''लोहिया''*, राजरंजना प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६७

७. ओंकार शरद, (सं.), *''लोहिया के विचार''*, लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, १९६९, इलाहाबाद

८. ओकार शरद, *''इतिहास चक्र''*, (डॉ. लोहिया की पुस्तक 'व्हील आफ हिस्ट्री' का हिन्दी मे अनुवाद) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९८

९. केलकर, इन्दुमति, *''लोहिया-सिद्धान्त और कर्म''*, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, १९६३

१०. केलकर, ओम प्रकाश (सं.), *''राम मनोहर लोहिया-जीवन और दर्शन''* चेतन साहित्य प्रकाशन, फैजाबाद, १९६८

११. कश्यप, सुभाष, गुप्त विश्व प्रकाश, *''राजनीति कोश''*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्व विद्यालय, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९९८

१२. गोपालन, ए.के., *''मेरी जीवनी''*, इण्डिया पब्लिशर्स, लखनऊ, १९६३

१३. गाधी, मोहनदास कर्मचन्द, *''गांधी साहित्य''* (५), सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, १९५०

१४. गाधी, मोहनदास कर्मचन्द, *''गाधी-आत्मकथा''*, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, १९७०

१५. गाधी, मो.दा. कर्मचन्द, *''मेरा समाजवाद''*, नव जीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, १९५९

१६. गाधी, मोहन दास कर्मचन्द, *''गांधीवाद-समाजवाद''* हिन्द प्रकाशन, इलाहाबाद, १९५३

१७. गाधी, मोहनदास कर्मचन्द, *''सर्वोदय''* (रास्किन की कृति अन्टू दिस लास्ट का सार), सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९८

१८. गाधी, मोहन दास कर्मचन्द, *''अपरिग्रह और अनासक्ति''*, (सम्पादक-यशपाल जैन) सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९८

१९. गैटिल, *''राजनीतिक चिन्तन का इतिहास''* (अनुवादक-सत्य नारायण दुबे) लक्ष्मी नारायण लाल, आगरा, १९६०

२०. चन्द्र, बिपिन, (सं.), *''आजादी के बाद का भारत, (१९४७-२०००)''*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, २००२

२१. जैन, यशपाल, *''गांधी दर्शन''*, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९८

२२. जैन, यशपाल, *''अपरिग्रह और अनासक्ति''*, सस्ता साहित्य मण्ल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९८

२३. जौहरी, जगदीश चन्द्र एवं पुरवार, राजेन्द्र कुमार, *''भारतीय शासन एव राजनीति''*, विशाल पब्लिकेशन्स, जालन्धर, दूसरा सस्करण, १९९०

२४. डॉ. रघुवंश, *''जय प्रकाश नारायण के विचार''*, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९७७

२५. डॉ. सम्पूर्णानन्द, *''समाजवाद''*, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, पंचम संस्करण, सं., २००२

२६. डॉ. ताराचन्द्र, *''भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास''*, (दूसरा खण्ड), नई दिल्ली, पब्लिकेशन्स डिवीजन, १९६७

२७. दत्त, रुद्र एव सुन्दरम् के.पी.एम., *''भारतीय अर्थ व्यवस्था''*, एस.चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली, चौबीसवा सस्करण, १९९४

२८. दत्त, रजनीपाम, *''आज का भारत''*, मैकमिलन, नई दिल्ली, १९७७

२९. देसाई, ए.आर., *''भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठ भूमि''*, मैकमिलन, नई दिल्ली, १९७७

३०. दिनकर, रामधारी सिह, *''लोकदेव नेहरू''*, उदयाचल प्रकाशन, राजेन्द्र नगर, पटना, प्रथम सस्करण, १९६५

३१. दुबे, अभय कुमार, *''मुलायम सिह यादव, एक आलोचनात्मक अध्ययन''*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सस्करण, १९९७

३२. दिनकर, रामधारी सिह, *''सस्कृति के चार अध्याय''* लोक भारती प्रकाशक इलाहाबाद, नवीन संस्करण, १९९९

३३. धर्माधिकारी, दादा, ''सर्वोदय दर्शन'', अखिल भारतीय सेवा संघ काशी, १९५७

३४. नेहरू, जवाहर लाल, ''कुछ पुरानी चिट्ठियॉ, सम्पादक-उपाध्याय हरिभाऊ, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, २१वां संस्करण-१९६७

३५. नेहरू, जवाहर लाल, ''विश्व इतिहास की झलक'' सम्पादक वार्ष्णेय चंद्रगुप्त, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, १९६५

३६. नेहरू, जवाहर लाल, ''मेरी कहानी'', सं., उपाध्याय हरिभाऊ, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, चतुर्थ सस्करण, १९६५

३७. नेहरू, जवाहर लाल, ''हिन्दुस्तान की कहानी'', सम्पादक, वार्ष्णेय चन्द्रगुप्त, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, १९६६

३८. नेहरू, जवाहर लाल, ''सामुदायिक विकास और पंचायती राज'', सम्पादक वार्ष्णेय, चन्द्रगुप्त, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९६६

३९. नेहरू, जवाहर लाल के भाषण (१९४९-१९५३), भारत शासन, नई दिल्ली

४०. नेहरू, जवाहर लाल के भाषण (१९५३-१९५६), भारत शासन, नई दिल्ली

४१. नेहरू, जवाहर लाल, ''सहकारिता'', सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, १९९०

४२. नेहरू, जवाहर लाल, 'हिन्दुस्तान की समस्याये'', सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, १९८८

४३. नारायण, जय प्रकाश, ''सघर्ष की ओर'', (अनु मंगलदेव शर्मा), शिवलाल एण्ड कम्पनी लि., आगरा, प्रथम संस्करण, १९५८

४४. नारायण, जय प्रकाश, ''समाजवाद क्यो और कैसे'' (सम्पा. श्री रामवृक्ष बेनीपुरी), पुस्तक जगत, पटना, प्रथम सस्करण, १९४८

४५. नरायण, जय प्रकाश, ''समाजवाद, सर्वोदय और प्रजातत्र'', अखिल भारतीय सर्वसेवा संघ, काशी, प्रथम सस्करण, १९६४

४६. प्रकाश गुप्त, ''अखिल भारतीय सर्व सेवा संघ, काशी, प्रथम सस्करण, १९६५

४७. नारायण, जयप्रकाश, ''जीवन दान'', अखिल भारतीय सर्वसेवा सघ काशी, प्रथम संस्करण, १९५४

४८. नारायण, जय प्रकाश, 'लोक स्वराज्य'', सर्व-सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, १९९९

४९. नारायण, जय प्रकाश, 'सम्पूर्ण क्रान्ति'' सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन, वाराणसी, १९९९

५०. नारायण, जय प्रकाश, 'मेरी विचार यात्रा'', भाग-१, सर्व-सेवा-सघ प्रकाशन, वाराणसी, पांचवा संस्करण, १९९२

५१. नारायण, जय प्रकाश, 'मेरी विचार यात्रा'', भाग-२, सर्व-सेवा-सघ प्रकाशन, वाराणसी, तीसरा संस्करण, १९९७

५२. नागर, डॉ. पुरुषोत्तम, ''आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण, १९८०

५३. पट्टाभिसीता रमैया, ''कांग्रेस का इतिहास'' (प्रथम तीन खण्ड), सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, १९४६

५४. पट्टाभिसीता रमैया, ''महात्मा गांधी का समाजवाद'', (अनु. जगपति चतुर्वेदी) राष्ट्रीय प्रकाशन मन्दिर, लखनऊ, १९७३

५५. बेनीपुरी, रामवृक्ष, 'जय प्रकाश'', बेनीपुरी प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, १९६७

५६. बर्नस, एमित्स, ''मार्क्सवाद क्या है?'' पीपुल्स प्रकाशन हाऊस, दिल्ली, तृतीय संस्करण, १९६२

५७ भारतीय, भवानीलाल (स.), ''महर्षि दयानन्द की आत्मकथा'', वैदिक यत्रालय, अजमेर, १९७५

५८. भावे, विनोबा, ''भूदान यज्ञ'', नवजीवन पब्लिशिग हाऊस, अहमदाबाद, १९५३

५९. भावे, विनोबा, ''सर्वोदय के आधार'', अखिल भारतीय सेवा संघ, काशी, १९५६

६०. भावे, विनोबा, ''भूदान गंगा'', प्रथम खण्ड, अखिल भारतीय सर्व सेवा सघ प्रकाशन, काशी, १९५६

६१. मार्क्स, कार्ल, ऐजिल्स फ्रेडरिक, ''सकलित रचनाएं'', (चार भाग) प्रगति प्रकाशन, मास्को

६२. मार्क्स, कार्ल, ऐजिल्स फ्रेडरिक, ''भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम'', पीपुल्स पब्लिशिग हाऊस, नई दिल्ली, १९६३

६३. मार्क्स, कार्ल, फ्रेडरिक ऐंजिल्स, ''कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र'', पीपुल्स पब्लिशिग हाऊस, नई दिल्ली, १९७४

६४. मार्क्स, कार्ल, ''पूँजी'', (तीन खण्ड) प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९६६

६५. मिप्रोखिन, लियोनिद, फेदिन निकोलोई, 'नेहरू सोवियत दृष्टि मे'', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९६५

६६. मेहता, अशोक, ''लोकतांत्रिक समाजवाद'', (अनु. श्यामा प्रसाद प्रदीप), अखिल भारतीय सर्व सेवा संघ, काशी, १९५९

६७. महाजन, विद्याधर, ''भारत १५२६ से आगे'', एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली, १९९१

६८. यशपाल, ''मार्क्सवाद'', विप्लव प्रकाशन, लखनऊ, १९७६

६९. राय, डॉ. सत्या एम. ''भारत मे उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद'', हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, २०००

७०. लाल, डॉ. लक्ष्मी नारायण, ''जय प्रकाश नारायण'', मैकमिलन, नई दिल्ली, १९७५

७१. लाल, अवध बिहारी, ''सम्पूर्ण क्रान्ति के सूत्रधार - लोकनायक जय प्रकाश नारायण'', नव भारत टाइम्स प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सस्करण, १९७०

७२. लोहिया, डॉ. राममनोहर, ''अन्य समस्या, ''नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद प्रथम सस्करण, १९६८

७३. लोहिया, डॉ. राम मनोहर, ''इतिहास चक्र'' (अनु. ओकार शरद) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण-१९६८

७४. लोहिया डॉ. राममनोहर, ''काचन मुक्ति'', नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, प्रथम सस्करण, १९५६

७५. लोहिया डॉ. राम मनोहर, ''क्रान्ति के लिये सगठन'' भाग-१, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, प्रथम सस्करण, १९६३

७६. लोहिया डॉ. राम मनोहर, ''खर्च पर सीमा'', (प्रस्ताव और बहस), विजय ढाढनिया, कलकत्ता

७७. लोहिया, डॉ. राम मनोहर, ''जाति प्रथा'', नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, प्रथम संस्करण, १९६४

७८. लोहिया डॉ. राम मनोहर, ''धर्म पर एक दृष्टि,, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, प्रथम संस्करण, १९६६

७९. लोहिया, डॉ. राममनोहर, ''निजी और सार्वजनिक क्षेत्र'', नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, प्रथम संस्करण, १९६६

८०. लोहिया, डॉ. राम मनोहर, ''भारत मे समाजवाद'', नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, प्रथम संस्करण, १९६८

८१. लोहिया, डॉ. राम मनोहर, ''भाषा'', नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, प्रथम संस्करण, १९६५

८२. लोहिया, डॉ. राम मनोहर, ''समदृष्टि'', राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास प्रकाशन, हैदराबाद, १९७०

८३. लोहिया, डॉ. राम मनोहर, ''समाजवाद की अर्थनीति'', नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, प्रथम संस्करण, १९६८

८४. लोहिया, डॉ. राम मनोहर, ''समाजवाद की राजनीति'', नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, प्रथम संस्करण, १९६८

८५. लोहिया, डॉ. राम मनोहर, ''समाजवादी आन्दोलन का इतिहास'', राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास प्रकाशन, हैदराबाद, प्रथम संस्करण, १९६९

८६. लोहिया, डॉ. राम मनोहर, ''सात क्रान्तियॉ'', नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, प्र.स , १९६६

८७. लोहिया, डॉ. राम मनोहर, ''सिविल नाफरमानी सिद्धान्त और अमल'', समाजवादी प्रकाशन, हैदराबाद, १९६०

८८. लेनिन, ब्ला.ई., ''संकलित रचनाए'' (चार खण्ड), प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९६९

८९. लेनिन, ब्ला.ई., ''सस्कृति और सास्कृतिक क्रान्ति'', पीपुल्स पब्लिशिग, नई दिल्ली, १९६७

९०. लेनिन, ब्ला.ई., ''साम्राज्यवाद-पूँजीवाद की चरम अवस्था'', विदेशी प्रकाशन गृह, मास्को

९१. लेनिन, ब्ला.ई , ''राजसत्ता और क्रान्ति'', विदेशी प्रकाशन गृह, मास्को, लियोन्तोव, एल., ''समाजवाद और पूँजीवाद'', पीपुल्स पब्लिशिग हाऊस, (प्रा.) लि., १९७३

९२. वर्मा, महादेव प्रसाद, ''आधुनिक राजनीति के विभिन्न वाद'', चैतन्य पब्लिशिग प्रा.लि., इलाहाबाद, १९६५

९३. वर्मा, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद, ''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चितन'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, १९९५-९६

९४. वर्मा, डॉ. एस.एल., ''समकालीन राजनीतिक चितन'', मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, १९८९

९५. वेपर, सी.एल., ''राजदर्शन का स्वाध्ययन'' (अनु. वार्ष्णेय, राधेलाल), किताब महल, १९६३

९६. शोभा शंकर, ''आधुनिक भारतीय समाजवादी चितन'', साहित्य भवन, इलाहाबाद, १९८०

९७. शर्मा, डॉ. उर्मिला, शर्मा डॉ. एस.के., ''भारतीय राजनैतिक चितन'', एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, २००१

९८. शुक्ल, आर.एल. (सं.) ''आधुनिक भारत का इतिहास'' हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, १९९८

९९. सेठ, अमर नाथ, ''जय प्रकाश'', साहित्य भवन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९७७

१००. स्कार्फ, एलेन और बेन्डी, ''जय प्रकाश-एक जीवनी'' (अनुवादक-केशवानन्द), राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, १९७८

१०१. सिन्हा, रमेश चन्द्र (सं.) ''आधुनिक पूँजीवाद'' इण्डिया पब्लिशर्स, लखनऊ, १९७२

१०२ सम्पूर्णानन्द, ''समाजवाद'', भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता, १९६४

१०३. सरस्वती, दयानन्द, ''सत्यार्थ-प्रकाश'', सार्वदेशिक प्रकाशक लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली, १९७२

१०४. स्वामी विवेकान्द, ''शिकागो वक्तृता'', श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर, १९७५

१०५. सर्वपल्ली गोपाल, ''जवाहर लाल नेहरू वाड्मय'', भाग-४ एव भाग-७, (अनु प्रफुल्ल चन्द्र ओझा), सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, १९७९

१०६. सूद, जे.पी., ''आधुनिक राजनीतिक विचारो का इतिहास'', भाग-४, के. नाथ एण्ड कम्पनी, मेरठ, १९८४-८५

१०७. हरिभाऊ उपाध्याय (सं.) ''गांधीवाद-समाजवाद'', हिन्दी प्रकाशन, इलाहाबाद, १९५३

इनसाइक्लोपीडिया

१. त्रिपाठी, राम प्रसाद, ''हिन्दी विश्वकोष'' खण्ड-१०, नागरी प्रचारिणी सभा, बाराणसी, संस्करण, २०२५ (सं.)

२. कश्यप, सुभाष एव गुप्त, विश्व प्रकाश, ''राजनीति कोष'', हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९९८

पत्र पत्रिकायें-हिन्दी

१. यग इण्डिया, २०.१.१९२०, १५.११.१९२७, २० ११.१९२९, २९.३.१९२७
२. हरिजन, २९.६.१९३५, २८.८.१९४०, १३.७ १९४७, २६ १ १९५२, २५.०.१९५२, २०.१२ १९५२
३. जन, दिसम्बर १९६७, प्रकाशक- गौड़ मुराहरि, नई दिल्ली
४. जन, मार्च १९६८, ,, ,, ,, ,,
५. जन, मई १९६८, ,, ,, ,, ,,
६. जनवाणी, आचार्य नरेन्द्र देव, काशी विद्यापीठ, वाराणसी
७. दिनमान, १५ अक्टूबर १९६७, टाइम्स आफ इण्डिया प्रकाशन, दिल्ली
८. दिनमान, २२ अक्टूबर १९६७ ,, ,, ,, ,,
९. दिनमान, ५ जनवरी १९६९ ,, ,, ,, ,,
१०. दिनमान, ४ जनवरी १९७० ,, ,, ,, ,,
११. दिनमान, ६ जून १९७१ ,, ,, ,, ,,
१२. दिनमान, २ जुलाई १९७६ ,, ,, ,, ,,
१३. जनसत्ता, ६ जून १९९७ ,, ,, ,, ,,
१४. धर्मयुग, ३० सितम्बर १९७७ (सम्पूर्ण क्रान्ति विशेषाक), टाईम्स आफ इण्डिया, नई दिल्ली
१५. योजना, १-१५ जनवरी १९९१, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार
१६. कुरुक्षेत्र, अक्टूबर १९८९ (नेहरू जन्म शताब्दी अंक), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, कृषि भवन, नई दिल्ली
१७. सम्पदा, समाजवाद अंक, दिसम्बर १९७०, अशोक प्रकाशन मंदिर, दिल्ली
१८. समाजवादी मेमार, १९५६, नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद
१९. स्मारिका, चौथा राज्य सम्मेलन, रीवा, मध्यप्रदेश, समाजवादी पार्टी, दिसम्बर १९७०
२०. सोवियत दर्पण (सम्पादक), अनोपी, वेनुण, सोवियत संघ प्रकाशन, मई १९७७
२१. सोशलिस्ट पार्टी, सिद्धांत और कर्म, १९५६, सोशलिस्ट पार्टी केन्द्रीय कार्यालय, हैदराबाद

अंग्रेजी की पुस्तकें

1 Appu, P.S , ``Tenancy Reform ın Indıa", Economıc and Polıtıcal Weekly, Hitkarı House, Mumbaı' Aug 1975

2 Barker, E , ``Plato and hıs Predecessors" Metheun, London, 1918".

3 Bhatt, Anıl, ``Caste, Class and Polıtıcs".Manohar Book Company, New Delhı-1975.

4 Bose, Subhash Chandra, ``Through Congress Eyes", New Delhı-1972.

5. Bombwll K R , ``Constıtutıonal System of the Indıan Republıc", Modern Publication, Ambala Cantt, 1971

6 Bre cher, M , ``A Polıtıcal Bıography of Neh ru", Oxford Unıversıty Press, London, Fırst Ed 1959

7 Bose, Subhas Chandra, ``The Indian Struggle", London, Wishart, 1935

8 Barık, R.K , ``Polıtıcs of J P. Movemen ın Bıhar-1977", Radiant Publi shers, Kalıji New Delhı, 1977

9 Coker, F., ``Recent Polıtical Thought", Applenton Century, New York,1944

10. Cole, G.D.H., ``A Hıstory of Socıalist Thought, Vol. IV, London, 1953

11. Cousins, Norman, "Talks with Nehru``, London, First Ed 1951.

12. Chandra, Bipin, "Jawahar Lal Nehru ın Modern Perspective``, New Delhi, 1994.

13. Chandra, Bipin, "Ideology and Politics in Modern India``, New Delhi, 1994

14 Das, M.N., "The Political Philosophy of Jawahar Lal Nehru``, George Allen and Unwin Ltd., London First Ed. 1961.

15 Desai, A R , "Social Background of Indian Nationalism," Oxford University Press 1948

16 Dev, Acharya Narendra, ``Socialism and National Revolution", Padam Publication, Bombay, 1946

17 Giri, V V , ``Labour Problems in Indian Industry", Asia Publishing House, Bombay, 1970

18 Guha, Km Laxmi, ``Growh of Socialism in India, Thesis, University of Allahabad, 1954

19 Gupta, R C , "Socialism, Democracy and India``, Ram Prasad and Sons, Agra, 1965

20 Gray, Alexandra, "The Socialist Traditions from Marx to Lenin``, Longman Com , London, 1948

21 Graham, William, "Socialism-New and Old``, Kegan Paul Trench Trubher and Com Ltd , London, 1898

22 Ghose, Shanker, "Socialism and Communism in India``, Allied Pub Private Ltd , Bombay, First Ed. 1971

23 Gandhi, M K , "Non-Violence in Peace and War, Vol I and II, Navjivan Publishing House, Ahmedabad, 1948

24 Gandhi, M K , ``Hind Swaraj Indian Home Rule", Navjivan Publishing House, Ahmedabad, 1938

25 Gandhi, M.K., ``My Non-violence" Navjivan Publishing House, 1960.

26 Gandhi, M.K , ``Sarvodaya", Navjivan Publishing House, 1954.

27 Government of India, ``Nehru's Spececheѕ, Vol-I, 1946-1949, Ministry of Information and Broadcasting, Publication Division, 1949

28 Government of India, ``Nehru's Spececheѕ, Vol-II, 1949-1953, Ministry of Information and Broadcasting, Publication Division, 1954

29. Government of India, ``Nehru's Spececheѕ, Vol-III, 1953-1957, Ministry of Information and Broadcasting, Publication Division, 1958

30. Government of India, ``Independence and After", A Collection of More Important Speeches of Jawahar Lal Nehru From Sept. 1946- May 1949Ministry of Information and Broadcasting, Publication Division, 1949

31 Government of India, "J L Nehru on Community Development and Panchayati Raj and Cooperation, Ministry of Information and Broadcasting, Publication Division, 1961

32 Government of India, "J L Nehru on International Cooperation, Ministry of Information and Broadcasting, Publication Division, 1964

33 HarriatHfford, J.R. "Lohia and America Meet Sneh lata Ram Raddy", 81, Valmik Road, Madras, 1961

34 Hen ry, B Mayo, "Introduction to Marxist Theory", Oxford University Press, Amen House, London, 1960

35 Hook, Sidney, "Marx and Marxist", New York, 1955

36 Joad, C.E M , "Modern Political Theory", Oxford University Press, London, 1953

37, Johari, J C., "Indian Government and Politics", Vishal Publication, New Delhi, Ed IIIrd, 1977

38 Jallan, Vimal, "Introduction, The Indian Economy - Problems and Propects (edited), New Delhi, 1992

39 Jaiswal, Sita Ram, "Nehru on Society , Education and culture," Vinod Pustak Mandi, Agra, First Ed. 1965

40 Karanjia, R.K., "The mind of Nehru", An Interview, George and Unwin Ltd.,London, first Ed. 1960

41 Kripalani, J.B., "Gandhian Thought", Gandhi Smarak Nidhi, New Delhi, 1961

42 Kropotkin, "The Conquest Abroad", New York and London, 1907

43. Kirkup, Thomson, "History of Socialism" Adam and Charles Black, London, Ed , 1909

44 Khusaro, A.M., "Land Reforms in India" (Edited by Singh V.B., The Economic History of India, 1857-1956 New Delhi, 1965

45. Laidler, Harry, "Social Economic Movement, Routledge, London 1949

46 Lakhan Pal, P.C., "History of the Congress Socialist Party", New Delhi, 1951

47. Laski, H.J., "Communist Manifesto, Socialist Landmark", George Allen and Unwin Ltd., London, Ed. IV, 1955

48 Lange, Oskar, Fred, M Tailor, Edited and with on Introduction Benjamin E Lippincott, on the Economic Theory of Socialism, Tata Mcgrew Hill, Pub Co Ltd , New Delhi

49 Levine, Louis, ``Syndicalism in France" New York, Ed. IInd, 1914

50 Lohia, Dr Ram Manohar, ``Guilty Mon of India's Partition", Ram Manohar Lohia SamataNyas Vidhyalaya, Hyderabad, 1970

51 Lohia, Dr Ram Monohar, ``Marx, Gandhi and Socialism", Navhind Prakashan, Hyaderabad, 1963

52 Lohia, Dr Ram Manohar, ``Interval During Politics", Navhind Prakashan, Hy derabad, First Ed 1970

53 Lohia, Dr Ram Manohar, ``Will to Power and Other Writings, Navhind Prakashan, Hyderabad, 1956

54 Mukherjee, Heren, "The Gentle Colossus-A Study of Jawahar Lal Nehru``, Manisha Granthalaya Private Ltd , First Ed 1964

55 Massani, Minoo, "J.P Mission Party- Accomplished``, The Macmillon Company of India Ltd , First Ed 1975

56 Mackenzie, Norman, "Socialism-A Short History``, Hutchinson, University Liberay,II Stateford Place, London, 1941

57. Mishra, D P., "The Nehru Epoch", Vikas Publishing House,New Delhi, 1978

58 Mores, Frank, "Jawahar Lal Nehru : A Biography``, New York, 1956

59. Nanda, B.R. and Others (Editors): Selected work of Jawahar Lal Nehru, Vol I, II, III, VII, Oriented Book Company, New Delhi, First Ed 1972

60. Narasim haiah, C.D., "Jawahar Lal Nehru-A Study of his Writings and Speeches``, Rao and Raghavan, Clock Tower Square Mysore, First Ed. 1960

61. Nehru, Jawahar Lal, "An Autobiography``, The Bodley Head Company, London, First, 1936

62. Nehru, Jawahar Lal, "A Bunch of Old Letters``, Asia Publishing House, Bombay, First Ed. 1958

63 Nehru, Jawahar Lal, "The Discovery of India``, Meridian Books Limited, London, Second Ed 1951

64 Nehru, Jawahar Lal, "Glimpses of World History``, 2 Vols , Kitabistan, Allahabad, 1934

65 Nehru, Jawahar Lal, "India and the World Essays II by J L. Nehru, George Allen and Unwin Ltd , London, First Ed 1936

66 Nehru, Jawahar Lal, ``The Unity of India", (Edited by V K Krishna), Lindsay Drummond, London, First Ed 1948

67 Nehru, Jawahar Lal, ``Eighteen Months in India 1936-1937", Essay III, Kitabistan, Allahabad, First Ed 1938

68 Nehru, Jawahar Lal, ``India's Socialistic Pattern of Society", Published by B R. Gupta Private Co. Ltd , New Delhi, 1950

69 Nehru, Jawahar Lal, ``Recent Essay and writings (Essay-I), Kitabistan, Allahabad, First Ed. 1934

70 Nehru and Gandhi, (Selection arranged in the order of events from the writings and speeches of Jawahar Lal Nehru) John Day and Company, New York, First Ed 1941

71. Nehru, Jawahar Lal, "Soviet Russia``, Allahabad, First Ed. 1928

72. Norman, Dorthy, (Edi), "Nehru, The First Sixty Years``, Vol. I,II, Asia Publishing House, Bombay, First Ed. 1965

73 Narayan, J P, "Communication Society and Panchayat Raj``, Varanasi Wachenalya, 1970

74. Narayan, J.P. "From Socialism to Sarvodya``, Serva Seva Sangh, Varanasi, First Ed. 1965

75. Narayan, J.P., "Picture of Sarvodaya``, Tanjore Sarvodaya Prachralaya, First Ed. 1961

76. Narayan, J.P., "U.P. Jail Life (A Collection of Personal Leters), Arnold H. Publishers (India) Pvt Ltd., New Delhi, First Ed. 1977

77. Narayan, J.P. ``Why Socialism?" The All India Socialist Party, Varanasi,1936

78. Narayan, J.P. ``Socialism, Sarvodaya and Democracy" (Edi.)by Bimla Pras ad, Asia Publishing House, Bombay, First Ed. 1964

79 Narayan, J P ``Towards Struggle", Padam Pub., Bombay, Ed. I, 1946

80. Narayan, J P, ``Three Basic Problems of Free India", Asia Publishing House, Bombay, 1964

81 Nargolkar, V, ``J P Crusade for Indian Revolution" S Chand and Co., New Delhi, 1975

82 Namboodaripad, E.S , ``Economics and Politics of India's Socialist Pattern", New Delhi, 1966

83 Pant, S C , ``Indian Labour Problems", Chatayana Pub , Allahabad, 1976

84 Pease, Edward R., ``History of Fabian Society", London, 1924

85 Parekh, Bhiku, ``The Concept of Socialism", Ambika Pub., New Delhi, Ed 1926

86 Rio, R.V, ``Current Economic Problems", Kitab Mahel, Allahabad, 1949

87 Rai, Akhilendra Prasad, ``Socialist Thought in Modern India" Minakshi Prakasan Meerut, 1975

88 S Gopal, ``Jawahar Lal Nehru A Biography", Vol I,II,III, Oxford University Press, 1975

89 Sen, N B., ``Wit and Wisdom of Nehru", New Book Society of India, New Delhi, First Ed 1960

90 Seminar on Socialism, Vol. I, II, Nehru Memorial Mu seam Lib rary, Teen Murti House, New Delhi, 1970

91. Sabine, G.H , ``A History of Political Theory", Harrap, London, 1951

92. Shaw, G B. Sidney etc., ``Fabian Essay in Socialism", London, 1920

93. Shaw, G.D., ``Reading in Recent Political Philosophy", (Ed. by M Sphar), London, 1920

94 Sitaramaiya, Pattabhi, ``The History of the Indian National Congress", Vol. I,II, Padma Publications, Bombay

95. Sharda, Harivilash, ``Life of Dayanand Saraswati", Paropkarini Sabha, Ajmer, Second Edi. 1968

96. Tibor Mende, ``Conversations with Mr. Nehru, London, 1956, Cited in G. Prasad, Nehru: A Study in Colonial Liberalism, New Delhi, Sterling Publishers, 1976

97. Thorner, Denial, "The Shaping of Modern Indian, New Delhi, 1980

98 Verma, S P (Ed) Jawahar Lal Nehru, ``The Architect of Modern India", Communication Center, India, New Delhi, 1977

99 Vivekanand, Swami, ``The Complete works", (in English), Advaita Ashrama, Calcutta, 1980

100 Vivekanand, Swami, ``Practical Vedanta" Advaita Ashrama, Calcutta, 1958

101 Vivekanand, Swami, ``Chicago Speech", Sri Ramkrishna Ashrama,Nagpur, 1975

102 Vivekanand, Swami, Modern India`` (The Complete works of Vivekanand, Vol 6, Advaita Ashrama, Calcutta, 1958

103 Vaidhynathan, A , "The Indian Economy Since Independence (1947-70)`` Edited by Dharma Kumar, The Cambridge Economic History of India, Delhi, 1983

104. Zakaria, Rafiq, "A Study of Nehru``, The Times of India Publication, First Ed 1959

इनसाईक्लोपीडिया

1 Edvin, R A Seligman (Editor-in-Chief), Encyclopedia of Social Sciences, Vol. 5, 6, 13, Fifteenth Ed 1963

2 Preace, W E (Editor) Encyclopedia Britannica, Vol. 20, William Beuton, Chicago, 1963

डोक्यूमेन्ट्री/पत्र/पत्रिकाएं

1. The Indian Journal of Political Science, March-1970. Editor- J.S. Banis, Pub. by the Indian Political Science Association.

2. Socialism : Theory and Practice, Soviet Monthly Digest, June 1977, Novesti Press Agency Publishing House, France, Germany and Spanish.

3. "Socialism``, Theory and Practice, Soviet Monthly Digest, Feb. 1977

4 "Socialism``, Theory and Practice, Soviet Monthly Digest, March 1977

5 "India`` A Reference Annual, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, New Delhi-1980

6 First Five Year Plan, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, New Delhi

7 Second Five Year Plan Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, New Delhi

8 Third Five Year Plan Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, New Delhi

9 Indian National Congress- Resolutions on Economic Policy and Prog ramme-1924-54, A I.C C , New Delhi, 1954

10 Report, National Planning Committee. Edited by Shah, K.T., Bombay, 1949

11 Papers Relating to the Formulation of the Second Five Year Plan, Govt. of India, Planning Commission, New Delhi, 1955

12. Nehru in Scandinavia, Information Service of India, Stockholm, 1958

13 New India : Progress Through Democracy, Planning Commission, Government of India, [illegible] 1958

14 "Economic and Political Weekly : HitakariHouse, Mumbai